परवार जैन समाज का इतिहास

लेखक एव सम्पादक

सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री

प्रेरक एव परामर्शदाता

पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री

विशिष्ट सहयोगी एवं कार्यकर्ता

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

प्रोफेसर, शासकीय महाविद्यालय, नीमच

डॉ. कमलेशकुमार जैन

जैनदर्शन प्राध्यापक

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

प्रकाशक

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा

वी. नि. सवत् २५१८]

[ई. १९९२

प्रकाशकीय

अनेक प्रकार की शोध-खोज के पश्चात् यह इतिहास ग्रन्थ तैयार हुआ है। अतः इसे प्रकाशित करते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

परवार समाज के इतिहास को तैयार कर प्रकाशित करने की योजना आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व सन् १९१७-१८ में सर्वप्रथम श्री दुलीचन्द जी परवार कलकत्ता ने बनाई थी, किन्तु शोधपूर्ण सामग्री के अभाव में वे सफल नहीं हो सके। पुनः स्व० सिंघई पन्नालाल जी रईस अमरावती ने इसके लिखाने हेतु अथक प्रयास किया और लेखक को पर्याप्त पारितोषिक प्रदान करने की भी घोषणा की, किन्तु उन्हें भी इस इतिहास को लिखाने में सफलता नहीं मिली, तब उन्होंने अनेक वर्षों तक परिश्रम एवं द्रव्य व्यय करके सम्पूर्ण समाज का सर्वेक्षण कराया और सन् १९२४ में 'दिगम्बर जैन परवार डायरेक्टरी' का प्रकाशन किया, जिसमें तत्कालीन परवार समाज के लोगों की जनसंख्या, व्यापार, मन्दिरों, धर्मशालाओं, पाठशालाओं, शास्त्र भण्डारों, सामाजिक संगठनों एवं समाज-प्रमुखों आदि का विस्तृत विवरण दिया है।

पुनः सन् १९४० में 'परवार बन्धु' के सम्पादक पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री के एक सम्पादकीय लेख मे ईडर एवं जयपुर की पट्टावलियों के आधार से परवार समाज के इतिहास का कुछ सूत्र हाथ मे आया। स० सि० धन्यकुमार जैन कटनी ने इसमें गहरी रुचि ली, जिससे अनेक विद्वानों ने तद्विषयक लेख लिखे, किन्तु तब भी कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नही हो सकी। पुनः सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी बम्बई ने स० सि० धन्यकुमार जी की बलवती प्रेरणा से परवार समाज के इतिहास के सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख लिखा जो 'परवार बन्धु' (मासिक) के अप्रैल-मई १९४० अंक में प्रकाशित हुआ था।[1]

---

१. यह लेख प्रस्तुत ग्रन्थ के पृष्ठ १५० से १८३ तक अविकल रूप में प्रकाशित किया गया है।

सन् १९७५ में परवार सभा के प्रधानमन्त्री पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री ने सभा की प्रबन्धकारिणी समिति में परवार समाज के इतिहास का संकलन कर प्रकाशित करने का प्रस्ताव रखा, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। तदनन्तर उन्होंने जैन वाङ्मय के सुप्रसिद्ध विद्वान् सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री को इतिहास लिखने की प्रेरणा दी। तदनुसार आदरणीय पण्डित जी ने इस दिशा मे प्रयास किया और जो भी सूत्र उन्हें हाथ लगे उनको आधार बनाकर उन्होंने एक विस्तृत लेख तैयार किया, जो 'सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ' में प्रकाशित है।

उसके बाद भी शोध-खोज चलती रही और सन् १९८८ में वह सप्रमाण विस्तृत रूप में तैयार हो गया। दिनांक १६ अक्टूबर, १९८८ को जबलपुर में आयोजित परवार सभा की कार्यकारिणी समिति मे उसका वाचन कर सर्वसम्मति से उसके प्रकाशन का निर्णय लिया गया। साथ ही ग्रन्थ-लेखक पं० फूलचन्द्र शास्त्री का पिसनहारी मढ़िया क्षेत्र पर सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया।

सन् १९८९ के ग्रीष्मावकाश में कटनी में पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के सान्निध्य मे परामर्श करने के लिए डॉ० कमलेशकुमार जैन (वाराणसी), डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री (नीमच), डॉ० फूलचन्द्र प्रेमी (वाराणसी), पं० भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री (बाँदरी) और श्री नेमिचन्द इंजीनियर (नागपुर) आदि विद्वानों की सभा आयोजित की गयी, जिसमें पुनः इतिहास का वाचन हुआ और अवशिष्ट कार्य को सम्पन्न करने हेतु विद्वानों को कार्यभार सौपा गया। तदनुसार डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री सम्पूर्ण सामग्री व्यवस्थित करने के लिए पं० फूलचन्द्र शास्त्री के पास दो बार हस्तिनापुर गये तथा प्राचीन प्रतिमालेख एवं पट्टावली के संकलन हेतु उन्होंने साढोरा, विदिशा और ईडर की भी यात्रा की।

डॉ० कमलेशकुमार जैन (वाराणसी) को ग्रन्थ-मुद्रण के साथ ही चतुर्थ, पचम एवं षष्ठ खण्ड मे प्रकाशित मुनियों, त्यागियों, विद्वानों एवं समाजसेवियों के परिचय और चित्र आदि के संकलन एवं उन्हे व्यवस्थित करने का गुरुतर दायित्व भी सौंपा गया। तदनुसार उन्होंने विश्व-

विद्यालयीय कार्यों को सम्पन्न करते हुए प्रस्तुत ग्रन्थ को व्यवस्थित करने एवं मुद्रित कराने में विशेष सहयोग दिया है।

पं० राजमल जैन (भोपाल), पं० भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री (बांदरी), श्री कपूरचन्द पोद्दार (टीकमगढ़), पं० शुभचन्द्र जैन (विदिशा) एवं पं० अमृतलाल शास्त्री (दमोह) ने भी सामग्री संकलन में निष्ठापूर्वक सहयोग किया है।

पं० फूलचन्द्र शास्त्री के अस्वस्थ रहने के कारण उनके सुपुत्र डॉ० अशोककुमार जैन (रुड़की) तथा पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री की अस्वथता के कारण उनके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री अमरचन्द्र जैन (सतना) ने पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

इसी प्रकार प्रो० उदयचन्द्र जैन (वाराणसी) ने मुद्रण एवं प्रूफ संशोधन में सहयोग दिया है।

श्रीमती सुषमा जैन (धर्मपत्नी, डॉ० कमलेशकुमार जैन, वाराणसी) ने प्रतिलिपि एवं प्रूफ मिलान आदि करने में सहयोग दिया है।

अतः मै उक्त सभी विद्वानों एवं सहयोगियों का हृदय से आभारी हूँ।

मै इस ग्रन्थ के लेखक पं० फूलचन्द्र शास्त्री, प्रेरक पं० जगन्मोहन-लाल शास्त्री (भूतपूर्व प्रधानमन्त्री, परवार सभा) एवं स० सि० धन्यकुमार जैन (अध्यक्ष, परवार सभा) का भी अनुग्रहीत हूँ, जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री लगभग एक वर्ष से बीमार चल रहे थे, इसलिए उनका लिखने-पढ़ने का कार्य बन्द था। चूँकि इतिहास ग्रन्थ में उचित संशोधन एवं प्रकाशन सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्यभार पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री अपने जीवनकाल में प्रारम्भ से ही डॉ० कमलेशकुमार जैन (वाराणसी) को सौंप गये थे, अतः इस इतिहास ग्रन्थ का यथोचित रूप में संशोधन करते हुए इसके प्रकाशन का सारा दायित्व डॉ० कमलेश कुमार जैन ने पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के निर्देशन में पूर्ण किया है। इसलिए मैं उनका विशेष रूप से आभार मानता हूँ।

इस ग्रन्थ के इतिहास विभाग के लेखक श्रीमान् पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री हैं। उनका असमय में ही स्वर्गवास हो गया। वे ग्रन्थ को साङ्गोपाङ्ग पूर्ण नही देख सके और हम लोग भी उनके सहयोग से वञ्चित हो गये। उनका यह इतिहास लेखन-कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। गत पचास-साठ वर्षो से जिसकी आकांक्षा समाज को थी, उसके लेखन में पण्डित जी ने अपने जीवन का बहुमूल्य योगदान दिया है।

इसके पश्चात् दिनांक ३ फरवरी १९९२ को अ० भा० दि० जैन परवार सभा के अध्यक्ष श्रीमान् स० सिं० धन्यकुमार जी जैन (कटनी) का समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया। उनका भी इस ग्रन्थ के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान है। वे विद्वान् लेखक को इतिहास लिखने हेतु सदा प्रेरित एवं उत्साहित करते रहे। उनके दिवंगत हो जाने से हम भी उनके सहयोग से वंचित हो गये।

उक्त दोनों महानुभावों का हम यहाँ श्रद्धापूर्वक पुण्यस्मरण कर रहे है।

समाज के अनेक विद्वानों एवं प्रतिष्ठित सज्जनों के परिचय प्रयत्न करने पर भी हमें प्राप्त नही हुए हैं, अतः उनका प्रकाशन नहीं हो सका है। इसके लिए मैं उनसे क्षमाप्रार्थी हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन में मैंने विद्वानों का सहयोग लिया है, फिर भी यदि इसमें कुछ त्रुटियाँ रह गयी हो तो उसके लिए मैं आप सबसे क्षमाप्रार्थी हूँ एवं सहयोग का आकांक्षी हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु समाज के जिन भाइयों ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, उन सबका भी आभारी हूँ। आर्थिक सहयोगदाताओं की नामावली परिशिष्ट मे मुद्रित है।

इतिहास के सम्बन्ध में हमे अब तक जो भी सामग्री उपलब्ध हुई है, उसका उपयोग इसमे किया गया है। किन्तु शोध-खोज का अन्त नहीं है, इसलिए जिन विद्वानों, इतिहास-लेखकों अथवा शोधकर्ताओं को कोई सामग्री प्राप्त हो तो वे हमे भेजने की कृपा करें, जिससे उसका द्वितीय संस्करण मे उपयोग किया जा सके।

कार्यालय :
६५७, जवाहरगंज, जबलपुर
३१ मार्च, १९९२

स० सिं० नेमीचन्द जैन
प्रधानमंत्री
श्री भारतवर्षीय दि० जैन परवार सभा

पुण्यस्मृतिः

सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री

इतिहास के हस्ताक्षर

भारतवर्ष अनेक जातियों एवं धर्मों वाला देश है। यहाँ अनेक संस्कृतियाँ फूली-फली हैं। किन्तु मुख्य रूप से द्रविड़, वैदिक और बौद्ध-संस्कृति ने देश के जन-जीवन को प्रभावित किया है। द्रविड़-संस्कृति अहिंसा प्रधान रही है। 'सर्वजन सुखाय' सदाचार संयम को स्वपर कल्याणकारी भावना के कारण जैनधर्म की जड़ें घनीभूत होकर जन समाज में व्याप्त हुई हैं।

धर्म किसी एक देश, एक काल अथवा एक जाति के लिये प्रसूत नही होता। वह 'सर्वजन हिताय' की कल्याणकारी भावना को अपने में संजोये रहता है। यह उसी का सुफल है कि हमारा भारत देश अहिंसा मूलक सह-अस्तित्व एवं पञ्चशील के सिद्धान्त को मान्यता देकर अखिल विश्व मे अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। अनेकान्त की विचारधारा से ही सह-अस्तित्व का जन्म हुआ है। भारत देश इन सिद्धान्तों की रक्षा सजग प्रहरी की भाँति आज भी कर रहा है। जैनधर्म का यह मूल बीज है।

इतिहास अतीत का चित्रपट नही, किन्तु वर्तमान से जोड़ने का एक सेतु है और मानव-विकास की धाराओं को समझने-बूझने और आगे बढ़ाने की एक विधा है, जो पाण्डुलिपियों, प्रशस्तियों, शिलालेखों, ताम्रलेखों, स्मारकों द्वारा विगत काल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं से इतिहास को जीवित रखती है। समाज को उन्नति के पथ की ओर प्रेरित करती है। अवनति के मार्ग से सावधान रहने का संकेत देती है। विकासशील समाज को इतिहास के अध्ययन, मनन, चिन्तन और अनुशीलन से दिशा बोध होता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में परवार जाति की अपनी गौरवशाली परम्परा रही है। यह दिगम्बर जैन धर्मानुयायी है। वर्तमान में इसका निवास-क्षेत्र मध्यप्रदेश, महाकौशल और बुन्देलखण्ड है। इसका कार्यक्षेत्र अब व्यवसाय प्रधान है।

सन् १९३९-४० में परवार समाज मे कुछ ऐसी चर्चा उठी कि परवार जाति का उद्‌गम कहाँ और कब से हुआ? इस विषय की चर्चा को लेकर परवार समाज के अनेक विद्वानों ने लेख लिखे। उस समय

सन् ३९-४० में मैं 'परवार बन्धु' पत्र का सम्पादक था। इस प्रसंग में उक्त पत्र का विशेषांक निकाला गया, जिसमें उन लेखों से इतिहास के कुछ सूत्र मिले, जो वास्तविक थे। और कुछ ऐसे सूत्र भी सामने आये जो सिद्ध नही हुए। जो सूत्र यथार्थ थे, उन पर खोज आगे बढ़ी और अब हम ऐसी स्थिति मे है कि परवार जाति के पूर्ण प्रामाणिक इतिहास को संसार के सामने रखने मे समर्थ है।

धीमान् पं० फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री ने करीब ४ वर्ष के परिश्रम के द्वारा इतिहास संबन्धी यथार्थ तत्त्वो को प्राप्त किया। पट्टावलियों, प्रतिमालेखो, ग्रन्थो की प्रशस्तियों, शिलालेखों तथा पुरानी पत्र-पत्रिकाओं के आधार पर पूर्ण इतिहास तैयार हुआ है, जो पाठकों के सामने सप्रमाण प्रकाशित किया जा रहा है।

यह गौरव की बात है कि परवार जाति का इतिहास विक्रम शताब्दी के प्रारम्भ होने से पूर्व का है। यह तो नही कहा जा सकता कि सर्वप्रथम इन लोगों ने दिगम्बर जैनधर्म का आश्रय कब और किन आचार्यों से प्राप्त किया, तथापि यह सुनिश्चित है कि महाराजा विक्रमादित्य, जिनका कि वर्तमान मे संवत् २०४७ चल रहा है, उनके पौत्र, जो मूल संघ की पट्टावली मे विक्रम संवत् २६ मे आचार्य पद पर आरूढ़ हुए और जिनकी प्रसिद्धि 'गुप्तिगुप्त' के नाम से थी, जयपुर की एक पट्टावली मे उन्हें स्पष्टतः "जाति परवार विक्रमादित्य को पोतो" लिखा हुआ है।

जयपुर की द्वितीय पट्टावली में उन्ही 'गुप्तिगुप्त' को पवार राजपूत लिखा गया है। यह तो सुप्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य परमार क्षत्रिय थे और उनके पौत्र को 'परवार' लिखा गया। इसका अर्थ है कि परमार क्षत्रियो को 'परवार' भी कहा जाता था। बुन्देलखण्ड में पाये जाने वाले परमार क्षत्रिय आज भी 'पंवार' के नाम से अपना परिचय देते है। जैसा कि ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में दी गई पट्टावलियों से प्रमाणित होता है। ये द्वितीय भद्रबाहु जो विक्रम संवत् ४ में पूर्ण अंग और पूर्वधारी आचार्यों की परम्परा समाप्त होने पर जब केवल अंग और पूर्वों का अंश मात्र ज्ञान आचार्यों को रह गया था, तब आगे जिनवाणी और जैनधर्म की परम्परा समाज मे चले—इस हेतु इन्हें एक संगठन

बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। द्वितीय 'भद्रबाहु' इस पट्ट के प्रथम पट्टाधीश हुए और द्वितीय-पट्टाधीश 'गुप्तिगुप्त' विक्रम संवत् २६ में हुए—जो इनके शिष्य थे। वे ही उत्तराधिकारी पद पर आसीन हुए। वे जाति से परवार थे। यही से इस इतिहास का प्रारम्भ हो रहा है। इसके पूर्व का कोई इतिहास प्राप्त नहीं होता।

चूंकि 'गुप्तिगुप्त' के पितामह राजा विक्रम थे, जो परमार क्षत्रिय थे। इसलिये यह तथ्य इतिहास सम्मत है कि परमार क्षत्रियों के वंशज ही आधुनिक परवार है, जो भगवान् महावीर के पवित्र मूलसंघ के अनुयायी हैं।

विक्रम की तीसरी शताब्दी पूर्व महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त मौर्य इतिहास प्रसिद्ध सम्राट् हुए हैं। इन्होंने श्रुतकेवली भद्रबाहु मुनिराज की बड़ी निष्ठा-श्रद्धा से अनुपम सेवा की थी। तब श्रवणबेलगोला के 'चन्द्रगिरि' पर्वत पर अपने गुरूवर भद्रबाहु की समाधि पर पुण्य-स्मृति में उस काल की सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था का द्योतक शिला-लेख अंकित कराया था। सम्राट् चन्द्रगुप्त परमार वंश के कुल-शिरोमणि थे। इनके वंशज महाराजा विक्रमादित्य के नाम पर आज भी विक्रम संवत् चल रहा है।

यह तो सुनिश्चित है कि सभी तीर्थङ्कर क्षत्रिय वंशों में उत्पन्न हुए थे और उनके वंशज जैनधर्म के अनुयायी रहे। उनमें परमार क्षत्रिय भी होंगे। इन्हें पवार, परमार, प्रमार आदि शब्दों से यत्र तत्र उल्लिखित किया गया। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विक्रम संवत् के बहुत पूर्व से ही वे जैनधर्म के अनुयायी रहे हैं।

इस इतिहास के अन्य खण्डों में वर्तमान शताब्दी के सामाजिक प्रमुख पुरुषो, व्रतियों, विद्वानों, दानियों, सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा करने वालों और देशभक्तों, जिन्होंने राष्ट्र के स्वतन्त्रता आन्दोलनों मे जेलों में कष्ट सहे हैं तथा मृत्यु का वरण किया है—उनका संक्षिप्त परिचय यथा-संभव प्राप्त चित्रों के साथ निबद्ध किया गया है।

स्वर्गीय बाबू छोटेलालजी कलकत्ता निवासी जो इतिहास के विद्वान् थे, का उड़ीसा प्रान्त की प्रसिद्ध ऐतिहासिक खण्डगिरि-उदयगिरि जैन तीर्थ से सम्बन्ध था, उनका कथन था कि परवार जाति

के इतिहास के सूत्र वहाँ पर हैं। परन्तु उनके दिवंगत हो जाने से उन सूत्रों का पता न चल सका। केवल एक संकेत मिला कि 'कटक' के मंजु चौधरी जाति से परवार थे। उन्हें नगर का पूरा बाजार चौधराहट में राज्य से मिला हुआ था। पूरे बाजार में वे टैक्स वसूल करते थे। उन्हे यह अधिकार दिया गया था। आर्थिक दृष्टि से वे बहुत सम्पन्न थे। दक्षिण से, पूर्व से और उत्तर से जो साधु संघ आते थे—उन्हें ठहरने के लिये पर्वतों पर सैकड़ों गुफाओं का चौधरी जी ने निर्माण कराया था। वे गुफाएँ आज भी अपना विशेष महत्त्व रखती है। ज्ञात हुआ है कि मंजु चौधरी की छठवी पीढ़ी के वंशज आज भी मौजूद है। उनका कथन है कि राजकीय स्वामित्व संबंधी दस्तावेज और बही-खाते आदि सब सरकार ने उनसे ले लिये, जो फिर वापिस नहीं लौटाये।

इस प्रकार इस इतिहास को देखने के बाद पाठक इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि परवार जाति बहुत प्राचीन है, जो दिगम्बर जैन मूलसंघ की परम्परा को लिये हुए चली आ रही है। हम आशा करते हैं कि अग्रिम युवा पीढ़ी अपनी गौरवपूर्ण धरोहर को अक्षुण्ण रखकर अपनी गौरव गरिमा को सुरक्षित रखेगी।

श्रद्धेय पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री, डा० कमलेशकुमार जैन एवं डा० देवेन्द्रकुमार जैन ने इस इतिहास को साङ्गोपाङ्ग प्रामाणिक बनाने एवं व्यवस्थित करने मे अधिक परिश्रम किया है। अतः उनके प्रति आभार मानता हूँ। मनीषी वयोवृद्ध विद्वान् पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के मार्गदर्शन का इसे पूर्ण रूप देने मे जो योगदान मिला है वह भुलाया नही जा सकता। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। प्रकाशन के सम्बन्ध में श्री दादा नेमीचन्द जी प्रधान-मंत्री ने उत्साहपूर्वक अर्थ योजना की है। उसके लिये वे विशेष धन्यवाद के पात्र है।

विनीत

स० सि० धन्यकुमार जैन

अध्यक्ष

अ० भा० दि० जैन परवार सभा

महावीर कीर्ति स्तम्भ, नेहरू पार्क,

कटनी, म० प्र०, ४८३५०१

विक्रम संवत् २०४७

कार्तिक अमावस्या,

वीर निर्वाण सं० २४१७

१८ अक्टूबर, १९९०

अपनी बात

दिसम्बर, सन् १९८८ के अन्त में जब मै **पूज्य पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री** के दर्शन करने रुड़की गया था तो पूज्य पण्डितजी ने मुझे इस इतिहास ग्रन्थ की सामग्री प्रकाशन हेतु दी थी, जो एक बृहत् लेख के रूप में थी। साथ में प्रतिमालेखों/शिलालेखों का संग्रह, उज्जैन पट्टावली. परवार सभा का परिचय तथा कतिपय विशिष्ट विद्वानों एवं विशिष्ट समाजसेवियों के परिचय भी दिये थे।

मेरे द्वारा उक्त लेख की प्रतिलिपि करने के पश्चात् सन् १९८९ के ग्रीष्मकाल मे कटनी में आयोजित **'षट्खण्डागम वाचना'** के अवसर पर **श्रद्धेय पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री** के सान्निध्य में अनेक विद्वानों की सहमति एवं सहयोग से **डॉ० देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री** (नीमच) और मैने **'परवार बन्धु'** के कतिपय अंको के आधार पर लेख का संवर्द्धन किया था। उक्त अवसर पर विचार-विमर्श के पश्चात् यह भी निर्णय लिया गया था कि वर्तमान परवार जैन समाज का परिचय भी इतिहास ग्रन्थ मे प्रकाशित किया जाय, जिससे **स० सिं० धन्यकुमारजी जैन** (कटनी) की अध्यक्षता मे सम्पन्न परवार सभा के बीसवें खुरई अधिवेशन (९, १०, ११ दिसम्बर, सन् १९५३) मे पारित प्रस्ताव क्रमाङ्क ३—**'परवार डायरेक्टरी बहुत पहले मुद्रित हुई थी, उसका पुनः संशोधन कराया जाय'** की आंशिक पूर्ति हो सके। क्योकि बदली हुई परिस्थितियो के कारण उक्त प्रस्ताव कार्यान्वित नही हो सका है। तदनुसार विभिन्न विद्वानों एवं समाजसेवियों के परिचयों का संकलन प्रारम्भ किया गया।

इसी क्रम मे मैं सन् १९९० के ग्रीष्मकाल में एक माह सपरिवार **श्रद्धेय पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री** के पास कुण्डलपुर मे रहा, जहाँ पूज्य पण्डितजी ने अनेक विद्वानो एवं समाजसेवियो के परिचय बोलकर लिखवाये थे। **सम्मान्य स० सिं० धन्यकुमारजी जैन** ने इतिहास लेखन एवं प्रकाशन के निमित्त दीर्घकाल से सञ्चित सामग्री एवं दुर्लभ चित्रों को मुझे पहले ही सौप दिया था। **सम्मान्य दादा नेमीचन्दजी जैन** ने प्रयत्न करके जबलपुर के समाजसेवियों के सचित्र परिचय एवं जबलपुर परवार समाज द्वारा निर्मित मन्दिरों एवं भवनों के चित्र भेज दिये। इसी क्रम में **आदरणीय पं० अमृतलालजी शास्त्री** (दमोह) ने विभिन्न नगरों मे जाकर परिचय एवं चित्र संकलित किये। इसी प्रकार **आदरणीय पं० भुवनेन्द्रकुमारजी शास्त्री** (बाँदरी) एवं **आदरणीय बड़े भैया अमरचन्द्रजी जैन** (सतना) ने भी अनेक नगरों एवं वहाँ के

प्रमुख व्यक्तियों के परिचय लिखकर भेज दिये। मैने भी पट्टावली, अनेक मूर्तिलेखों एवं अनेक विद्वानों/समाजसेवियों के परिचय तथा चित्र संकलित किये थे। इस प्रकार लगभग पन्द्रह सौ पृष्ठों की सामग्री संकलित हो जाने पर उसको संक्षिप्तकर व्यवस्थित करना और यथास्थान संयोजित करना मुझ जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति के लिये सम्भव नही था। अतः निरन्तर पत्राचार के बावजूद मुझे अनेक बार **श्रद्धेय पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री** के पास कुण्डलपुर, कटनी एवं सतना जाना पड़ा, जहाँ उनके चरण सान्निध्य मे बैठकर यह कार्य सम्पन्न किया है। श्रद्धेय पण्डित जी के जीवन की इस गोधूलिबेला मे मुझे उनके साथ कार्य करने एवं दुर्लभ क्षणों को बिताने का जो अवसर मिला है, वह अविस्मरणीय है। अतः मै उन्हे पुनः पुनः प्रणाम करता हुआ उनके दीर्घायुष्य की मंगलकामना करता हूँ।

इस ग्रन्थ के लेखक **श्रद्धेय पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री** (वाराणसी) का ३१ अगस्त, १९९१ को रुड़की मे स्वर्गवास हो गया। वे ग्रन्थ के कुछ ही मुद्रित फर्मे देख सके। इसी प्रकार ग्रन्थ लेखन मे प्रेरणास्रोत **सम्मान्य स० सि० धन्यकुमारजी जैन** (कटनी) का ३ फरवरी, सन् १९९२ को आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार ये दोनो पुण्यपुरुष इतिहास लिखते-लिखाते स्वयं इतिहास बन गये। ग्रन्थ प्रकाशन की इस बेला मे मै उक्त दोनो महापुरुषो का हृदय से स्मरण करता हुआ उन्हे अपनी सादर विनयाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

इस ग्रन्थ को व्यवस्थित करने मे मुझे **श्रद्धेय पं० उदयचन्द्रजी जैन** (वाराणसी) द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सुझाव मिले है, अतः मै उनका हृदय से कृतज्ञ हूं। ग्रन्थ प्रकाशन में 'अथ' से 'इति' तक मेरी धर्मपत्नी **श्रीमती सुषमा जैन** ने छाया की भांति मेरा साथ निभाया है। मित्रवर **डॉ० सुरेशचन्द्र जैन** (वाराणसी) ने समय-समय पर अनेक सुझाव दिये है। प्रिय **डॉ० हेमन्तकुमार जैन** (वाराणसी) ने मिलान कार्य मे सहयोग किया है। अतः मै इन सभी का आभारी हूँ। **चि० आनन्दकुमार जैन** एव **बिटिया अनामिका जैन** ने अपनी बाल-चेष्टाओ से हमे प्रभावित किया है, अतः ये दोनो स्नेह एवं आशीर्वाद के पात्र हैं।

निर्वाण भवन
बी २/२४९, लेन नं० १४
रवीन्द्रपुरी, वाराणसी
श्रुतपञ्चमी, वी० नि० सं० २५१८

डॉ० कमलेशकुमार जैन
जैनदर्शन प्राध्यापक
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

प्रस्तावना

मुझे अपनी विद्यार्थी अवस्था में वि० सं० १९२१-२२ के बीचस्व० पं० गौरीलालजी सिद्धान्तशास्त्री के साथ दि० जैन महासभा के कानपुर अधिवेशन मे जाने का अवसर मिला था। इस अधिवेशन में शास्त्र-भंडारों से संकलित प्राचीन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ, प्राचीन चित्र तथा कलापूर्ण वस्तुएँ एक प्रदर्शनी के रूप में रखी गई थीं। इनमें नदिसंघ की एक (जयपुर) पट्टावली भी देखने में आई, जिसमे लिखा था **"विक्रम सवत् २६ में गुप्तिगुप्त नामक आचार्य पट्ट पर बैठे जाति परवार विक्रमादित्य को पोतो।"**

इस बात को मैंने अपनी डायरी में नोट किया था, जो मेरे पास अब तक है। इसी पट्टावली में जैसवाल, लमेचू आदि जातियों का भी उल्लेख आचार्यों के नाम के साथ था।

इस पट्टावली के लेख से मुझे परवार जाति का ऐतिहासिक महत्त्व मालूम हुआ तथा इस विषय में और शोध-खोज करने की प्रेरणा मिली। कालान्तर मे अन्य दो पट्टावलियों से भी प्रकाश में आया कि आचार्य गुप्तिगुप्त वि० स० २६ मे पट्ट पर बैठे। उनका कहीं अर्हद्बली नाम से तथा कहीं कहीं—विशाखाचार्य नाम से भी उल्लेख है।

सन् १९२२ के बाद ही परवार समाज के इतिहास की शोध-खोज की इच्छा परवार समाज में अंकुरित हो गई। श्रीमान् स्व० सिंघई पन्नालाल जी, अमरावती इस दिशा में आगे आये, परन्तु उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो इस दिशा में शोध खोज करता, तब उन्होंने **'परवार डाइरेक्टरी'** का उपक्रम किया। सवैतनिक व्यक्तियों को भी नगर-नगर और ग्राम-ग्राम भेजकर उनसे समस्त जानकारी एकत्रित करवाई तथा उसे सन् १९२४ में प्रकाशित किया। उसके सम्पादन मे स्व० प० तुलसीराम जी काव्यतीर्थ, बड़ौत (जो अपने समय के एक व्युत्पन्न और

दृष्टिसम्पन्न विद्वान् थे) ने अपना योगदान दिया। यद्यपि स्वनामधन्य स्व० सेठ माणिकचन्द्रजी पानाचंदजी बंबई निवासी ने **दिगम्बर जैन डायरेक्टरी** इसके पूर्व प्रकाशित की थी और उससे बहुत कुछ परिचय परवार जाति का भी मिलता था, परन्तु विशेष जानकारी के लिए 'परवार डाइरेक्टरी' का निर्माण और प्रकाशन समयोचित था।[१] इसके प्रकाशन के बाद इतिहास के लेखकों का कोई आगे कदम नहीं बढ़ा। यह 'दि० जैन परवार डाइरेक्टरी' श्रीमान् सि० बंशीलाल पन्नालाल जी परवार जैन रईस अमरावती ने बहुत परिश्रम एवं विशेषताओं के साथ अपने द्रव्य से प्रकाशित करायी थी। उसमे देवगढ़ अतिशय क्षेत्र से एक शिलालेख का उद्धरण परवार जाति (पौरपाटान्वय) की प्राचीनता के सम्बन्ध मे दिया है—

"संवत् १३९३ शाके १२५८ वर्षे वैशाख वदी ५ गुरौ दिने मूल-नक्षत्रे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दस्वाम्यन्वये भट्टारकः श्रीप्रभाचन्द्रदेवः तच्छिष्यः वादवादीन्द्र-भट्टारक-श्रीपद्मनन्दिदेवः तच्छिष्यः श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवस्तत्पौरपाटान्वये 'अष्टशाखे' आहारदानदानेश्वरः श्रीसिंघई लक्ष्मणः तस्य भार्या श्री अक्षयश्रीः .... ।

इस डायरेक्टरी मे ६ प्रकार के नक्शे (चार्ट) दिये गये है, जो समाज के सम्बन्ध में विविध प्रकार की जानकारी देते है। २०० पेजों में यह समस्त जानकारी का खजाना है। समस्त भारतवर्ष मे उस समय जिन-जिन प्रान्तों में परवार जाति के आवास थे, उन सभी प्रान्तों के अन्तर्गत जिलेवार या स्टेट क्रम से ग्रामों का नाम, पोस्टआफिस, गृह-संख्या, पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों की संख्या, दि० जैन मन्दिरों की संख्या, धर्म-शालाओं, पाठशालाओं की संख्या तथा उस गाँव अथवा नगर के प्रमुख पुरुषों के नाम, व्यापारादि का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

---

१. सन् १९४० में 'परवार बन्धु' के सम्पादकीय लेख मे पट्टावली की चर्चा की और उससे प्रेरणा पाकर स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी ने परवार बंधु के सन् १९४० के अक मे एक लेख लिखा। यह लेख इसी ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड के पृष्ठ १५० से १८३ तक मुद्रित है।

यह सर्वेक्षण १४३१ गाँवों का हुआ था तथा जनसंख्या उस समय ४८२४० थी।[1] इसमें परवार समाज के लोगों का व्यवसाय, आर्थिक स्थिति और शिक्षा की दृष्टि से भी वर्गीकरण किया गया है। अठसखा, चौसखा, समैया आदि की जनगणना पूर्ण ग्राम क्रम से दी गयी है। इसमें पदवियों का भी उल्लेख है। तदनुसार सेठ १३०, सवाई सिंघई १६१ तथा सिंघई १०२२ लोग थे।

आरा (बिहार) से प्रकाशित 'जैन सिद्धान्त भास्कर' भाग १ अक्टूबर-मार्च, सन् १९१३, किरण २-३ में श्री परेशचन्द जी बन्द्योपाध्याय एम० ए०, सब जज (आरा) का विक्रम संवत् पर एक शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ था। उसमे उल्लेख है कि "विक्रमादित्य के पिता ने उज्जयिनी का राज्य स्थापित किया। विक्रमादित्य ने ५७ ई० पू० में अपना संवत् प्रचलित किया और साठ वर्ष राज्य करके इस असार संसार को छोड़ा। जैन ग्रन्थों से यह भी मालूम होता है कि विक्रमादित्य के पुत्र विक्रम चरित्र या धर्मादित्य ने ४० वर्षों तक मालवा प्रान्त का शासन किया। धर्मादित्य के पुत्र भैल्य ने ११ वर्ष तक राज्य किया और उसके बाद नैल्य ने १४ वर्ष तक राज्य किया एवं नहड़ या नहद ने १० वर्ष राज्य किया। नहद के समय में सुवर्णगिरि के शिखर पर श्री १००८ महावीर स्वामी का एक बड़ा मन्दिर निर्माण हुआ। विक्रमादित्य का जैन धर्म में विश्वास था, इसलिए उसका जैन ग्रन्थों मे उल्लेख है।"

यह तो सुप्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य परमार जातीय क्षत्रिय (राजपूत) थे। इनकी राज्य वंशावली से प्रमाणित है कि विक्रमादित्य के वंश में दि० जैन धर्म की मान्यता चली आ रही थी। मूलसंघ की आचार्य पट्टावली के अनुसार आचार्य गुप्तिगुप्त (विक्रमादित्य के पौत्र,

---

१. १९२४ की जनसख्या के आधार पर वर्तमान में परवार समाज की जनसख्या लगभग डेढ़ लाख होनी चाहिए। विगत ६७ वर्षों मे कोई ऐसा उपक्रम जानकारी प्रकाशित करने का नहीं हुआ, जैसा सिंघई बशीलाल पन्नालाल जैन रईस (अमरावती) ने किया था। सेठ सिंघईजी की सूझ-बूझ एव परिश्रम अभिनन्दनीय तथा अनुकरणीय है।

जिनकी गृहस्थावस्था के नाम का उल्लेख नहीं मिला) ने वि० सं० २६ में दि० जैन मुनि दीक्षा ले ली और आचार्य बनकर मूलसंघ के पट्ट पर बैठे। अतः स्पष्ट है कि विक्रमादित्य के राजवंश की परम्परा में जैनधर्म की मान्यता का इतना घना प्रभाव उनके जीवन मे था कि गुप्तिगुप्त ने कुमार अवस्था में ही जैन मुनि-दीक्षा ले ली और मूलसंघ के पट्ट पर पदासीन हुए।

इस सम्बन्ध में मेरे परम मित्र एवं सहाध्यायी मान्यवर विद्वद्वर्य पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री से मेरी चर्चा हुई। मैंने उन्हें परवार जाति के इतिहास लेखन की प्रेरणा की। उन्होंने मेरे अनुरोध को स्वीकार कर अनेक वर्षों के परिश्रम द्वारा इसे मूर्त्तरूप दिया। उन्होंने अनेक पट्टावलियों, शिलालेखों, मूर्तिलेखों तथा अन्य इतिहास परक ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् यह निर्णय लिया कि :

> "परवार जाति के पूर्वज परमार क्षत्रियों के वंशज हैं, यह इतिहास सिद्ध है। उसके प्रमार, परमार, पंवार, परवार, पुरवार, पोरवार, पोरवाड, पोरवाल, पद्मावती पोरवाड या जाँगड़ा पोरवाल आदि विभिन्न प्रकार के नामान्तर हैं। ये भिन्न भिन्न प्रदेशों में निवास करते हैं।"

परवार जाति मे बारह गोत्र मान्य है और प्रत्येक गोत्र में बारह-बारह मूर है, फलतः कुल १४४ मूर है। इनके अलावा १४५वां मूर भी है, जिसका नाम 'सिहबाघ' अथवा 'सदाबदा' कहा जाता है। यह अन्तिम गोत्र का मूर माना जाता है। कहा जाता है कि जिस व्यक्ति का परिवार देशान्तर चला गया हो अथवा कालान्तर में अपना मूर-गोत्र भूल गया हो और वह जातीय पंचो के सामने यह समस्या रखे तो उसको अन्तिम गोत्र और तेरहवाँ मूर प्रदान कर दिया जाता था और इसी आधार पर विवाहादि कार्य पंच सम्पन्न करा देते थे।

'मूर' शब्द मूल स्थान का वाचक है और मूल से तात्पर्य मूल निवास स्थान से है। जो व्यक्ति देशान्तर मे निवास करता है उसका परिचय लोग उसके मूल निवास स्थान से आज भी लेते हैं। परवार जाति के प्रत्येक व्यक्ति के गोत्र के साथ 'मूल' भी जुदा पाया जाता

है। परवार जाति का कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसका कोई न कोई गोत्र और मूर न हो। इसका यह अर्थ हुआ कि ये वर्तमान में यद्यपि मध्यप्रदेश में निवास करते हैं तथापि इनका मूल निवास कहीं अन्यत्र का है और ये किसी राज्यक्रांति और धर्मक्रांति के कारण अपने मूल निवास को छोड़कर मध्यप्रदेश और उसके आसपास आकर बसे हैं। जो जिस ग्राम के पूर्व निवासी हैं उसी ग्राम को वे अपना मूर (मूल) आज भी मानते हैं, भले ही वे इस बात को आज न जानते हों, परन्तु उन्हें इस वास्तविकता को स्वीकार करना चाहिये।

गुजरात प्रान्त में अनेक ग्राम इस प्रकार पाये जाते हैं जिनसे यह मान्यता स्पष्ट होती है कि परवार जाति के मूर इसी ग्राम के नाम पर हैं—जैसे ईडर के निवासी 'ईड़रीमूर', रखियाल ग्राम के निवासी 'रखयामूर', नारदपुरी से 'नारद', दुद्दो से 'देदामूर', लोटासन से 'लोटामूर', कठासा से 'कठामूर', पटवारा से 'पटवामूर', बहेरियारोड से 'बहुरियामूर' आदि। इस प्रकार ग्रामों और मूरों का परस्पर के सम्बन्ध का निर्णय उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है। साथ ही गुजरात प्रान्त में किस प्रकार राज्यक्रांति, धर्मक्रांति, आततायियों के आक्रमण तथा प्राकृतिक विपदाओं के कारण परवार जाति के लोगों को अपने दि० जैन समाज और धर्म एवं मूलसंघ की रक्षा के लिए अपना देश छोड़कर मध्यप्रदेश मे आकर बसना पड़ा, इसका उल्लेख भी इस ग्रन्थ में है। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि जिन परमार क्षत्रियों ने तत्कालीन गुजरात प्रदेश के श्वेताम्बर धर्म के अनुयायी राजाओं के दबाव से दि० जैनधर्म छोड़कर श्वेताम्बर धर्म स्वीकार कर लिया, उन्हें उन राज्यों से निष्कासित नही किया गया। वे श्वेताम्बर हो गये, इसलिए श्वेताम्बरों में भी परमार पाये जाते हैं।

गुजरात प्रान्त छोड़कर जब मूलसंघ के अनुयायी परवार जाति के लोगों को अपने धर्म की रक्षा हेतु देशान्तर जाना पड़ा तो उस समय मालवा, उज्जैन, चंदेरी, सिरौंज, टीकमगढ़, पन्ना और छतरपुर आदि स्थानों में परमार/बुन्देला तथा अन्य क्षत्रिय वंशों का शासन था। इनमें अनेक राज्य/रियासतें जैनधर्म की अनुयायी थी या उससे प्रभावित थीं। अतः वहाँ परवारों को आश्रय मिला। चूंकि परवार जाति के लोग पहिले से भी यहाँ बसते थे, अतः आगत समाज के लोगों को यह और

भी सुविधापूर्ण लगा। परवार समाज यहाँ आज भी बहुतायत से पाया जाता है। छतरपुर बुंदेलखंड में सुप्रतिष्ठित राज्य था। यहाँ के शासक बुन्देला परमार क्षत्रिय थे तथा जैनधर्म से पूर्ण प्रभावित थे। उनके राज्य में जैनियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी।

यहाँ जैन भट्टारक के एक शिष्य बहुत ही योग्य विद्वान् थे। राजा के साथ उनका बड़ा मैत्रीभाव था। उनके साथ धर्म-चर्चा प्रायः किया करते थे। किसी वर्ष पानी न बरसने से प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई। उनके कुछ विरोधी लोगो ने राजा से कहा कि पानी न बरसने का कारण यह है कि ये भट्टारक जी के शिष्य ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता नही मानते, अतः इनको राज्य से निकाल दीजिये तो यह आपत्ति टल जायेगी।

राजा ने कहा—"यह तुम लोगों की भ्रांति है मनुष्यों के पुण्य-पाप के आधीन सुख-दुख होता है, भगवान् तो सिर्फ साक्षीभूत हैं······ जैन गुरु के रहने से पानी नही बरसा यह आप किस आधार से कहते है। आप लोग जानते है कि जैनियों के साधु दिगम्बर होते हैं, ग्राम के बाहर रहते हैं, चौबीस घंटे मे एक बार भोजन करते हैं, सबसे मैत्रीभाव रखते हैं, सो वे तो यहाँ नही हैं, परन्तु ये भट्टारक उनके शिष्य है, वे भी बड़े शिष्ट है, विद्वान् है, दयालु है, सदाचार की मूर्ति हैं, परिमित परिग्रह रखते है, जैनियों के यहाँ भोजन करते है, किसी से याचना नही करते, मेरा उनके साथ स्नेह है। मैंने निरन्तर उनके मुख से हितपोषक वचन ही सुने है। वे कहते है कि महाराज ऐसा नियम बनाइये जिससे राज्य में सदाचार की प्रवृत्ति हो। मद्य, मांस, मधु के त्याग का उपदेश देते हैं ······।" इसके बाद इस सम्बन्ध से राजा भट्टारक जी के शिष्य से सम्पर्क साधने हेतु उनके स्थान पर गये और उसी समय संयोग से वर्षा आरंभ हो गई। राजा ने उनका आभार माना, परन्तु भट्टारक जी ने कहा कि मुझमें न पानी रोकने का सामर्थ्य है और न बरसाने का। जीवन-मरण सुख-दुख प्राणियों के पुण्य-पाप से होते हैं।[1]

---

१. देखिए : मेरी जीवन गाथा : पू० गणेश प्रसाद जी वर्णी, प्रथम भाग, पृष्ठ ३३०-३३१।

इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि छतरपुर नरेश के जीवन पर जैनधर्म का पूरा-पूरा प्रभाव था। पं० बिहारीलाल जी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। वे सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० भागचंद जी के शिष्य थे। उनके अध्ययन काल में पं० करगरलाल जी पद्मावती पोरवाल भी अध्ययन करते थे। पं० पन्नालाल जी न्यायदिवाकर पं० करगरलाल जी के सुपुत्र थे। इनकी प्रतिभा को बड़े-बड़े विद्वान् सराहते थे। अनेक राजा आपको सादर बुलाते थे। महाराजा छतरपुर से आपका निकट का सम्पर्क था।

पं० पन्नालाल जी के समकालीन वादिगजकेसरी, न्यायवाचस्पति, स्याद्वादवारिधि आदि उपाधियों से विभूषित पं० गोपालदास जी वरैया मोरेना (ग्वालियर) मे थे। इनकी कीर्ति महाराजा छतरपुर ने सुनी और उन्हे भी छतरपुर बुलवाया तथा कुछ दिनों अपने पास रखकर धर्मदेशना ली। यह घटना इस शताब्दी के प्रथम दशक की है। पण्डित जी (बरैया जी) को बिदाई देते समय उन्होंने दो गाँव भेंट में दिये, परन्तु पण्डित जी ने कहा कि मैं धर्मोपदेश के एवज में कोई भेंट स्वीकार नही करता। महाराजा साहब उनकी इस निस्पृहवृत्ति से और अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने कहा कि पण्डित जी हमारे पूर्वज तो जैन ही थे, मेरे यहाँ जैन-शास्त्रों का भण्डार है और मै उनका स्वाध्याय करता हूँ।

छतरपुर राज्य से लगा एक पन्ना राज्य है, वहाँ के राजा भी जैनधर्म से प्रभावित थे। महाराजा छत्रसाल ने कुंडलगिरि (दमोह) के मुख्य मंदिर, जो बड़े बाबा के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है, मे जीर्णोद्धार के लिए पूर्ण सहयोग दिया था। यह वि० सं० १७५७ के शिलालेख में अंकित है। इसी समय एक विशिष्ट पूजा-विधान का आयोजन किया गया था और स्वयं महाराजा छत्रसाल ने इन्द्र बनकर पूजा की थी। उन्होंने इन्द्र अवस्था में पहिने गये कीमती आभूषण तथा पूजनादि के उपयोग में लाए गये उपकरण, बर्तन और छत्र आदि सब क्षेत्र को भेंट किये थे।

घटनाओं से स्पष्ट है कि उस समय बुन्देलखण्ड के क्षत्रिय जैनधर्म के अनुयायी भी थे या उसके अनुकूल थे और इसलिए भी गुजरात से आये उन दि० जैन भाइयों को अपने-अपने राज्य में आश्रय दिया था। इसी तरह उज्जैन, चंदेरी सिरौंज, ओरछा आदि राज्यों में भी उनको

आश्रय मिला। अतः इन अंचलों में परवार समाज की जनसंख्या आज भी बहुतायत में पाई जाती है। स्मरण रहे कि मूल आम्नायी दि० जैन परवार, गोलापूर्व, गोलालारे तथा गोलसिंघाड़े—इन जैन जातियों का यहाँ पहिले से निवास था, अतः गुजरात छोड़कर यहाँ बसने का आकर्षण भी था।

वैवाहिक सम्बन्ध :

परवार जाति में परस्पर मे ब्याह-शादी सम्बधों में गोत्र तो बचाया ही जाता है, साथ ही मूरों को भी बचाया जाता है। अपने मूर के साथ ही अपने मामा तथा माता-पिता, आजा-आजी, और नाना-नानी का मूर बचाकर भी सम्बन्ध किया जाता रहा है। विवाह के सम्बन्ध में इस सूची को 'अठसखा' या 'अष्टशाखा' कहते हैं। कुछ लोग चार शाखाओं का बचाव करके विवाह करते थे, वे 'चौसखा' तथा जो दो शाखाओं का बचाव करके विवाह करते थे वे 'दोसखा' कहलाये। वर्तमान में अब केवल चार या दो शाखाओं का ही विचार किया जाता है।

जिन पट्टावलियों, शिलालेखों अथवा प्रतिमालेखों मे 'अष्टशाखा' या 'चौसखा' आदि शब्दों का उल्लेख मिलता है, उसमें परवार शब्द का उल्लेख न भी हो अथवा अष्टशाखा या चारशाखा के साथ पोरवाल या पोरवाड़ जाति का उल्लेख हो तो वे सब भी परवार जाति के ही नामांतर माने जाने चाहिये।

परवार जाति मे जो बारह गोत्र मान्य है, उनका कोई इतिहास नही मिलता। किन्तु इसी प्रकार के कोई-कोई गोत्र अग्रवालों मे तथा गहोई जाति मे जो वर्तमान में जैन नही भी हैं, पाये जाते हैं अथवा इनसे मिले-जुले शब्दों वाले गोत्र पाये जाते हैं।[१] **'कच्छी बीसा ओसवाल जैन संघ'** पुस्तिका में इस समाज के छह गोत्र तथा ८८ अटक (उपगोत्र) लिखे है। इनमे 'परमार' भी एक गोत्र है। वर्तमान मे ३५ अटक है, जिनमें पुरवाज सोरठिया, लोटा सुरखिया आदि है, जो परवार जाति के मूरों से मिलते हैं। सम्भव है कि इन मूर वालों ने श्वेताम्बर धर्म स्वीकार कर लिया हो।

उक्त उद्धरणों से यह बात सिद्ध होती है कि कालान्तर में एक गोत्र के भीतर भी अनेक जातियाँ बन गई हैं। साथ ही धर्म का पालन करना व्यक्तिगत आस्था पर ही रहा है। इसीलिए अग्रवाल, खंडेलवाल, पोरवाड़, पोरवाल, गहोई, जैसवाल तथा नेमा —इन जातियों में जैन धर्मानुयायी तथा वैष्णव धर्म के अनुयायी भी पाये जाते हैं। यद्यपि गहोई जाति के सज्जन आज जैन धर्मानुयायी नहीं पाये जाते, परन्तु ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी मे उनके द्वारा प्रतिष्ठित दि० जैन प्रतिमायें दि० जैन तीर्थ क्षेत्र अहार (टीकमगढ़, म० प्र०) के संग्रहालय में हैं। अहार क्षेत्र की मूल नायक शांतिनाथ भगवान् की प्रतिमा भी 'गहोई वंश' के द्वारा प्रतिष्ठित है। उसमें इन्हें गृहपति अन्वय के नाम से लिखा गया है। गृहपति शब्द का प्राकृत भाषा में 'गिहवई' रूप बनता है और बोल-चाल की भाषा में वह 'गहोई' शब्द द्वारा प्रचलित हो गया है। इस संग्रहालय में कुछ ऐसी भी दि० जैन प्रतिमाएँ है, जिनके प्रतिष्ठापकों की जाति व वंश आज नही मिलते है।

पट्टावलियों के आधार पर :

यह तो सुप्रसिद्ध है कि भगवान् महावीर के मोक्ष जाने के बाद तीन केवली, पांच श्रुतकेवली, ग्यारह दशपूर्वधारी और पाँच ग्यारह अंगधारी तथा कुछ अंगों के ज्ञाता आचार्य हुए हैं। इनमें द्वितीय भद्रबाहु भगवान् महावीर के निर्वाण के ४९२ वर्ष के बाद हुये हैं। इनके शिष्य श्री लोहाचार्य हुये। इन्हें भी कुछ अंगों का ज्ञान था। भद्रबाहु के एक शिष्य अर्हद्बली हुए। विद्वानों की मान्यता है कि इन्हीं का दूसरा नाम गुप्तिगुप्त था। यह भी सम्भावित है कि भद्रबाहु (द्वितीय) के पट्टशिष्य जैसे लोहाचार्य थे, उसी प्रकार उनके अन्य शिष्य श्री गुप्तिगुप्त नाम के हों, जैसा कि निम्न श्लोकों से स्पष्ट है :

श्रीमानशेष-नरनायक-वन्दितांघ्रिः श्रीगुप्तिगुप्त इति विश्रुतनामधेयः।
यो भद्रबाहु-मुनिपुंगव-पट्टपद्म सूर्यः स वो दिशतु निर्मलसंघवृद्धिम् ॥१॥

श्रीमूलसंघेऽजनि नंदिसंघः तस्मिन्बलात्कारगणोऽतिरम्यः।
तत्राभवत्पूर्वपदांशवेदी श्रीमाघनंदी नरदेव वन्द्यः ॥२॥

इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार के श्लोक १५१ के आधार पर यह भी लिखा गया है कि "गुणधर और धरसेन की पूर्वापर परम्परा हमें ज्ञात

नहीं है, क्योंकि उनका वृत्तान्त न तो हमें किसी आगम में मिला और न किसी मुनि ने ही बताया।"

इस उल्लेख से यह तथ्य निकला कि 'नन्दिसंघ की संस्कृत गुर्वावली में भी भद्रबाहु और उनके शिष्य गुप्तिगुप्त की वन्दना की गई है, किन्तु उनके नाम के साथ संघ आदि का उल्लेख नहीं किया गया है।'

अंगपूर्वधारियों की परम्परा लोहाचार्य तक समाप्त हो चुकी थी, तब इसके बाद गुप्तिगुप्त आचार्य ने आगे के लिए गुरु-परम्परा कायम रहे इसके लिए मूलसंघ मे नंदिसंघ की स्थापना अपने गुरु श्री भद्रबाहु स्वामी को प्रथम पट्टाधीश मानकर की और उसी पट्ट के द्वितीय आचार्य स्वयं गुप्तिगुप्त थे। इनके बाद इसी पट्ट के तृतीय आचार्य श्रीमाघनन्दी थे, जिनसे कि इस पट्ट की परम्परा आगे चली और संभवतः इसीलिए यह मूलसंघ के अंतर्गत नन्दिसंघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कारंजा (महाराष्ट्र) के बलात्कार गण के मंदिर की पोथी मे एक पट्टावली पाई गई है। उसके पृष्ठ २१ मे जो गुर्वावली दी गई है उसमे श्री गुप्तिगुप्त आचार्य का नामोल्लेख किया गया है और 'जीवनसिन्धु-मार्तण्ड', 'वादिवादीश्वर', 'षट्भाषाकविचक्रवर्ती', श्रुतसुधावारिधि—इत्यादि अनेक विशेषणों द्वारा उनको महत्ता प्रकट की गई है। अन्यत्र भी प्रसंग से श्री गुप्तिगुप्त के नाम का उल्लेख उसमे पाया जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आ० गुप्तिगुप्त अपने समय के बड़े प्रभावक आचार्य हुए है।

गुरु-शिष्य परम्परा में जो पट्ट स्थापित होते थे, उनमें पट्ट में बैठने वाले आचार्य का ही नाम अंकित होता था। यद्यपि उन गुरुओं के अनेक शिष्य होते थे, परन्तु पट्ट में न बैठने के कारण वे अपट्टधर या अननुबद्ध शिष्य माने जाते थे। इसलिए यह प्रश्न हो सकता है कि भद्रबाहु स्वामी के पट्ट पर लोहाचार्य बैठे थे और अंगधारियों की परम्परा वहां समाप्त हो गई। तब लोहाचार्य के बाद अर्हद्बली, माघनन्दी, धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबली—इन पांच आचार्यों के नाम गुरु-शिष्य परम्परा मे और आते है। यह नंदिसंघ की प्राकृत पट्टावली भूतबली आचार्य पर समाप्त होती है तथापि जैसा कि पहिले उल्लेख किया गया है कि

धरसेन और गुणधर आचार्यों की गुरुपरम्परा हमें ज्ञात नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य धरसेन उस पट्टावली की गुरु-शिष्य परम्परा में नहीं हैं, किन्तु आचार्य धरसेन अपट्टधर आचार्यों मे जुदे ही (समकालीन) थे तथा उनके शिष्य पुष्पदन्त और भूतबली थे।

प्राकृत पट्टावली में जहाँ अर्हद्बली के शिष्य माघनन्दी का उल्लेख है, वहाँ नन्दिसंघ की अन्य पट्टावलियों में गुप्तिगुप्त के शिष्य माघनन्दी थे ऐसा उल्लेख है। इससे विद्वानों के इस मत की पुष्टि होती है कि अर्हद्बली का दूसरा नाम गुप्तिगुप्त था। इन पट्टावलियों में माघनन्दी के बाद धरसेनाचार्य का नाम नही आता, किन्तु माघनन्दी के बाद जिनचंद और उनके बाद उनके शिष्य कुन्दकुन्दाचार्य का नाम आता है। (यह पट्टावली जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, किरण ४, जून १९१३ में प्रकाशित है)। उज्जैन, सीकर, जयपुर, आरा, कारंजा आदि अन्य पट्टावलियों मे भी यही क्रम पाया जाता है।

महावीर स्वामी के बाद जो परम्परा केवली, श्रुतकेवली तथा अंगधारियों की आई है वह सब नामावली पट्टधर आचार्यों की ही है। अन्य अनेक आचार्य भी उसी समय अंगधारी या पूर्वधारी हुए हैं। **तिलोयपण्णत्ति** मे यह उल्लेख आया है कि भगवान् महावीर तीर्थंकर के समवशरण में चौदह हजार मुनि थे। सात सौ केवली, पाँच सौ विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान के धारी थे, जो नियम से केवली होते हैं। परन्तु ६२ वर्ष में जिन तीन केवलियों का उल्लेख है, वे गौतम, सुधर्मा और जम्बूस्वामी क्रमशः पट्टधर थे। भगवान् महावीर के बाद वे समस्त संघ के अधिपति क्रम से हुए हैं। शेष केवली भी यथासमय उक्त समयावधि के भीतर मुक्त हो गये हैं। इन संघनायकों, केवलियों को अनुबद्ध केवली (या पट्टधर केवली) कहा गया है, शेष अननुबद्ध थे। उन अपट्टधरों में अंतिम केवली श्री श्रीधर स्वामी कुंडलगिरि से मुक्तिधाम को प्राप्त हुए। यह मुक्तिधाम मध्यप्रदेश के दमोह जिले में कुण्डलपुर ग्राम में अवस्थित है। इस प्रकार अंगपूर्वधारियों मे भी अनेक मुनि, जो कि पट्टधर (संघनायक) नही थे, उसमें भी अंग पूर्वधारी थे।[1]

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अध्याय ४, श्लोक संख्या १४९१।

आचार्य अर्हद्बली (गुप्तिगुप्त) ने आगामी गुरु-परम्परा को बढ़ाने के लिए महिमानगरी में 'युग प्रतिक्रमण' के लिए एकत्रित समस्त मुनियों को अनेक संघों मे विभाजित किया। उनमें से मूलसंघ के अन्तर्गत जो परम्परा चलाई वह अपने गुरु भद्रबाहु को प्रथम स्थान देकर चलाई और अपने शिष्य जो माघनन्दि मुनि थे, संभवतः उनके नाम से इस पट्ट का नाम नंदिसंघ प्रचलित हुआ।[1]

पौरपट्ट परवार जाति का नामान्तर है :

श्रीमान् पं० फूलचन्द जी सि० शा० ने इस ग्रन्थ में यह लिखा है कि पौरपट्ट अन्वय परवार जाति का पूर्वरूप है। पट्टावलियों के आधार पर उन्होंने जो उद्धरण दिये है उनमे 'चौसखा पोरवाड़' तथा दूसरे उल्लेख में 'पोरवाल द्विसखा' तथा तीसरे और चौथे उल्लेख मे 'अठसखा पोरवाल' का उल्लेख आया है और इन आधारो पर उन्होने यह निर्णय लिया है कि 'परवार' शब्द 'पौरपाट' या 'पौरपट्ट' का ही रूपान्तर है।

मेरी दृष्टि में पौर शब्द पुरा शब्द से हो बना है, जिसका अर्थ प्राचीन है। पट्ट शब्द के साथ जुड़ने पर वह प्रकारान्तर से पुराना पट्ट या मूलसंघ का द्योतक है। पौरपट्ट के साथ ही कई शिलालेखों या प्रतिमा-लेखों में पूर्वपट्ट या पौर्वपट्ट शब्द भी पाये जाते है। इस तरह पौरपट्ट एवं पौर्वपट्ट दोनों एकार्थवाचक होते है। पट्ट शब्द उस पदवी का वाचक है जिस पर गुरु-शिष्य की परम्परा के अनुसार संघ का अधि-नायकत्व स्थापित होता है।

जिन परमार क्षत्रियों का गुजरात प्रदेश में बाहुल्य था, उनमें अनेक अजैन, श्वेताम्बर तथा दि० जैन मूलसंघ के अनुयायी भी थे। इनके बीच में अपनी स्वतन्त्र पहिचान के लिए भगवान् महावीर की परम्परा से चले आये हुए दि० जैन धर्मानुयायियों ने मूलसंघ को ही पौरपट्ट शब्द से अभिहित करना श्रेष्ठ समझा।

इस इतिहास ग्रन्थ के लेखक पं० फूलचन्द जी ने अपने विवेचन से तीन तथ्य प्रकट किये हैं :

---

१. श्रवणबेलगोला, शिलालेख न० १०५, श्लोक संख्या २६ के अनुसार।

(१) प्राग्वाट या पोरवाड़ का संगठन जिन कुलों को मिलाकर किया है, उसमें परमार क्षत्रियों का प्रमुख स्थान था।

(२) प्राचीन पट्टावलियों में आचार्य गुप्तिगुप्त को 'परमार' या 'प्रमार' अन्वय का लिखा गया है। जयपुर और उज्जेन की पट्टावलियों में स्पष्टतः 'परवार' लिखा गया है। एक पट्टावली में 'पंवारो राजपूत' लिखा है।

(३) सूरिपुर पट्टावली में आचार्य गुप्तिगुप्त के द्वारा एक हजार कुटुम्बों की स्थापना का उल्लेख है।

लेखक द्वारा निकाले गये इन तथ्यों के आधार पर भी यह स्पष्ट प्रमाणित है कि 'परवार' प्राचीन 'परमार' क्षत्रियों के वंशज है और उन्होंने अपने दि० जैनधर्म की रक्षा के लिए ही अपनी पहिचान अनेक शिलालेखों में जातिवाचक नाम न देकर अपने नाम के साथ अपने मूलसंघ का पौरपट्ट के रूप में उल्लेख किया है।

जिस प्रकार उन्होंने परमारों के भेद-प्रभेदों में अपनी पहिचान बताने के लिए अपने को पौरपट्ट शब्द से अभिहित किया है। उसी प्रकार मूलसंघ की अनुयायी अनेक जातियों के भीतर अपनी जाति की विशेष पहिचान के लिए पौरपट्ट, अष्टशाखा, चौसखा, द्विसखा आदि शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ यह स्मरण योग्य है कि ये भेद सिर्फ परवार जाति में ही पाये जाते हैं।

मान्य पं० फूलचन्द्र जी ने परवार जाति को प्राग्वाट् प्रदेश का भी माना है पर आगे प्राग्वाट अन्वय भी लिखा है। मेरी दृष्टि में 'प्राग्वाट्' शब्द मूल में 'प्राग्पाट' का ही रूपान्तर है, जिसका अर्थ पुराना पाट ही होता है। उस प्राग्पाट अर्थात् मूलसंघ के अनुयायी लोगों के कारण प्रदेश का नाम 'प्राग्वाट्' या 'प्राग्पाट' पड़ा होगा।

जातियों की प्रमुख आबादी से भी नगर के या प्रदेशों के नाम देखे जाते है, जैसे ब्राह्मण जाति की प्रमुखता से ग्राम को बम्होरी (ब्रह्मपुरी), बमनपुरा अर्थात् ब्राह्मणों का पुर, राजगृही के पास पंडितपुर ग्राम का नाम ब्राह्मण पंडितों के कारण है, ऐसा माना जाता है।

दि० जैन धर्मानुयायियो मे चौरासी जातियाँ होती है। इन चौरासी जातियों मे अठसखा, चौसखा, छैसखा, दोसखा, सोरठिया, गांगड़ और

पद्मावती नाम से स्वतंत्र जातियाँ मानकर उल्लेख किया है। जबकि ये सब भेद परवार जाति में पाये जाते हैं, इसलिए जाति के स्थान पर इन सातों नामों का प्रयोग परवार जाति को ही सूचित करता है।[१]

---

१. इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल ने 'खडेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास' नामक अत्यत शोध-पूर्ण ग्रन्थ मे परवार जाति का भी परिचय दिया है, यथा 'परवार जाति का उल्लेख 'पौरपट्ट' अन्वय के रूप मे मूर्तिलेखो एव प्रशस्तियो मे मिलता है··· ··· पट्टावलियों में परवार जाति का उल्लेख वि०स० २६ से मिलता है। और मुनि गुप्तिगुप्त इस जाति मे उत्पन्न हुए थे ऐसा भी उल्लेख उक्त पट्टावली मे मिलता है।—खण्डेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास, पृष्ठ ५०-५१।

इसके पश्चात वि० स० ४० मे जिनचन्द्र, वि० स० ७६५ मे अनतकीर्ति तथा वि० स० १२५६ मैं अकलक और वि० स० १२६४ मे अभयकीर्ति आचार्य परवार जाति मे उत्पन्न हुए थे। ····ब्रह्म जिनदास ने 'चौरासी जाति-जयमाल' मे पोरवाड शब्द से परवार जाति का उल्लेख किया है। अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थो मे परवार को "पुरवाडा" लिखा गया है। महाकवि धनपाल, रइधूकवि, आचार्य श्रुतकीर्ति, प० श्रीधर इन सब लेखको ने अपने-अपने ग्रन्थो मे पुरवाड़ शब्द का ही प्रयोग किया है। श्रावकों की ७२ जातियो की एक पाण्डुलिपि मे 'अष्टसखा—पोरवाड़' 'दुसखा पोरवाल', 'चौसखा पोरवाड़', 'जांगड़ा', 'पोरवाड,' 'पद्मावती परवार', 'सोरठिया पोरवाड' नामो के साथ 'परवार' नाम को भी गिनाया है। ऐसा लगता है कि परवार जाति भेद-प्रभेदो मे इतनी बँट गई थी कि परस्पर मे रोटी-बेटी का व्यवहार भी बद हो गया था ·········परवार जाति मे अनेक विद्वान एव भट्टारक हो गये हैं। सवत १३७१ मे कवि देल्ह ने चौबीसी गीत लिखा था। कवि का जन्म परवार जाति मे हुआ था। १३ वी शताब्दी मे पौरपट्टान्वयी (परवार) महिचन्द्र साधु की प्रेरणा से प० आशाधर ने सागारधर्मामृत ग्रन्थ एव उसकी टीका लिखी थी।

—खण्डेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास, पृष्ठ ५१।

सवस्त्रभट्टारकों की परम्परा :

यह बात लिखी जा चुकी है कि लोहाचार्य के साथ अंगपूर्वधारियों की परम्परा समाप्त हो गई और द्वितीय भद्रबाहु स्वामी से मूलसंघ की परम्परा चलाने के लिए आचार्य गुप्तिगुप्त (अर्हद्बली) ने मूलसंघ का पट्ट स्थापित किया। इन पट्टों पर बैठने वाले गुरुजन तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करने वाले दि० जैन नग्न वीतरागी आचार्य ही होते थे। यह मूलसंघी परम्परा वि० सं० १३१० तक चली।

वि० सं० १३१० मे आचार्य प्रभाचन्द्र मूलसंघ के पट्ट पर आसीन हुए। उनके काल में एक विशेष घटना घटित हुई। वि० सं० १३७५ मे इन्हें चाँदीशाह[1] ने दिल्ली बुलवाया। वहाँ आने पर राघो और चेतन नाम के विद्वानों से जोरदार शास्त्रार्थ हुआ और प्रभाचन्द्र विजयी हुए। इसके बाद दोनों ओर से मंत्रों के प्रयोग की भी परीक्षा हुई और उसमे भी प्रभाचन्द्र विजयी हुए। इनकी कीर्ति दिल्ली के बादशाह तक पहुँची। बादशाह ने प्रभाचन्द्र को महलों मे आकर दर्शन देने की प्रार्थना की।

यह स्मरण रखने योग्य है कि यहाँ तक की परम्परा के समस्त आचार्य निर्वस्त्र (दि०) ही रहते थे। स्वयं प्रभाचन्द्र भी निर्वस्त्र थे। इसलिए यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि महलों में उनकी रानियाँ भी है, अतः निर्वस्त्र साधु कैसे जा सकता है। उस समय समाज ने प्रार्थना की कि आप लंगोटी लगाकर वहाँ जायें अन्यथा बादशाह के प्रकोप के कारण समाज के सामने अत्यंत भयंकर स्थिति आ सकती है। आ० प्रभाचन्द्र ने बहुत सोच-विचार किया और लंगोटी धारण करने की बात अपने मूलसंघ की आचार्य परम्परा के विरुद्ध मानी।

उनसे समाज ने पुनः विनय की कि हम आपको वही मान्यता देंगे जो अभी तक निर्ग्रन्थ साधु के रूप में देते आये हैं। तब उन्होंने समाज के सामने तथा धर्म प्रचार के कार्य मे संकट उपस्थित देखकर लंगोटी धारण की और महलों में गए।[2] वहाँ से लौटने के बाद यह विचार कर कि मूलसंघ में मुनि के स्वरूप में गलत एवं शिथिलाचार

---

१. चाँदीशाह देहली के बादशाह फिरोजशाह के अमात्य थे।
२. खं० जैं० स० बृ० इतिहास, पृष्ठ २५२।

की परम्परा न चल पड़े इसलिए अपने नाम के साथ ८९ वर्ष की आयु में आचार्य (मुनि) पद छोड़कर 'भट्टारक' (नाम) रखा, जो आगे की शिष्य परम्परा में भी भट्टारक पद के रूप में सम्बोधित किया जाने लगा। यह परम्परा अब सवस्त्र हो जाने से पट्टासीन आचार्य भट्टारक कहलाये। मूलसंघ के इस पट्ट में गुरु का स्वरूप विखंडित हो गया।

ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में जो उज्जैन की पट्टावली दी है, उसमें आ० प्रभाचन्द्र के नाम के साथ पट्टावली के अन्त में भी इस बात का उल्लेख पाया जाता है। इसकी जानकारी पट्टावली के अन्त में लिखे नोट से स्पष्ट है।

पट्ट पर बैठने वाले आचार्यों की श्रृंखला में सवस्त्र तो भट्टारक कहलाये, किन्तु पट्ट से भिन्न मूलसंघ के मुनियों की निर्ग्रन्थ परम्परा भी चलती रही।

इस काल मे सवस्त्र भट्टारकों की सेवाएँ बहुत महत्त्वपूर्ण रही है। उन्होने यंत्र-मंत्र-तंत्र सिद्ध करके साधारण एवं तत्कालीन शासकों को चमत्कारों द्वारा प्रभावित किया और मान्यता प्राप्त की। जिनेन्द्रदेव को मूर्त्तियों/मन्दिरो की आततायियो से रक्षा के लिए सम्भवतः शासन देवी-देवताओ की मूर्तियाँ मन्दिरों मे रक्षकों/सेवको के रूप मे स्थापित की। परन्तु कई स्थानों पर वेदी पर पूज्य के स्थान मे भी इन शासन देवी-देवताओं की मूर्त्तियों को स्थापित किया गया है। प्राचीन ग्रन्थो एवं वीतराग जिनेन्द्रदेव की मूर्तियो को तलघर-गर्भगृह तथा भूमि के अन्दर छिपाकर सुरक्षा प्रदान की। इसके साथ ही अपने महत्त्वपूर्ण प्रभावी मठाधीश पद पर भी अपने को आचार्य सज्ञा देकर साहित्य का भी लेखन किया, जिनमे अधिकतर शासन-देवी-देवताओं (सरागी-देवी-देवताओं) की पूजा-अर्चना आदि क्रियाकाण्ड वर्णित है। इस प्रकार वस्त्रधारी भट्टारकों द्वारा सरागी देवी-देवताओं की वन्दना-पूजा से भौतिक सुख-सम्पत्ति साधनों का समाज में प्रचार हुआ। मंत्र-तंत्रों के प्रयोगपूर्वक भट्टारको द्वारा किये गये चमत्कारो से समाज का एक वर्ग बहुत प्रभावित हुआ। चमत्कारों की अनेक जनश्रुतियाँ कई स्थानों पर सुनने मे आती है तथा आज भी भट्टारकों द्वारा रचित साहित्य को समाज का एक समुदाय मान्यता देता है। यह मूलसंघ की आम्नाय के अनुसार नही है और न दि० जैन आचार्यों द्वारा रचित है।

दि० जैन वीतरागी साधु कभी अव्रती और सरागी देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना का प्रतिपादन नहीं करते। जो दि० जैन मुनि या आचार्य का वेश रखकर भी सरागी देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करने का समर्थन/पोषण करता है अथवा उपदेश देता है वह स्वयं वीतरागी साधु/मुनि/आचार्य नही है। ऐसा साधु भौतिक चमत्कारों द्वारा लोगों को प्रभावित कर कुमार्ग का पोषण करता है।

चौदहवी शताब्दी तथा उसके पूर्व भी समाज में मूर्ति-वेदी-प्रतिष्ठा आदि धार्मिक समारोह कराने का कार्य भी संभवतः भट्टारक ही कराते थे। ये ही प्रतिष्ठाचार्य थे। बुन्देलखण्ड म० प्रा० में १२०९-१२१० और १२५२ में जो प्रतिष्ठायें हुईं, उनमें पौरपट्टान्वय का उल्लेख तो प्रतिष्ठा कराने वाले श्रावक के लिए आता है, परन्तु भट्टारक का नाम उन तीनों संवतों के प्रतिमालेखों में नहीं है।

भट्टारक परम्परा बुन्देलखण्ड मध्यप्रान्त में देवेन्द्रकीर्ति जी तथा उनके शिष्य श्री विद्यानंदी जी से आई जिसके आधार पर चंदेरी और सिरौंज में परवारपट्ट स्थापित हुए। यहाँ भट्टारक निर्वस्त्र भी रहते थे। गुरु-शिष्य परंपरा में दो-तीन पीढ़ी तक यह व्यवस्था चली, बाद में एक-दो फिर पूरे वस्त्र धारण करने लगे।

विक्रम सं० १४९५ से १५२७ तक की जो प्रतिष्ठाएँ बुदेलखंड मे हुईं उनमें विद्यानंदी जी का नाम प्रतिष्ठाकार के रूप में आता है। प्रतिमा लेख संग्रह में पौरपाट अन्वय (परवार) सम्बन्धी लेख ही संग्रहीत किये गये हैं, परन्तु अन्य प्रतिमाओं के लेखों से यह सुप्रसिद्ध है कि मध्यप्रान्त के गोलापूर्व और गोलालारे श्रावकों द्वारा जो प्रतिष्ठायें हुई है वे भी उनके द्वारा कराई गई हैं।

गुजरात के हुंवड़ वंश के श्रावकों द्वारा हुई बहुत सी प्रतिष्ठाएँ इन विद्यानंदी जी द्वारा हुई हैं। परवार जाति का स्थान गुजरात था, अतः पद्मनन्दी भट्टारक (जो १३८५ में आचार्य प्रभाचन्द्र जी के पट्ट पर बैठे) द्वारा भी मध्यप्रांत में अनेक प्रतिष्ठाएँ हुईं। विद्यानन्दी स्वयं परवार थे, अतः चंदेरी सिरौंज का पट्ट 'परवार पट्ट' कहलाता था।

चंदेरी पट्ट पर जो भट्टारक परम्परा चली उसमें (१) देवेन्द्रकीर्ति (२) त्रिभुवनकीर्ति (३) सहस्रकीर्ति (४) पद्मनंदी (५) यशकीर्ति

(६) ललितकीर्ति (७) धर्मकीर्ति (८) पद्मकीर्ति (९) सकलकीर्ति और (१०) सुरेन्द्रकीर्ति के नाम क्रमशः पाये जाते हैं। कुण्डलपुर (दमोह) के १७५७ के शिलालेख में भट्टारक यशकीर्ति से दसवें भट्टारक सुरेन्द्र-कीर्ति तक के नाम इसी क्रम में हैं। सुरेन्द्रकीर्ति गुरु की आज्ञा से चन्द्रकीर्ति नामक शिष्य ने कुण्डलगिरि (कुण्डलपुर) स्थित १४ फुट उन्नत बड़े बाबा की मूर्ति के ध्वस्त मंदिर का जीर्णोद्धार समाज की सहायता तथा काशीश्वर वंशावतंश पन्नानरेश छत्रसाल की सहायता से कराया। उस शिलालेख में श्री भट्टारक जी के देहावसान हो जाने से उनके शिष्य नमिसागर ब्रह्मचारी जी ने इसे वि० सं० १७५७ में पूरा किया। सातवें क्रम में धर्मकीर्ति जी को कुण्डलपुर की पट्टावली में श्रीरामपुराण का कर्त्ता लिखा गया है, किन्तु यह ग्रन्थ अप्राप्य है।

बुन्देलखण्ड में एक अनुपम बात यह रही कि उस काल में भी भट्टारक यद्यपि अपनी गुरु-परम्परा से सवस्त्र हो गये थे, तथापि उन्होने अपनी शुद्धाम्नाय को नहीं छोड़ा। यहाँ मूर्त्तिलेखों में अनेक जगह 'मूलआम्नाये शुद्धे' शब्द का प्रयोग भी इसी कारण किया गया है। यहाँ की समाज ने कभी शासन देवी-देवनाओं को न पूजा और न भट्टारकों द्वारा रचित विधि-विधानपूर्वक पूजा-अर्चना की और न सवस्त्र भट्टारकों को 'गुरु' की मान्यता दी। अपितु मूल आम्नाय का ही पोषण किया। श्रावकों ने अपने आचार-विचार का शुद्ध आम्नाय के अनुसार पालन किया और करते आ रहे है। अन्य प्रदेशों में गुरु-परम्परा में शिथिलताएँ आ गई है, परन्तु बुंदेलखण्ड के परवारपट्ट के भट्टारकों ने उक्त कार्यों मे शिथिलाचार को आश्रय नही दिया। यह बुंदेलखण्ड के लिए गौरव की बात है कि आज तक श्रावकों ने मूल-शुद्ध आम्नाय की परम्परा को अक्षुण्ण रखा। सोलहवीं सदी के आसपास इसी परम्परा के कविवर बूचराज एक सद्गृहस्थ हुए, जिनके द्वारा लिखी एक पुस्तक जिसका नाम 'चेतन-पुद्गल संवाद' है, अध्यात्म विचारधारा की थी। कालान्तर में आध्यात्मिक विचारधारा वाले विद्वानों/श्रावकों की शैलियाँ चली थी, जिनमें पं० बनारसीदास जी थे। बनारसीदास जी के समय में हिन्दी रामायण के लेखक संत तुलसीदास भी हुए। इन शैलियों का राजस्थान में काफ़ी प्रसार हुआ। आध्यात्मिक शैली जनता के अन्य वर्गों में भी चली।

दि० समाज में एक वर्ग भट्टारकीय परम्परा को मानता रहा और दूसरा वर्ग उसका विरोध करता रहा। पट्टावली की शृंखला में वि० सं० १६९१ में नरेन्द्रकीर्ति जी भट्टारक सांगानेर (जयपुर) की गद्दी (उस समय तक पट्ट का नाम गद्दी हो गया था तथा भट्टारक मठों में रहने लगे थे और राजाओं की तरह मठाधीश कहलाते थे) पर थे। उनके समय में आध्यात्मिक शैली की विचारधारा का प्रबलरूप हो रहा था। खण्डेलवाल समाज के 'भांवसा' गोत्रीय अमरचन्द जी एक सद्गृहस्थ थे। वे नरेन्द्रकीर्तिजी की सभा में जाते थे और प्रश्न करते थे। भट्टारक जी उनके प्रश्नों का समाधान नहीं कर पाते थे। श्रोता श्रावकों के विचार भी नरेन्द्रकीर्ति के विचारों से असहमत होते गये। भट्टारक जी को इसकी चिन्ता हुई और उन्होंने अमरचन्द जी को अपनी सभा से निकाल दिया। अमरचन्द जी ने अपनी अध्यात्म विचारधारा का प्रबलता के साथ प्रचार-प्रसार किया।[1]

दि० जैन समाज के मूलसंघ के शुद्धाम्नायी वर्ग ने अपनी विचारधारा के कारण सवस्त्र भट्टारकों को गुरु की मान्यता नहीं दी तथा भट्टारकों को गुरु माननेवाला अथवा उनकी विचाधारा पर आश्रित वर्ग इस वर्ग से पृथक् हो गया।

इस तरह दि० जैन समाज दो प्रकार की विचारधाराओं में स्पष्टतः विभक्त हो गया। आगे चलकर यही तेरहपंथ एवं बीसपंथ के नाम से प्रचलित हुआ।

तेरहपंथ और बीसपंथ :

बुंदेलखण्ड का दि० जैन समाज प्रारंभ से ही मूलसंघ की शुद्धाम्नाय मान्यताओं की पालक रही है और कालान्तर में इसे ही यहाँ तेरहपंथी आम्नाय कहा जाने लगा।

प्रायः पंथभेद किसी न किसी गुरु के आधार पर होते रहे हैं। ऐसा इतिहास से प्रकाशित है। १६-१७ वी सदी में दि० जैन समाज में आध्यात्मिक विचारधारा के साथ देश में अन्य-अन्य समाजों ने भी इस

---

१. ख० जैन स० बृ० इ०, पृष्ठ २५४-२५५
नरेन्द्रकीर्तिजी शुद्ध बीसपंथी आम्नाय मानने वाले थे।

काल में धर्मशास्त्रों के रहस्यभूत अध्यात्म को ही प्रधानता दी। इसलिए उस समय कबीर का कबीरपंथ, दादू का दादूपंथ, रविदास का रविदास-पंथ और नानक का नानकपंथ तथा स्वयं तारण स्वामी के नाम पर दि० जैन समाज में भी तारणपंथ का उदय हुआ। इससे यह भी समझा जा सकता है कि इन दोनों—तेरह-बीसपंथों का नामकरण भी गुरुओं के आधार पर हुआ होगा। यद्यपि तेरह और बीस संख्या वाचक हैं, गुरु वाचक नहो, ऐसा कहा जा सकता है तथापि स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी के द्वारा 'जैन हितैषी' में यह उल्लेख किया गया था कि उस समय भट्टारको की बीस गद्दियाँ भारतवर्ष में थी और वे ही गुरु गद्दियाँ मानी जाती थी। इसलिए यह निश्चित माना जाना चाहिये कि इन बीस (भट्टारक) गुरु गद्दियों पर स्थित भट्टारकों को अपना गुरु माननेवाली समाज के लोग 'बीसपंथी' के नाम से जाने जाने लगे और इनको गुरु न मानने वाले लोग तेरह प्रकार के चारित्र का आचरण करने वाले मूलसंघ के शुद्धाम्नायी दि० जैन मुनि/साधु को ही अपना गुरु मानते थे। उनकी संज्ञा 'तेरहपंथी' हो गई।

कही कही 'तेरह' संख्यावाचक न मानकर 'तेरा' का अर्थ किया गया—'भगवान् तेरा ही पंथ मानने वाले तेरापंथी है।' परन्तु इस अर्थ से बीसपंथी होने का समाधान स्पष्ट नही होता। कुछ विद्वानों का कथन है कि भट्टारक मुनि (निर्वस्त्र) नही रहे, परन्तु वे श्रावक के ८ मूलगुण और १२ उत्तरगुण पालते थे, अतः वे श्रावक ही रहे। सवस्त्र भट्टारकों को गुरु की मान्यता देने वाली समाज बीसपंथी श्रावक कहलाये और तेरह प्रकार का चारित्र—पाँच महाव्रत, पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ—इस तरह तेरह प्रकार का चारित्र जो सर्वथा दि० मुनिधर्म के अनुकूल है अतः ऐसे दि० (निर्वस्त्र) गुरु को मान्यता देने वाले तेरापंथी कहलाये। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि मुगल शासनकाल मे भारत के उत्तर एवं मध्य के प्रदेशों मे दि० मुनि नही पाये जाते थे, किन्तु दक्षिण प्रदेश मे मूल आम्नाय के वीतरागी दि० (निर्वस्त्र) मुनि परम्परा से प्राप्त थे, जो आज भी उत्तर भारत में भी विहार कर रहे हैं। बीसपंथ आम्नाय के मानने वाले एक कवि ने 'मिथ्यात्व खण्डन' नामक एक कविताबद्ध पुस्तक लिखी है और उसमे तेरहपंथ को जिनागम के विरुद्ध ठहराया है। इस पुस्तक में उन तेरह बातों का उल्लेख किया है जिनकी मान्यता

तेरहपंथ में नहीं है, किन्तु बीसपंथ में है। वह कविता निम्न प्रकार है :

दश दिग्पाल उथापि—गुरु चरणा ना लागे।
केशर चर्चा नाहीं करें—पुनि पुष्प पूजा नहिं करनी॥
दीपक अर्चा छांड़—आशिका-माल न करनी।
जिन न्हवन न करें—रात्रि पूजा परिहरणी॥
जिन शासन देव्यां तजी—रांधो अन्न न चढ़ावही।
फल न चढ़ावें हरित पुन—बैठ पूजा न करनी॥
ये तेरह उरधार पंथ तेरे उत्थापे।
जिन शासन सूत्र सिद्धान्त मानि ये वचन उथापे॥

इन तेरह बातों को न मानने से वह पंथ तेरहपंथी कहलाया। परन्तु कवि का ऐसा लिखना मिथ्या ही है, क्योंकि तेरह बातों को न मानने वाला तेरह का पन्थी कैसे कहा जायेगा? परन्तु लेखक का तात्पर्य यह ही है कि ये तेरह बातें जिनसूत्र मे कहीं हैं और इनको न मानना ही मिथ्यात्व है।

वस्तुतः ये तेरह बातें ही जिनसूत्र के विरुद्ध है और सवस्त्र भट्टारकों के युग में ही इनका सूत्रपात हुआ है। मूलसंघ शुद्ध आम्नाय में सचित्त द्रव्य से पूजा वर्जित है और रागी-द्वेषी, असंयमी देवों की पूजा वीतराग धर्म के विरुद्ध है। सरागी और वीतरागी दोनों को मान्यता देना विनय मिथ्यात्व में शामिल है। यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से जो प्रसंग उपस्थित है, उसमें दोनों पन्थों में मान्य बातों के खण्डन-मण्डन की चर्चा करना अप्रासांगिक होगा। गुरु के आधार पर पन्थ-भेद समाज में होता रहा है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि मुगलकाल में सर्वत्र भट्टारकों का प्रभाव/प्रभुत्व समाज मे रहने के बावजूद मूलसंघ की आम्नाय वाला समाज मुनित्व के प्रतीक तेरह प्रकार के चारित्र को पालने वाले दि० जैन (निर्वस्त्र) साधुमात्र को पूजता और मान्यता देता रहा है। उसने आगम के विरुद्ध रचित भट्टारकों के शास्त्रों को नही माना तथा वीतरागी जिनेन्द्र प्रभु के सिवाय किसी अन्य सरागी (शासन देवी-देवताओं आदि) को पूज्यता नही दी। समाज का यह वर्ग दि० जैनधर्म की मूलधारा से जुड़ा रहा, जो कालान्तर में तेरहपन्थी कहलाया।

इस तरह देव-शास्त्र-गुरु के आगमों में वर्णित स्वरूप को ही मूल रूप से परम्परा से पूजता आया और उसी धारा को कट्टरता से मानता आ रहा है।

उपर्युक्त कविता के "गुरु चरणा ना लागे" इस पंक्ति से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि इन गुरुओ (भट्टारकों) की वन्दना न करने से ही मूलसंघ समाज का यह भाग तेरहपन्थी कहलाया। उन्होंने वीतराग धर्म के मूल ग्रन्थों को ही आगम माना और उसके अनुसार तेरह प्रकार के चारित्र की आराधना करने वाले दि० जैन (निर्वस्त्र) गुरुओं की ही वन्दना की तथा वीतरागी देवताओं की ही पूजा की। यही दि० धर्म है।

वर्तमान समय में तेरहपन्थ आम्नाय की समाज मे कुछ विसंगतियाँ शिथिलाचारी दि० जैन (निर्वस्त्र) साधुओं के संसर्ग से आ रही हैं। अतः समाज को इन विसंगतियों को दूर करने का दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करना चाहिए और परम्परागत मूल-शुद्धाम्नाय की रक्षा करनी चाहिए।

मूलसंघ के आदिपुरुष आचार्य गुप्तिगुप्त ने भगवान् महावीर के काल से चली आयी शुद्ध आम्नाय चलाई और वह मूलसंघी आम्नाय की परम्परा बगैर किसी व्यवधान के आपात्काल, सासारिक लाभ, काल-दोष, राज्य विप्लव, क्रान्ति, अकाल, आतंकवाद आदि के कष्टों को सहते हुए जैसी अबतक चली आयी है, वैसी भविष्य में भी चलती रहे, इसका दृढ़ता से प्रयत्न करते रहना चाहिए।

सवस्त्र भट्टारकों का युग प्रायः समाप्त हो गया है तथा अब दि० (निर्वस्त्र) साधुओं का उद्भव प्रमुखता से देश के बहुभागों मे प्रायः हुआ है। परन्तु भट्टारक युग की मान्यता/आचरण/शिथलाचार, जो मूल आम्नाय का विकृत रूप जाना और माना गया है, उसका स्वरूप फिर से कई निर्वस्त्र साधुओं में भी पाया जाने लगा है। यंत्र, तंत्र-मंत्र, भौतिक लाभ का प्रलोभन, शासन देवी-देवताओं की पूज्यता तथा भुनित्व के तेरह प्रकार के चारित्र से विचलित साधुओं से सम्बद्ध होकर श्रावक उन्मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जो युक्तियुक्त नही है। अतः आगम की कसौटी से कसकर देव-शास्त्र-गुरु में श्रद्धान करना ही उपादेय है।

तारणपंथ :

कटनी (म० प्र०) के समीप प्राचीन पुष्पावती नामक नगरी थी, जिसे आजकल बिलहरी कहते हैं। यहाँ मूलसंघ (परवार जाति) के अनुयायी गढ़ासाव नामक सुप्रसिद्ध व्यक्ति रहते थे, जिनका गोत्र गोहिल्ल था। वि० सं० १५९५ मे उनके पुत्र तारणस्वामी हुए। ये 'तारणपंथ' के प्रणेता थे।

यह मुगलों का शासनकाल था, जब मूर्तियाँ खण्डित की जाती थीं और मंदिर तोड़े जाते थे। प्रायः सभी हिन्दू समाज उनके इन कृत्यों से आतंकित थी और अपने धर्मायतनों की रक्षा के लिए चिंतित थी। तारण स्वामी भी इस विचार में निमग्न रहते थे कि जैनधर्म देव, शास्त्र और गुरु के आधार पर स्थापित है और अभी तक चला आ रहा है। मूर्तियों के टूटने से देवस्थान नष्ट हो रहे है, अतः एक आधार तो समाप्त हो रहा है और और मूलसंघ के अनुयायी दि० जैन साधुओं का भी इस म्लेछ राज्य में अभाव हो गया है। अतः साधु परंपरा भी टूट गई है। इस तरह धर्म के दो आधार प्रायः समाप्त हो रहे है। अब दि० जैनधर्म की परम्परा चलाने के लिए केवल शास्त्र रह जाते हैं। यदि इनका संरक्षण हो जाये तो भविष्य में धर्म का आधार बना रहेगा। इसलिए उन्होने शास्त्रपूजा का विधान किया, उनके संरक्षण पर जोर दिया और अध्यात्म प्रचार किया।[1]

इस प्रतावना में इस इतिहास पुस्तक में निबद्ध इतिहास का संक्षिप्तरूप दे दिया गया है और अनेक विषयों का स्पष्टीकरण भी दिया गया हैं। श्री पं० फूलचंद्रजी शास्त्री के इस शोध-पूर्ण इतिहास से एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हो गई और परवार समाज का तथ्यपूर्ण इतिहास जनता के सामने आ गया है।

इस लेखन में जो ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है, उसका पूरा उपयोग किया है। आगे भी जो सामग्री आज अनुपलब्ध है, उसका भी अनुगम किया जायेगा। इतिहास शोधार्थियों के लिए इसमें पर्याप्त सामग्री है। पं० जी के इस प्रयास के लिए हम उन्हें धन्यवाद देते हैं।

---

१. विशेष के लिये देखिये : 'परवार बंधु', अक्टूबर १९४०

इस ग्रन्थ मे इतिहास खण्ड के बाद इतिहास में प्रयुक्त शिलालेखों, प्रशस्तिलेखों और प्रतिमालेखों तथा पट्टावलियों की पूरी-पूरी प्रतिलिपि दी गई है।

वर्तमान काल में समाज में जो मुनि, त्यागी, व्रती, आर्यिकायें तथा विद्वान् हैं, उनका भी परिचय दिया गया है। साथ ही समाज के बहु-प्रतिष्ठित, समाजसेवी तथा दानी-धार्मिक व्यक्तियों और महिलाओं का भी परिचय है। कुछ संस्थाओं का भी परिचय है

देश की स्वतत्रता मे जिन व्यक्तियों ने अपना मूल्यवान योगदान किया है, जो देश सेवा के लिए फाँसी पर लटके है, जेल की यातनाएँ सही है, पुलिस के डण्डे खाये है, जुर्माना दिये है, उन स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की सूची भी दी गई है।

परिशिष्ट मे कुछ और भी सामग्री जो मिली है और जो इस इतिहास के लिए गौरवपूर्ण है वह भी समाविष्ट की गई है।

हम आशा करते हैं कि इस ग्रन्थ से परवार समाज का, साथ ही बुंदेलखण्ड प्रान्त का धार्मिक, समाजिक तथा राष्ट्रीय परिचय प्राप्तकर पाठकगण संतुष्ट होंगे तथा यदि कोई विशेष सामग्री उन्हे प्राप्त हो तो उसे मंत्री परवार सभा कार्यालय, जबलपुर भेजें ताकि उसका सदुउपयोग हो सके।

—जगन्मोहनलाल शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

इतिहास विभाग

प्रथम खण्ड : पौरपाट अर्थात् परवार

द्वितीय खण्ड : ऐतिहासिक अभिलेख

चन्देरी १२२, एकपट्ट चौबीस मूर्ति : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२२, ग्रन्थलेख १२२, ह० लि० शास्त्र की प्रशस्ति : जयपुर १२३, पुण्यास्रव : जयपुर या आगरा १२३, भगवान् महावीर : छोटा मन्दिर, चन्देरी १२३, भेलसा (विदिशा) १२३, सिद्धयंत्र चौकोर ताँबा : दि० जैन मन्दिर घोघा १२३, पट्टावली : जैन सिद्धान्त भास्कर १२३, भ० महावीर : पंचायती मन्दिर, वाराणसी १२४, पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर, सिरौज १२४, भ० महावीर : बड़ा मन्दिर, ललितपुर १२४, कुन्थुनाथ : छोटा मन्दिर, चन्देरी १२५, आदिनाथ जिन : छोटा मन्दिर, चन्देरी १२५, भ० नेमिनाथ : दि० जैन मन्दिर, घोघा १२५, चौबीसी : प्राणपुरा, चन्देरी १२५, चौबीसी : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२५, आदिनाथ : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२५, यन्त्र : बड़ा मन्दिर, विदिशा १२६, परमार श्राविका १२६, सिद्धचक्र यन्त्र गोल ताँबा : दि० जैन मन्दिर, घोघा १२६, पार्श्व जिन : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२६, पार्श्वनाथ जिन : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२६, पाँच जिन : सावली, गुजरात १२६, भ० वासुपूज्य : दि० जैन मदिर, घोघा १२६, यन्त्र पीतल : हाटकापुरा, चन्देरी १२७, भ० सम्भवनाथ : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२७, भगवान् सम्भवनाथ : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२७, चौबीसी : सेनगण मन्दिर, कारंजा १२७, जिनबिम्ब : कोटा मन्दिर, चन्देरी १२७, चन्देरी और कारंजा मन्दिर १२७, भ० पार्श्वनाथ : काष्ठासंघ मन्दिर, कारंजा १२८, रत्नत्रयमूर्ति : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२८, रत्नत्रयमूर्ति : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२८, भ० पद्मप्रभ मूर्ति १२८, पचपरमेष्ठी : दि० जैन मन्दिर, घोघा १२८, सोलह तीर्थंकर : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १२८, पार्श्व जिन : छोटा मन्दिर, चन्देरी १२९, भ० बाहुबली : सूरत १२९, सुदर्शन चरित १२९, मध्यप्रान्त और बरार के हस्तलिखितों की सूची १२९, चौबीसी : खण्डवा १२९, मूर्ति : थूबोन १३०, ताम्रयन्त्र : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३०, ताम्रयन्त्र : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३०, सिद्धयन्त्र : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३०, भ० चन्द्रप्रभ : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३०, भ० पार्श्वनाथ : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३०, पार्श्वनाथ जिन : चन्देरी १३०, चौबीसी : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३१, चौबीसी एक पट्ट : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३१, बड़ा मन्दिर, ललितपुर १३१, ताम्रयन्त्र : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३१, भ० पार्श्वनाथ : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३२, भ० पार्श्वनाथ : बड़ा मन्दिर, चन्देरी १३२,

तेरापंथ का अर्थ :

परवार जाति के इतिहास पर कुछ प्रकाश : श्री नाथूरामजी प्रेमी :

तृतीय खण्ड : ऐतिहासिक पुरुष

वर्तमान परवार जैन समाज का परिचय

चतुर्थ खण्ड : संस्था परिचय

पञ्चम खण्ड : पूज्य मुनि-त्यागीवृन्द

षष्ठ खण्ड : सरस्वती साधक

(क) विशिष्ट विद्वान् :

(ख) अन्य विद्वान् :

टीकमगढ़ : टीकमगढ़ :
स्व० पं० खुन्नीलालजी (पं० ज्ञानानन्दजी) २८५, पं० विमलकुमार जैन सोंरया २८६।

डालमियानगर : पं० अमरचन्द्र शास्त्री २८६, श्री ज्ञानचन्द्र 'आलोक' २८६।

तेंदूखेड़ा : श्री कमलकुमार शास्त्री २८६।

दमोह : पं० अमृतलाल जैन शास्त्री २८७।

दिल्ली : पं० प्रकाश हितैषी शास्त्री २८८, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन २८९, डॉ० गुलाबचन्द्र जैन २८९, डॉ० सत्यप्रकाश जैन २९०, श्री संदीप जैन २९०।

नरसिंहपुर : बाबू पन्नालाल चौधरी २९०।

नागपुर : सिं० नेमिचन्द्र इंजीनियर २९१, पं० ताराचन्द शास्त्री २९१।

नागौद : श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' २९१।

नीमच : डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री २२१।

पनागर : स्व० पं० जमुनाप्रसादजी २९३, स्व० पं० बाबूलालजी २९३।

पिण्डरई : पं० अजितकुमार शास्त्री २९३।

पिलानी : डॉ० अशोककुमार जैन २९४।

बड़वानी : पं० क्षेमंकर शास्त्री २९४, पं० जीवन्धर शास्त्री २९४।

बामौरकलाँ : पं० भैया शास्त्री काव्यतीर्थ २९४।

बाँदरी : प्रो० श्रीचन्द शास्त्री २९५।

बिजनौर : डॉ० रमेशचन्द्र जैन २९५।

बीना : स्व० पं० धर्मदासजी शास्त्री २९६, स्व० पं० सुन्दरलाल न्यायतीर्थ २९६, पं० भैयालाल शास्त्री २९६, पं० बाबूलाल 'मधुर' २९७, पं० भैयालाल भजनसागर २९७, पं० अभयकुमार जैन २९७, प० निहालचन्द जैन २९७।

भानगढ़ : पं० अभयचन्द्र जैनदर्शनाचार्य २९७।

भोपाल : पं० राजमल जैन १९८, प्राचार्य हीरालाल पाँड़े 'हीरक' २९९, पं० हेमचन्द्र जैन इंजीनियर ३००।

मक्सीजी : पं० रमेशचन्द्र शास्त्री ३०२।

मड़ावरा : पं० लक्ष्मणदास शास्त्री ३०२, पं० जम्बूप्रसाद शास्त्री ३०२।

महरौनी : विद्याभूषण पं० गोविन्दराय शास्त्री ३०२।

मालथौन : पं० मुन्नालाल शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य ३०३, स्व० पं० किशोरीलाल न्यायतीर्थ ३०४, पं० निर्मलकुमार शास्त्री ३०४।

मुजफ्फरनगर : डॉ० जयकुमार जैन ३०४।

राघोगढ़ : वैद्य हुकुमचन्द आयुर्वेदाचार्य ३०५।

रीवां : ३०५, श्री नन्दलाल जैन ३०५।

लखनऊ : डॉ० विजयकुमार जैन ३०६।

लखनादौन : पं० यतीन्द्रकुमार शास्त्री ३०६, डॉ० सुरेशकुमार जैन ३०६, डॉ० शीलचन्द्र जैन ३०६।

ललितपुर : पं० हुकुमचन्द्र शास्त्री ३०७, पं० मुन्नालाल प्रतिष्ठाचार्य ३०८।

लालनखेड़ा : पं० अभयकुमारजी ३०८।

लाडनूं : डॉ० पूरनचन्द जैन ३०८।

वाराणसी : श्री बाबूलाल जैन फागुल्ल ३०८, डॉ० कोमलचन्द्र जैन ३०९, डॉ० सुदर्शनलाल जैन ३०९, डॉ० सुरेशचन्द्र जैन ३१०, डॉ० फूलचन्द्र प्रेमी ३१०, डॉ० कमलेशकुमार जैन ३११, डॉ० कमलेश जैन ३१२, डॉ० हेमन्तकुमार जैन ३१२, डॉ० विनोदकुमार जैन ३१२।

विदिशा : श्री नन्दकिशोर वकील ३१३।

वैशाली : स्व० डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ३१३, डॉ० लालचन्द जैन ३१४।

शहडोल : डॉ० कन्छेदीलाल जैन ३१५।

शाहपुर : पं० श्रुतसागर जैन न्यायकाव्यतीर्थ ३१५, पं० अमरचन्द्र शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य ३१६।

सगौनी : पं० प्रकाशचन्द्र शास्त्री ३१७।

सतना : स्व० पं० केवलचन्द जैन ३१७, स्व० पं० कस्तूरचन्द जैन ३१७।

सनावद : पं० मूलचन्द्र शास्त्री ३१८।

सप्तम खण्ड : समाजसेवी

(क) विशिष्ट समाजसेवी :

छतरपुर : श्री दशरथ जैन ३८६, श्री महेन्द्रकुमार 'मानव' ३८७, श्री सुरेन्द्रकुमार जैन ३८८।

छिंदवाड़ा : श्री प्रेमचन्द जी ३८९, श्री कोमलचन्द गोयल ३८९, श्री मुगमचन्द गोयल ३८९, स० सिं० धन्यकुमारजी ३८९, श्री आनन्दकिरण जैन ३९०, श्री इन्द्रचन्द्र कौशल ३९०।

जबलपुर : जबलपुर परवार समाज के धार्मिक एवं लौकिक कार्य ३९१, स० सिं० नेमीचन्द जैन ४०७, स० सिं० रतनचन्दजी ४१०, स० सिं० मुन्नीलाल जी ४१२, स० सिं० रामचन्द्रजी ४१२, परवारवीर बाबू शुभचन्द जैन ४१३, सिं० बाबूलाल जैन (सिंघई पेपर मार्ट) ४१४, श्री पूरनचन्द्रजी ड्योढ़िया ४१५, स० सिं० राजेन्द्र जैन भारल्ल ४१६, सिने कलाकार स्व० श्री रवि भारल्ल ४१६, श्री मोतीलाल बड़कुल ४१७, स० सिं० कपूरचन्दजी (सत्येन्द्र स्टोर्स) ४१८, बाबू फूलचन्द एडवोकेट ४१९, स० सिं० खूबचन्दजी खादीवाले ४२०, श्री अनन्तरामजी रंगवाले ४२१, श्री शिखरचन्द जैन ४२२, श्री कमलकुमार जैन साड़ीवाले ४२३, स्व० श्री नेमचन्दजी ४२४, लल्ला श्री भागचन्द्रजी ४२४।

जबेरा : सिं० खेमचन्दजी ४२५।

टीकमगढ़ : ४२६, श्री मगनलाल गोयल, विधायक ४२६, श्री कपूरचन्द जैन पोतदार ४२६, श्री बाबूलालजी जैन सतभैया ४२७, श्री गुलाबचन्दजी जैन घमासिया ४२८।

तेंदूखेड़ा : डॉ० शिखरचन्द जैन ४२८।

दमोह : स्व० राजाराम बजाज ४२८, श्री रूपचन्दजी बजाज ४२९, श्री रघुवरप्रसाद मोदी ४३१, स्व० सेठ भागचन्द इटोरया ४३२, सिं० प्रकाशचन्द्र एडवोकेट ४३२, स्व० वैद्य कपूरचन्द विद्यार्थी ४३४, बाबू ताराचन्द जैन ४३५, श्री हुकुमचन्द्रजी खजरीवाले ४३५, श्री प्रेमचन्दजी खजरीवाले ४३६, स्व० श्री कस्तूरचन्दजी करेलीवाले ४३७, स्व० सिं० मोतीलालजी खमरियाबिजौरावाले ४३८, स्व० मूलचन्द गुलझारीलाल ४३९, श्री लखमीचन्द्र सर्राफ ४४०, सिं० कन्छेदीलालजी ४४१, स्व० पूरनचन्दजी ४४२, श्री गोकुलचन्द वकील ४४३।

बलपतपुर : ४४३।

चित्र : भगवान् पार्श्वनाथ जी (साढ़ोरा ग्राम से प्राप्त मूर्ति)।

चित्र : परवार समाज के गौरव (सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री, न्यायमनीषी पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री ४०७, स० सि० धन्यकुमार जैन कटनी, स० सिं० नेमीचन्द जैन जबलपुर) ४०८।

परिशिष्ट

परवार जैन समाज का इतिहास

•

इतिहास विभाग

प्रथम खण्ड : पौरपाट अर्थात् परवार

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

प्रथम खण्ड : पौरपाट अर्थात् परवार

१. भारतीय जाति-व्यवस्था :

किसी भी देश, जाति तथा संस्कृति का इतिहास उसकी सामाजिक संघटना, धार्मिक विधि-विधान एवं प्राचीन परम्परागत प्रचलित संस्कारों में परिलक्षित होता है। समाज स्वयं एक व्यवस्था है, जिसका आधार व्यक्ति के आचार-विचार हैं। विवेक पूर्ण विचारों से समाज का निर्माण होता है। समाज व्यक्तियों के ऐसे समुदाय का नाम है जो समान आचार-विचार वाले हैं। सामान्यतः सादृश्य लक्षण वाले सामान्य को ही जाति कहा गया है। **"न्यायसूत्र"** में कहा गया है—**"समान प्रवासात्मिका जातिः।"** जाति का यह लक्षण सर्वमान्य है। आचार्य वीरसेन स्वामी ने इस पर प्रश्न प्रस्तुत करते हुए कहा है—तृण और वृक्षों में समानता कैसे है ? उत्तर है—जल व आहार-ग्रहण की समानता है।[1] अत्यन्त प्राचीन काल से गुणात्मक समानता के आधार पर जाति-भेद की परम्परा प्रवर्तमान रही है। गोत्र, कुल, वंश, सन्तान ये सब एकार्थक शब्द कहे गये हैं[2], जो सामाजिक व्यवस्था के द्योतक हैं। बिना व्यवस्था के कोई समाज स्थिर नहीं रह सकती। इसलिये व्यवस्था का होना स्वाभाविक है।

"उत्तर पुराण" में यह कहा गया है कि भरत और ऐरावत क्षेत्रों में चतुर्थ काल में ही जाति की परम्परा चलती है, अन्य कालों में नहीं।[3] इसका अर्थ यही समझना चाहिये कि पंचम काल में विभिन्न जातिगत विषमताएँ बनी रहेंगी। जो अपने को समान आचार-विचार वाला कहते हैं वे न तो समान मत के होंगे और न समान विचार के। उनमें मान्यता कुछ होगी और करेंगे कुछ। उनमें इतने अधिक भेद

१. द्रष्टव्य, धवला, पुस्तक १३।
२. धवला, पुस्तक ६, पृ० ७७।
३. उत्तरपुराण, पर्व ७४, श्लो० ४९३-४९५।

होंगे कि वे व्यक्ति मात्र बनकर रह जायेंगे। जातियों में इतने अधिक भेद हो जायेंगे कि वे उपजातियों में विभक्त होते रहेंगे। अतः वर्तमान काल में जाति-भेद होने पर भी नहीं के बराबर रहेगा। चतुर्थ काल में यह बात नहीं थी। यह इस काल में लक्षित होने वाली विशेषता है, जिसका प्रचार तथा प्रसार विशेष है।

भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब से "वर्ण" और "जाति" को एक माना जाने लगा, तभी से जाति-व्यवस्था में गड़बड़ी उत्पन्न हो गई। वास्तव में जाति अनादिकाल से है, किन्तु वर्ण व्यवस्था परिस्थितियों की देन है। आचार्य सोमदेवसूरि कहते है—सभी जातियाँ और उनका आचार-विचार अनादि है।[1] भारतवर्ष मे जातिप्रथा बहुत पुरानी है। किन्तु जिनागम के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जैनधर्म का जाति से कोई सम्बन्ध नही है। यह बात अवश्य है कि मध्यकाल मे जातिवाद का व्यापक प्रचार होने के कारण जैन साहित्य भी उससे अछूता नही रहा। इसलिये उत्तरकालीन कई जैनाचार्यों ने इसे किसी न किसी रूप में प्रश्रय दिया। वर्तमान मे जैनधर्म के अनुयायियों में जो जातिप्रथा का प्रचार और उसके प्रति आग्रह दिखाई देता है, वह उसी का फल है। जिन जैनाचार्यों ने जाति, कुल, गोत्र आदि की प्रथा को परिस्थितिवश धर्म का अंग बनाने का उपक्रम किया, उन्होंने भी इसे वीतराग जिनवाणी या जिनागम नहीं कहा। सोमदेवसूरि ने अपने "**यशस्तिलकचम्पू**" में गृहस्थों के धर्म के लौकिक और पारलौकिक—ये दो भेद किये है तथा लौकिक धर्म मे वेदों और मनुस्मृति आदि ग्रन्थों को प्रमाण बताया है, जैन-आगम को नही। इसी प्रकार "**नीतिवाक्यामृत**" में वेद आदि को त्रयी कहकर वर्णों और आश्रमों के धर्म तथा अधर्म की व्यवस्था त्रयी के अनुसार बतलाई है।[2] यह बात

---

१. जातयोऽनादयः सर्वास्तत्क्रियापि तथाविधा।
श्रुतिः शास्त्रान्तरं वास्तु प्रमाणं कात्र नः क्षतिः॥
—यशस्तिलकचम्पू, उत्तर खण्ड, अनु०-प० सुन्दरलाल शास्त्री, पृ० ३७८

२. त्रयीतः खलु वर्णाश्रमाणां धर्माधर्म व्यवस्था। —नीतिवाक्यामृत, सोमदेवसूरि, सम्पादक: पं० सुन्दरलाल शास्त्री, सन् १९७६, पृष्ठ ५१

केवल सोमदेवसूरि ने ही नहीं कही, अपितु मूलाचार के टीकाकार आचार्य वसुनन्दि ने भी **"मूलाचार"** (अ० ५, श्लो० ५९) की टीका में लोक का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किया है और उसके आचार को लौकिक आचार बतलाया है। स्पष्ट है कि लौकिक आचार से पारलौकिक आचार को वे भी भिन्न मानते हैं। वास्तव में व्यवस्था की अव्यवस्था तथा अधिकतर परिवर्तन की सम्भावनाएँ लौकिक आचार-विचार में रही हैं। पारलौकिक किंवा परमार्थ सनातन है। वह सदा काल एक रहा है। उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, भले ही समय बदल जाय।

२. जैनधर्म में जाति-व्यवस्था :

भारतीय परम्परा मे जैनधर्म अपनी उदारता और व्यापकता के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और स्वावलम्बन के कारण यह अन्य सब धर्मों में श्रेष्ठ गिना जाता है। जैनधर्म की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि प्रत्येक द्रव्य को, वस्तु मात्र को यह स्वतन्त्र मानता है। स्वतन्त्रता का सच्चा उद्घोष करने वाला यह धर्म जाति-व्यवस्था को कर्म के अनुसार मानता है, जन्म या कुल के आधार पर नहीं। आचार्य वीरसेन ने गोत्र का विचार करते हुए इक्ष्वाकु आदि कुलों को काल्पनिक कहा है। कर्मशास्त्र में जिसे "गोत्र" कहा गया है वह लौकिक गोत्र से भिन्न ही है, क्योंकि गोत्र जीवविपाकी कर्म है। जैनधर्म मे चाहे उच्चगोत्री हो और चाहे नीचगोत्री, आर्य-म्लेच्छ रूप तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रूप—सब मनुष्यों के लिए धर्म का द्वार समान रूप से खुला हुआ है।[1] वास्तव में जैन परम्परा में "कुल" या "वंश" को महत्त्व नहीं दिया गया है। "कुल" या "वंश" को एक परम्परा के रूप में ही मान्यता प्रदान की गई है। इनका इतना ही महत्त्व है कि संस्कार से जीवन-विकास की प्रक्रिया में गतिशीलता लक्षित हो। लेकिन संस्कारों की निस्सारता भी परिलक्षित होती है। क्योंकि जिस प्रकार कुलीन व्यक्ति धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्नकर धार्मिकता को प्राप्त कर सकता है, वैसे ही शूद्र व्यक्ति उन धार्मिक

---

१. पं० फूलचन्द्र शास्त्री : वर्ण, जाति और धर्म, द्वितीय संस्करण, पृ० १३८ से उद्धृत।

क्रियाओं को क्यों नही कर सकता ? इसका कोई समाधान हमें पुराणों में नहीं मिलता।[1] इतना ही नहीं, आचार्य कुन्दकुन्द स्पष्ट रूप से क्रियाओं की निस्सारता बतलाते हुए कहते हैं[2]—आत्मोन्नति में प्रधान कारण भावलिंग है। वही परमार्थ सत् है। केवल द्रव्यलिंग से इष्ट की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि जीव में गुणों और दोषों के उत्पादक एक मात्र जीवों के परिणाम है, ऐसा जिनेन्द्रदेव का उपदेश है। वास्तव में वर्ण और जाति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है और एक वर्णवाला दूसरे वर्ण वाले से ब्याह कर सकता था और कर सकता है।[3]

भारत अगणित जातियों का देश है। यूरोप, अमेरिका और एशिया में काले-गोरे का भेद पुराना है। परन्तु जैनधर्म ने मूल में इस जातिप्रथा को कभी भी नहीं स्वीकारा। जिन धर्मों मे संख्या की दृष्टि से बहुत संख्या पाई जाती है, वे हैं—वैदिक धर्म, ईसाई धर्म और मुस्लिम धर्म।

वस्तुतः देखा जाय तो मालूम पड़ता है कि जाति-व्यवस्था वैदिक धर्म की देन है। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रन्थ और मनुस्मृतियाँ इसकी साक्षी हैं। यही एक ऐसा लौकिक धर्म है जो जन्म से जाति-व्यवस्था को स्वीकार करता है। उस धर्म मे बालक के जन्म लेते ही उसमें जाति मान ली जाती है। **"मनुस्मृति"** में इस आशय के बचन बहुलता से पाये जाते है। यथा—

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।" मनुस्मृति के इस कथन को महापुराणकार ने भी अपना लिया है। अतः इस प्रकार के विचार अनुकरण मात्र हैं।

ऐसा लगता है कि तीर्थङ्कर महावीर के काल में भी अन्य भारतीय समाजों ने इसे स्वीकार कर लिया था, परन्तु उस काल में मूल पुराणों पर दृष्टि डालने से ऐसा आभास नहीं होता है कि उस काल में जैनधर्म में जाति-व्यवस्था हो गई थी।

---

१. पं० फूलचन्द्र शास्त्री : वर्ण, जाति और धर्म, पृ० १४६।

२. भावपाहुड, गा० २।

३. जाति प्रबोधक, सितम्बर १९१७, भाग २, अंक ९।

यह अवश्य है कि पुराणों में वंशों और कुलों के नाम आते हैं। उनके अनुसार धर्मशास्त्र भी इससे अछूते नहीं हैं। सम्भव है कि कालान्तर में वे कुल और वंश भी जातियाँ बन गये हों, तो कोई आश्चर्य नहीं है। उदाहरणार्थ, भगवान् महावीर का जन्म "ज्ञातृक" वंश में हुआ था। उसने ही कुछ समय बाद "जथरिया" नाम से प्रचलित एक जाति का रूप ले लिया।

इस समय जितने भी उल्लेख मिलते हैं, उनके अनुसार पूरे जैन संघ को चार भागों में विभक्त किया गया था—मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका। यह है जैनधर्म के अनुसार संस्कृति के बल पर सामाजिक संगठन का रूप। इससे मालूम पड़ता है कि वैदिकों ने जो सामाजिक संगठन बनाया था, उसे जैनधर्म के अनुयायियों ने स्वीकार नहीं किया। वास्तव में जैनधर्म वर्ण-व्यवस्था को जन्म से स्वीकार नहीं करता। प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ से लेकर महावीर पर्यन्त उनके केवलज्ञानी होने पर देवों द्वारा जिस समवसरण की रचना की जाती थी, उस समवसरण के मध्य में गन्धकुटी बनाई जाती थी, चारों ओर देवों, मनुष्यों और तिर्यञ्चों को बैठने के लिये जिन कक्षों की रचना होती थी, उनमे से आठ कक्ष तो मात्र चारों प्रकार के देवों और उनकी देवियों के लिये निश्चित किये जाते थे; शेष चार कक्ष मनुष्यों और तिर्यञ्चों के लिये थे। उनमें से एक कक्ष में सब प्रकार के मुनिगण बैठते थे, दूसरे कक्ष मे आर्यिकाओं से लेकर सामान्य स्त्रियाँ बैठती थी। तीसरे कक्ष में सभी प्रकार के ग्यारहवीं प्रतिमा तक के मनुष्य बैठते थे तथा चौथे कक्ष में सभी तिर्यञ्च बैठते थे। यह समवसरण धर्मसभा की व्यवस्था थी।

इससे मालूम पड़ता है कि तीर्थङ्कर महावीर के काल तक जैनधर्म में जाति-व्यवस्था नहीं थी। उसके बाद ही जैनधर्म में जाति-व्यवस्था को जन्म मिल सका है। धार्मिक दृष्टि से पूरा समाज अहिंसक ही था। इसलिये आजीविका की दृष्टि से भले ही समाज में बँटवारा रहा हो, पर धार्मिक दृष्टि से उसमें ऊँच-नीच का भेद नहीं था।

फिर भी, जैन परम्परा में यह जातिप्रथा कब से चालू हुई इसे ठीक तरह से समझने के लिये पुराणों के अतिरिक्त अन्य जैन साहित्य

के ऊपर भी दृष्टिपात करना होगा। सबसे पहले हमारी दृष्टि सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोषों पर जाती है। उन दोषों मे जो आठ मद सम्मिलित हैं, उनमें एक जातिमद भी है। दूसरे का नाम कुलमद है। इनका निषेध मूल परम्परा के सभी आगमों में दृष्टिगोचर होता है।

"रत्नकरण्डश्रावकाचार" प्रथम शताब्दी का आचार विषयक ग्रन्थ माना जाता है। उससे ज्ञात होता है कि उससे पहले ही जैनधर्म में जातिप्रथा को स्थान मिल गया था। तभी तो उक्त आठ मदों में जातिमद और कुलमद के निषेध के लिये उनको अलग से स्थान दिया गया। आचार्य पूज्यपाद (देवनन्दि) आचार्य परम्परा में बड़े ही तत्त्वज्ञ महात्मा हो गये। वे अपने **समाधिशतक**में लिखते हैं—

जातिदेहाश्रितो दृष्टः देह एवं ह्यात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात् तस्मात् ते ये जातिकृताग्रहाः॥

तिर्यंचों मे जाति-भेद तो समझ मे आता है, पर मनुष्यों में यह जाति-भेद कब से चालू हुआ, यह समझ के बाहर है।

"मूलाचार" के पिण्डशुद्धि अधिकार पर दृष्टिपात करने से भी उक्त अर्थ की पुष्टि होती है। उसमें लिखा है कि जाति, कुल, शिल्प, कर्म, तपःकर्म और ईश्वर-पूजा—इनकी आजीव संज्ञा है। इनके आधार से आहार प्राप्त करना आजीव नाम का दोष है। इससे भी उक्त अर्थ की ही पुष्टि होती है।[1]

"मूलाचार" और **"रत्नकरण्डश्रावकाचार"** ये विक्रम की प्रथम शताब्दी के समय मे या इससे पूर्व लिखे जा चुके थे। इससे लगता है कि इस काल मे किसी न किसी रूप मे जाति-प्रथा चालू होकर प्रदेश-भेद से प्रचलित हो चुकी थी। जैसे तिर्यञ्च योनि मे हाथी, घोड़ा और गौ आदि भेद देखे जाते है, वैसे ही मनुष्यों को भी अनेक भागों में विभक्त कर दिया गया था। एक-एक वर्ण के भीतर जो अनेक जातियाँ और उपजातियाँ दिखाई देती है, यह सब उसी व्यवस्था का परिणाम है।

यद्यपि यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि **"मूलाचार"** और **"रत्नकरण्डश्रावकाचार"** आदि आगम ग्रन्थों में जिन जातियों का

---

१. मूलाचार, पिण्डशुद्धि अधिकार, गा० २५।

उल्लेख किया गया है वे वर्तमान में एक-एक वर्ण के भीतर प्रचलित अनेक जातियाँ न होकर उन "वर्णों" को ही उन ग्रन्थों में "जाति" शब्द द्वारा अभिहित किया गया है। इसलिये वर्तमान काल में प्रचलित अनेक जातियों को उतना पुराना नहीं मानना चाहिये। किन्तु वर्तमान काल में जितनी भी जातियाँ प्रचलित हैं, उनकी पूर्वावधि अधिक से अधिक सातवीं-आठवीं शताब्दी हो सकती है।[1] ऐसा अनेक इतिहास लेखकों का मत है। आचार्य क्षितिमोहन सेन उनमें मुख्य हैं।

प्राग्वाट इतिहास, प्रथम भाग की भूमिका, पृष्ठ १३ में श्री अगरचन्द नाहटा लिखते हैं—"राजपुत्रों की आधुनिक ज्ञातियों और वैश्यों की अन्य ज्ञातियों के नामकरण का समय भी विद्वानों की राय में आठवीं शताब्दी के लगभग का ही है।" सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने **"मध्ययुगीन भारत"** में लिखा है—विक्रम की ८वीं शताब्दी तक ब्राह्मण और क्षत्रियों के समान वैश्यों की सारे भारत में एक ही जाति थी।

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार क्षत्रियों की ज्ञातियों के सम्बन्ध में लिखते हैं—"भारतीय इतिहास मे ८वीं सदी एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन की सदी है। इस काल में भारत की राजनैतिक शक्ति प्रधानतया उन ज्ञातियों के हाथ में चली गई, जिन्हे आजकल राजपुत्र कहा जाता है। भारत की पुरानी राजनैतिक शक्तियों का इस समय प्रायः लोप हो गया। पुराने मौर्य, पञ्चाल, अन्धकवृष्णि, क्षत्रिय, भोज आदि राजकुलों का नाम अब सर्वथा लुप्त हो गया और उनके स्थान पर चौहान, राठौर, परमार आदि नये राजकुलों की शक्ति प्रकट हुई।"[2]

स्व० पूर्णचन्द्र जी नाहटा ने भी ओसवाल वंश की स्थापना के सम्बन्ध में लिखा है—"वीर निर्वाण के बाद ७० वर्ष में ओसवाल समाज की निर्मिति किंवदन्ती असम्भव सी प्रतीत होती है।" **"जैसलमेर जैन लेख संग्रह"** की भूमिका, पृष्ठ २५ में "संवत् पाँच सौ के पश्चात् और एक हजार से पूर्व किसी समय उपकेश (ओसवाल) जाति की उत्पत्ति हुई होगी।" ऐसी सम्भावना प्रकट की गई है।

---

१. प्राग्वाट इतिहास, प्रथम भाग, भूमिका, पृष्ठ १३।
२. अग्रवाल ज्ञाति का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ २०८।

इस प्रकार जातिप्रथा के प्रचलित होने के विषय में अनेक विद्वानों की सहमति अवश्य है; किन्तु सातवीं-आठवी शताब्दी के पूर्व वर्ण ही ज्ञाति संज्ञा से अभिहित किये जाते रहें हों, ऐसा तो एकान्त से नहीं कहा जा सकता। यह बात ठीक है कि ब्राह्मणों ने अपने वर्ण की उत्कृष्टता बनाये रखने के लिये उसे पाणिनीय काल में ही कर्म से न मानकर जन्म से मानना प्रारम्भ कर दिया था। **मनुस्मृति** और **ब्राह्मण** ग्रन्थ इसके साक्षी है। इस प्रकार ब्राह्मण आदि वर्णों के स्थान मे ये जातियां कहलाने लगी थीं। इतना ही नही, आठवीं-नौवी शताब्दी के पूर्व प्रदेश-भेद और आचार-भेद भी इन भेदों का कारण रहा हो, यह भी सम्भव प्रतीत होता है। क्योंकि हम जितने पिछले काल की ओर जाते है, उतना ही उनमें प्रदेश-भेद और आचार-भेद से भेद होता हुआ अनुभव में आता है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल **"पाणिनिकालीन भारतवर्ष"** नामक ग्रन्थ की भूमिका मे लिखते है—

१. *भिन्न-भिन्न देशो मे बस जाने के कारण ब्राह्मणों के अलग-अलग* नामो की प्रथा चल पड़ी थी।

इसी प्रकार क्षत्रियों के विषय में भी वे लिखते हैं—

२. अनेक जनपदों के नाम वही थे जो उनमें बसने वाले क्षत्रियों के (जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्, पा० सू० ४/१/१६७) थे। जैसा कि हम ऊपर दिखा चुके है—पञ्चाल क्षत्रियजन के बसने के कारण ही आरम्भ में जनपद का भी "पञ्चाल" नाम पड़ा था। पीछे जनपद नाम की प्रधानता हुई और जनपद के नाम से वहां के प्रशासक क्षत्रियों के नाम, जिन्हें अष्टाध्यायी में "जनपरिषद्" कहा गया है, लोक प्रसिद्ध हुये।

पहली स्थिति के कुछ अवशेष आज तक पाये गये है—जैसे यौधेयों (वर्तमान जोहिये) का प्रदेश "जोहियावार" (बहावलपुर रियासत), मालवों का (वर्तमान मालवई लोगों का) मालवा, दरद क्षत्रियों का दरिदस्थान (फीरोजपुर-लुधियाना जिलों का भाग) आदि।

यों तो तत्कालीन ग्रन्थों और जनपदों में क्षत्रियों के अतिरिक्त और वर्गों के लोग भी थे। उदाहरणार्थ—मालव जनपद के क्षत्रिय मालव तथा ब्राह्मण एवं क्षत्रियेतर मालव्य कहलाते थे। 'राजन्यक' का हिन्दी रूप 'राणा' है।[1] 'राणा' से ही 'राना' बना है।

१. पाणिनि कालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ९३।

३. पाणिनि व्याकरण में गृहस्थ के लिये "गृहपति" शब्द आया है। मौर्यशुंग युग में "गृहपति" समृद्ध वैश्य व्यापारियों के लिये प्रयुक्त होने लगा था।……वे ही परवर्ती काल में "गहोई" वैश्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।[१]

४. पतञ्जलि के अनुसार मृतप, चाण्डाल आदि निम्न शूद्र जातियाँ प्रायः ग्राम, घोष, नगर आदि आर्यबस्तियों में घर बनाकर रहती थीं। पर जहाँ गाँव और शहर बहुत बड़े थे, वहाँ उनके भीतर भी वे अपने मुहल्लों में रहने लगे थे। वे समाज में सबसे नीची कोटि के शूद्र थे। इनसे ऊपर बढ़ई, लोहार, बुनकर, धोबी, तक्ष, अयस्कर, तन्तुवाय, रजक आदि जातियों की गणना भी शूद्रों में होती थी। ये यज्ञ सम्बन्धी कुछ कार्यों में सम्मिलित हो सकते थे। परन्तु इनके साथ खाने के बर्तनों की छूआछूत मानी जाती थी। इनसे भी ऊँचे शूद्र वे थे जो आर्यों के घर का नेवता होने पर उन्हीं के बर्तनों में खा-पी सकते थे, जिनमें कि घर के लोग खाते-पीते थे।[२]

पाणिनि-व्याकरण और कातन्त्र-व्याकरण के ये कुछ उदाहरण हैं, जो इस बात के साक्षी रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। इनसे ज्ञात होता है कि तीर्थङ्कर महावीर के काल मे या उनके कुछ काल बाद आजीविका आदि कर्मों के आधार पर चारों वर्णों के अन्तर्गत प्रदेश-भेद और आचार-भेद आदि के कारण विविध जातियाँ बनने लगीं थी। आजीविका-भेद भी इन जातियों के बनने में मुख्य कारण था।

"**तत्त्वार्थसूत्र**" में परिग्रह परिमाण-प्रसङ्ग से कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनसे हम जानते हैं कि कर्म के आधार पर विभक्त यह मानव समाज उस काल में नीच-ऊँच के गर्त में फँसकर कई भागों में विभक्त हो गया था। परिग्रह-परिमाण-व्रत के जिन पाँच अतिचारों का नामोल्लेख उसमें दृष्टिगोचर होता है, उनमें एक अतिचार का नाम दासी-दास-व्यतिक्रम भी है। जो व्रती गृहस्थ दास-दासियों को रखने की मर्यादा करके उसका उल्लंघन करता था, वह व्रती गृहस्थ दासी-दास-व्यतिक्रम नामक अतिचार दोष का भागी होता था। इससे हम

१. पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ९२।

२. वही, पृष्ठ ९४।

जानते हैं कि **"तत्त्वार्थसूत्र"** की रचना-काल के बहुत पहले से समाज ऊँच-नीच के भेद से अनेक भागों में विभक्त हो गया था।

कौटिल्य ने भी अपने **"अर्थशास्त्र"** में दास-प्रथा का उल्लेख कर उससे छूटने के उपाय का भी निर्देश किया है। यद्यपि व्रती गृहस्थ स्वेच्छा से इस प्रथा को बन्द करने में सहायक होते रहे हैं, पर कौटिल्य के अनुसार छुटकारे के रूप मे रुपया देकर भी दास या दासी उससे मुक्त होकर स्वतन्त्रता और समानता का स्थान पाते रहे हैं।

यह लगभग दो हजार वर्ष पूर्व के भारत की एक झाँकी है। इससे हम जानते है कि उस समय मानव समाज अनेक भागों मे विभक्त हो गया था। अतः इस पर से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वर्तमान में जो एक-एक वर्ग के भीतर अनेक जातियाँ और उपजातियाँ दिखाई देती है, उनकी नींव सातवीं-आठवी शताब्दी के पूर्व ही पड़ गई थी। उनकी नीव कब पड़ी थी, यह आगे के प्रकरण से ज्ञात होगा।

जातिप्रथा का अत्यन्त विरोधी जैनधर्म इस बुराई से अपने को नहीं बचा सका। तीर्थङ्कर महावीर के काल के बाद धीरे-धीरे वैदिक धर्म का प्रचार और प्रभुत्व बढ़ने लगा था और जैनधर्म का प्रचार और प्रभुत्व गाँव और नगरों मे घटने लगा था। इसके कई कारण है। उनमे तीन कारण मुख्य है—

१. प्रथम तो यह है कि मुनिजन गाँव-गाँव में पैदल विचरते थे। वे ज्ञानी, ध्यानी और निरिच्छक होते थे। आहार के रूप मे समाज से बहुत कम लेते थे और धर्म प्रचार के रूप मे बहुत अधिक देते थे। किन्तु काल-दोष के साथ धीरे-धीरे त्यागवृत्ति का अभाव होते रहने से उनका अभाव होता गया।

२. दूसरा कारण यह है कि गृहस्थों ने यह भार सम्हाला अवश्य, किन्तु गृहस्थ होने के कारण उनके सामने प्रपञ्च की बहुलता होने से तथा उन पर समाज की अनास्था होने से वे (गृहस्थ) त्यागवृत्ति के साथ उसे निभा नहीं पाये।

३. तीसरा कारण यह है कि उन उपदेशकों की आवश्यकता समाज की धारणा से भिन्न थी। अतः आचार्यों ने यह मार्ग निकाला

कि प्रत्येक गाँव और शहर के गृहस्थों में से ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न एक मुखिया चुना जाय और उस पर उपदेश तथा समाज के सञ्चालन का भार सौंपा जाय, परन्तु वह सर्वानुमत नहीं हो सका। धीरे-धीरे उसमें विकृति आती गई। वह धीरे-धीरे मठाधीश बनता गया।

कुछ तो ये कारण हैं। दूसरी ओर ब्राह्मण धर्म में भिक्षावृत्ति को धर्म माना गया है। इस कारण आजीविका के समुचित साधनों के बल पर ब्राह्मणों का गाँव-गाँव व नगरों में बसकर वैदिक धर्म की प्रभाव-वृद्धि में संलग्न रहना सम्भव हुआ। ये ही कुछ ऐसे कारण हैं, जिनसे प्रेरित होकर आचार्यों को जैनधर्म में जाति-प्रथा चालू करने के लिये बाध्य होना पड़ा। "यशस्तिलकचम्पू" के इन वचनों से भी इस अर्थ की पुष्टि होती है—

सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥[1]

जिस कार्य के करने से सम्यक्त्व की हानि न हो और जिसके पालने से व्रतों में दूषण न लगे, वह सब लौकिक विधि जैनों को प्रमाण है, मान्य है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि न जैधर्म में जातिप्रथा को लौकिक विधि के रूप में ही स्वीकार किया गया है। आगम की दृष्टि से देखा जाय तो जैनधर्म में जातिप्रथा को स्वीकार करने का अन्य कोई कारण नहीं दिखाई देता। वास्तव में यह अध्यात्म प्रधान धर्म है। इतना अवश्य है कि धर्म अध्यात्म प्रधान होते हुये भी इसमें आचार की मुख्यता है। इस धर्म मे जातिप्रथा के स्वीकार कर लेने पर भी इतना अवश्य है कि इसमें जैनधर्म की छाया मिली हुई है।

कहने को तो इस समय जैनधर्म में चौरासी जातियाँ प्रसिद्ध हैं, किन्तु उनमें से कतिपय ऐसी जातियाँ हैं जो नामशेष हो गई हैं और जो जातियाँ इस काल में पाई भी जातीं हैं, उनमें कतिपय ऐसी जातियाँ भी हो सकती है जो दो हजार वर्ष पहले ही अस्तित्व में आ चुकी थीं। जैसे जैनधर्म में बाह्य कारण की अपेक्षा कार्य को स्वीकार करने की

१. यशस्तिलकचम्पू, उत्तरखण्ड, अनु०-पं० सुन्दरलाल शास्त्री, सन् १९७१, पृष्ठ ३७९।

पद्धति रही है, वही पद्धति जातिप्रथा में भी स्वीकार कर ली गई है। इसमें सन्देह नहीं है कि जिस तरह से लौकिक दृष्टि से वर्ण और वंश को जैनधर्म में मान्यता मिली है, वही दृष्टि जातिप्रथा को स्वीकार करने में अपनाई गई है।

इस दृष्टि से हम यहाँ पर पौरपाट (परवार) अन्वय के विषय में अनुसन्धान करेंगे। इसके अनुसन्धान करने में मुख्य कारण सांस्कृतिक है, किसी जाति विशेष को बढ़ावा देना नही है।

यह अन्वय एक तो पूरा दिगम्बर है और दूसरा कारण इसका यह है कि यह समूचा मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय के अन्तर्गत सरस्वती गच्छ और बलात्कारगण को छोड़कर अन्य किसी अन्वय का धारक नहीं है। यह इस अन्वय की सांस्कृतिक विशेषता है। इसी से पौरपाट अन्वय का सांगोपांग अनुसन्धान करना अति आवश्यक प्रतीत होता है।

३. पौरपाट अन्वय का संगठन :

पौरपाट अन्वय का संगठन कब हुआ और उसके संगठन में किनको लेकर इस संगठन को मूर्त रूप मिला है, इस बात का यहाँ पर विचार किया जाता है। पुराने इतिहास पर दृष्टि डालने से तो ऐसा लगता है कि इस अन्वय के संगठन के मूर्त रूप ग्रहण करने म दो अन्वयों का मुख्य रूप से उपयोग हुआ है। वे दो अन्वय है—(क) पुराने जैन और (ख) प्राग्वाट अन्वय।

(क) पुराने जैन—सबसे पहले मूल जैनों के आधार से विचार किया गया है, जिसे मूर्तिलेखों, हस्तलिखित शास्त्रों के अन्त मे पाई जाने वाली प्रशस्तियों, मानस्तम्भों तथा शिलापट्टों में पाये जाने वाले लेखों एवं प्रशस्तियों में "पौरपट्ट" कहा गया है, जो कालान्तर में "परवार" नाम से प्रचलित हो गया।

मुख्य प्रश्न तो यह है कि यदि यह अन्वय तीर्थङ्कर महावीर के काल में भी पाया जाता था तो पुराणों में इस या अन्य किसी अन्वय का नाम दृष्टिगोचर क्यो नही होता? यह कहना तो ठीक नहीं है कि जातिवाद का निषेध करने के लिये पुराणों में वर्तमान में पाई जाने वाली इन जातियों का नामोल्लेख नहीं किया गया है। यह एक कारण

हो सकता है, परन्तु यह आरोप वर्णों, वंशों, कुलों पर भी लागू होता होता है। इससे इतना तो निष्कर्ष निकलता ही है कि वस्तुतः तीर्थङ्कर महावीर के काल में वर्तमान में पाये जाने वाले जाति के नाम वाले ये "अन्वय" तो नहीं थे। इनका संगठन बाद में हुआ है। सभी अन्वयों का संगठन कब-कब हुआ और उन-उन संगठनों के मूलाधार क्या-क्या रहे हैं, यह गवेषणा का विषय हो सकता है। यहाँ तो हमारा मुख्य प्रयोजन "पौरपाट" अन्वय के सम्बन्ध में ऊहापोह करने का है।

जैसा कि हम इस अध्याय के प्रारम्भ में संकेत कर आये हैं कि इस अन्वय के संगठन के मूल आधार दो प्रतीत होते हैं। उन दोनों में से प्रथम मूल आधार पुराने (मूल) जैन हैं।

यह तो मानी हुई बात है कि तीर्थङ्कर महावीर के काल में मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका—इन चार संघों में विभक्त जो जैन थे, उनमें से जिस प्रदेश में जिस अन्वय का संगठन हुआ होगा, उन्हें मिलाकर ही इसी या अन्य अन्वय का संगठन किया गया होगा। यह सम्भव है कि पुराने जैनों का आचार-विचार ही उस संगठन का मूल आधार रहा होगा। यही कारण है कि प्रथम तथा मूलसंघ के रूप में मूलसंघ प्रचलित हुआ, जिससे युग-युगों में कई संघों का विकास हुआ। इसलिये यह अन्वय प्रारम्भ से ही मूलसंघ आम्नायी रहा है। उत्तरकाल में इसने कुन्दकुन्द आम्नाय को ही क्यों स्वीकार किया ? इसका कारण यह है कि कुन्दकुन्द मूलसंघ के अग्रणी थे और उन्होंने उसी मूलसंघ की परम्परा को आगे बढ़ाया था जो अनादि होकर भी भगवान् महावीर के काल से चली आ रही थी तथा निरपवाद रूप से जिसको "पौरपाट" अन्वय ने भली-भाँति स्वीकार किया था। तथा जो अन्य परम्परा के व्यामोह में नहीं पड़ा था।

इस कारण इसके नामकरण में "पौर" शब्द के साथ जो "वाट" या "वाड" शब्द न लगकर "पाट" या "पट्ट" शब्द लगा हुआ है, उसका भी यही कारण प्रतीत होता है। इसका विशेष ऊहापोह हम इस अन्वय के नामकरण के साथ करेंगे। इस प्रकार इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जितने भी अन्वय (जातियाँ) इस काल में उपलब्ध होते हैं वे केवल दीक्षित नये जैनों के आधार से निर्मित नहीं हुये हैं,

किन्तु उन अन्वयों के निर्माण में पुराने जैनों के आचार-विचार के साथ पुराने (मूल) जैनों को मिलाकर इन अन्वयों का निर्माण हुआ है, ऐसा मानना सहेतुक है। उससे प्रभावित होकर ही कुछ अजैन परिवारों ने पुराने जैनों से मिलकर एक-एक नये संगठन का निर्माण किया है। इसमें आचार-भेद के साथ प्रदेश-भेद भी मुख्य है।

(ख) प्राग्वाट अन्वय—इस संगठन के मूल में दूसरा मूल आधार प्राग्वाट अन्वय है। उन तथ्यों में प्रथम तथ्य है– वड़ोह (मध्यप्रदेश) का वनमन्दिर। यह मन्दिर इस समय निर्जन प्रदेश में है, जो अब जीर्ण-शीर्ण हो रहा है। इस पर पुरातत्त्वविभाग का अधिकार है।

उत्तर भारत में मुस्लिम संस्कृति का भी चलन और प्रभाव बहुत रहा है। इसलिये भी जैनों में जैन आचार-विचार के प्रति उसी तरह अन्तर पड़ा है, जैसे दक्षिण प्रदेश मे ब्राह्मणधर्म का प्राबल्य रहने के कारण वहाँ बसने वाले जैनों पर ब्राह्मणधर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

बुन्देलखण्ड एक ऐसा प्रदेश है जिसके जगलों मे वनमन्दिर के समान अगणित मन्दिर और तीर्थङ्कर-मूर्तियाँ पाई जाती हैं। ये मन्दिर पुराने जैनों के द्वारा ही निर्मित कराये गये थे तथा उनमें भव्य मूर्तियाँ स्थापित की गई थी।

बड़ोह का वनमन्दिर अनेक मन्दिरों का समूह है। इसका निर्माण विभिन्न कालों में हुआ है। यह मन्दिर या इसी प्रकार के जंगलों में पाये जाने वाले कतिपय मन्दिर भट्टारक-काल की याद दिलाते है। क्योंकि उनमें गर्भगृह की वेदी नियम से नीची बनाई जाती थी। उसका कारण बैठकर पूजा करना मुख्य है, यह भट्टारक काल की एक देन है। जबकि सनातन नियम यह है कि खड़े होकर उपचार विनय करनी चाहिये। केवल अष्टाङ्ग नमस्कार करने के लिये ही भूमि मे बैठकर अष्टाङ्ग नमस्कार किया जाता है। "**कर्मप्रकृति**" का "**आवाहीणं पवाहीणं**" सूत्र खड़े होकर पूजन करने की परम्परा का सूचन करता है।

इस मन्दिर के सभी गर्भगृहों का निर्माण भी प्राग्वाट अन्वय के **भाइयों द्वारा कराया गया है। इससे विदित होता है कि वासल्ल गोत्रीय**

कुटुम्ब भी प्राग्वाट अन्वय की सन्तान हैं। क्योंकि इस मन्दिर के एक गर्भगृह की एक चौखट पर यह लेख अङ्कित है—

………कारवेव "वासल" प्रणमति………।
श्री देवचन्द आचार्य मन्त्रवादिम् संवत् ११३४।

यह कोरा अनुमान नहीं है, किन्तु उक्त मन्दिर के सामने का मन्दिर परवार अन्वय के एक कुटुम्ब द्वारा बनवाया गया है। इस मन्दिर में स्थापित मूर्ति के पादपीठ पर अङ्कित लेख पर परवार लिखा हुआ है। अन्य गर्भगृहों में पाई जाने वाली मूर्तियों के पादपीठ पर अङ्कित लेखों से मालूम पड़ता है कि वे सब प्राग्वाट अन्वय के द्वारा निर्मित किये गये हैं और दिगम्बर हैं।

दूसरा लेख "**भट्टारक सम्प्रदाय**" पुस्तक से लिया गया है। उसके पृष्ठ १७२ पर यह लेख अङ्कित है। लेख का लेखांक ४३९ है। उसमें कहा गया है कि सूरतपट्ट के प्रथम भट्टारक बुन्देलखण्ड के चन्देरी में भट्टारकपट्ट की स्थापना करने के लिए भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति बुन्देलखण्ड में चले आये थे और अपने स्थान पर प्राग्वाट (पौरपाट) वंश के एक ब्रह्मचारी बालक को भट्टारक पद पर आसीन कर आये थे। पूरा लेख इस प्रकार है—

तत्पट्टोदय-आचार्यवर्य-नवविधब्रह्मचर्यपवित्रचर्या-मन्दिरराजाधिराज महामण्डलेश्वरवज्रांग-गंग–जयसिंह-व्याघ्रनरेन्द्रादिपूजिततत्पादपद्मानां अष्टशाखाप्राग्वाट-वंशावतंसानां षट्भाषाकविचक्रवर्ति-भुवनतलव्याप्त-विशद-कीर्ति-विश्वविद्याप्रसारसूत्रधार सद्ब्रह्मचारी-शिष्यवरसूरि-श्रीश्रुतसागर-सेवितचरणसरोजानां जिनयात्रा-प्रसादोद्धरणोपदेशानेक-जीवप्रतिबोधकानां श्रीसम्मेदगिरि-चम्पापुरी-पावापुरी-ऊर्जयन्तगिरि-अक्षयवट-आदीश्वरदीक्षा-सर्वसिद्धिक्षेत्रकृत-यात्राणां श्रीसहस्रकूटजिन-बिम्बोपदेशक-हरिराजकुलोद्योतकराणां श्रीविद्यानन्दीपरमाराध्य-स्वामि-भट्टारकाणां।

परवार अन्वय के उद्भव का अनुसन्धान करते समय बुन्देलखण्ड के अनेक नगरों और ग्रामों का निरीक्षण कर यही धारणा बनी है कि मेवाड़ और गुजरात प्रदेश से इस अन्वय का उद्भव हुआ है। इस

सम्भावना को लेकर गुजरात के अनेक नगरों में भी परिभ्रमण किया। मेवाड़ तो जाना नहीं हो सका, परन्तु गुजरात में मेरे ख्याल से प्रान्तिज को छोड़कर अन्य किसी भी नगर के जिनमन्दिर अपेक्षाकृत नवीन हैं। प्रान्तिज एक ऐसा स्थान अवश्य है जहाँ जिनमन्दिर में वि० सं० ११९३ के एक शिलापट्ट मे चौबीसो पाई जाती है। इसे "पद्मसिरि" नाम की एक बहिन ने स्थापित कराया था। वहाँ वि० सं० १२१९ का एक शिलाखण्ड ऐसा भी स्थापित है, जिसमें पाँच बालब्रह्मचारी तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ अङ्कित हैं। उसके पादपीठ पर—

"प्राजाग्र बटाभान प्रणमति नित्यम्"

यह लेख अङ्कित है। यद्यपि यह लेख अच्छी तरह से नहीं पढ़ा जा सका है। परन्तु उक्त उद्धरण देखने से ऐसा लगता है कि यह शिलाखण्ड "प्राग्वाट" अन्वय के एक भाई द्वारा स्थापित कराया गया था।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त "प्राग्वाट" वंश से ही पौरपाट अन्वय का निकास हुआ है। इस विषय की पोषक पट्टावलियों के जितने प्रमाण पाये जाते है, उन्हे भी यहाँ दिया जा रहा है।

४. मूलसंघ आम्नाय :

परवार जाति का इतिहास मूल रूप में पूर्वपट्ट और परपट्ट से जुड़ा हुआ है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि मूलसंघ आम्नाय से परवार जाति सम्बद्ध रही है। जिस प्रकार खण्डेलवाल, ओसवाल, लमेचू वश आदि प्राचीन राजवंश है, उसी प्रकार जैन समाज की प्रायः सभी जातियाँ क्षत्रियवंशीय है। इसका कारण यह है कि सभी जैन तीर्थङ्कर क्षत्रिय थे। उत्तरवर्ती काल में उनके अनुयायी अपनी जीविका के कारण वाणिज्यवृत्ति मे संलग्न होने से अपने को वैश्य या वणिक् समझने लगे; लेकिन वास्तव में ये क्षत्रियवंशीय ही हैं। अन्य जातियों मे चौहान, राजपूत आदि भेदों का पाया जाना इस बात के प्रमाण हैं। वैश्यों के इतिहास से भी यह पता चलता है कि प्राचीन काल के पणि जो देश-देशान्तरों तक अपने व्यापार के कारण प्रसिद्ध थे, वे अहिंसादि व्रतों का पालन करने वाले जैन थे। इस बात की पुष्टि शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर भी होती है।

मूलसंघ आम्नाय की पट्टावली से यह स्पष्ट हो जाता है कि विक्रम संवत् २६ में गुप्तिगुप्त नामक आचार्य मूलसंघ के पट्ट पर थे' जो परवार अन्वय के थे। आचार्य गुप्तिगुप्त विक्रमदेव के पौत्र थे। यह भी उल्लेख मिलता है कि परमार वंशभूषण महाराजा विक्रमादित्य के पोते गुप्तिगुप्त आचार्य अपने युग में अनेक मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा प्रशंसित तथा बद्धा-नीक थे। प्रसिद्ध निमित्तज्ञानी और एक अङ्ग के ज्ञाता आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) के वे शिष्य थे। परमार वंश के शिरोमणि चन्द्रगुप्त मौर्य थे। उनके पवित्र कुल में महाराजा विक्रमादित्य का जन्म हुआ था। विक्रमा-दित्य उज्जैन (मालवा) के राजा थे। सर्वप्रथम मूलसंघ की गादी उज्जैन में ही थी। उसके बाद भद्दलपुर (भेलसा) आदि स्थानों में रही।

सन् १९२६ के **"दिगम्बर जैन"** के विशेषांक में प्रकाशित ईडर की पट्टावली में आचार्य गुप्तिगुप्त को परवार जातीय तथा विक्रमादित्य का पौत्र लिखा है। एक अन्य पट्टावली में भी भट्टारक मुनीन्द्रकीर्ति ने उन्हें परवार जाति का बतलाया है।

वटेश्वर की पट्टावली मे भी इस बात का उल्लेख है कि गुप्तिगुप्त आचार्य मूलसंघ के आदि पुरुष थे और उनकी जाति परवार थी। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महाराजा विक्रमादित्य परमार क्षत्रिय थे और उनकी ही संतान परवार कहे जा सकते हैं, जो पौरपाट (मूलसंघ) के अनुयायी थे। **"परवार बन्धु"** पत्र में प्रकाशित कई लेखों से यह निश्चित हो जाता है कि परवार **"परमार"** क्षत्रिय है और मूलसंघ आम्नाय के है।[1] **"जाति भास्कर"** मे उल्लिखित कुछ आधारों पर सरलता से यह समझ में आ जाता है कि क्षत्रियों की और परवार जाति की वंशावली में कई तरह की समानता मिलती है।

यह सुनिश्चित है कि आचार्य कुन्दकुन्द मूलसंघ के थे, किन्तु वे मूलसंघ के आद्य प्रवर्तक नहीं थे। उनके पहले भी मूलसंघ था। इतना अवश्य है कि आचार्य कुन्दकुन्द मूलसंघ के अग्रणी थे। श्रवणबेलगोल के शिलालेख सं० १०५ से स्पष्ट हो जाता है कि उनके पहले मूलसंघ में कई मुनि हुए, लेकिन उन सबमें आचार्य कुन्दकुन्द प्रसिद्ध यतीन्द्र हुए।

---

१. परवार बन्धु, वर्ष २, सं० २, मार्च; १९४०।

इतिहास के सुप्रसिद्ध विद्वान् कर्नल टॉड ने लिखा है कि "क्षत्रियों में परतन्त्रता व निन्द्य आचरण नहीं है। क्षत्रियों में जैसा अध्यात्म-ज्ञान था, वैसा ऋषियों में भी कहीं नहीं पाया गया।"

मूलसंघ के प्रथम नामोल्लेख के साथ आचार्य भद्रबाहु द्वितीय का भी स्मरण किया जाता है। कहा भी है कि—

"स्वर्गे गते विक्रमार्के-भद्रबाहौ च योगिनि।
प्रजाः स्वच्छन्दचारिण्यो बभूवुः पापमोहिताः॥

—इन्द्रनन्दिसंहिता

भद्रबाहु द्वितीय का समय विक्रम संवत् ४ कहा गया है। यह वही समय था जब मुनिसंघ में तरह-तरह के भेद दिखलाई पड़ने लगे थे। **इन्द्रनन्दिसंहिता** में यह भी उल्लेख मिलता है कि जाति संकरता के डर से आचार्य ने उत्तम कुल वालों को ग्रामादि के नाम पर जातियों में विभक्त कर दिया।

मूलसंघ की आम्नाय मे आ० कुन्दकुन्द से लेकर आ० अमृतचन्द्र-सूरि तक अनेक आचार्य हुए। नन्दिसंघ की पट्टावली से ज्ञात होता है कि आ० अमृतचन्द्र वि० सं० ९६२ में नन्दिसंघ के पट्ट पर बैठे थे।[1] पट्टावलियों से यह भी पता चलता है कि वि० सं० ४ मे आचार्य भद्रबाहु द्वितीय से मूलसंघ प्रारम्भ हुआ। उनकी शिष्य परम्परा मे वि० सं० १४२ में लोहाचार्य हुए। शिष्य-परम्परा की दृष्टि से वह दो शाखाओं में विभक्त हो गया। पहला पूर्वपट्ट कहलाया, जो मूलसघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और दूसरा उत्तरपट्ट कहलाया। यद्यपि काष्ठासंघ की पट्टावली लोहाचार्य से प्रारम्भ होती है, परन्तु यह विवाद का विषय है कि मूलसंघ के पट्टधर आचार्य होते हुए भी उनके काल मे या कुछ समय पश्चात् काष्ठासंघ की स्थापना हो गई थी। मूलसंघ का प्राकृत-संस्कृत-साहित्य पहली शताब्दी से प्राप्त होता है। काष्ठासंघ के प्रथम आचार्य के रूप में पद्मपुराण के कर्ता आ० रविषेण और हरिवंशपुराण के रचयिता आ० जिनसेन (द्वितीय) नवम शताब्दी के आचार्य कहे गये हैं। जटासिंहनन्दि **वरांगचरित** के कर्ता पहले हुए, जो काष्ठासंघी थे। आचार्य अमितगति

---

१. द्रष्टव्य—अनेकान्त, वर्ष ८, किरण ४-५।

(वि० सं० १२५०) इनके पश्चात् हुए। अनुमान यह है कि काष्ठासंघ को सातवीं शताब्दी के अनन्तर ही प्रतिष्ठा प्राप्त हो सकी।

धवला-साहित्य में दक्षिण-प्रतिपत्ति और उत्तर-प्रतिपत्ति के उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलते हैं। इन उल्लेखों से पता चलता है कि श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु प्रथम दक्षिण भारत मे गये थे। श्रवणबेलगोल में चन्द्रगिरि पर्वत पर उत्कीर्ण लेखों में उनके वहाँ पर विराजमान रहने का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, जिसे दिगम्बर जैन-परम्परा का ऐतिहासिक अभिलेख कहा जा सकता है। उसके अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि श्रुत सम्बन्धी ज्ञान दिगम्बरों के पास सुरक्षित है, जो दक्षिण भारत के आचार्यों की अमूल्य देन है। दक्षिण प्रदेश पूर्णरूप से मूलसंघ आम्नाय को मानने वाला था। उत्तरकाल में दक्षिण भारतवासी काष्ठासंघी कैसे हो गये? इसका सबको आश्चर्य है। यह भट्टारकों की कृपा का फल जान पड़ता है।

यथार्थ मे मूलसंघ मे अधिगृहीत व्रत-संयम की बहुत सावधानी रखी जाती है। उसके बिना 'यह मुनि सम्यक्त्वी है या नहीं'—यह नहीं जाना जा सकता। बाह्य मे सराग सम्यक्त्व ही उसकी पहचान है। इसलिए धीरे-धीरे आचार्य व अनगार-परम्परा में शिथिलता आ गई और वह बढ़ती ही गई। इतना ही नहीं, उत्तरकाल में आचार्यपरम्परा का स्थान भट्टारक-परम्परा ने ले लिया। मूलसंघ का साधारण नियम यह है कि गृहस्थ पूजा आदि धार्मिक कार्य खड़े होकर करें, जिन मन्दिर में रात्रि मे दीपक न जलायें, पंखा न लगायें और न चलायें। जिन गुरुओं में सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न दिखलाई दें, उन गुरुओं की ही भक्ति करें, रत्नत्रय-मार्ग को प्रशस्त बनाकर रखें, किन्तु आज प्रवृत्ति विपरीत चल रही है। रोकने पर भी वह नही रुक रही है। इसे कलिकाल का प्रभाव या हमारे प्रमाद का फल ही समझना चाहिये।

वस्तुतः यह स्थिति उत्तरोत्तर बिगड़ने वाली है, ऐसा दिखलाई पड़ने लगा है। यथार्थ में मोक्षमार्ग तो अध्यात्ममय है, लेकिन वह सम्यक् व्यवहार को लिए हुए है।

आचार्य अमृतचन्द्र ठाकुर वंश से आकर जैनधर्म में दीक्षित हुए थे। **"अनगार धर्मामृत"** पृष्ठ १६० में आचार्य अमृतचन्द्र को "ठक्कुर"

कहा गया है। गुजरात में ऐसे कई अन्वय है जो ठक्कुर वंश से आकर जैनधर्म में दीक्षित हुए। अमृतचन्द्रसूरि ने मूलसंघ के अन्तर्गत नन्दि-संघ की परम्परा को स्वीकार किया था। आज भी राजस्थान में सोनी तथा ठक्कुर वंश के कई लोग जैनधर्म के अनुयायी हैं और पूर्व में भी हो गये हैं। ऐसे कई उल्लेख मिलते है।

५. पट्टावलियाँ :

प्राचीन पट्टावलियों में परवार जाति के लिये प्रयुक्त अठसखा आदि विशेषणों का उल्लेख मिलता है। एक पट्टावली के निम्नाङ्कित अंश द्रष्टव्य है—

मिति आषाढ़ शुक्ला १० वि० सं० ४० चौसखा पोरवाड जात्युत्पन्न श्री जिनचन्द्र हुये। इनका गृहस्थावस्था का काल २४ वर्ष ९ माह रहा। दीक्षा काल ३२ वर्ष ३ माह, पट्टस्थकाल ८ वर्ष ९ माह ६ दिन और विरह दिन ३ रहा। इस प्रकार से इनकी सम्पूर्ण आयु ६५ वर्ष ९ माह और ९ दिन की थी। इनका पट्टस्थ क्रम ४ है।

मिति आश्विन शुक्ला १० वि० सं० ७६५ में पोरवाल द्विसखा जात्युत्पन्न श्री अनन्तवीर्य मुनि हुये। इनका गृहस्थावस्थाकाल ११ वर्ष, दीक्षाकाल १३ वर्ष, पट्टस्थकाल १९ वर्ष ९ माह २५ दिन और अन्तराल काल दिन १० रहा। इनकी सम्पूर्ण आयु ४३ वर्ष १० माह ५ दिन की थी। इनका पट्टस्थ होने का क्रम ३१ है।

मिति आषाढ़ शुक्ला १४ वि० सं० १२५६ में अठसखा पोरवाल जात्युत्पन्न श्री अकलंकचन्द्र मुनि हुये। इनका गृहस्थावस्थाकाल १४ वर्ष, दीक्षाकाल ३३ वर्ष, पट्टस्थकाल ५ वर्ष ३ माह २४ दिन और अन्तरालकाल ७ दिन का रहा। इनकी सम्पूर्ण आयु ४८ वर्ष ४ माह १ दिन की थी। इनका पट्टस्थ रहने का क्रम ७३ है।

मिति आश्विन वदी ३ वि० सं० १२६४ में अठसखा पोरवाल जात्युत्पन्न भी अभयकीर्ति मुनि हुये। इनका गृहस्थावस्थाकाल ११ वर्ष २ माह, दीक्षाकाल ३० वर्ष ५ माह, पट्टस्थकाल ४ माह १० दिन और अन्तरालकाल ७ दिन का रहा। इनकी सम्पूर्ण आयु ४१ वर्ष ११ माह १० दिन की थी। क्रमाङ्क ७८ है।

ये श्री दि० जैन समाज सीकर (राज०) द्वारा वो० नि० संवत् २५०१ मे प्रकाशित "चारित्रसार" के अन्त में प्राचीन शास्त्र-भण्डार

से प्राप्त एक पट्टावली के कतिपय प्रमाण हैं, जिनसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि पौरपाट (परवार) अन्वय का भी निकास पुराने जैनों के समान प्राग्वाट अन्वय से ही हुआ है। पोरवाड या पुरवार भी वही हैं।

फिर भी, श्री दौलतसिंह जी लोढा और श्री अगरचन्द जी नाहटा इस तथ्य को स्वीकार नही करते। लोढा जी **"प्राग्वाट इतिहास"** के प्रथम भाग के पृष्ठ ५४ में इस सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखते है—

"इस जाति के कुछ प्राचीन शिलालेखो से सिद्ध होता है कि परवार शब्द "पौरपाट" या 'पौरपट्ट' का अपभ्रंश रूप है। 'परवार', 'पोरवाल' और 'पुरवाल' शब्दों में वर्णों की समता देखकर बिना ऐतिहासिक एवं प्रमाणित आधारों के उनको एक जाति वाचक कह देना निरी भूल है। कुछ विद्वान् 'परवार' और 'पोरवाल' ज्ञाति को एक होना मानते हैं, परन्तु यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। पूर्व मे लिखी गई शाखाओं के परस्पर वर्णनों मे एक दूसरे की उत्पत्ति, कुल, गोत्र, जन्मस्थान, जनश्रुतियों, दन्तकथाओं में अतिशय समता है, वैसी परवार जाति के इतिहास में उपलब्ध नहीं है। यह जाति समूची दिगम्बर जैन है। यह निश्चित है कि परवार जाति के गोत्र ब्राह्मण ज्ञातीय है और इससे यह सिद्ध है कि यह ज्ञाति ब्राह्मण ज्ञाति से जैन बनी है। प्राग्वाट अथवा पोरवाल, पोरवाड कही जाने वाली ज्ञाति से सर्वथा भिन्न और स्वतंत्र ज्ञाति है और इसका उत्पत्ति स्थान राजस्थान भी नही है। अतः **"प्राग्वाट इतिहास"** में इस ज्ञाति का इतिहास भी नहीं गूँथा गया है।" दौलतसिंह जी लोढ़ा के ये अपने विचार हैं। 'पौरपाट' अन्वय वर्तमान में समूचा दिगम्बर जैन है, जैसा कि लोढ़ा जी ने स्वयं स्वीकार किया है। किन्तु यह बात लोढ़ा जी को खटकती है। जबकि उन्हें मालूम नहीं है कि जो दिगम्बर जैन परिस्थितिवश गुजरात और मेवाड़ के कुछ भागों में बच गये थे, वे अन्त मे जाकर श्वेताम्बर जैनों में मिला लिये गये। विक्रम की चौदहवीं-पन्द्रहवीं शताब्दी तक तो उनका बुन्देलखण्ड में आकर बसने वाले सजातीय दिगम्बर जैनों के साथ सम्पर्क बना रहा, परन्तु देवेन्द्रकीर्ति के बुन्देलखण्ड में आ जाने के बाद धीरे-धीरे उनका सम्पर्क शेष सजातीय जैनों के साथ छूट जाने के कारण वे क्रमशः श्वेताम्बर हो गये।

इसलिये इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान में पाया जाने वाला पौरपाट (परवार) अन्वय प्राग्वाट वंश का ही एक भाग है। लोढ़ा जी ने **"प्राग्वाट इतिहास"** में प्राग्वाट वंश के अन्य भेदों के विषय में तो थोड़ा-बहुत लिखा भी है, परन्तु "परवार" अन्वय का विकास "प्राग्वाट" अन्वय से नहीं हुआ है, यह मानकर उन्होंने उसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है।

६. परमार अन्वय :

इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार पौरपाट (परवार) अन्वय में भगवान् महावीर के काल में पाये जाने वाले पुराने जैनों को विलीन करके इस अन्वय को मूर्त रूप दिया गया था, उसी प्रकार प्राग्वाट अन्वय को लेकर भी इस अन्वय का निर्माण हुआ है। जैसे पूर्व मे उल्लिखित तथ्यों से ज्ञात होता है, वैसे ही इस अन्वय के निर्माण में मुख्यता से परमारवंश का भी बड़ा योगदान है। यदि यह कहा जाय कि प्राग्वाट अन्वय का निकास भी परमारवंश से ही हुआ है, तो अत्युक्ति नही है।

मूल मे इक्ष्वाकु वंश से सोमवंश-चन्द्रवंश-हरिवंश-यदुवंश-चौहान-परमार-चालुक्य-गोहिल आदि छत्तीस राजपूत जातियों की उत्पत्ति मानी जाती है।[1] चन्दवरदाईकृत **"पृथ्वीराजरासो"** तथा **"कुमारपालचरित"** मे भी इक्ष्वाकुवंश मे सोम, सूर्य, यदु और परमार वंश के प्रकट होने का उल्लेख किया गया है। कर्नल टॉड का भी यही मत है।

इतिहासकारों का यह मत है कि कुछ जातियाँ भौगोलिक कारणों से, कुछ विभिन्न व्यवसायों के कारण तथा कुछ प्राचीन काल के गणतन्त्रों या पंचायती राज्यों की अवशेष मात्र हैं। ब्राह्मणों की औदीच्य, कान्यकुब्ज, सारस्वत, गौड़ आदि जातियाँ और वैश्यों की श्रीमाली, खण्डेलवाल, पालीवाल या पल्लीवाल, ओसवाल, मेवाड़ा, लाड आदि जातियाँ किसी राजनीतिक तथा धार्मिक कारणों से स्थान विशेष मे बसने के कारण प्रसिद्ध हुई हैं। 'वाट' या 'वाटक' शब्द और 'पाट' या' पाटक' भौगोलिक नामो के साथ विभाग के अर्थ में प्रयुक्त होते है। 'वाट' से ही

१. जाति-भास्कर, पृ० ९६।

'वार' हो जाता है।[1] यह तो स्पष्ट है कि 'परवार' में 'वार' या 'वाट' शब्द संस्कृत के 'वाट' या 'पाट' प्रत्यय से बना है, लेकिन यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता है कि परवार का परमार जाति से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। क्योंकि ओसवालों के इतिहास से भी पता चलता है कि उनकी प्रथम साख पमार रही है।[2] परमार शाखा की एक जैन श्राविका का उल्लेख भी मिलता है।[3]

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारतवर्ष में परमारवंश का समुज्ज्वल इतिहास रहा है। यह अग्निवंश की एक शाखा माना गया है। क्षत्रिय केवल शासक ही नहीं रहे हैं, किन्तु अनुशास्ता एवं आध्यात्मिक प्रबोध देने वाले भी रहे हैं। यह इतिहास प्रसिद्ध है कि महाराज विक्रमादित्य परमार क्षत्रिय थे। उनके पौत्र गुप्तिगुप्त थे। पट्टावलियों में यह उल्लेख है कि गुप्तिगुप्त नाम के आचार्य मूलसंघ के पट्ट पर थे। वे परवार जाति के थे। क्षत्रियों का जुहार-विहार, अध्यात्म प्रेम तथा संगठन की कुशलता आज भी परवार जाति में लक्षित होती है। इसलिये परमार से परवार जाति का सम्बन्ध सहज ही स्थापित किया जा सकता है। क्षत्रियों के साथ जैनों के सम्बन्धों का सुदीर्घ इतिहास उपलब्ध होता है। प्रथम जितने तीर्थङ्कर हुए वे सभी क्षत्रिय थे। अधिकतर जैन राजा तथा सम्राट् भी क्षत्रिय हुए। कर्नल जेम्स टॉड ने ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण नाडोल के शिलालेख में वर्णित चौहान कुमार के जैनधर्मानुयायी होने का उल्लेख किया है।[4]

यदि शब्द-विकास की दृष्टि से विचार किया जाए तो "प्रमार" से "परवार" शब्द का विकास हुआ है, जो इस प्रकार है—प्रमार>परमार >परवार>पंवार। यह भाषा-विकास की एक कड़ी मात्र है।

---

१. स्व० रायबहादुर हीरालाल : इन्सक्रिप्शन्स आफ सी० पी० एण्ड बरार, पृ० २४, ८७।
२. महाजनवंश मुक्तावली, पृ० १३।
३. प्राचीन लेख संग्रह, भाग १, भावनगर, १९२९, पृ० ८९, ले० सं० ३०५।
४. एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान आर द सेन्ट्रल एण्ड वेस्टर्न राजपूत स्टेट्स ऑफ इण्डिया, जिल्द १, १८२९, परिशिष्ट, पृ० ६२३।

धार्मिक तथा सामाजिक इतिहास की दृष्टि से "साध" उत्तर प्रदेश की एक ऐसी क्षत्रिय जाति कही जाती है जो पूर्णतया अहिंसाधर्म का पालन करती है। "साधु" शब्द से "साध" बना है। इनका धार्मिक ग्रन्थ महावाक्यों का संग्रह "**निर्वाण**" कहलाता है। ये वर्णाश्रम धर्म, ब्राह्मण को नहीं मानते। हिन्दुओं की भाँति श्राद्ध, देवी-देवता, गङ्गा, चोटी, तिलक आदि नही मानते। मादक द्रव्य सिगरेट, सोडा, बर्फ, लहसुन, प्याज, शलजम तक से परहेज रखते है। माला जपते है और खास ढंग की पगड़ी सभी पहिनते हैं।[1]

"**प्राचीन लेख-संग्रह**" में संकलित लेख से यह स्पष्ट जानकारी मिलती है कि जैन जातियों मे परमार क्षत्रियों की भी कोई शाखा थी जिसमें श्रावक-श्राविका जैनधर्म का पालन करते थे।[2] कहा जाता है कि श्री पद्मावतीनगर (पारेवा) में २४ जाति के राजपूतों के सवा लाख घर थे। अपभ्रंश कवि धनपाल ने बाहुबलिचरिउ (र० का० सं० १४५४) की प्रशस्ति मे पुरवाडवंश के जायामल का वर्णन किया।[3] पं० रइधूकृत "**श्रीपालचरित्र**" की अन्त्य प्रशस्ति में पोमावर पुरवाडवंश का वर्णन पाया जाता है।[4] प्रायः यह कहा जाता है कि ग्राम, नगर या व्यवसाय के नाम पर अनेक जातियों का नामकरण और गोत्रों का निर्माण किया गया। किन्तु परवार जाति के नाम व गोत्रों के सन्दर्भ में यह कथन युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। सम्भव है कि अनेक शाखाओं की भाँति या तो वे ग्राम, नगर नामशेष हो गये या फिर अत्यधिक प्राचीन परम्परा से पट्ट पर पट्ट रूप से परम्परागत प्रचलित रहे हों। जो भी हो, इतना अवश्य है कि परवार जाति मे कई आचार्य, विद्वान्, पण्डित, भट्टारक तथा श्रेष्ठी हुए। वि० सं० १३७१ में कवि देल्ह ने चौबीसी गीत लिखा था। कवि का जन्म परवार जाति में हुआ था। तेरहवीं शताब्दी में

---

१. प० छोटेलाल शर्मा : क्षत्रिय-वंश प्रदीप, द्वितीय भाग, १९२८, पृ० ८८७।

२. प्राचीन लेख-सग्रह, भा० १, भावनगर, १९२९, पृ० ८९।

३. प० परमानन्द शास्त्री : जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, पृ० ३३।

४. वही, पृ० १२४।

पौरपट्टान्वयी महिचन्द साधु की प्रेरणा से पं० आशाधर जी ने **"सागार धर्मामृत"** ग्रन्थ और उसकी टीका लिखी थी।[1]

"प्राग्वाट इतिहास" पर दृष्टि डालने से भी यही विदित होता है कि प्राग्वाट अन्वय का संगठन भी "परमार" क्षत्रिय के अनेक उपभेदों को लेकर हुआ था। **"प्राग्वाट इतिहास"** के देखने से यह भी पता लग जाता है कि क्षत्रिय और ब्राह्मण कुलों से उन्हें "प्राग्वाट" अन्वय में दीक्षित किया गया था।[2] इसलिये यहाँ यह विचारणीय हो जाता है कि वे क्षत्रिय कुल पहले किस अन्वय को मानने वाले थे। विचार करने पर कुछ प्रमाणों से ऐसा ज्ञात होता है कि वे परमार अन्वय के क्षत्रिय होना चाहिये। उदाहरणार्थ **'गुजरातनो नाथ'** पुस्तक में **'कीर्तिदेव'** नाम के एक युवक का उल्लेख मिलता है। यह पाटन के महामात्य 'मुञ्जाल' प्राग्वाट का पुत्र था।[3] इसे पुत्र के मामा सज्जन मेहता ने बाल अवस्था मे यात्रा पर आये हुये अवन्ती के सेनापति उबक परमार को बालक की रक्षा के अभिप्राय से सौंप दिया था। इस घटना से पता लगता है कि प्राग्वाट अन्वय का निकास मुख्यता से देखा जाय तो परमार क्षत्रियों से ही हुआ है। इसकी पुष्टि पूर्वोक्त तथ्यों अथवा अग्राङ्कित पट्टावलियों से भी होती है।

स्व० श्री पं० झम्मनलाल जी तर्कतीर्थ ने **'लमेचू दिगम्बर जैन समाज का इतिहास'** के पृष्ठ ३८ पर पट्टावली के आधार से लिखा है— "प्रमार (परमार) वंश मे राजा विक्रम हुए। उनका संवत् चालू है। उनके नाती (पोता) गुप्तिगुप्त मुनि थे, जिन्होंने सहस्र परवार थापे।" श्री गुप्तिगुप्त मुनि के विषय मे विशेष उल्लेख करते हुए उक्त पंडित जी ने उसी बटेश्वर सूरिपुर से प्राप्त ग्रन्थ के पृष्ठ २३ पर यह भी लिखा है कि—"गुप्तिगुप्त मुनिश्री परमार जाति क्षत्रिय वंश जो चन्द्रगुप्त राजा

---

१. डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल : खण्डेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास, पृ० ५१ से उद्धृत।
२. देखो, प्राग्वाट इतिहास, पृष्ठ १३, प्राग्वाट श्रावक वर्ग की उत्पत्ति।
३. गुजरातनो नाथ, पृष्ठ ४२९।

का वंश होता है, वह भी यदुवंश ही है, उसी वंश में विक्रम संवत् २६ में हुए हैं।"

यह एक पट्टावली का उल्लेख है। दूसरी पट्टावली **"चारित्रसार"** में मुद्रित हुई है। इसका प्रकाशन वीर नि० सं० २५०१ में श्री दिगम्बर जैन समाज, सीकर द्वारा किया गया है। उसके परिशिष्ट में नागोर के शास्त्रभण्डार से प्राप्तकर यह पट्टावली मुद्रित की गई है। उसमें पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त के विषय में लिखा है।

श्री मिति फाल्गुन शुक्ला १४ वि० सं० २६ जाति राजपूत पँवारोत्पन्न श्री गुप्तिगुप्त हुए। इनका गृहस्थावस्था काल २२ वर्ष रहा। दीक्षाकाल ३४ वर्ष और पट्टस्थकाल ९ वर्ष ६ माह २५ दिन एवं विरहकाल दिन ५ रहा। इस प्रकार से इनकी सम्पूर्ण आयु ६५ वर्ष ७ माह की थी।

एक पट्टावली उज्जैन से श्री पं० मूलचन्द जी शास्त्री ने दूसरी बार श्री डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन ने विशेष अनुरोध पर २७-११-८० को भेजी थी। उसके प्रारम्भ में लिखा है—

ओं नमः। अथ शुभ संवत्सरतो मुनिजन पट्टावली भट्टारकाणां क्रमेण लिख्यते। अथ दिगम्बर पट्टावली लिख्यते—इसके बाद पट्टावली का प्रारम्भ कर पहले द्वितीय भद्रबाहु कब पट्ट पर बैठे, इनका विशेष परिचय देते हुए उन्हें ब्राह्मण लिखा गया है। इसके बाद क्रमाङ्क २ में पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त का परिचय देते हुए लिखा है[1]—

संवत् २६ फागुन सुदी १४ गुप्तगुप्ति जी गृहस्थ वर्ष २२, दीक्षा वर्ष ३४, पट्टस्थ वर्ष ९ मास ६ दिन २५। विरह दिन ५। सर्वायु ६५ वर्ष, मास ७। जाति परवार॥ छ॥

ये तीन पट्टावलियाँ हैं। इनमें पहली (सूरीपुर बटेश्वर) और दूसरी पट्टावली (नागौर) में पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त को प्रमार या पंवार स्वीकार किया गया है। पहली पट्टावली में प्रमार को वास्तविक रूप में परमार स्वीकार करके उनके द्वारा परवार अन्वय में एक

---

१. पट्टावली, पृ० ३५।

हजार घर दीक्षित करने की बात कही गई है।[1] इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने स्वयं परवार अन्वय में दीक्षित होने के बाद मुनि होने पर उस अवस्था में अन्य कुटुम्बों के एक हजार श्रावक कुलों को "परवार" अन्वय में दीक्षित किया था।

इस घटना से ऐसा लगता है कि अधिकतर वे कुटुम्ब परमार क्षत्रिय ही होने चाहिए, क्योंकि उनके गुरु परमार वंशज ही थे। यद्यपि **"प्राग्वाट इतिहास"** का बारीकी से अध्ययन करने पर भी यही सिद्ध होता है कि प्राग्वाट अन्वय का संगठन अनेक ब्राह्मण कुलों, सोलंकी कुलों, चौहान कुलों, गहलोत कुलों, परमार कुलों और बोहरा कुलों से किया गया है; परन्तु मूल में ये क्षत्रिय कुल परवार राजपूत ही थे। बाद में इनका यह अलग-अलग नामकरण हुआ है।

इस समय परवारों के अनेक कुटुम्ब "पांडे" कहलाते हैं। यह भी सम्भव है कि वे ब्राह्मण कुलों से पोरपाट (परवार) अन्वय में दीक्षित हुए हों।

पट्टधर आचार्यों में भी अनेक आचार्य ब्राह्मण रहे हैं। अभी हम नागौर पट्टावली का उल्लेख कर आये हैं। उसमें पट्टधर आचार्य भद्रबाहु द्वितीय को ब्राह्मण कुल का कहा गया है। स्वयं गौतम गणधर भी ब्राह्मण कुल के थे। इसलिये यह सम्भव है कि उन आचार्यों के साथ बहुत से और ब्राह्मण कुल जैनधर्म में दीक्षित हुए हों।

बहुत पहले जबलपुर मध्यप्रदेश से **"परवार बन्धु"** नामक एक मासिक पत्र प्रकाशित होता था। अब वह बन्द है। उसके ई० सन् १९४० के मई-जून के सम्मिलित अंक में स्व० श्री नाथूराम जी प्रेमी का "परवार जाति के इतिहास पर कुछ प्रकाश" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके पृष्ठ २७ पर "परमार" क्षत्रियों से "परवार" अन्वय की उत्पत्ति का निषेध करते हुए वे लिखते हैं—कोई-कोई यह भी कल्पना करते हैं कि शायद परवार "परमार" राजपूतों में से हैं, जिन्हें आजकल "पंवार" भी कहते हैं। परन्तु ये सब कल्पनाएँ हैं। मूल शब्द से अपभ्रष्ट होने के भी कुछ नियम हैं और उनके अनुसार

---

१. पट्टावली, पृ० ३९-४० आदि।

'परमार' से 'परवार' नहीं बन सकता। अपभ्रंश में 'म' का कुछ शेष रहना चाहिए। जैसा कि 'पंवार' में वह अनुस्वार बनकर रह गया है। हमारी समझ में 'परवार' शुद्ध शब्द 'पल्लीवाल, ओसवाल, जैसवाल' जैसा ही है और उसमें नगर व स्थान का संकेत सम्मिलित है।

यह स्व० प्रेमी जी का मन्तव्य है। परन्तु जिसे कई शताब्दियों से "परवार" अन्वय कहा जाता है, वह पहले किस नाम से सम्बोधित किया जाता था, इस बात को ध्यान मे रखकर वे यह टिप्पणी करते तो शायद उनका मन्तव्य दूसरा होता। "परवार" शब्द किस मूल शब्द का अपभ्रष्ट रूप है? स्व० प्रेमी जी द्वारा इस बात को ध्यान में रखकर उक्त बात नहीं कही गई, यह स्पष्ट है।

स्व० प्रेमी जी यह तो मानते हैं कि इस अन्वय का मूल नाम परवार नही था। उन्होंने स्वयं यह स्वीकार करते हुए लिखा है—

अब देखना चाहिए कि प्राचीन लोगों ने इस जाति का नाम क्या माना था मेरे सम्मुख परवारों द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओं और मन्दिरों के जो थोड़े से लेख है, उनमें से सबसे पहला लेख साढोरा (गुना) स्थित दि० जैन पार्श्वनाथ का मूर्तिलेख है, जो इस प्रकार है—"**संवत् ६१० वर्षे माघ सुदी ११ मूलसंघे पौरपाटान्वये पाटनपुर संघई।**" अतिशय क्षेत्र पचराई के शान्तिनाथ के मन्दिर का मूर्तिलेख वि० सं० ११२२ का है। उसका यह अंश देखिये—

पौरपट्टान्वये शुद्धे साधु नाम्ना महेश्वरः।
महेश्वरेव विख्यातस्तत्सुतः ध(र्म) संज्ञकः॥

इसके बाद "पौरपाट" या "पौरपट्ट" अन्वय के तीन लेख देकर अन्त में लिखा है कि "इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन लेखों मे "पौरपाट" या "पौरपट्ट" शब्द परवारों के लिये ही आया है।" आगे इसकी पुष्टि में उन्होंने भी प्रमाण देकर लिखा है। यह स्व० प्रेमी जी के उक्त लेख का अंग है, जिससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस अन्वय का मूल नाम परवार न होकर "पौरपाट" या "पौरपट्ट" ही था। अतः यह उनकी कल्पना ही है कि "परमार" क्षत्रिय कुलों से "परवार" अन्वय का निकास नहीं हुआ है। जैसा कि हम अन्य

अनेक प्रमाणों के साथ **"प्राग्वाट इतिहास"** के आधार से यह लिख आये हैं कि प्राग्वाट अन्वय के संगठन में "परमार" क्षत्रियों का प्रमुख हाथ है और किसी अन्वय को नया नाम देते समय जैसे ग्राम, नगर आदि का ख्याल रखा जाता है, वैसे ही उस प्रदेश का भी ख्याल रखा गया है, जिस प्रदेश में 'प्राग्वाट अन्वय' का संगठन हुआ था।

यद्यपि 'प्राग्वाट इतिहास' के अनुसार श्रीमालपुर के पूर्ववाट (पूर्व भाग) में जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बसते थे उनमें से ९०००० (नब्बे हजार) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य स्त्री-पुरुषों ने जैनधर्म की दीक्षा अङ्गीकार की। वे श्रीमालपुर के पूर्वभाग में रहते थे, अतः उन्हें प्राग्वाट नाम से प्रसिद्ध किया गया है।[1] नेमिचन्द्रसूरिकृत **"महावीर चरित्र"** की प्रशस्ति मे इस अन्वय को प्राग्वाट नाम से प्रसिद्ध करने का यही कारण कहा गया है।[2]

किन्तु इस सम्बन्ध में स्व० श्री गौरीशंकर हीराचन्द्र जी ओझा का मत है कि 'पुर' शब्द से पुरवाड और पौरवाड शब्दों की उत्पत्ति हुई है। 'पुर' शब्द मेवाड़ के पुर जिले का सूचक है और मेवाड़ के लिये 'प्राग्वाट' शब्द भी लिखा मिलता है।"

सो ओझा जी के इस अभिप्राय से तो ऐसा लगता है कि मेवाड़ में 'पुर' नाम का एक जिला (मण्डल) था या तो उसको आधार बनाकर वहाँ बसने वाले ब्राह्मण और क्षत्रियों से इस "पौरवाड" अन्वय का संगठन हुआ है या मेवाड़ के अमुक भाग का नाम "प्राग्वाट" था, इसलिये उस प्रदेश मे बसने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय कुलों को मिलाकर इस पौरवाड (प्राग्वाट) अन्वय का संगठन हुआ है। इस अन्वय के दो नाम होने का कारण भी यही प्रतीत होता है।

इस प्रकार इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'प्राग्वाट' या 'पौरवाड' अन्वय का संगठन जिन ब्राह्मणो के साथ क्षत्रिय कुलों को मिलाकर हुआ है उनमे 'परमार' क्षत्रियों का प्रमुख स्थान था। इसलिये प्राचीन पट्टावलियों मे जो पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त को 'पंवार',

---

१. प्राग्वाट इतिहास, पृष्ठ १५।

२. प्राग्वाट इतिहास, पृष्ठ १५ का टिप्पण।

'प्रमार' या 'परमार राजपूत' कहा गया है वह पौरपाट (परवार) अन्वय के अर्थ में ही कहा गया है। इसीलिये उज्जैन से प्राप्त पट्टावली में तो उन्हें स्पष्ट रूप से "परवार" ही कहा गया है। तथा सूरीपुर (उत्तरप्रदेश) से प्राप्त पट्टावलियों के अनुसार प्रसिद्ध परमार क्षत्रिय महाराजा विक्रमादित्य के पौत्र को ही गुप्तिगुप्त पट्टधर आचार्य के रूप में स्वीकार करके उनके द्वारा एक हजार परवार कुटुम्बों की स्थापना करने का भी जो उल्लेख किया गया है वह भी पट्टावली के अनुसार यथार्थ है।

प्रायः देखते हैं कि कुछ महानुभाव अपने को पुरातत्त्व इतिहास के ज्ञाता मानकर इन पट्टावलियों की प्रामाणिकता में शङ्का करते हैं। परन्तु उनका यह दृष्टिकोण समीचीन नहीं है। क्योंकि प्राचीन आचार्य वीतराग होते थे। वे अपने-अपने कुल और जाति के विषय मे मौन रहते थे। प्रयोजनवश ही उन्होंने वर्णों और कुलों या वंशो का प्रथमानुयोग में उल्लेख किया है। जब श्वेताम्बरो ने सर्वप्रथम अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिये इन अन्वयों के विषय में पक्षपात का रवैया अपनाना प्रारम्भ किया, तब भट्टारकों ने भी पुरानी अनुश्रुतियों के आधार पर इन पट्टावलियो का संकलन प्रारम्भ किया। किसी-किसी पट्टावली मे जो जातियों का उल्लेख हुआ है, उनके मूल मे अनुश्रुति आदि ही मुख्य हैं। उन्हे अप्रामाणिक मानना हमारी निरी भूल है। वास्तव मे पट्टावलियाँ ऐतिहासिक अभिलेख हैं। उनसे ही हमें अपने इतिहास का परिज्ञान होता है।

हम सीकर की दिगम्बर जैन समाज द्वारा मुद्रित "चारित्रसार" के परिशिष्ट मे मुद्रित नागौर के शास्त्रभण्डार से प्राप्त एक पट्टावली का पहले ही उल्लेख कर आये है। उससे पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त के सिवाय अन्य आचार्यों मे से जो आचार्य 'पौरवाट' (परवार) रहे हैं, उनका भी पट्टधर आचार्यों के रूप में उल्लेख करते हुए वे कब हुए, उनका गृहस्थ अवस्था का काल कितना रहा, आदि का स्पष्ट विवरण दिया है। उसी से हम अपने गौरवपूर्ण इतिहास को जानते हैं।

न तो सीकर बुन्देलखण्ड का एक नगर है और न नागौर ही बुन्देलखण्ड में है। ये पूर्व उल्लिखित जितनी पट्टावलियाँ मिली हैं, उसमें से एक का भी बुन्देलखण्ड के किसी भट्टारक या आचार्य ने संकलन भी नहीं किया

है। फिर भी, इन पट्टावलियों में जो जिस जाति या अन्वय का रहा है, उसका उल्लेख किया गया है। इसी से ही उन पट्टावलियों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। इस पट्टावली से हम यह भी जान लेते हैं कि 'पौरपाट' या 'पौरपट्ट' (परवार) अन्वय के श्रावक कुल मूल में बुन्देलखण्ड के निवासी न होकर मेवाड़ और गुजरात से परिस्थितिवश भागकर बुन्देलखण्ड में चन्देरी नगर को केन्द्र बनाकर इस प्रदेश में धीरे-धीरे बसते गये हैं।

जंगली और पहाड़ी प्रदेशों में इस अन्वय के नहीं पाये जाने का यही कारण है कि मूल में ये यहाँ के निवासी नहीं है। इस अन्वय के श्रावककुल या तो नगरों में पाये जाते हैं या नगरों के आसपास ग्रामों में पाये जाते हैं, जंगली या पहाड़ी प्रदेशों में नहीं हैं।

नागौर के शास्त्रभण्डार से प्राप्त पट्टावली में पौरपाट (परवार) अन्वय के अन्य पट्टधर आचार्यों का भी विवरण दिया गया है।

नागौर पट्टावली से प्राप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) मिती अषाढ़ शुक्ला १४ वि० सं० ४० में चौसखा पौरवाड़ जात्युत्पन्न श्री जिनचन्द्र हुये। इनका गृहस्थावस्था का काल २४ वर्ष ९ माह रहा। दीक्षाकाल ३२ वर्ष ३ माह, पट्टस्थ काल ८ वर्ष, ९ माह, ६ दिन और विरहकाल ३ दिन रहा। इस प्रकार से इनकी सम्पूर्ण आयु ६५ वर्ष, ९ माह, ९ दिन की थी। इनका पट्टस्थ क्रम ४ है।

(ख) मिती आश्विन शुक्ला १० वि० सं० ७६५ में पोरवाल द्विसखा जात्युत्पन्न श्री अनन्तवीर्य मुनि हुये। इनका गृहस्थावस्था काल ११ वर्ष, दीक्षाकाल १३ वर्ष, पट्टस्थ काल १९ वर्ष, ९ माह, २५ दिन और अन्तराल काल १० दिन रहा। इनकी सम्पूर्ण आयु ४३ वर्ष, १० माह, ५ दिन की थी। इनका पट्टस्थ होने का क्रम ३३ है।

(ग) मिति अषाढ़ शुक्ला १४ वि० सं० १२५६ में अठसखा पोरवाल जात्युत्पन्न श्री अकलङ्कचन्द्र मुनि हुये। इनका गृहस्थावस्था काल १४ वर्ष, दीक्षाकाल ३३ वर्ष, पट्टस्थ काल ५ वर्ष, ३ माह, २४ दिन और अन्तराल काल ७ दिन का रहा। इनकी सम्पूर्ण आयु ४८ वर्ष, ४ माह, १ दिन की थी। इनका पट्टस्थ रहने का क्रम ७३ है।

(घ) मिति आश्विन ३ वि० सं० १२६४ में अठसखा पोरवाल जात्युत्पन्न श्री अभयकीर्ति मुनि हुये। इनका गृहस्थावस्था काल ११ वर्ष २ माह, दीक्षाकाल ३० वर्ष, ५ माह, पट्टस्थ काल ४ माह, १० दिन और अन्तराल काल ७ दिन का रहा। इनकी सम्पूर्ण आयु ४१ वर्ष, ११ माह, १७ दिन की थी। क्रमाङ्क ७८ है।

हम **'तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'** मे मुद्रित दिल्ली-जयपुर पट्ट के प्रथम शुभचन्द्र की गुर्वावलि से मिलान कर रहे थे। उसमे पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त का क्रमाङ्क २ है और जिनचन्द्र का क्रमाङ्क ४ दिया है। अनन्तवीर्य का नाम अनन्तवीर्य न देकर अनन्तकीर्ति दिया है और इनका पट्ट पर बैठने का क्रमाङ्क ३२ दिया है तथा अभयकीर्ति का पट्ट पर बैठने का क्रमाङ्क ७७ दिया है। इस अन्तर के सिवाय अन्य विशेषता नहीं है।

साथ ही उसी ग्रन्थ में नन्दिसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ की जो पट्टावली मुद्रित हुई है उसमे पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त के अर्हद्बली, विशाखाचार्य और गुप्तिगुप्त—ये तीन नाम देकर इनके द्वारा इनके नेतृत्व में निम्नलिखित चार संघ स्थापित हुये कहा गया है। यथा—नन्दिवृक्ष के मूल में वर्षायोग धारण करने से नन्दिसंघ की स्थापना हुई। इनके नेता माघनन्दी हुये अर्थात् इन्होंने ही नन्दिसंघ स्थापित किया। जिनसेन नामक तृणतल में वर्षायोग करने से एक ऋषि का नाम वृषभ पड़ा। इन्होंने ही वृषभ संघ स्थापित किया। जिन्होंने सिंह की गुफा में वर्षायोग धारण किया, उनने सिंहसंघ स्थापित किया और जिसने देवदत्ता नाम की वेश्या के नगर में वर्षायोग धारण किया, उसने देवसंघ स्थापित किया।

इस घटना से यह निश्चित होता है कि नन्दिसंघ बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ की पट्टावली के अनुसार नन्दिसंघ के प्रथम पट्टधर आचार्य माघनन्दि तथा आचार्य गुप्तिगुप्त के बाद पट्टधर आचार्य धरसेन का नाम आता है। 'धवला' में जिस घटना का आचार्य वीरसेन ने उल्लेख किया है, उनके अनुसार पुष्पदन्त और भूतबली नामक जिन दो मुनियों को अपना ज्ञान समर्पित करने के लिये आन्ध्रप्रदेश की महामहिमा नगरी से आचार्य धरसेन ने पत्र लिखकर बुलवाया था, निश्चयतः

उस सम्मेलन के कर्ता-धर्ता आचार्य गुप्तिगुप्त ही थे। यह आचार्य धरसेन की वृद्धावस्था की घटना है। इसलिये पट्टधर आचार्य गुप्तिगुप्त के साथ इसकी संगति आसानी से बैठ जाती है। अन्य सब बातें नगण्य हैं।

इस प्रकार इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के काल के पुराने जैनों के अतिरिक्त प्रायः परमार क्षत्रियों से ही पौरपाट (परवार) अन्वय का संगठन किया होगा। परमार अन्वय के क्षत्रिय प्राग्वाट अन्वय मे दीक्षित हुये होंगे। बाद में वे उनमें से या सीधे परमार क्षत्रियों मे से पौरपाट या पौरपट्ट (परवार) अन्वय के रूप में संगठित हुये होंगे।

७. इतिहास के आलोक में :

वास्तव मे वर्तमान में उपलब्ध होने वाला जातियों का इतिहास बहुत प्राचीन नही है। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व इस देश में पट्ट-परम्परा चलती थी। अतः परवार जाति की ऐतिहासिकता तथा प्राचीनता 'पौरपट्ट' से सम्बद्ध रही है। पं० नाथूराम 'प्रेमी' के शब्दों में 'पुरवाट्', 'प्राग्वाट्' ये नाम परवार जाति के लिए प्रयुक्त किये जाते थे।[1] यह भारतीय इतिहास की जाति विषयक एक विचित्रता कही जा सकती है कि किसी समय में क्षत्रिय तथा श्रेष्ठिवर्ग में विवाह सम्बन्ध खुलकर होते थे। **'पुरातन प्रबन्ध'** में नाडोल के लक्ष्मण चौहान का विवाह एक श्रेष्ठी की पुत्री से होना लिखा है। अग्रवाल, माहेश्वरी, जैसवाल, खण्डेलवाल और ओसवालों का उद्भव क्षत्रियों से हुआ कहा जाता है।[2] इनको अहिंसक होने और वाणिज्य-व्यापार करने के कारण वैश्य कहा गया। किन्तु आज भी इनके रक्त में स्वाभिमान झलकता है।

उपलब्ध ऐतिहासिक लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "पोरपाट" का सर्व प्रथम उल्लेख अहार जी के मूर्तिलेखों में मिलता है। पौरपट्ट या परवार जाति का १६वीं-१७वीं शताब्दी तक बराबर गुजरात से सम्पर्क बना रहा है। परवार जाति के लोगों का रूप-रंग,

१. परवार बन्धु, अप्रैल, १९४० मे प्रकाशित लेख, पृ० ३०।
२. डॉ० गोपीनाथ शर्मा : राजस्थान का इतिहास, १९८३, पृ० ११५।

रहन-सहन आदि से बराबर उनका मेल खाता है। परवार जाति में १२ गोत्र जिस प्रकार के पाये जाते हैं, उसी से मिलते-जुलते जुझोतिया ब्राह्मण, अग्रवाल, गहोई व अन्य वैश्यों मे पाए जाते है।[1] प्रेमी जी की इस मान्यता मे बल मालूम होता है कि वैश्यों की लगभग सभी जातियाँ राजस्थान से निकली है। 'पद्मावती पोरवाल' परवारों की ही एक शाखा मानी गई है। जिसका उल्लेख पं० बखतराम ने **'बुद्धि विलास'** ग्रन्थ में श्रावकोत्पत्ति प्रकरण मे किया है। 'पौरपट्ट' परवार ही है इसका प्रथम प्रमाण हमे ब्रह्मगुलाल की रचना मे उपलब्ध होता है। उनके ही शब्दों मे—

> **जहाँ पौरपट्ट सुखदाई, परवार वंश सोई आई।**
> **बहुरिया मूर तहाँ साई, धनि मथुरामल्ल पिताई॥**
> **जगत्कीर्ति पद उधरन त्रिभुवनकीर्ति मुनिराई।**
> **नरेन्द्रकीर्ति तिस पट्ट भये गुलाल ब्रह्म गुन गाई॥**
>
> (वि० स० १७४० मे रचित भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के पट्टाभिषेक से उद्धृत)

"पौरपाट" शब्द का प्रथम प्रयोग वि० सं० ६१० के साढोरा (गुना) स्थित मूर्ति-लेख मे उपलब्ध होता है। इसके पूर्व का अभी तक न तो "प्राग्वाट" का और न "पौरपट्ट" का कोई उल्लेख मिलता है। वास्तव में प्राग्वाट >पौरपट्ट से विकसित होकर पोरवाड, परवाड, परवाल, परवार का निकास हुआ है। मूर्तिलेखो में जो वि० सं० १०८९ से लेकर वि० सं० १७८९ तक के उपलब्ध होते है, उनमें परवार ज्ञाति के लिए 'पौरपट्ट' शब्द का प्रयोग मिलता है। प्राग्वाट और पौरपट्ट एक ही कहा गया है। "**भट्टारक सम्प्रदाय**" मे प्रकाशित पट्टावली में "**अष्टशाखा प्राग्वाटवंशावतंसानां ... श्री विद्यानंदीपरमाराध्यस्वामि-भट्टारकाणाम्**" के उल्लेख से भी यही सूचित होता है कि अठसखा परवारों मे ही होते है।[2] आश्चर्य नहीं जो भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति भी इसी जाति मे उत्पन्न हुए हों और उन्ही के प्रभाव से विद्यानन्दि

---

१. परवार बन्धु, फरवरी, १९४०, पृ० ५३।

२. प्रो० वी० पी० जोहरापुरकर : भट्टारक सम्प्रदाय, १९५८, सोलापुर; पृ० १७२ तथा जैन सिद्धान्त भास्कर, १७, पृ० ५१।

उनके द्वारा दीक्षित हुए हों।[1] ऐसे कई मूर्तिलेख उपलब्ध होते हैं जिनमें "पौरपट्ट" के साथ "अष्टशाखान्वये" का भी उल्लेख है। अभी तक १७वीं शताब्दी के पूर्व का एक भी ऐसा लेख नहीं मिला है जिसमें "परवार" ज्ञाति नाम का उल्लेख हो। सोलहवीं शताब्दी के एक मूर्तिलेख में जांगडा पोरवाड ज्ञातीय का अवश्य उल्लेख मिलता है। प्राग्वाट और पौरपट्ट के अतिरिक्त परवार ज्ञाति के लिए निम्नलिखित शब्दों का भी प्रयोग किया है—पौरपाट, परपाट, परवाड, अष्टशाखा, अठसखा, अठसका, परवार इत्यादि।

८. पौरपाट (परवार) अन्वय के सगठन का स्थान :

१. यह तो एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस अन्वय का संगठन प्रदेश की अपेक्षा प्राग्वाट प्रदेश में हुआ था, उस अन्वय को प्राग्वाट कहा गया है। उसका दूसरा नाम पौरपाट या पौरवाड होने से उस अन्वय का संगठन प्राग्वाट प्रदेश के अन्तर्गत पुरमण्डल से होना चाहिए।

इसलिये यहाँ पर "प्राग्वाट" प्रदेश किस स्थान का नाम है और उसके अन्तर्गत "पुरमण्डल" नाम का जिला आता है या नहीं? आता भी है, तो केवल उससे ही यहाँ तात्पर्य है या मुख्यता से उसका नाम निर्देश किया गया है, वास्तविकता क्या है? इसका यहाँ विचार किया जाता है—

२. **प्राग्वाट इतिहास**, प्र० भा०, पृष्ठ १५ में लिखा है कि—"वर्तमान सिरोही राज्य, पालनपुर राज्य का उत्तर-पश्चिम भाग, गोडवाड़ (गिरिधाड़ प्रान्त) तथा मेदपाट प्रदेश का कुम्भलगढ़ और पुरमण्डल तक का भाग कभी प्राग्वाट प्रदेश के नाम से रहा है। यह प्रदेश प्राग्वाट क्यों कहलाया? इस प्रश्न पर आज तक विचार नहीं किया गया और अगर किसी ने विचार किया भी हो तो वह अब तक प्रकाश में नहीं आया।"

---

1. डॉ० हीरालाल जन : विद्यानन्दि विरचित "सुदर्शनचरित" की प्रस्तावना, पृ० १६ से उद्धृत।

इसके बाद आगे लिखा है—"उक्त प्राग्वाट प्रदेश अर्बुदाचल का ठीक पूर्व भाग अर्थात् पूर्ववाट समझना चाहिये........।" आगे पृ० १६ पर उल्लेख है—

३. श्रीमालपुर के पूर्ववाट मे बसने के कारण जैसे वहाँ के जैन बनने वाले कुल अपने वाट के अध्यक्ष का जो प्राग्वाट पद से विश्रुत था, नेतृत्व स्वीकार करके उनके प्रग्वाट पद के नाम के पीछे सर्व प्राग्वाट कहलाये। उसी दृष्टि से आचार्य श्री ने भी पद्मावती, जो अर्बल प्रदेश की पूर्ववाट प्रदेश की पाट नगरी थी, मे जैन बनने वाले कुलों को भी प्राग्वाट नाम ही दिया हो। वैसे अर्थ मे भी अन्तर नही पड़ता। पूर्ववाड का संस्कृत रूप पूर्ववाट है और पूर्ववाट का "प्राच्या वाटो इति प्राग्वाट:" पर्यायवाची शब्द ही तो है। पद्मावती नरेश की अधीश्वरता के कारण तथा पद्मावती मे जैन बने बृहद् प्राग्वाट श्रावकवर्ग की प्रभावशीलता के कारण तथा अक्षुण्ण वृद्धिगत प्राग्वाट परम्परा के कारण यह प्रदेश ही "पूर्ववाट" से "प्राग्वाट" नाम वाला धीरे-धीरे हुआ हो।

उपर्युक्त अनुमानो से ऐसा तो आशय ग्रहण करना ही पड़ेगा और यह समुचित भी लगता है कि अर्वली पर्वत का पूर्व भाग, जिसको पूर्ववाट करके लिखा गया है उन वर्षों मे अधिक प्रसिद्धि मे आया और तब अवश्य उसका कोई नाम भी दिया गया होगा। प्राग्वाट श्रावक वर्ग के पीछे उक्त प्रदेश प्राग्वाट कहलाया हो, अथवा यह नही माना जाय तो इतना अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि प्राग्वाट श्रावक वर्ग की उत्पत्ति और मूल निवास के कारणों का तथा धीरे-धीरे इस भाग में विस्तृत होती हुई उसकी परम्परा की प्रभावशीलता एवं प्रमुखता के कारण इस देश को प्राग्वाट कहा जाता रहा है। आज भी प्राग्वाट ज्ञाति अधिकांशत: इस भाग मे बसती है और गुर्जर, सौराष्ट्र और मारवाड़ संयुक्त प्रदेश में जो इसकी शाखाएँ ग्रामों मे थोड़े बहुत अन्तर में बसती हैं, वे इसी भूभाग से अन्य प्रदेशों में विस्थापित हुई है, ऐसी मान्यता है।

ये दौलतसिंह लोढ़ा के अपने विचार हैं। इस सम्बन्ध मे अन्य पुरातत्त्वविदों के क्या विचार है? वे "प्रा० इ०" प्रथम भाग के पृष्ठ १६ के पाद-टिप्पण मे दिये गये है—

४. स्व० श्री अगरचन्द जी नाहटा का मत—

"वर्तमान गोडवाड़, सिरोही राज्य के भाग का नाम कभी प्राग्वाट प्रदेश रहा था।"

५. श्वे० मुनि जिनविजयजी का मत—

अर्बुद पर्वत से लेकर गौड़वाड़ तक के लम्बे प्रान्त का नाम पहले प्राग्वाट प्रदेश था।

६. स्व० श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का मत पहले भी हम प्रसंगवश उद्धृत कर आये है। उसे यहाँ पुनः दे रहे है—

"पुर" शब्द से "पुरवाड" और "पोरवाड" शब्दों की उत्पत्ति हुई है। "पुर" शब्द मेवाड़ के "पुर" जिले का सूचक है और मेवाड़ के लिये प्राग्वाट भी लिखा मिलता है।"

७. श्री ओझा जी **"राजपूताने का इतिहास"** की पहली जिल्द में लिखते है—

"करनवेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसङ्गवशात् मेवाड़ के गुहिलवशी राजा हंसपाल, बेरिसिह और विजयसिह का वर्णन आया है, जिसमें उनको "प्राग्वाट" का राजा कहा गया है। अतएव "प्राग्वाट" मेवाड़ का ही दूसरा नाम होना चाहिए। संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों मे पोरवाड़ महाजनो के लिये "प्राग्वाट" नाम का प्रयोग मिलता है और वे लोग अपना निवास मेवाड़ के "पुर" नामक कस्बे से बतलाते है, जिससे सम्भव है कि "प्राग्वाट" देश के नाम पर वे अपने को प्राग्वाट वंशी कहते रहे हों।"

८. **प्राग्वाट इतिहास,** प्रथम भाग, पृष्ठ १२ में श्रीमालपुर (भिन्नमाल या भीनमाल) मे बसने वाली जातियों का उल्लेख करते हुये लिखा है कि "इस नगरी मे बसने वाले जो "धनोत्कटा" थे वे धनोत्कटा श्रावक कहलाये। जो उनमें कम श्रीमन्त थे वे श्रीमाल श्रावक कहलाये और जो पूर्ववाट में रहते थे वे प्राग्वाट श्रावक कहलाये।"

वि० सं० १२३६ में श्री नेमिचन्द्रसूरिकृत **महावीर चरियं** की प्रशस्ति में लिखा है—

प्राच्यां वाटो जलधिसुतया कारितः क्रीडनाय,
तन्नाम्नैव प्रथमपुरुषो निर्मितोऽध्यक्षहेतोः।
तत्सन्तानप्रभवपुरुषैः श्रीभृतैः संयुतोऽयम्,
प्राग्वाटाख्यो भुवनविदितस्तेन वंशः समस्ति॥

पूर्व दिशा के उस भाग में जो प्रथम पुरुष अध्यक्ष के निमित्त बना, उसी (प्राग्वाट) नाम से एक स्थल बनाया गया, उसकी उत्तर काल मे जो सन्तानें हुई वे लक्ष्मी सम्पन्न थी और वे "प्राग्वाट" इस नाम से प्रसिद्ध हुई।

९. "जाति भास्कर" पुस्तक के पृष्ठ २६२ में लिखा है— "पुरावाल गुजरात के (पोरवा) पोरबन्दर के पास होने से यह "पुरावाल" कहकर प्रसिद्ध है। इस समय ललितपुर, झाँसी, कानपुर, आगरा, हमीरपुर, बाँदा जिलों में इस जाति के बहुत लोग रहते है। ये यज्ञोपवीत धारण नहीं करते है। श्रीमाली ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते है। अहमदाबाद के विख्यात धनी महाजन भागुभाई पुरोवाल वंशोत्पन्न हैं।"

१०. डॉ० विलास आदिनाथ सगवे, प्राध्यापक, राजाराम कालेज, कोल्हापुर ने "सामाजिक सर्वेक्षण" नाम से जो निबन्ध पी-एच० डी० के लिये लिखा है, उसमें किस अन्वय (ज्ञाति) का किस नगर आदि मे संगठन हुआ, ऐसी एक सूची दी है। तदनुसार "परवार" अन्वय का संगठन "पारानगर" में और पौरवार अन्वय का संगठन "पारेवा" नगर में हुआ था, जो मूलतः गुजराती थे पर राजा कनिष्क के काल में पूर्वी राजपूताने मे बस गए थे।[1]

ये दस उद्धरण हैं। इनमें से कई तो प्राग्वाट प्रदेश की सीमा में पुरमण्डल को सम्मिलित करते है और कई सम्मिलित नहीं भी करते हैं। इनमें एक मत यह भी उल्लिखित है कि गुजरात के पोरबन्दर के समीप जो पोरवा ग्राम है, उसको माध्यम बनाकर इस अन्वय का संगठन हुआ है। अन्तिम मत यह है कि पारानगर में "परवार" अन्वय का संगठन हुआ है। वर्गीकरण करने पर ये चार मत शेष रहते है। इन पर

---

१. डॉ० विलास आदिनाथ सगवे, जैन कम्युनिटी : ए सोशल सर्वे, पृ० ९४।

दृष्टि डालने से यही तथ्य फलित होता है कि प्राग्वाट प्रदेश से लेकर पोरबन्दर तक का प्रदेश इस अन्वय के संगठन का प्रदेश होना चाहिये। समुद्र के यातायात के साधन स्वरूप स्थान को पोरबन्दर नाम प्रसिद्ध होने का यही कारण प्रतोत होता है। यह अवश्य है कि "प्राग्वाट" प्रदेश की मुख्यता होने से सर्वप्रथम यह अन्वय "प्राग्वाट" नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा और पुरमण्डल में रहने वाले क्षत्रिय कुलों की विशेषता होने से "प्राग्वाट" अन्वय को "पौरपाड" या "पौरवाड" नाम से भी सम्बोधित करते होंगे। बाद में "प्राग्वाट" नाम लुप्त होकर "पौरवाड" या "पौरपाट" नाम प्रसिद्धि मे आया होगा।

किन्तु जिस समय इस अन्वय का संगठन हुआ होगा वह प्रथम श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय की घटना होनी चाहिये, क्योंकि तब तक संघभेद न होने से सभी मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका एक ही आम्नाय के मानने वाले होने से प्राग्वाट कुलों मे कोई भेद नहीं रहा होगा, ऐसा तथ्यो से फलित होता है। परन्तु भद्रबाहु के काल में संघभेद हो जाने के कारण जो पुरानी आम्नाय के अनुसार चले वे मूलसंघी कहलाये और जिनने मुनिधर्म में वस्त्र-पात्र को स्वीकार कर लिया वे श्वेतपट कहलाये। दिगम्बर आम्नाय को मानने वाले ही मूलसंघी हैं; श्वेतपट नही। इसका भी मूल कारण यही प्रतीत होता है।

इस प्रकार प्राग्वाट अन्वय के सगठन का स्थान निर्णीत होने के बाद यह अन्वय दो भागों मे कब विभक्त हुआ? इसके कारण का भी पता लग जाता है। वह यह कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के काल में यह अन्वय दो भागों मे विभक्त हुआ था, यह निश्चित है। किन्तु मूलसंघ का सेहरा पौरपाट (परवार) अन्वय के सिर पर ही बँधा, यह हमारा कहना नही है। फिर भी, इतना हमारा कहना अवश्य है कि उस समय जो मूलरूप में एक श्रीसंघ था, वह दो भागों में विभक्त हो गया। जो मूलरूप मे श्रीसंघ था वह मूघसंघ के नाम से अभिहित हुआ तथा जो उससे विभक्त होकर दूसरा संघ बना, वह श्वेतपट संघ के नाम से लोक में कहा जाने लगा। "उत्तराध्ययनसूत्र" में केशी-गौतम संवाद की जो कथा आती है, वह प्रयोजन विशेष से कैसे लिखी गई इसका स्वयं पता लग जाता है। इसी बात को सिद्ध करने के लिये श्वेतपट संघ ने अपने को पार्श्वनाथ सन्तानीय घोषित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। परन्तु

यह श्वेताम्बर शास्त्रों से ही ज्ञात होता है कि जितने भी तीर्थंकर हुये वे पूरी तरह से वस्त्रालंकार का त्याग करके ही मुनि धर्म में दीक्षित हुये। ऐसी अवस्था में उनके अनुयायी शिष्यों को उन्होंने अपने उपदेशों से अंशतः वस्त्र रखकर मुनिधर्म में दीक्षित होने की स्वीकृति कैसे दी होगी ? अर्थात् नहो दी होगी। क्योंकि स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और घर के समान वस्त्र भी संसार विषयक राग का प्रतीक है। अणुमात्र परिग्रह की इच्छा भी जहाँ पूरी तरह से मोक्षमार्ग में बाधक मानी जाती है, वहाँ वस्त्र का रखना तो बाधक है ही।

इस प्रकार यह निश्चित हो जाने पर कि जिस प्रकार मूलसंघ दो भागों में विभक्त हुआ, उसी प्रकार प्राग्वाट अन्वय भी पहले तो एक ही था, बाद में वह भी दो भागों मे विभक्त हो गया। जो मूल श्रीसंघ था वह तो पूर्ववत् दिगम्बर ही रहा आया। पर उसमे से जो परिवार विभक्त हुये, वे श्वेतपट कहलाये। बहुतो ने कालान्तर में अजैन सम्प्रदाय को भी स्वीकार कर लिया, क्योंकि ऐसे बहुत से पोरवाड अन्वय के परिवार है, जिन्होंने जैनधर्म को ही दूर से नमस्कार कर लिया है। इस समय दिगम्बर जैन प्राग्वाट अन्वय के जो भेद पाये जाते हैं, उनके नाम इस प्रकार है— (१) पौरपाट या पौरपट्ट अन्वय, (२) सोरठिया पौरपाट, (३) कपोला पौरपाड, (४) पद्मावती पोरवाड, (५) गूर्जर पोरवाड, (६) जांगडा पोरवाड, (७) मेवाड़ी और मलकापुरी पोरवाड, (८) मारवाड़ी पोरवाड और (९) पुरवार।

यहाँ जो प्रथम भेद पौरपाट या पौरपट्ट अन्वय है वह मुख्य रूप से अनुसन्धेय है। जब यह निश्चित है कि जो "प्राग्वाट" अन्वय है वही पौरवाड अन्वय नाम से प्रसिद्ध हुआ, तब यह विचारणीय हो जाता है कि इस अन्वय का नाम "पौरवाड" न पड़कर इसे पौरपट्ट या पौरपाट क्यों कहा जाता है ? यह एक सवाल है, जिसका सम्यक् समाधान अपेक्षित है।

९. "पोरवाड" नामकरण का कारण :

प्राग्वाट के स्थान पर "पोरवाड" कहने का कारण तो यह है कि प्राग्वाट प्रदेश के अन्तर्गत "पुरमण्डल" की मुख्यता से या पोरबन्दर के

पास के "पोरवा" नगर की मुख्यता से पोरवाड अन्वय में उस अन्वय को "पोर" शब्द से सम्बोधित किया गया है और उस अन्वय को "पौर" शब्द के साथ "वाड" कहने के अनेक कारण हो सकते है; क्योंकि वाड का एक अर्थ "वाट" भी होता है। दूसरे काँटे आदि से बनाई जाने वाली परिधि को भी "बाड़" कहा जाता है। तीसरा अर्थ "वाड" या परिधि के भीतर जो स्थान होता है, वह भी "वाड" कहा जाता है। "वाड" या "वाट" का अर्थ मार्ग, पन्थ या पट्ट भी होता है। इनमें से कोई भी अर्थ लिया जा सकता है। इससे "पौरवाड" शब्द का स्वयं ही यह अर्थ फलित हो जाता है कि प्राग्वाट प्रदेश के अन्तर्गत "पुरमण्डल" या "पोरवा" नगर के कारण इस अन्वय को "पोरवाड" कहा गया है।

किन्तु जिन भाइयों की यह कल्पना है कि श्रीमाल के पूर्व मे निवास करने वाले जो कुटुम्ब जेनधर्म मे दीक्षित हुये उन्हे "पोरवाड" कहा गया है, सो इस कल्पना को ओझा जी ठीक नही मानते। उन्होंने **"राजपूताने का इतिहास"** पुस्तक में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—

"श्रीमाल के पूर्व में उनके निवास करने के कारण उनका "प्राग्वाट" (पौरवाड) नाम कहलाया, ये सारी बातें कल्पित है। ····· प्राग्वाट तो मेवाड़ के एक विभाग का पुरातन नाम था; जैसा कि शिलालेखादि में पाया जाता है। वहाँ के निवासी भिन्न-भिन्न जगहों में जाकर रहे, वहाँ वे अपने मूल निवास-स्थान के कारण "प्राग्वाट" कहलाते रहे।"

यह वस्तुस्थिति है, जिससे हम यह जानते हैं कि "प्राग्वाट" ही "पोरवाड" कैसे कहलाये। किन्तु परवार अन्वय को "पौरपाट" या "पौरपट्ट" कैसे कहा गया, यह अवश्य ही विचारणीय है।

१०. "पौरपाट" या "पौरपट्ट" नामकरण का आधार :

यह तो सुनिश्चित है कि व्याकरण के अनुसार "वाड" शब्द से "वाट" तो बन जाता है, परन्तु "पाट" शब्द की निष्पत्ति होना व्याकरण सम्मत नहीं कहा जा सकता। इसलिये "पौरपाट" या

"पौरपट्ट" शब्द दूसरे अर्थ में निष्पन्न होना चाहिये। वह क्या हो सकता है, इसका यहाँ विचार किया जाता है—

हम तो यह पहले ही लिख आये है कि जिस अन्वय (ज्ञाति) को वर्तमान मे "परवार" कहा जाता है वह प्रतिमा-लेखों आदि में बहुलता से "पौरपाट" या एकादि प्रतिमालेख में "पौरपट्ट" नाम से उल्लिखित किया गया है। प्रमाण हेतु हम साढोरा नगर के जिन मन्दिर की एक प्रतिमा के पादपीठ में अङ्कित किये गये एक लेख को आगे उद्धृत कर रहे है।[1]

"साढोरा" यह प्रसिद्ध नगर है। पुराने जमाने में दिल्ली से गुजरात और महाराष्ट्र आदि प्रदेशों को जानेवाले मार्ग पर यह बसा हुआ है। पुराने काल मे राजे-रजवाड़े या मुगल बादशाह अपनी सेना आदि के साथ यहाँ ठहरा करते थे। इस नगर के नाम पर एक सिक्का भी चालू था, जिसे "साढोरा रुपया" कहा जाता था। वह यही टकसाल मे ढाला जाता था। गुजरात से इस नगर का सम्बन्ध था। इसलिये बहुत सम्भव है कि गुजरात के पाटन से आनेवाले सौदागरों ने जिनबिम्ब को लाकर यहाँ विराजमान किया हो या जाते समय किसी कारणवश यह जिनबिम्ब यही छूट गया हो। यह श्री तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्ति है। जो इस समय भी साढोरा के जिनमन्दिर में मूलवेदी के बगल के कमरे में एक वेदी पर विराजमान है।

इस अन्वय का दूसरा नाम "पौरपट्ट" भी रहा है। वस्तुतः "पौरपट्ट" से ही "पौरपाट" शब्द निष्पन्न हुआ है। व्याकरण के अनुसार ऐसा नियम है कि यदि अगला अक्षर द्वित्व हो तो पिछले अक्षर को दीर्घ कर देने पर अगला अक्षर द्वित्व न रहकर ह्रस्व हो जाता है। तदनुसार "पौरपाट" शब्द "पौरपट्ट" शब्द से निष्पन्न हुआ है। इसका पोषक यद्यपि हमें बहुत पुराना लेख तो नहीं मिला है, फिर भी मूर्तियों तथा शिलालेखों के अंकन मे ये दोनों शब्द चलते रहे हैं, यह स्पष्ट है। यथा—

---

१. द्रष्टव्य परिशिष्ट।

'संवत् १५१२ चंदेरी मण्डलाचार्यान्वये भ० श्री देवेन्द्रकीर्तिदेवा त्रिभुवनकीर्तिदेवा पौरपट्टान्वये अष्टासखे ···।' यह लेख ऐसा है जिसमें परवार अन्वय के स्थान पर "पौरपट्ट" अन्वय कहा गया है। यद्यपि यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि जिसे पौरपाट या पौरपट्ट कहा गया है, वह "परवार" अन्वय के अर्थ में ही कहा गया है—यह कैसे समझा जाय? तो उसके समाधान स्वरूप हम ऐसा प्रतिमालेख यहाँ उपस्थित कर रहे है, जिससे यह समझना आसान हो जायेगा कि इस शब्द का प्रयोग "परवार अन्वय" के लिये ही किया गया है।

संवत् १५०३ वर्षे माघ सुदी ९ बुधे (धे) मूलसंघे भट्टारक श्रीपद्म-नन्दिदेवशिष्य देवेन्द्रकीर्ति पौरपाट अष्टशाखा आम्नाय सं० थणऊ भार्या पु० तत्पुत्र सं० कालि भार्या आमिणि तत्पुत्र सं जैसिंघ भार्या महासिरि तत्पुत्र सं०·······।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिसे हम पहले "पौरपाट" या "पौरपट्ट" अन्वय के रूप में उल्लिखित कर आये हैं, वह परवार अन्वय (ज्ञाति) को छोड़कर अन्य कोई अन्वय नहीं हो सकता, क्योंकि परवार अन्वय में ही "अठसखा" "चौसखा" आदि भेद पाये जाते हैं। जिनको वर्तमान में "पौरवाड" या "पुरवार" आदि कहते हैं, उनमें ये भेद दृष्टिगोचर नही होते है।

इस प्रकार यह सिद्ध हो जाने पर कि "पौरपाट" या "पौरपट्ट" शब्द का प्रयोग "परवार" अन्वय के अर्थ में ही किया गया है। यहाँ पर यह विचारणीय है कि इस अन्वय को "पौरवाड" या "पुरवार" न कहकर "पौरपाट" या "पौरपट्ट" क्यों कहा गया है? आगे इसी पर विचार किया जाता है—

११. कारण का निर्देश :

यह तो "**प्राग्वाट इतिहास**" के विद्वान् लेखक ने भी स्वीकार किया है कि "पौरपाट" या "पौरपट्ट" (परवार) अन्वय को मानने वाले मात्र दिगम्बर ही पाये जाते हैं। जैसा कि उन्होंने "**प्राग्वाट इतिहास**" के पृ० ५४ पर इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है—"यह ज्ञाति समूची दिगम्बर जैन है।" इस उल्लेख से यह जान पड़ता है कि इस

अन्वय के नामकरण में इस बात का ध्यान अवश्य ही रखा गया है कि इससे दिगम्बरत्व के रूप में "मूलसंघ" परम्परा का भी बोध हो।

"पौरपाट" या "पौरपट्ट" शब्द दो शब्दों के मेल से बना है—पौर+पाट या पट्ट=पौरपाट या पौरपट्ट। "पौर शब्द "पुर" शब्द या "पुरा" से बना है। "पुर" शब्द स्थान विशेष का बोध कराता है और "पुरा" शब्द प्राचीनता को सूचित करता है। इस अन्वय के जिन संगठनकर्त्ताओं ने "पौरपाट" या "पौरपट्ट" में पौर शब्द की योजना की है, उन्होंने इस नामकरण के "पौर" शब्द में स्थान और प्राचीनता—इन दोनों बातों को ध्यान में रखा है, यह निश्चित प्रतीत होता है।

श्री डॉ० विलास आदिनाथ संगवे, प्रोफेसर राजाराम कालेज, कोल्हापुर ने "जैन कम्युनिटी : ए सोसल सर्वे" मे ८४ ज्ञातियों के उल्लेख के प्रसंग में "परवार" ज्ञाति का निकास "पारानगर" से माना है। उस सूची से यह तो नहीं मालूम पड़ता है कि यह "पारानगर" कहाँ है ? फिर भी इस नगर के उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि या तो "पोरवा" नगर को "पारानगर" कहा गया है या "पुरमण्डल" को ही पारानगर पद से सम्बोधित किया गया है। जो कुछ भी हो, इतना तो सुनिश्चित है कि इस अन्वय का निकास "प्राग्वाट" प्रदेश से और उससे लगे हुए पोरबन्दर तक के प्रदेश से ही हुआ है। इस स्थान को पोरबन्दर कहने का कारण भी यही है।

यहाँ पर यह प्रश्न किया जाता है कि बुन्देलखण्ड में बसा हुआ यह अन्वय प्राग्वाट प्रदेश का और उससे लगे हुए पोरबन्दर तक के प्रदेश का मूल निवासी कैसे माना जा सकता है ? सो उसके समाधान का निर्णय हम पहले ही कर आये है कि इस अन्वय का निकास प्राग्वाट प्रदेश से लेकर पोरबन्दर तक के प्रदेश से ही हुआ है। क्योंकि गुजरात के एक समुद्र तट का नाम "पोरबन्दर" पड़ने का कारण भी यही प्रतीत होता है।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति, जिन्होने बुन्देलखण्ड में "परवार" भट्टारक पट्ट स्थापित किया, मूल में गुजरात के निवासी थे और स्वयं "परवार" थे। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वयं जो सूरत के पास गान्धार और उसके बाद राँदेर में मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय का भट्टारक पट्ट स्थापित

किया था, उसके प्रथम भट्टारक स्वयं बने। बाद में वहाँ पर अपने स्थान पर एक परवार बालक "विद्यानन्दि" को भट्टारक के रूप में स्थापित कर स्वयं चन्देरी चले आये और यहाँ आकर परवार भट्टारक पट्ट की स्थापना की और यहाँ भी स्वयं उसके प्रथम भट्टारक बने।

गुजरात और उसके पास के "प्राग्वाट" प्रदेश का इस (बुन्देलखण्ड) के साथ निकट का सम्बन्ध रहा है। इसका उदाहरण बड़ोह का वनमन्दिर साक्षी है। यहाँ पर "प्राग्वाट" अन्वय के अनेक गर्भगृह अवस्थित हैं। उनमे एक गर्भगृह वासल्ल गोत्रीय प्राग्वाट परिवार का भी है। साथ ही एक जिनालय मध्य मे भी बना हुआ है, जो दोनों ओर के भागो को जोड़ता है। उसमें सोलहवें तीर्थङ्कर भगवान् शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा विराजमान है। यही एक ऐसा मन्दिर है, जो "प्राग्वाट" अन्वय का श्रावककुल उत्तरकाल में "परवार" नाम से प्रसिद्ध हुआ, इसकी प्रसिद्धि करता है।

सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ में श्री तारण-तरण हो गये हैं। उन्होने जिन चौदह ग्रन्थों की रचना की थी, उनमें एक का नाम "नाममाला" है। उसमे ऐसे पुरुषों के भी नाम आये हैं जो श्री तारण-तरण का सम्पर्क साधने के लिये गुजरात या प्राग्वाट प्रदेश से चलकर बुन्देलखण्ड में आये और कोई-कोई यहीं के निवासी हो गये।

लखनऊ से मुद्रित तथा अजैन विद्वान् द्वारा लिखी हुई "जाति भास्कर" पुस्तक के पृष्ठ २६३ पर लिखा है—"पुरावाल गुजरात के पोरवा-पोरबन्दर के पास का होने से यह "पुरावाल" कहकर प्रसिद्ध है। इस समय ललितपुर, झाँसी, कानपुर, आगरा, हमीरपुर, बांदा जिलों में इस जाति के बहुत से लोग रहते हैं। अहमदाबाद के विख्यात धनी महाजन भागुभाई पुरोवाल वंशोत्पन्न ही हैं।"

शाह बखतराम के "बुद्धि विलास" के पृष्ठ ८६ पर "परवार" अन्वय का "पुरवार" के नाम से उल्लेख किया गया है।

ये कतिपय प्रमाण है, जिनसे इसी तथ्य का पोषण होता है कि "परवार" अन्वय के श्रावककुल मूल में पोरबन्दर तक के प्राग्वाट (मेवाड़) प्रदेश के निवासी हैं और वे प्राग्वाट या पोरवाड ही हैं। फिर

भी इनको "पोरवाड" या "पुरवार" न कहकर परवार श्रावक कुलों को "पौरपाट" या "पौरपट्ट" नाम से लोक में क्यों सम्बोधित किया गया, उसके पीछे कोई हेतु तो होना ही चाहिये। विचार कर देखा जाये तो उसका कारण सांस्कृतिक ही प्रतीत होता है।

वास्तव मे बात यह है कि श्वेताम्बर साधुओं को राज्याश्रय मिल जाने से धीरे-धीरे गुजरात और उससे लगे हुये "प्राग्वाट" प्रदेश में श्वेताम्बर श्रावककुलों का प्रभाव बढ़ने लगा तथा मूल के दिगम्बर श्रावककुलों का प्रभाव घटने लगा। अन्त में दिगम्बर धर्म का एक प्रकार से गुजरात मे उच्चाटन हो गया। जो कट्टर दिगम्बर कुल शेष बचे थे उनको वहाँ से निकलकर बुन्देलखण्ड में शरण लेने के लिये बाध्य होना पड़ा। इसके सिवाय जो दिगम्बर कुल गुजरात और उससे लगे हुये प्रदेश मे शेष रह गये थे, उनमे से कुछ तो धीरे-धीरे बुन्देलखण्ड मे आते रहे और कुछ ने श्वेताम्बर-परम्परा स्वीकार कर ली। "परवार" अन्वय की सात खापें लोक में प्रसिद्ध है, उनमे से "सोरठिया परवारों" का क्या हुआ ? यह अभी तक इतिहास और अनुसन्धान की वस्तु भले ही बनी हुई हो, विचार कर देखा जाये तो इस उपभेद का श्वेताम्बरीकरण कर लिया गया होगा, यह निश्चित मालूम पड़ता है। दूसरे परवार श्रावक कुलों का भी यही हाल हुआ होगा।

यह बात इससे भी स्पष्ट हो जाती है कि गुजरात और मेवाड़ के "प्राग्वाट" प्रदेश में इस समय एक भी परवार कुल ढूंढें नहीं मिलता। जो "परवार" अहमदाबाद जाकर बसे हैं वे पुराने "परवार" नहीं हैं। बुन्देलखण्ड मे आजीविका न मिलने के कारण कपड़ा मिलों में आजीविका मिल सकती है, इस कारण वे वहाँ चले गये हैं। यही कारण है कि उनका स्वयं का निर्माण कराया गया जिन-मन्दिर वहाँ नहीं पाया जाता और न उनके द्वारा निर्मापित पाठशाला या धर्मशालाएँ आदि ही पाई जाती है। यदि वहां पर हों तो हमें पता नही है। इतना अवश्य है कि कई भाइयों को अपना वैवाहिक सम्बन्ध उन्ही श्वेताम्बरों से करना पड़ा है। वे क्या करें, अर्थाभाव के कारण उन्हे अन्य कोई रास्ता दिखाई नहीं दिया।

यह वस्तुस्थिति है। इसे ध्यान में लेने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस अन्वय के नामकरण में कोई अन्य कारण होना चाहिये। तथ्यों से

मालूम पड़ता है कि इसका मूल कारण सांस्कृतिक ही हो सकता है। कारण कि यह अन्वय मूलसंघी और कुन्दकुन्द आम्नाय का सदा से उपासक रहा है। हम बुन्देलखण्ड प्रदेश के अनेक जिन मन्दिरों में गये। उनमें स्थित जिन-प्रतिमाओं के लेख लिये, यथाशक्य शास्त्र-भण्डारों को टटोला, परन्तु उन जिन-प्रतिमाओं मे और शास्त्रों के अन्त में पाई जाने वाली प्रशस्तियों में ऐसा एक भी लेख उपलब्ध नही हुआ, जिससे यह कहा जा सके कि इस अन्वय के श्रावक-कुलों ने मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय के अन्तर्गत बलात्कारगण और सरस्वतीगच्छ को छोड़कर दूसरी आम्नाय का पल्ला पकड़ा हो। भले ही इस अन्वय के श्रावक-कुलों को मेवाड़ के प्राग्वाट प्रदेश से लेकर गुजरात-पोरबन्दर तक के प्रदेश से निकलकर चँदेरी को केन्द्र बनाकर बुन्देलखण्ड के शहरों और उनसे लगे हुये ग्रामों मे बसने के लिये बाध्य होना पड़ा हो, परन्तु उन्होंने अपनी आम्नाय को नही छोड़ा।

स्पष्ट है कि इस अन्वय (ज्ञाति) के श्रावककुल उक्त प्रदेश से निकलकर बुन्देलखण्ड मे जा बसे है, सो उनका वहाँ से निकलना अकारण नही है। उसके पीछे एक मुख्य कारण आजीविका न होकर सांस्कृतिक ही है। जब उन्होंने देखा कि राज्याश्रय पाकर श्वेताम्बर कुलों का वहाँ प्रभाव बढ़ने लगा है और दिगम्बरों का अपमान होने लगा है, तब उन्हें विवश होकर अपनी आम्नाय की रक्षा के लिये वहाँ से धीरे-धीरे निकलने के लिये बाध्य होना पड़ा।[१] यही कारण है कि इस अन्वय के नामकरण में "प्राग्वाट" या "पोरवाड", "परवाड़" या "पुरवार" शब्द का प्रयोग न किया जाकर इसे "पौरपाट" या "पौरपट्ट" कहा गया है।

"पौरपाट" या "पौरपट्ट" में "पौर" शब्द सम्भवतः "पुर" या "पोरवा" नगर के आधार पर न रखा जाकर "पुरवा" शब्द से इसकी निष्पत्ति हुई है। "पुरा" का अर्थ "पुराना" होता है। इससे मूलसंघ का बोध होता है तथा "पाट" या "पट्ट" शब्द परम्परागत अधिकार विशेष को सूचित करता है। इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि "पौरपाट"

---

१. देखो, वादिदेवसूरि और कुमुदचन्द्र के मध्य हुये वाद की कल्पित कथा, प्रा० इ०, पृ० २२० ।

या "पौरपट्ट" (परवार) अन्वय सदा से अर्थात् अपने संगठन के काल से मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय को मानने वाला ही रहा है। यदि यह कहा जाय कि इस अन्वय ने ही मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय को जीवित रखा है तो कोई अत्युक्ति नही मानी जानी चाहिए। इसलिये सात-आठ सौ वर्ष पूर्व के एक चन्द्रकीर्ति नाम के मुनि या भट्टारक ने मूलसंघ का उपहास करते हुये लिखा है—

> मूल गया पाताल मूल नयने नहि दीसे।
> मूलहि सद्व्रत भंग किम उत्तम होसे॥
> मूल विण "परवार" तेने सब काढ़ो।
> श्रावक-यतिवर धर्म तेह किम आवे आढ़ो॥
> सकल शास्त्र निरखतां यह संघ दीसे नहीं।
> चन्द्रकीर्ति एवं वदति मोर पीछ कोठे कहीं॥

चन्द्रकीर्ति नाम के मुनि या भट्टारक बारहवी-तेरहवी शताब्दी में हो गये हैं, जो नियम से बीसपन्थी (काष्ठासंघी) थे। उनके द्वारा किया गया यह मूलसंघ-कुन्दकुन्द आम्नायी "परवार" अन्वय (ज्ञाति) के प्रति भयंकर उपहास है।

उनकी समझ से उन्हे कहीं भी 'मूलसंघ' दिखाई नही दिया। वह पाताल में चला गया। वे यह मानते है कि [बीसपन्थी आम्नाय की] व्रत-क्रिया समीचीन मूलसंघ मे कहीं भी नहीं दिखाई देती, इसलिये वह (मूलसंघ) उत्तम कैसे हो सकता है? मूलसंघ की पीठ पर (अर्थात् उसे स्वीकार करने वाला) "परवार" अन्वय ही है। उसके द्वारा ही "मूलसंघ कुन्दकुन्द" आम्नाय की यह सब परम्परा चालू की गयी है। परन्तु श्रावक धर्म और यति धर्म के विरोध में यह कैसे खड़ा हो सकता है? पूरे शास्त्रों को देखने पर यह "मूलसंघ" कहीं भी दिखाई नहीं देता। इसके साधुओं ने जो मोरपीछी ले रखी है, उसका उल्लेख भी कहीं शास्त्रों में नहीं मिलता।

विचारकर देखा जाय तो यह एक ऐसा उल्लेख है जिसमे यह स्पष्ट हो जाता है कि "परवार" अन्वय के लिये जो "पौरपाट" या "पौरपट्ट" कहा गया है वह सार्थक ही है तथा ऐतिहासिक भी है। इससे हम जान लेते हैं कि आज के "परवार" अन्वय को प्रारम्भ में ही

"पौरपाट" नाम से क्यों सम्बोधित किया गया और हमारे पूर्वजों ने इस नाम को क्यों अपनाया ? प्राग्वाट वंश के अन्तर्गत जितने भी भेद-प्रभेद दिखाई देते हैं, उनके नामकरण से इस अन्वय का जो भिन्न नामकरण किया गया है, उसका कारण भी यही है। अर्थात् उससे इस (परवार) अन्वय की अपनी क्या विशेषता है, उसी विशेषता को सूचित करने के लिये आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व से ही इस अन्वय के एकमात्र मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय का उपासक होने से इस अन्वय को ऐतिहासिक पट्टावलियों, मूर्तिलेखों और प्रशस्तियों मे "पौरपाट" या "पौरपट्ट" कहा गया है।

इस प्रकार मेवाड़ के प्राग्वाट प्रदेश से लेकर पोरबन्दर तक के प्रदेश से आकर बुन्देलखण्ड में बसे हुये "परवार" श्रावककुलों का पूर्व में क्या नाम था, उस नामकरण का मूल कारण क्या था, उस प्रदेश से निकलकर बुन्देलखण्ड में क्यों अपने आवास का स्थान निश्चित करना पड़ा, इत्यादि प्रश्नों का समाधान उक्त कथन से हो जाता है।

१२. गुजरात प्रदेश से बहिर्गमन :

"**प्राग्वाट इतिहास**" के अध्ययन से पता चलता है कि वहाँ के राजाओं से मिलकर श्वेताम्बरों ने गुजरात से दिगम्बरों का निष्कासन कराया था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि श्वेताम्बर विद्वानों को उस समय राज्याश्रय प्राप्त था। तत्कालीन गुर्जर सम्राट् सिद्धराज जयसिंह की सहायता से तथा सम्राट् कुमारपाल की सदाशयता से लाभ उठाकर विद्वत् समाज ने युग-युगों तक दिगम्बरों को अपमानित किया। वास्तव मे प्राग्वाट वंश मे उत्पन्न धर्मबन्धुओं ने श्वेताम्बर मत का पालन करने के लिए या फिर प्रदेश से निष्कासित करने के लिए बड़े भारी षड्यन्त्र का व्यूह रचा था। कहा जाता है कि गुर्जर सम्राट् सिद्धराज की राजसभा मे वि० सं० ११८१ वैशाखी पूर्णिमा के दिन दिगम्बराचार्य वादीचक्रवर्ती कुमुदचन्द्र को वाद-विवाद में परास्त कर वादी देवसूरि ने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। उनके सम्बन्ध में लिखते हुए हेमचन्द्राचार्य कहते है—यदि देवसूरि रूपी सूर्य ने कुमुदचन्द्र के प्रकाश को नहीं हरा होता, तो संसार मे कोई भी श्वेताम्बर साधु कटि पर वस्त्र धारण नहीं

कर सकता।[1] इस उल्लेख में तथ्य व सचाई कितनी है, यह तो हम नहीं जानते; किन्तु इतना अवश्य है कि दसवीं शताब्दी के पश्चात् गुजरात प्रदेश में स्थित दिगम्बरों और श्वेताम्बरों मे जबर्दस्त विरोध होने लगा था। विरोध की स्थिति में तो दिगम्बर शान्त बने रहे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि दबाव डालकर हमें श्वेताम्बर बनाया जा रहा है या फिर यहाँ से भगाया जा रहा है, तो उस प्रदेश को छोड़-छोड़ कर अन्य प्रान्तों में चले गये। वाद की इस उल्लिखित घटना से भी यह तथ्य उभर कर सामने आता है। **"प्राग्वाट इतिहास"** के लेखक के शब्दों में—"विक्रम की दसवी, ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दियों में जैनधर्म की दोनों प्रसिद्ध शाखा—श्वेताम्बर एवं दिगम्बर में भारी कलहपूर्ण वातावरण रहा है। बढ़ते-बढ़ते वातावरण इतना कलुषित हो गया कि एक शाखा दूसरी शाखा को सर्वथा उखाड़ने का प्रयत्न करने लगी।"[2] अधिक न लिखकर इतना ही लिखना पर्याप्त है कि आन्तरिक कलह के कारण ही प्राग्वाट वंश के दिगम्बर जैन गुर्जर प्रदेश को छोड़कर अन्य प्रान्तों में विस्थापित हो गये। क्योंकि उनको दक्षिण भारत का इतिहास विदित था। जो क्रूरता और दमन का चक्र शैव राजाओं ने भारत के दक्षिण प्रदेशों मे चलाया था, उसी की पुनरावृत्ति गुर्जर प्रदेश में प्रारम्भ हो गई थी। यही कारण था कि परवार, पुरवार तथा पोरवाड एवं पोरवाल पोरबन्दर से लेकर मेदपाट तक विस्तृत भू-भागों के अन्तस्थ प्रान्तों में (सीमा से लगे हुए प्रदेशों में) तथा अन्य प्रान्तों में बस गये। मध्यभारत शताब्दियों से शान्त प्रदेश रहा है। इसलिये संकटापन्न जाति को इस मध्य देश में विस्थापित होने में विशेष सुविधा रही। जहाँ तक ऐतिहासिकता का सम्बन्ध है तो यह अवश्य ही विचारणीय है कि वि० सं० ११८१ मे स्त्री-निर्वाण विषय पर वाद-विवाद हुआ।

वाद का निर्णय देने में सहायता करने वाले सभासद महर्षि, उत्साह सागर और राम निश्चित हुए। श्वेताम्बराचार्य को महाकवि श्रीपाल, महापण्डित भानु एवं उदीयमान प्रसिद्ध विद्वान् हेमचन्द्राचार्य

१. दौलत सिंह लोढ़ा : प्राग्वाट इतिहास, प्रथम भाग, १९५३, पृ० २१४।

२. दौलतसिंह लोढ़ा : प्राग्वाट-इतिहास, प्रथम भाग, १९५३; पृ० २१९ से उद्धृत।

सहायता कर रहे थे। दूसरी ओर तीन केशव दिगम्बराचार्य की सहायता कर रहे थे। वाद का प्रारम्भ करते हुए देवसूरि ने अनेक ज्ञानिनी और अनेक सती स्त्रियों के उदाहरण प्रस्तुत कर ऐतिहासिक ढंग से स्त्री मुक्ति के सम्बन्ध में पूर्वपक्ष प्रस्तुत किया। किन्तु दिगम्बराचार्य श्वेताम्बराचार्य के इस वक्तव्य को सुनकर निस्तेज पड़ गये। ऐतिहासिक ढंग से प्रस्तुत किये गये उनके वक्तव्य का निरसन नहीं कर सके और इस प्रकार इस वाद मे **"प्राग्वाट इतिहास"** के अनुसार श्वेताम्बर मत की विजय हुई। उक्त ग्रन्थ मे लिखा है कि देवसूरि ने कुमुदचन्द्र के साथ सद्व्यवहार किया (पृ० २१३)। परन्तु पृ० २२० के अनुसार दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र को एक चोर के समान उनका तिरस्कार करके पत्तनपुर से बाहर निकाल दिया।

इस विषय में यह श्वेताम्बर ग्रन्थों का कथन है। किन्तु इसमें कितनी ऐतिहासिकता है यह अवश्य ही विचारणीय है। दिगम्बर परम्परावादी कुमुदचन्द्र अवश्य हुए है। वे चतुर्विध पाण्डित्य चक्रवर्ती थे और श्री माघनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के पुत्र थे। उन्होंने अपना परिचय देते हुए **प्रतिष्ठाकल्प** के कनाडो भाषा में लिखे गये टिप्पण में लिखा भी है। यथा—

श्रीमाघनन्दिसिद्धान्तचक्रवर्तितनूभवः।
कुमुदेन्दुरहं वच्मि प्रतिष्ठाकल्पटिप्पणम्॥

परन्तु उनका समय १४वीं शताब्दी का प्रथम या द्वितीय पाद है, क्योंकि इनके पिता माघनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती का समय ई० सन् १२६५ वि० सं० १३२२ निश्चित है। और श्वेताम्बर लेखकों के अनुसार यह वाद वि० सं० ११८१ में हुआ था। इस प्रकार वाद के और कुमुदचन्द्र के मध्य लगभग १५० वर्ष का अन्तर पड़ता है। इसलिये यहाँ ऐसा समझना चाहिये कि या तो श्वेताम्बराचार्य वादिदेव के समय में चतुर्विध पाण्डित्य चक्रवर्ती कुमुदचन्द्र हुए हैं या फिर कुमुदचन्द्र के समय में वादिदेव हुए हैं या फिर इन दोनों का एक समय न होने से यह वाद हुआ ही नहीं। केवल अपने सम्प्रदाय में दिगम्बरों के प्रति अनास्था उत्पन्न करने के लिये श्वेताम्बर लेखकों द्वारा दिगम्बर और श्वेताम्बरों

के मध्य वाद हुआ और उसमें वादिदेवसूरि ने विजय प्राप्त की, ऐसा मनगढ़न्त उल्लेख किया गया है।

यहाँ दो बातें अवश्य ही विचारणीय हैं। एक तो यह कि यदि वाद हुआ है तो सिद्धान्त के आधार पर न होकर वाद में ऐतिहासिक घटना को आधार क्यों बनाया गया। दूसरे कर्णवती मे वाद न होकर अनहिलपुर पत्तन मे वाद को मूर्तरूप क्यों दिया गया। जबकि कुमुदचन्द्र जानते थे कि वर्तमान मे गुजरात का राजा श्वेताम्बरों का पक्षधर है। उसके पास तक श्वेताम्बर आचार्यो की पहुँच है। साथ ही उसका महामात्य भी श्वेताम्बर आम्नाय को मानने वाला ही है, या उसकी अपने पक्ष के समर्थन की दृष्टि नही थी। ऐसी अवस्था मे उस नगर में जाकर वाद में विजय पाना कैसे सम्भव है। इसलिए एक तो यह निष्कर्ष निकलता है कि यह वाद हुआ ही नहीं। दूसरे हुआ भी है तो दिगम्बर आचार्य को छला गया है। वास्तव मे देखा जाय तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय के या देवसूरि के कार्य ही ऐसे थे जिनके कारण जैन धर्म न केवल कलंकित हुआ, अपितु देवसूरि का पतन भी हुआ। जिसे इनके कारनामों को जानना हो उसे कन्हैयालाल मुंशी द्वारा लिखित **"गुजरातनो नाथ"** पुस्तक पढ़नी चाहिये। इसी प्रकार इन्ही के द्वारा लिखी गई **"पाटननी प्रभुता"** पुस्तक भी पढ़नी चाहिये। इसके पढ़ने से ही ज्ञात हो जायेगा कि देवसूरि का जीवन कैसा था और उनके गुरु आनन्दसूरि अपनी मोक्षमार्ग की भूमिका को छोड़कर राजकारण मे पड़कर कैसे अमानुषिक कार्य करने में लगे हुये थे। एक स्थल पर दूसरे से बातचीत करते हुए वे (आनन्दसूरि) कहते है—"मारे हाथे जिनभगवानना शत्रुओं ठेकाने थवानाछे"। दूसरी जगह वे कहते हैं—"अमारा श्रावको ए पाठनथी कंटाली चन्द्रावती स्थाप्युं अनेअहीया पण तेमनु चाले तो राजाने उठाडी महाजनानुं राज्यस्याप्युं।"[1] आदि। ये है आनन्दसूरि के विचार। देवसूरि इनसे भी गये बीते थे। उसमें उदा सेठ का इन्हें बल मिला हुआ था। ये भी इसी विचार के थे। इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह वाद एक नाटक है। जैसे वंसी में अन्न के लोभ से मछली फँसती रहती है वैसे ही बाद मे न्याय के लोभ से कुमुदचन्द्र को देवसूरि ने फँसाया। उद्देश्य इतना ही था कि किसी प्रकार पाटन और उसके आस-पास के प्रदेश से

१. पाटननी प्रभुता, पृ० १३, २६।

दिगम्बरों का निष्कासन किया जाय। जिनको परिस्थिति वश वहाँ रहना पड़े उनका श्वेताम्बरीकरण किया जाय।

यह तो इतिहास की साक्षी से स्पष्ट ही है कि शाखाबन्ध परवार (पौरपाट) तो बहुत कुछ वहाँ से निकल आये थे और धीरे-धीरे वहाँ से निकलकर "चन्देरी" और उसके आस-पास के ग्रामों में बसते रहे हैं। उनके वहाँ से आने का यह क्रम १६वीं शताब्दी तक चलता रहा है। इस प्रकार चन्देरी को केन्द्र बनाकर शाखाबन्ध परवार बुन्देलखण्ड में बस गये थे। उनमें जो सोरठिया परवार बच गये थे उन सभी का ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे श्वेताम्बरीकरण हो गया। अन्यथा सोरठिया परवारों के कुटुम्ब वहाँ (गुजरात में) अब भी पाये जाने चाहिये। इनमें से बहुत से भाई अजैन बन गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि प्रतिमालेखों और ग्रन्थ-प्रशस्तियों के देखने से यही निश्चय होता है कि सोरठिया परवार श्वेताम्बरों के इस मायाजाल से कभी भी नहीं निकल सके और उनका श्वेताम्बरीकरण होकर रह गया।

यह हमारी कोरी कल्पना नहीं है। श्वेताम्बर भाई अपने यहाँ के पाये जाने वाले साहित्य में स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि "राज्याश्रय पाकर दिगम्बरों को श्रीपुरपत्तन से निष्कासित कर दिया गया था।" इसका अर्थ है कि गुजरात और सौराष्ट्र में जितने पुराने दिगम्बर थे या तो उन्हें वहाँ से भागने की मुहिम चालू की गई, या उनका धीरे-धीरे श्वेताम्बरीकरण कर लिया गया।

कविवर बखतराम के कथन के अनुसार परवारों के एक भेद सोरठिया का और क्या हुआ होगा। यही गति तो हुई होगी। मन्दिर-मार्गी श्वेताम्बरों की यह प्रवृत्ति इस समय भी चालू है। जहाँ उनका वश चलता है दिगम्बर मन्दिरों को और धर्म स्थानों में पाये जाने वाले चिह्नों को या तो वे नामशेष कर देते हैं या उनका श्वेताम्बरीकरण कर लिया जाता है। यह बात तो छोड़ो। केसरिया जी और अन्तरीक्ष का ही मन्दिर लो, वहाँ पर उपलब्ध सभी मूर्तियाँ दिगम्बर हैं, परन्तु उनका प्रतिदिन श्वेताम्बरीकरण कर लिया जाता है। यह क्या है? आततायीपन नहीं है तो और क्या है? ऐसे मन्दिर अन्य भी दिखाये जा सकते हैं।

दिगम्बरों को श्रीपुरपत्तन से निष्कासित कर दिया गया था, इसे स्वीकार करते हुये मुनि जिनविजय ने **"कुमारपाल प्रतिबोध"** की प्रस्तावना पृष्ठ ३-४ में दूसरे ग्रन्थ से इस वचन को उद्धृत किया है—

> **"वादिदेवसूरिभिः श्रीमदनहिलपुरपत्तने जयसिंहदेवराजस्य राजसभायां दिगम्बरचक्रवर्तिनं कुमुदचन्द्राचार्यं वादे निर्जित्य श्रीपत्तने दिगम्बरप्रवेशो निवारितः। तथा वि० सं० १२०४ वर्षे फलवर्धिग्रामे।"**

इसी बात को स्वीकार करते हुए श्री लोढ़ा जी ने **"प्राग्वाट इतिहास"** के पृष्ठ २१२-२१३ में लिखा है कि—

"कर्नाटकवासी वादी कुमुदचन्द्र को "देवसूरि" ने वाद में हरा दिया। फिर भी परास्त होकर कुमुदचन्द्र ने अपनी कुटिलता नहीं छोड़ी। मन्त्रादि का प्रयोग कर वे श्वेताम्बर साधुओं को कष्ट पहुँचाने लगे। अन्त में उनको शान्त नहीं होता हुआ देखकर वादी देवसूरि ने अपनी अद्भुत मन्त्रशक्ति का उनके ऊपर प्रयोग किया। वे तुरन्त ही ठिकाने आ गये और पत्तन छोड़कर अन्यत्र चले गये।"

आगे उसी ग्रन्थ के पृष्ठ २२४ में लिखा है कि—"अगर दिगम्बराचार्य हार जायेंगे तो एक चोर के समान उनका तिरस्कार करके पत्तनपुर से बाहर निकाल दिया जायेगा।"

इस समय बुन्देलखण्ड मे जो पौरपाट (परवार) अन्वय के कुटुम्ब रह रहे हैं, उनका मूल निवास स्थान गुजरात और मेवाड़ का प्राग्वाट प्रदेश ही है, इसमें कोइ सन्देह नही है। वहाँ से इनके स्थानान्तरित होने का मूल कारण आजीविका आदि नहीं है, किन्तु इसका मूल कारण श्वेताम्बर और उनके साधुओं का धार्मिक उन्माद ही है, जिसके कारण अपनी आम्नाय की रक्षा के लिये इनको उस स्थान को छोड़कर यहाँ चन्देरी नगर को मुख्य कर उसके आसपास बसने के लिये बाध्य होना पड़ा।

१३. परवारों के भेद-प्रभेद :

१. अब आगे परवारों के भेदों के विषय में विचार किया जाता है। कविवर बखतरामकृत **"बुद्धि विलास"** के पृष्ठ ८६ में **"परवार"** अन्वय

को "पुरवार" कहकर उसकी सात खाँपें (भेद) बतलाई गई हैं। यथा—

सात खांप पुरवार कहाये, तिनके तुमको नाम सुनावें ॥८६॥
अठसख्या पुनि है चौसख्या, सेहसरडा फुनि है दो सख्या।
सोरठिया अर गांगड़ जानो, पद्मावत्या सप्तमा मानों ॥८७॥

परवार अन्वय का एक नाम कवि के अध्ययन के अनुसार "पुरवार" भी है। इसके सात भेद हैं—१. अठसखा, २. चौसखा, ३. सेहसरडा (छै सखा), ४. दो सखा, ५. सोरठिया, ६. गांगड़ और ७. पद्मावती।

२. '**प्राग्वाट इतिहास**' की भूमिका पृष्ठ १४-१५ पर स्व० श्री अगरचन्द जी नाहटा ने कुछ काट-छाँट के बाद वैश्यों की चौरासी जातियों का नाम निर्देश करते हुये एक सूची दी है, जिसमें "परवार" अन्वय के ये छह नाम दृष्टिगोचर होते हैं—१. अठसखा, २. चौसखा, ३. छहसखा, ४. दो सखा, ५. पद्मावती पोरवाल और ६. सोरठिया। उनमें एक भेद का नाम कुण्डलपुरी है। यदि इसे गांगड़ के स्थान पर "परवार" अन्वय के भेदों में गिन लिया जाता है तो "परवार" अन्वय के सात भेद हो जाते हैं।

३. डॉ० विलास संगवे कोल्हापुर ने अपनी "**जैन कम्युनिटी : ए सोसल सर्वे**" पुस्तक मे प्रोफेसर एच० एच० विल्सन के अनुसार गुजरात प्रदेश और दक्षिण प्रदेश से लेकर चार सूचियाँ प्रस्तुत की हैं। उनमें से पी० डी० जैन के अनुसार परवार अन्वय के पाँच भेद दृष्टिगोचर होते हैं—१. परवार, २. पद्मावती पुरवाल, ३. सोरठिया परवार, ४. दसरा परवार, ५. माली परवार।

४. प्रो० एच० एच० विल्सन के अनुसार १. परवार, २. सोरठिया और ३. गंगार्ड—ये तीन नाम दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें एक ज्ञाति का नाम बहुरिया दिया है। परवार अन्वय के १४४ या १४५ मूलों में एक मूल का नाम बहुरिया है। सम्भवतः बहुरिया अन्वय के अर्थ में ही १४४ मूलों में बहुरिया मूल आया है। इससे लगता है कि बहुत से मूल जाति के अर्थ में बदल गये हैं और उससे एक स्वतन्त्र अन्वय (ज्ञाति) बन गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

५. गुजरात की सूची में न तो "परवार" अन्वय का नाम है और न पोरवाल अन्वय का ही नाम है। "पुरवार" यह भेद भी उसमें दृष्टिगोचर नहीं होता। एक अन्वय का नाम "तिपौरा" अवश्य आया है। सम्भवतः इससे पोरवाड़, पौरपट्ट और पुरवारों का ग्रहण किया गया है।

६. दक्षिण प्रदेश में प्रचलित सूची मे परवार अन्वय के अर्थ में परवाल नाम आया है तथा उसमे अठसखा के स्थान में अष्टवाट और सोरठिया के स्थान में सारडिया ये नाम दृष्टिगोचर होते है। इसमें एक अन्वय का नाम "पवारछिया" भी आया है।

७. "जाति-भास्कर" में मध्य प्रदेश की चौरासी ज्ञातियों के नाम दिये हैं। उसमें परवार, गोलापूर्व और गोलाराड आदि के नाम उपलब्ध नहीं होते।

इस प्रकार इन सूचियों पर दृष्टिपात करने से ऐसा लगता है कि संकलन करते समय जिन्हे जो नाम उपलब्ध हुये उन्हे उन्होंने अपनी सूची में सम्मिलित कर लिया।

इन भेदों के विवरण पर ध्यान देने पर वर्तमान मे इन भेदो का क्या हुआ, यहाँ पर यही विचारणीय है—

१. **अठसखा परवार**—इस समय मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय के अन्तर्गत सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण को मानने वाले बुन्देलखण्ड और अन्य प्रदेशों मे जितने "परवार" अन्वय के श्रावककुल उपलब्ध होते हैं, वे सब अठसखा परवार है।

२. **छहसखा परवार**—छहसखा परवार कुलों का क्या हुआ, कुछ पता नही चलता। सम्भवतः उन्हें अठसखा परवार कुलों में ही विलीन कर लिया गया होगा, ऐसा अनुमान होता है। हम कई दशकों पूर्व जिन-मन्दिरों के मूर्तिलेख और शास्त्रों के अन्त मे पाये जाने वाले प्रशस्तिलेख लेने के लिये स्व० भाई चम्पालाल जी चन्देरी के साथ सिरौंज (सरोजपुर) गये थे, वहाँ के बड़े मन्दिर में एक मूर्ति ऐसी अवश्य देखी जिसके पादपीठ पर प्रतिष्ठाकारक के नाम के आगे "छैसखा" पद अङ्कित था। परवार अन्वय का यह "छैसखा" भेद इस समय नामशेष हो गया है।

३. चौसखा परवार—इस समय इनका अस्तित्व अवश्य है, पर वे किसी कारणवश तारणपंथी हो गये हैं। एक-दो बार उनको मूलधारा में लाने का प्रयत्न अवश्य हुआ है। वे मूलधारा में सम्मिलित होने के लिये उद्यत भी थे, पर कुछ प्रमुख भाइयों की अदूरदर्शिता के कारण ऐसा नहीं हो सका। इतना अवश्य है कि अब दोनों ओर से वह कट्टरता तो नहीं देखी जाती, इसलिये सम्भव है कि कभी इनमें एकरूपता हो जाय।

ई० सन् १९२८ में जब बीना-इटावा की श्री नाभिनन्दन दि० जैन पाठशाला में हम प्रधानाध्यापक होकर गये थे, उस समय एक चौसखा परवार वहाँ रहता था। उसकी इच्छा थी कि हमें पूरे समाज में मिला लिया जाय। तब समाज ने उससे एक प्रीतिभोज लेकर उस कुटुम्ब को अष्टसखा परवार समाज में मिला लिया था। इससे मालूम पड़ता है कि परवार समाज के जितने भेद हैं, उनमें नाममात्र की एकरूपता होने पर भी उनमें परस्पर बेटी-व्यवहार तो होता ही नहीं था, कच्चा खान-पान भी नहीं होता होगा। इसके फलस्वरूप यह परवार समाज उत्तरोत्तर क्षीण होता गया तथा इसके कई भेद नामशेष हो गये। इससे सम्बन्धित अन्य जानकारी हेतु अगला शीर्षक १४ गढ़ासाव देखें।

४. दोसखा परवार—जितने जिन-मन्दिरों के हमने मूर्तिलेख लिये है, उनमें ऐसी एक भी प्रतिमा नहीं मिली, जिससे इस उपभेद का क्या हुआ, यह समझा जा सके। हाँ, तारण-समाज का संगठन जिन भेदों के आधार से हुआ है, उनमें एक अन्वय का नाम दोसखा भी है। इससे हम जानते हैं कि परवार समाज के अन्तर्गत चौसखा परवारों को जिस प्रकार मूल आम्नाय छोड़कर तारण-समाज को स्वीकार करने लिए बाध्य होना पड़ा, वही मार्ग दोसखा परवारों को भी अपनाना पड़ा होगा। यह प्रसन्नता की बात है कि इस समय परवार समाज में चौसखा परवारों के समान दोसखा परवारों का किसी तरह अस्तित्व तो बना हुआ है।

५. गांगड़ परवार—परवार समाज के जो १४४ या १४५ मूर (ल) प्रचलित हैं, उनमें एक मूल पद्मावती मूल के समान "गांगरे" मूल भी है। इस मूल का गोत्र गोइल्ल है। ऐसा लगता है कि "गांगड़ परवार"

इसी मूल के होने चाहिये। पहले यह एक स्वतन्त्र उपजाति बनी। बाद में समझा-बुझाकर उसे अठसखा परवार समाज में विलीन कर लिया गया और उपजाति के नाम के आधार पर इसे "गांगड़" मूल नाम दे दिया गया प्रतीत होता है और बोलचाल की भाषा में बदलकर यह "गांगरे" रह गया है।

६. **पद्मावती परवार**—परवार समाज के जो १४४ मूल हैं, उनमें एक मूल का नाम पद्मावती मूल भी है। इसका गोत्र वासल्ल है। पूरे समाज से ये कब अलग पड़ गये? इस विषय मे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः इस समाज में बीसपंथ आम्नाय के उपासक कुटुम्ब भी पाये जाते है, इसलिये ये मुख्य धारा से अलग पड़ गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। इनमें जैन-अजैन दोनों प्रकार के परिवार पाये जाते हैं। सुनते हैं कि इनमें परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार भी होता है।

७. **सोरठिया परवार**—सोरठिया परवार वे कहलाये जो मुख्यता से सौराष्ट्र प्रदेश मे निवास करते रहे। परन्तु सौराष्ट्र में जितने भी श्रावककुल इस समय पाये जाते है, वे सबके सब श्वेताम्बर हो गये हैं। इसलिये इस उपभेद का श्वेताम्बरीकरण हो गया है, यह निश्चित जान पड़ता है। कानजी स्वामी के कारण जो श्वेताम्बर दिगम्बर हुये हैं, उनमें इस भेद के कुछ श्रावकों ने दिगम्बर परम्परा स्वीकार की हो तो अलग बात है।

इस प्रकार परवार अन्वय के उपभेदों के विषय मे संक्षेप में ऊहापोह किया। यहाँ पर यह बात विशेष कहनी है कि जिस प्रकार अन्य जातियों में कोई उपभेद नहीं देखा जाता, वह स्थिति पौरपाट अन्वय की नहीं रही है।

इस अन्वय में अनेक उपभेद थे। परन्तु उनमें एक ज्ञातिपने का व्यवहार पहले कभी नहीं रहा। इससे इस ज्ञाति की जो हानि हुई है इसकी कल्पना करने मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

प्रारम्भ में हम यह कल्पना भी नहीं करते थे कि इस अन्वय के भीतर अठसखा के सिवाय अन्य और भी भेद रहे हैं। किन्तु इन भेदों को ध्यान में लेने से अवश्य ही हम यह जान पाये है कि इस मूल पौरपाट

अन्वय की वट वृक्ष के समान अनेक शाखाएँ और उपशाखाएँ फैली हुई हैं। गुजरात और मेवाड़ तो इनकी मूल जन्मभूमि ही है। वहाँ से अध्यात्म के अनुसार मूलसंघ के अनुयायी होने के कारण निकलकर पहले के मालवा और वर्तमान बुन्देलखण्ड "चन्देरी" (चन्द्रपुरी) नगर को केन्द्र बनाकर अपने आम्नाय की रक्षा करते हुये यहाँ आकर इस अन्वय के श्रावक-कुल बसते गये। अब तो ऐसी स्थिति है कि ऐसा कोई प्रदेश नहीं है, जहाँ इस अन्वय के श्रावक-कुल नही पाये जाते हों। भारतवर्ष के सभी प्रदेशों में ये आजीविका आदि कारणों से जाकर बसे है तथा बसते जा रहे हैं। और यह भी सम्भव है कि भविष्य में बसते जायेंगे। विदेशों में भी इस अन्वय के श्रावक कुल पाये जाते है। उनमें में से कई श्रावक-कुल अपने देश में लौट आये हैं और कई श्रावक-कुल वहीं के निवासी हो गये हैं।

१४. गढ़ासाव :

दिल्ली के प्रथम लोदी सुल्तान "बहलोल" (१४५१-८८ ई०) के गढ़ासाव उच्च पद पर स्थित एक राजकर्मचारी थे। वे कटनी के पास स्थित पुष्पावती[1] (बिलहरी) ग्राम के निवासी थे। सम्भवतः क्षेत्रीय शासन में उनकी नियुक्ति सागर नगर में हुई थी। उनकी धर्मपत्नी का नाम "वीरश्री" था। उनकी कोख से ही सुपुत्र तारण-तरण स्वामी का वि० सं० १५०५ में जन्म हुआ था, जो चौसखा परवार थे। कालान्तर में चौसखा परवार और दोसखा परवार उनके अनुयायी हो गए थे। मूल में **"समयसार"** का अध्ययन करने वाले को समैया कहते हैं। तारण-तरण सन्त के नाम से प्रसिद्ध उनके संघ में गोलालारे, अयोध्यावासी जैन, चरनागरे आदि सम्मिलित हो गए थे। पण्डित तथा कवि भी उनके अनुयायी हो गए थे।

टीकमगढ़ के पास "कारी" ग्राम में भी उनको बुलाया जाता था। बुन्देलखण्ड में उनके समय से लेकर आज तक अठसखा परवारों की प्रबलता रही है। उस समय चौसखा परवारों और दोसखा परवारों

---

१. इस ग्राम में फूल बहुतायत से मिलते हैं इसलिए इसका नाम पुष्पावती सार्थक है। वहाँ के जीवन में कमल बसा हुआ है। शिलापट्ट पर उकेरा हुआ कमल भी वहाँ दिखाई देता है।

को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। समाज का उनके साथ भोजन-पान का व्यवहार नहीं था। केवल इसी कारण उन लोगों ने चौसखा तारण-तरण स्वामी को अपना नेता मान लिया और अठसखा परवारों से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। वर्तमान में अठसखा परवारों का उनके साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित हो गया है। रोटी-बेटी सम्बन्ध भी होने लगा है। मेरी जानकारी के अनुसार पहला विवाह-सम्बन्ध बैरिस्टर जमनालाल जी की सुपुत्री का श्रीमान् सेठ भगवानदास जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री डालचन्द जैन (पूर्व सांसद) के साथ हुआ था।

तारण तरण स्वामी के साहित्य में अध्यात्म की प्रधानता लक्षित होती है। उन्होंने जितने भी ग्रन्थ रचे वे सभी अध्यात्म-प्रधान हैं।

उन दिनों चन्देरी और सिरोंज के भट्टारकों के स्वाध्याय में **"समयसार"** आदि अध्यात्म-ग्रन्थों की प्रसिद्धि थी। उस समय तारण-तरण सात-आठ वर्ष के बालक थे। एक दिन वे अपने मामा के घर सिरौंज जा रहे थे। मार्ग में भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति से भेंट होने पर इनकी प्रार्थना पर बालक को चन्देरी भेज देने की स्वीकृति प्रदान कर दी। बालक तारण-तरण ने वहाँ जाकर भली-भाँति विद्याभ्यास कर **समयसार, नियमसार** आदि आध्यात्मिक ग्रन्थो का अध्ययन किया। अतः बालक के जीवनपर अध्यात्म की गहरी छाप पड़ी।

उन दिनों वहाँ पर अठसखा परवारों का प्रभावशाली वातावरण निर्मित हो गया। इसीलिए श्रीजिनमन्दिर में चौसखा और दोसखा परवारों में छेड़छाड़ होती थी—यह देखकर उनके मन में गहरी प्रतिक्रिया हुई। कालान्तर मे उन्होंने समाज को इस ओर प्रेरित किया कि श्री जिनमन्दिर में जाकर जिनदेव के दर्शन करने मात्र से सदाचार की हानि नही हो जाती। लेकिन "जहाँ अपमान होता है वहाँ क्यों जाना ?" इस विचार के गहराने पर वे मन्दिर मार्ग से दूर चले गये। वास्तव में वे मन्दिर मार्ग के सर्वथा विरोधी नहीं थे। उनके द्वारा लिखित श्रावकाचार से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वामी तारणतरण द्वारा लिखित तीन बत्तीसियाँ प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक बत्तीसी के अन्त में जो श्लोक मिलता है उससे भी यह निश्चय हो जाता है कि वे व्यवहार के सर्वथा विरोधी नही थे। अपने **"श्रावकाचार"** मे उन्होंने देह के भीतर स्थित

आत्मा का जो वर्णन किया है, उससे यह पता चलता है कि वे असद्भूत व्यवहार का सर्वथा निषेध नहीं करते थे।

स्वामीजी के लिखे हुए शास्त्र कागज पर उपलब्ध होते हैं। उनको आगम कहना असद्भूत व्यवहारनय है। उनमें लिखने की स्याही और लिखने की कलम कहना असद्भूत व्यवहार है। इसी प्रकार प्रतिमा भले ही धातु या पाषाण की हो, किन्तु जैसे इन ग्रन्थों को स्वामी तारणतरण द्वारा लिखित कहा जाता है, वैसे ही जिनप्रतिमा को चौबीस तीर्थङ्कर कहा जाता है। जैसे विवक्षित अक्षरों में जिनदेव द्वारा बोले गये वचनों की कल्पना कर लेते हैं, वैसे ही जिनप्रतिमा में जिनदेव की कल्पना करके उनको जिनदेव कहा जाता है। जैसे विवक्षित अक्षरों में आगम की स्थापना कर लेते हैं, वैसे ही विवक्षित आकार वाली प्रतिमा में जिनदेव, गुरु और शास्त्र की स्थापना कर ली जाती है।

प्रायः हम देखते हैं कि जो भाई जिन स्वामी तारणतरण के अनुयायी हैं वे अपने चित्र उतरवाते हैं और बनवाते हैं। वे यह तो कह नहीं सकते कि यह हमारा चित्र नहीं है। अपने बैठकखाने में वे अपने पूर्वजों के और स्वयं अपने चित्र सजाकर रखते हैं; उन्हे मालाओं से अलंकृत करते हैं। ऐसा हमने घर-घर देखा है। इसलिए हम निवेदन करते हैं कि अब समय बदल गया है। परिस्थितिवश जो भूल हुई, उसे भूल जायें और पुरानी परम्परा को स्वीकार कर लें। इसमें कोई हानि नहीं है। जो स्तुतियाँ चैत्यालयों में पढ़ी जाती हैं वे जिनदेव के सामने पढ़ी जायें, यह पद्धति ही ठीक है।

गढ़ासाव जिस परिवार के हैं, उन्होंने अपने गाँव में एक मूर्ति की प्रतिष्ठा करायी थी। वह मूर्ति अब भी वहाँ दूसरे जिनालय मे विराजमान है। इससे मालूम होता है कि श्री स्वामी तारणतरण के पूर्वज मन्दिरमार्गी ही थे। स्वामी तारणतरण को पूरा समाज स्वीकार कर ले—ऐसा उपाय करना चाहिए।

अब तो पूरे परवार समाज में विवाह सम्बन्ध होने लगे हैं। श्रीमन्त सेठ भगवानदास जी के बड़े सुपुत्र डालचन्द जैन जो कि पहले लोकसभा के सदस्य थे और श्री दिगम्बर जैन परिषद् के अध्यक्ष हैं, उनका विवाह बैरिस्टर जमनालाल जी की बड़ी बेटी के साथ हुआ है। इसलिए विवाह-

शादी की जो अड़चन पुराने काल में थी वह दूर हो गयी है। यह तो है ही, परवार समाज के लड़के और लड़कियाँ दिगम्बर जैन समाज के अतिरिक्त अन्य समाज में भी लेने-देने की प्रथा चल पड़ी है।

"**पण्डित पूजा**" में स्वामीजी ने जो गाथा लिखी है, वह इस प्रकार है—

एतत्सम्यक्त्व-पूज्यस्य पूज्यपूजा समाचरेत्।
मुक्तिश्रियं पथं शुद्धं व्यवहार-निश्चय-शाश्वतम् ॥३२॥

इस श्लोक का अभिप्राय सुगम है। इसमें स्पष्ट स्वीकार किया है कि व्यवहार-निश्चय गर्भित मुक्ति का मार्ग है। इसलिए उसे स्वीकार करने मे ही मोक्षमार्ग बनता है; व्यवहार को सर्वथा तिलांजलि देने पर नहीं। यह स्वामी जी की आज्ञा और उपदेश है।

देवालय में जो देव मानता है उसे स्वामी जी ने अवश्य ही अशुद्ध कहा है। उसका अर्थ है कि यह मात्र व्यवहार है। अशुद्ध का अर्थ भी व्यवहार ही है।

वह व्यवहार दो प्रकार का है—सद्भूत व्यवहार और असद्भूत व्यवहार। देवालय में जिनप्रतिमा—"देव" को स्वीकार करना ही असद्भूत व्यवहार है। पोथी मे जिनागम मानना जैसे असद्भूत व्यवहार है, उसी प्रकार प्रकृत मे समझना चाहिए। इसीलिए पुराने पुरुषों ने इस काल में सद्भाव स्थापना का विधान किया था।

जैसे जिनदेव समवशरण मे जिस मुद्रा मे रहते है, वैसी ही मुद्रा में जिनदेव स्थापित है।

पशुओं मे जिनदेव की कल्पना नहीं की जाती, क्योंकि पशुओं में उस मुद्रा के दर्शन नहीं होते। आशा है इस पर तारण-समाज के भाई विचार करेंगे।

१५. नाम परिवर्तन का कारण :

इसमें सन्देह नहीं कि इस समय यह कोई नहीं जानता कि हमारा पुराना नाम "पौरपाट" या "पौरपट्ट" था। हमारे इस नाम में सांस्कृतिक इतिहास छिपा हुआ है। इस समय हम अपने उस पुराने इतिहास को भूल गये है। ऐसा लगता है कि हमारी पहचान अधूरी

है। इस समय ऐसा भी एक नगर है जहाँ सचित्त द्रव्य से पूजा होने लगी है। जिनबिम्ब पर चरणों में गन्ध लगाई जाती हो या सचित्त पुष्प उनकी हथेली आदि में रखा जाता हो, या स्त्रियाँ अभिषेक करने लगी हों तो उसका कौन निषेध करे? हमने जिस अनादि आम्नाय की उपासना की और जिस कारण हमें गुजरात और मेवाड़ से भागकर बुन्देलखण्ड में बसने के लिये बाध्य होना पड़ा, अपने उस पुराने इतिहास को हमने भुला दिया है।

एक नगर ऐसा भी है जहाँ के बड़े मन्दिर की मुख्य वेदी के बगल में एक देवी की स्थापना कर दी गई है। सुनते हैं कि कई भाई-बहिन उसकी पूजा भी करने लगे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? हमें तो लगता है कि ऐसा होने में मूल कारण समाज का अपने सांस्कृतिक तथा पुराने ऐतिहासिक नाम को भुला देना ही है। "पौरपाट" नाम के कारण हमें जिस अपमान का सामना करना पड़ा, उसे याद करके भी हमने "पौरपाट" नाम को नहीं छोड़ा और अपने पुराने नाम को स्वीकार किये हुए हैं।

१६. पुराने नाम का परिवर्तन और उसका कारण :

हमारी समाज का पुराना नाम "पौरपाट" या "पौरपट्ट" था। उसमें परिवर्तन होकर परवार यह नाम प्रचलित हो गया है, इसे हम भूल गये हैं। मूर्तिलेखों में हम कितने रूपों में अंकित किये गये हैं। इसका किंचित् परिचय इस प्रकार है—

१. सोनागिर पहाड़ से उतरते समय अन्तिम द्वार के पास एक कोठे में जो भग्न जिनबिम्ब विराजमान हैं, उनमें से एक जिनबिम्ब के पादपीठ पर यह लेख अङ्कित है—

संवत् ११०१ दकागोत्रे परवार ज्ञातिय।

इससे मालूम पड़ता है कि "परवार" यह नाम बारहवीं शताब्दी में चालू हो गया था। तथा इस लेख में दका मूल को दका गोत्र कहा गया है। जबकि दका यह मूल है, गोत्र नहीं। इसका गोत्र वासल्ल है।

२. विदिशा के बड़े मन्दिर से प्राप्त एक जिनबिम्ब के पादपीठ पर यह लेख अङ्कित है—

संवत् १५३४ वर्षे चैत्रमासे त्रयोदश्यां गुरुवासरे भट्टारक जी श्री महेन्द्रकीर्ति भद्दलपुरे श्री राजारामराज्ये महाजन "परवाल"........ श्री जिनचन्द्र।"

जिसे इस समय विदिशा कहते है, उसका इसके पहले भेलसा यह नाम प्रसिद्ध था। अब इसका नाम विदिशा हो गया है। उसे ही इस लेख में भद्दलपुर कहा गया है।

३. जिस संवत् मे आगरा मे शिक्षण शिविर लगा था, उसमें मुझे भी आमन्त्रित किया गया था। वहाँ दूसरे विद्वान् भी आमन्त्रित किये गये थे। उस समय जयपुर के पुराने शास्त्रो की प्रदर्शनी लगाई गई थी, उसमें एक हस्तलिखित "**पुण्यास्रव**" शास्त्र भी था। उसके अन्त मे जो प्रशस्ति अङ्कित थी, वह इस प्रकार है —

संवत् १४७३ वर्षे कार्तिक सुदी ५ गुरुदिने श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे नन्दिसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेवास्तच्छिष्य मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति देवाः। तेन निजज्ञानावर्णी कर्मक्षयार्थं लिखापितं शुभं। श्रीमूलसंघे भट्टारक श्री त्रिभुवनकीर्ति तत्पट्टे भट्टारकश्रीज्ञानभूषणपठनार्थं नाहडीवास्तव्य परवाड़ज्ञातीय साः काकल, भाइ पुण्य श्री सुत श्री० नेमिदास ठाकुर एतैः इदं पुस्तकं दत्तं।

यह एक ऐतिहासिक प्रशस्ति-लेख है। इसमे पहले गांधार, रांदेर और सूरत पट्ट के प्रथम भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति का नाम आया है। दूसरे इसमें ईडर पट्ट के दो भट्टारको का उल्लेख किया गया है। इसलिये यह निश्चित है कि "नरहडी" नगर गुजरात मे होना चाहिये, क्योंकि इस प्रशस्ति-लेख का सम्बन्ध गुजरात प्रदेश से ही आता हैं। दूसरी बात जो इस लेख से ज्ञात होती है वह यह कि एक तो इस जिनबिम्ब के प्रतिष्ठाकारक सा० काकल परवार (पौरपाट) ज्ञातीय थे। दूसरे इन्हें जो "ठाकुर" कहा गया है इससे इस अन्वय का निकास प्रधान रूप से क्षत्रिय वंश से हुआ है, यह निश्चित है।

४. शाह वखतराम द्वारा लिखित "**बुद्धि विलास**" ग्रन्थ के पृष्ठ ८६ पर "**खाँप वर्णन**" शीर्षक के अन्तर्गत कविता में ७४ जातियों के

नाम गिनाये गये हैं। उनमें "पौरपाट" (परवार) जाति का उल्लेख करते हुये लिखा है—

सात खांप पुरवार कहाये, तिनके तुमको नाम सुनाये ॥३७६॥

इस प्रसङ्ग से परवार अन्वय को यहां "पुरवार" भी कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि लेखक की दृष्टि में "परवार" अन्वय से पुरवार अन्वय में पहले कोई भेद नहीं माना जाता था। इससे यह भी निश्चित होता है कि "परवार" अन्वय का विकास प्राग्वाट या पोरवाड़ अन्वय से ही हुआ है।

५. **परवार बन्धु**, मार्च १९४० के अंक मे स्व० बाबू ठाकुरदास जी (टीकमगढ़) ने कतिपय मूर्तिलेख प्रमाण रूप में उपस्थित किये थे। उनमें एक ऐसा लेख भी मुद्रित हुआ है, जिसमें इस अन्वय को परपट कहा गया है। यथा—

परपटान्वये शुद्धे साधुनाम्ना महेश्वरः।

यह लगभग ११वी-१२वी शताब्दी का लेख है।

इस प्रकार सूक्ष्मता से विचार करने पर प्रतिमा-लेखों आदि में इस अन्वय के लिये यद्यपि अनेक नामों का उल्लेख हुआ है, परन्तु उन सबका आशय एकमात्र "पौरपाट" अन्वय से ही रहा है। इस अन्वय के लिये १२ वी शताब्दी से "परवार" नाम का भी उल्लेख होने लगा था।

इस प्रकार मूर्तिलेखों में और लिखित शास्त्रलेखों में "पौरपाट" या "पौरपट्ट" के स्थान पर हम अपने अन्वय को पुरवार, परवार, परवाल, परवाड़ और परपट आदि अनेक नामों मे देखते हैं।

१७. परवार अन्वय :

यद्यपि परवार अन्वय मूल मे एक है और उसके ये सात भेद हैं। परन्तु ८४ जातियों की गणना में इन्हें स्वतन्त्र मान लिया गया है। इसका कारण इन सात भेदों में आपस मे रोटी-बेटी का व्यवहार न करना माना गया है। पर यह जाति की दृष्टि से एक ही जाति थी। **प्राग्वाट इतिहास**, प्रथम भाग[1] की भूमिका पृष्ठ १४-१५ में जिन

१. प्राग्वाट इतिहास प्रकाशक समिति, स्टेशन राणी (मारवाड़. राजस्थान)।

१६१ जातियों का उल्लेख किया गया है, उनमें परवार अन्वय के मात्र ५ भेदों का ही उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। उस सूची में गांगड़ और सोरठिया—ये दो नाम नहीं हैं। ८४ जातियों का नामोल्लेख करने वाली ३-४ सूचियाँ और भी हमारे पास है। उनमें भी सात नाम पूरे उपलब्ध नहीं होते। किसी मे किन्ही नामों को छोड़ दिया गया है और किसी में किन्हीं भेदों को। मात्र पद्मावती नाम यह सब सूचियों मे है।

जिस मूल अन्वय से इस अन्वय का निकास माना जाता है उसे आज से हजार-आठ सौ वर्ष पूर्व "प्राग्वाट" या "पोरवाड़" कहा जाता था। के० एम० मुंशी ने **"गुजरातनो नाथ"**[1] नामक एक उपन्यास लिखा है, उसमे उन्होंने इस अन्वय के लिए पोरवाल, पुरवाल या परवार (पौरपट्ट) नाम का उल्लेख न कर इसे "प्राग्वाट" ही कहा है। ऐसा लगता है कि पूर्व काल मे इसके लिए "प्राग्वाट" शब्द का व्यवहार बहुलता से होता रहा है। सम्भवतः प्राग्वाट प्रदेश मे इस अन्वय का संगठन हुआ है, इसलिए इस अन्वय का नाम प्राग्वाट रखा गया जान पड़ता है।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने सूरत के पास राँदेर मे मूलसंघ आ० कुन्दकुन्द आम्नाय के जिस भट्टारकपट्ट पर विद्यानन्दी को प्रतिष्ठित किया था, उन्हे एक प्रशस्ति मे अष्टशाखा प्राग्वाटवंश का आभूषण[2] (अष्टशाखाप्राग्वाटवंशावतंसानाम्) कहा गया है। स्पष्ट है कि जिस परवार अन्वय को पहले प्राग्वाट या पोरवाड़ कहा जाता था, उसके ही वे अन्वय भेद है, जिनका हम प्रारम्भ मे ही उल्लेख कर आये है।

अ० भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् ने स्व० डॉ० नेमिचन्द्रजी शास्त्री, ज्योतिषाचार्य द्वारा लिखित **"भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान"** (प्र० ख०) प्रकाशित किया है। उसमे पृष्ठ ४५२ पर एक पट्टावली दी हुई है। यह पट्टावली स्व० आचार्य महावीर-कीर्ति के एक गुटके से ली गयी है। उसमें विक्रम की चौथी-पाँचवीं शताब्दी मे हुए सर्वार्थसिद्धि आदि महान् ग्रन्थों के कर्त्ता आ० पूज्यपाद और विक्रम की १०वी शताब्दी मे हुए आ० माधवचन्द्र को पद्मावती

---

१. प्रकाशक, गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय, गान्धी मार्ग, अहमदाबाद।

२. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७३, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर।

पोरवाल उल्लिखित किया गया है। यह भी इस तथ्य को सूचित करता है कि पद्मावती पुरवार भी उस वंश का एक भेद है, जिसे पूर्व में प्राग्वाट कहा गया है।

यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि शाह बखतराम ने पुरवार या परवार अन्वय की जिन सात खाँपों का उल्लेख किया है, उनमें एक खाँप पद्मावती पुरवार भी है। परवार अन्वय में १४४ मूर और १२ गोत्र प्रसिद्ध हैं, इनमें कासिल्ल गोत्र के अन्तर्गत एक पद्मावत "मूर" भी है। "मूर" को शाख भी कहते हैं। जैसे अठसखा, चौसखा आदि। "मूर" शब्द "मूल" शब्द का अपभ्रंश रूप है। गुजरात और उसके आसपास के प्रदेश में अपने पूर्व पुरुषों के मूल निवास का ज्ञान करने के लिए इस शब्द का प्रयोग अब भी किया जाता है। अर्थात् जैसे महाराष्ट्र मे अपने पूर्व पुरुषों के मूल निवास स्थान का ज्ञान करने के लिए "कर" शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे फलटनकर, पंढरपुरकर आदि। उसी प्रकार गुजरात और उसके आसपास के प्रदेश में इसी अर्थ में "मूल" शब्द का प्रयोग किया जाता है। परवारों के जो १४४ "मूर" प्रसिद्ध है, वे इसी बात के साक्षी हैं। जैसे जिस परिवार के पूर्व पुरुष ईडर में रहते थे वे ईडरीमूर कहे जाते है और जिस परिवार के पूर्व पुरुष नारदनगर में रहते थे, वे नारदमूरी कहे जाते हैं। पद्मावती पुरवाल या पद्मावती परवार यह नाम भी इसी तथ्य का द्योतक है। इतना अवश्य है कि यह एक स्वतन्त्र जाति बन जाने से "पद्मावती" यह शब्द भी जातिवाची नाम के साथ जुड़ गया है। यह परवार अन्वय की एक स्वतन्त्र उपजाति है।

ये कतिपय ऐसे प्रमाण है जिनके अनुसार प्राग्वाट जाति के जितने स्वतन्त्र भेद-प्रभेद दृष्टिगोचर होते है, वे सब पूर्वकाल मे एक जाति के होने से सबन्धु रहे है। '**प्राग्वाट इतिहास**' पृ० ४४ में इन सबको नौ भेदों में विभाजित किया गया है। यथा—

(१) सोरठिया पोरवाल, (२) कपोला पोरवाल, (३) पद्मावती पोरवाल, (४) गूर्जर पोरवाल, (५) जांगड़ा पोरवाल, (६) नेमाड़ी और मलकापुरी पोरवाल, (७) मारवाड़ी पोरवाल, (८) पुरवार और (९) परवार।

'प्राग्वाट इतिहास' पृ० ४६ में इस जाति के इतिहास पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए लिखा है कि भिन्नमाल और उसके समीपवर्ती प्राग्वाट प्रदेश पर वि० सं० ११११ मे जब भयंकर आक्रमण हुआ था, उस समय अपने जन-धन की रक्षा के हेतु इस शाखा के प्रायः अधिकांश कुल अपने स्थानों का परित्याग करके मालवा प्रदेश में और राजस्थान के अन्य भागों मे जाकर बस गये थे। इस शाखा के कुल राजस्थान में बूंदी और कोटा राज्य के हाड़ोती, सपाड़ और ढूंढाड़पट्टों में तथा इन्दौर और उसके आसपास के नगरों में अधिकांशतः बसे हैं। लगभग सौ वर्षों से कुछ कुल दक्षिण मे बीड़शहर, परण्डा नामक कस्बों मे भी जा बसे है और वही व्यापार-धन्धा करते हैं। इस शाखा में भी जैन और वैष्णव दोनों मतों के मानने वाले कुल हैं। जो जैन हैं वे अधिकतर दिगम्बर आम्नाय के मानने वाले है। श्वेताम्बर आम्नाय के मानने वाले कुल इस शाखा में बहुत ही कम है। इस शाखा के कुलो के गोत्र पीछे से बने हैं।[1]

इस शाखा मे प्रारम्भ से ही ऐसे पुण्य पुरुष होते आ रहे है, जिनसे इस शाखा का गौरव बढ़ा है। पूर्व मे हम दो महान् आचार्यों का नामोल्लेख कर आये हैं। आगे ऐसे भी श्रावक हो गये है, जिन्होने जिनधर्म की प्रभावना के अनेक कार्य किये है। किसी ने जिनालय का निर्माण कराया, किसी ने जिनबिम्ब प्रतिष्ठा कराई और किसी ने ग्रन्थ रचना की। हमारे सामने सेठ का कूचा बड़ा मन्दिर (दिल्ली) में विराजमान चौबीसी मूर्तिपट्ट (धातु) मे अंकित एक ऐसा लेख है, जिसमे इस शाखा को पद्मावती पौरपाटान्वय का कहा गया है। पूरा लेख इस प्रकार है—

संवत् १४४४ वर्षे वैशाख सुदी १२ सोमे दिने श्रीचन्द्र वाठदुर्गे चाहुाणराज्ये श्री अभयचन्द्रदेव सुपुत्र श्री जयचन्द्रदेव राज्ये श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये आचार्य श्री अनन्तकीर्तिदेवास्तत्पट्टे क्षेमकोर्तिदेवा पद्मावतीपौरपाटान्वये साहु माहण पुत्र सा० देवराज भार्या प्रभा पुत्रा पंच करणसीह नरसीह हरिसिंह वीरसिंह रामसिंह एतैः कर्म-कर्मक्षयार्थं चतुर्विंशतिकाप्रतिष्ठा कारिता पंडितभास शुभं भवतु।

---

१. आभास सम्भाग मे भी इस शाखा के कुल बहुतायत से पाये जाते हैं। वे सब दिगम्बर हैं।

इसमें मूर्तिप्रतिष्ठाकारक को काष्ठासंघी कहा गया है। परन्तु मूल में यह शाखा मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वयी ही रही है। इस शाखा के प्रारम्भ में पद्मावती विशेषण लगा है, इससे पाठक यह न समझें कि ये पद्मावती देवी के उपासक रहे है। वस्तुतः इस शाखा का मूल निकास पद्मावती नगर से हुआ है। इसलिए इस शाखा के नाम मे पद्मावती विशेषण लगा हुआ है।

ललितपुर के बड़े मन्दिर के शास्त्रागार में कवितावद्ध **चारुदत्त चरित** की हस्तलिखित एक प्रति पाई जाती है। उसकी रचना कवि भारामल गोलालारे और कवि विश्वनाथ पद्मावती पुरवाल—इन दोनों ने मिलकर की थी। अपनी प्रशस्ति मे कवि भारामल लिखते हैं—

नगर जहानाबाद रहाई। पद्मावति पुरवार कहाई।
विश्वनाथ संगति शुभ पाय। तब यह कीनो चरित बनाई॥

यह इस शाखा का संक्षिप्त उपलब्ध पुराना इतिहास है।

१८. पौरपाट अन्वय में गोत्र विचार :

गोत्र शब्द अनादि है। आठ कर्मों में भी गोत्र नाम का एक कर्म है। इसे आगम में जीवविपाकी कहा गया है। और इस पर से यह अर्थ फलित किया है कि परम्परा से आये हुए आचार का नाम गोत्र है। उच्च आचार की उच्चगोत्र संज्ञा है और नीच आचार की नीचगोत्र संज्ञा। साथ ही आगम मे इसके सम्बन्ध में यह भी लिखा है कि नीच-गोत्र एकान्त से भवप्रत्यय है और उच्चगोत्र परिणामप्रत्यय है। इससे यह अर्थ फलित किया गया है कि कोई नीचगोत्री मनुष्य हो और वह उच्च आचारवालों की संगति करके अपने जीवन को बदल ले तो वह मुनिधर्म को स्वीकार करते समय उच्चगोत्री हो जाता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च नियम से नीचगोत्री होता है, परन्तु संयमासंयम परिणाम के कारण उच्चगोत्री हो जाता है, ऐसा भी धवला का उल्लेख है। मात्र उच्चगोत्री आचार की दृष्टि से कितना भी गिर जाय, फिर भी वह शक्ति की अपेक्षा पर्याय में उच्चगोत्री ही बना रहता है।

गोत्रकर्म का यह सैद्धान्तिक अर्थ है, इसका एक सामाजिक रूप भी है। किसी भी समाज के निर्माण में इसका विशेष ध्यान रखा जाता है।

कहते हैं कि जैन समाज के भीतर जितनी भी उपजातियाँ बनी हैं, वे सब उन्हीं कुटुम्बों को लेकर बनी है, जो आचार की दृष्टि से लोकप्रसिद्ध रहे हैं। इसका मूल कारण जैन आचार है, क्योंकि कोई भी कुटुम्ब जैनाचार की दीक्षा मे दीक्षित हो और वह हीन आचारवाला हो, यह नही हो सकता।

इस दृष्टि से हमने पौरपाट अन्वय के भीतर जो गोत्र प्रसिद्ध है, उनके विषय में गहराई से विचार किया है कि वे सब गोत्र वाले कुटुम्ब मुख्यतया क्षत्रिक अन्वय से सम्बन्ध रखने वाले रहे है। पौरपाट अन्वय में जो १२ गोत्र प्रसिद्ध है, उनके नाम इस प्रकार है—

१. गोहिल्ल, २. गोइल्ल, ३. वाछल्ल, ४. वासल्ल, ५. वांझल्ल, ६. कासिल्ल, ७. कोइल्ल, ८. खोइल्ल, ९. भारिल्ल, १०. माडिल्ल, ११. कोछल्ल और १२. फागुल्ल।

अब देखना यह है कि इन गोत्रों के पीछे कोई इतिहास है या ब्राह्मणों में प्रसिद्ध गोत्रों को ध्यान मे रखकर ही इस अन्वय में गोत्रों के ये नाम कल्पित कर लिये गये है। प्रश्न मार्मिक है। आगे इसी पर विचार किया जाता है।

यह तो सुप्रसिद्ध है कि कुछ ब्राह्मणों को छोड़कर ब्राह्मण सदा से जैनधर्म के विरुद्ध रहे है, क्योंकि ब्राह्मण धर्म में जहाँ परावलम्बन के प्रतीक स्वरूप ईश्वरवाद की प्राणप्रतिष्ठा की गई है वहाँ जेनधर्म स्वावलम्बन प्रधान धर्म होने से उसमें सदा से ही व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्राणप्रतिष्ठा हुई है। ऐसी अवस्था मे जैनधर्म में दीक्षित होनेवाले कुटुम्ब ब्राह्मणों के गोत्रो का अनुसरण करेंगे, यह कभी भी सम्भव नही दिखाई देता। इसलिये यह तो निश्चित है कि इन गोत्रों के नामकरण में इस अन्वय ने ब्राह्मणों का भूलकर भी अनुकरण नहीं किया है। इस पर से यह सहज ही समझ मे आ जाता है कि इस अन्वय के इन गोत्रों के नामकरण में क्षत्रियों में प्रचलित गोत्रों को अपनाया गया है। इस पर से यदि यह निष्कर्ष फलित किया जाय कि जिन क्षत्रिय कुलों ने जैनधर्म को अंगीकार किया उनके जो गोत्र रहे हैं, वे ही गोत्र इस अन्वय में रूढ़ हो गये है, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

जिन गुहिलवंशीय क्षत्रिय कुलों ने जैनधर्म अंगीकार किया, उन्हें ही गोहिल्ल गोत्रीय पौरपाट कहा गया है। यह एक उदाहरण है। इसी प्रकार इस अन्वय में प्रसिद्ध अन्य गोत्रों के विषय में भी जानना चाहिये।

१९. परवार और क्षत्रिय :

'प्राग्वाट इतिहास' के अध्ययन से पता लगता है कि प्राग्वाट अन्वय में राठोड़, परमार, चौहान आदि अनेक वंशों के क्षत्रिय जिनधर्म को स्वीकार कर दीक्षित हुए थे। परमार और सोलंकी क्षत्रियों से इस अन्वय का निकट का सम्बन्ध रहा ही है। इसलिये ऐसा लगता है कि क्षत्रियों में जो गोत्र प्रसिद्ध रहे हैं, कुछ शब्द भेद से वे ही गोत्र पौरपाट वंश मे भी प्रचलित हो गये हैं; जैसे—चौहानों में कासिद्रा गोत्र की एक शाखा रही है। मालूम पड़ता है कि उसी से पौरपाट अन्वय में कासिल्ल गोत्र प्रसिद्ध हुआ है। इसी प्रकार बहुत से राठौड कासवगोत्री थे। इसलिये इस गोत्र के जिन राठौड़ बन्धुओं ने जैनधर्म के साथ पौरपाट अन्वय को स्वीकार किया उनमें वासल्ल गोत्र प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार परमारों मे भी गोयल गोत्र प्रसिद्ध रहा है। इसलिये इस गोत्र के जिन परमारों ने इस अन्वय को स्वीकार किया, वे गोइल्ल गोत्री कहलाये। ये कतिपय उदाहरण हैं। अन्य गोत्रों के सम्बन्ध में भी इसी न्याय से विचार कर लेना चहिये।

तात्पर्य यह है कि जैनधर्म से क्षत्रियों का निकट का सम्बन्ध रहा है। इसलिये उनका समय-समय पर जैनधर्म में दीक्षित होना स्वाभाविक था। क्योंकि जो वर्तमान काल मे २४ तीर्थङ्कर हो गये है वे सब क्षत्रिय थे, इसलिये जिन क्षत्रियों ने अहिंसा प्रधान इस धर्म को स्वीकार किया उनका जैन होना असम्भव नहीं माना जा सकता। यह स्थिति ऐसे कई अन्वयों की रही है। इसलिये उक्त गोत्रवाले जिन क्षत्रियों ने जैनधर्म को स्वीकार किया, प्रदेश भेद आदि से वे अनेक अन्वयों में विभक्त होते गये। यहाँ प्रसंगवश हम एक ऐसी सूची दे रहे हैं, जिसमें शब्द-भेद किये बिना या थोड़े-बहुत फरक से कई अन्वयों में उक्त गोत्र पाये जाते हैं—

	परवार	बरनागरे	गहोई	अग्रवाल
१.	गोहिल्ल	गोहिल्ल	गांगल, गंगल, गालव	गोभिल
२.	गोइल्ल	गोइलल	गोल, गोयल, गोभिल	गोयल

३. वाछल्ल	वाछल्ल	वाछल, वाछिल, वारिछल	वत्सिल
४. वासल्ल	वासल्ल	काछल, काछिल, काच्छिल	कासिल
५. वांझल्ल	वांझल्ल	बादल, बंदिल, वदल	—
६. कासिल्ल	कासिल्ल	काठल, काठिल, काच्छिल, कासिल	—
७. कोइल्ल	कोइल्ल	काहिल, काहल, कोहिक	—
८. खोइल्ल	खोइल्ल	कासिव, कासव	—
९. भारिल्ल	भारिल्ल	भाल, भारिल, भूरल	—
१०. माडिल्ल	माडिल्ल	जैतल	माडल
११. कोछल्ल	कोछल्ल	कोछल, कोशल, कोच्छल	—
१२. फागुल्ल	फागुल्ल	बादरायण या सिंगल	—

२०. पौरपाट और चरनागरे :

इसी सूची पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी समय पौरपाट (परवार) और चरनागरे एक रहे है। गहोई अन्वय की भी लगभग वही स्थिति है। यद्यपि गहोई अन्वय में दो गोत्र ऐसे अवश्य हैं जो न तो पौरपाट अन्वय में पाये जाते हैं और न ही चरनागरे अन्वय में ही पाये जाते है। शेष सब गोत्र उक्त दोनों अन्वयों से मिलते-जुलते है। इससे ऐसा लगता है कि गहोई अन्वय यद्यपि कभी जैन तो अवश्य रहा है। परन्तु बाद मे जब उस अन्वय ने जैन धर्म छोड़ दिया तो धीरे-धीरे वह गोत्रों के मूल नामों को भूलने लगा और इस प्रकार इन गोत्रों का मूल नाम क्या है ? इसकी जानकारी न रहने से उसमें गोत्रों के नामों के स्थान में तत्सम अनेक शब्द प्रयोग में आने लगे। इतना ही नही, दो गोत्रों के नामों में बदल भी हो गया। चरनागरे अब भी जैन हैं। चरनागरों ने जैनधर्म को छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार नहीं किया।

२१. पौरपाट और गहोई :

मैं "**गहोई समाचार**" का सितम्बर १९७० का १२वाँ अंक देख रहा था। उसके पृ० २१-२३ पर 'क्या गहोई और चरनागरे जैन कभी एक थे ?' एक लेख पढ़ रहा था। लेखक श्री डॉ० गंगाप्रसाद बरसैयाँ रायपुर थे, उन्होंने अपने उक्त लेख में जनगणना विभाग के उपसंचालक श्री भोलाप्रसाद जैन एवं उनके पण्डित श्री जयकुमार राजेन्द्रप्रसाद से भेंट

होने पर उनके कथनानुसार जो कुछ लिखा है उसका सार यह है कि "गहोई समाज के जिन बन्धुओं ने जैनधर्म की विशिष्टताओं से आकर्षित होकर उसे स्वीकार किया, वे अपने आचरण, चरित्र तथा साधना में सबसे आगे थे, अतः उनका गहोई नाम बदल कर 'चरनागरे' कर दिया गया।

उक्त दोनों महाशयों के कथनानुसार यह घटना स्वामी तारण-तरण काल की मालूम पड़ती है। अब देखना यह है कि इसमें कितनी सचाई है। यह तो ऐतिहासिक सत्य है कि अहारक्षेत्र में भगवान् शान्तिनाथ का मन्दिर और खड्गासन जिनबिम्ब है, वह गृहपति (गहोई) वंश के द्वारा निर्मापित हुआ है। इसका वि० सं०.........है। इसी प्रकार बानपुर के बाह्य भाग में जो जिन मन्दिर निर्मापित होकर उसमें जिनबिम्ब विराजमान है वे भी इस वंश के द्वारा निर्मापित हुए हैं। उनका संवत् लगभग वही है। इससे इस नाम के साथ ही गहोइयों का जैन होना १५-१६वीं शताब्दी से पहले ही सिद्ध होता है। नाम बदले नहीं और जैन रहा आवे, इसमें हमें कोई बाधा दिखाई नही देती।

दूसरे गहोइयों के सब गोत्र चरनागरों मे नहीं पाये जाते। जैतल और बादरायण—ये दो गोत्र ऐसे हैं जो मात्र गहोइयों में ही रूढ़ हैं और इसके विपरीत माडिल्ल और फागुल्ल ये दो गोत्र ऐसे हैं जो पौरपाट (परवार) अन्वय के साथ चरनागरों मे भी पाये जाते हैं। इससे ऐसा लगता है कि चरनागरे पौरपाटों (परवारों) के अति निकट हैं, गहोइयो के उतने निकट नही हैं। फिर भी इन तीन अन्वयो का उद्गम कभी ऐसे क्षत्रियों में से हुआ है, जिनमे ये गोत्र प्रसिद्ध रहे है। इतना ही नही, कभी गहोई भी जैन रहे है।

२२. मूल विचार :

वर्तमान में "मूल" के अर्थ में "मूर" या "शाख" शब्द प्रचलित है। अब देखना यह है कि पौरपाट (परवार) अन्वय में जो १४४ या १४५ मूल प्रसिद्ध हैं, वे क्या है ? पौरपाट (परवार) अन्वय का निकास मूल में मेवाड़ और गुजरात के उस भाग से हुआ है जो "प्राग्वाट" प्रदेश कहा जाता है। दूसरी इससे यह बात भी फलित होती है कि जिस ग्राम, कस्बा या नगर से आकर जो कुटुम्ब इस अन्वय में दीक्षित हुए हैं उनका

"मूल" वही स्वीकार कर लिया गया है। इसका यह अर्थ हुआ कि महाराष्ट्र में जिस अर्थ में "कर" शब्द का प्रयोग किया जता है, उसी अर्थ में पौरपाट अन्वय में "मूल" शब्द का प्रयोग किया जाता है तथा गोत्र के अन्तर्गत होने से उन्हें शाख भी कहा जाता है।

इस अन्वय के समान बुन्देलखण्ड में एक गहोई और दूसरे चरनागरे अन्वय भी निवास करते है। परन्तु उनमें "मूल" के स्थान में "आंकने" प्रचलित हैं। ये आंकने क्या है, इस पर जब ध्यान दिया जाता है, तो उनको देखने से मालूम पड़ता है कि उनमें कुछ नाम तो ऐसे हैं जिनसे गाँव विशेष की सूचना मिलती है। कुछ नाम ऐसे है, जिनसे व्यापार विशेष की सूचना मिलती है और उनमें कुछ नाम ऐसे भी है जो सम्मानसूचक मालूम पड़ते है। किन्तु यह स्थिति पौरपाट अन्वय की नहीं है। इससे ऐसा लगता है कि पौरपाट अन्वय उस काल का अवशेष है जब इस देश मे गणतन्त्र प्रचलित था। कौटिल्य ने ऐसे सगठनों को **वार्ताशस्त्रोपजीवी** लिखा है। मालूम पडता है कि पहले इस तरह से बने विभिन्न संगठन कृषि, वाणिज्य और पशुपालन आदि से अपनी आजीविका करते हुए अपने अन्वय की रक्षा के लिये शस्त्र भी धारण करते थे। किन्तु धीरे-धीरे राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन होने पर इनमें शस्त्र धारण करना न रहकर केवल आजीविका के मात्र अन्य साधन रह गये।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि ऐसे अन्वयों ने क्षात्रवृत्ति को छोड़कर मात्र वार्ताकर्म को ही क्यों स्वीकार कर लिया ? समाधान यह है कि जब धीरे धीरे अन्वयों (गणों) की स्वाधीनता छिनकर एक-तन्त्र राज्यो का उदय हो गया तब उन्होंने आजीविका के साधन के रूप में कृषि, पशुपालन और वाणिज्य को स्वीकार करना ही उचित समझा।

कुछ मनीषी कहते है कि जैनधर्म अहिंसा प्रधान धर्म है, इसलिये अहिंसा के साथ क्षात्रवृत्ति का मेल नही बैठता। परन्तु यह उनकी कोरी कल्पनामात्र है। इतिहास इसका साक्षी है। मौर्य चन्द्रगुप्त भारत का प्रथम सम्राट् था, यह सुविदित सत्य है। समय-समय पर और भी अनेक राजा-महाराजा हुए हैं, जिन्होंने क्षात्रधर्म का सुन्दर निर्वाह करते हुए

अपने राज्य में सुव्यवस्था बनाये रखो है। धर्म इसमें बाधक नहीं है। संकल्प पूर्वक हिंसा आदि को त्याग देना गृहस्थ धर्म का लक्षण है। चोर, डाकू और समाजविरुद्ध आचरण करने वालों से समाज की रक्षा करना क्षात्रधर्म का प्रमुख लक्षण है। यही कारण है कि जो जैनधर्म का पालन करते हुए शस्त्र धारण कर समाज की रक्षा करता है, वह समाज में महनीय माना जाता है।

यह हमारे पूर्वजों के जीवन की एक झांकी है। इससे पौरपाट अन्वय को अनेक गणों में विभक्त कर उसका संगठन किस प्रकार किया गया था, उसका पता लगता है। यह (पौरपाट) अन्वय १२ गोत्रों में विभक्त था, यह तो हम पहले ही बतला आये हैं। अब देखना यह है कि प्रत्येक गोत्र के अन्तर्गत जो १२-१२ मूल गिनाये गये हैं, वे कौन-कौन हैं? आगे इसकी सूची दी जाती है—

गोत्र	जबलपुर	अशोकनगर	परवारबन्धु
गोहिल्ल	सहारमडिम्म, माहो, अंधियरो, वारू, किढमा, बड़ोमारग, ममला, रुहारो, अंडेला, छितरा, नगाडिम्म, तका।	जबलपुर और अशोकनगर के मूल मिलते-जुलते हैं	सुहला, उदया, गाहे, बार, छिनकन, कठोरा, बड़ेमारग, दुहाऐ, झमला, महुडिम्म, ताखा, नगाडिम्म।
गोइल्ल	वारद, गोसिल, गोदू, किरकिच, चांदे, सिदुआ, छोड़ा, वैसाखिया, वार, सहोला, खराइच, गांगरे।	जबलपुर के और अशोकनगर के मूल एक ही हैं।	वैसाख, सोला, करकच, खारल्ले, बरहद, गोसिल्ल, गांगरो, गोधू, खाठी, चाची, छोड़व, वारी।
वाछल्ल	धमाछल, छोहर, भाभरी, भभारो, बहुहठी, किठोदा, अओड़िम, पंचरतन, कदोहा, सांझी, बड़ेसुर, नारद।	मात्र कविता में बहुहठी है और अर्थ में बहूटी है।	पंचलौर, नाहछ, छमछल, पाहू, छोटा, रकाडिम्म, कदोहा, बड़ोसर, अहिया-डिम्म, कठोहा, जगेसर, नागच।

वासल्ल	देदा, डुही, डेरिया, छनकन, चन्द्राडिम्म, रका (दका), रामडिम्म, कठा, सकेसर, सदाबदा, डस्सा (डल्ला), बाला	दोनों के एक ही हैं	देदा, डेरिया, क्याडिम्म, डुही, चन्दाडिम्म, रमाडिम्म, अहीडिम्म, रका, बाला, सदाबदा, छिनकन, सकेसरा।
वांझल्ल	बीबीकुट्टम, रकया, बंसी, उजरा, लालु, ऐंडरी, वागु, दुगाइच, पद्मावती, द्योतीस्योति, कनहा, गिलाडिम।	दोनों के एक ही हैं।	वासो, ईडरी, रकिया, लालू, शिह्लम्मडिला, देवसा, सेवती, दुगायत, बीबीकुट्टम, कनहा, उजए, पद्मावत।
कासिल्ल	धना, दिवाकर, लोटा, उजया, उठा, डंगारौ, सिगा, सिवारो, दोवर, घूघर, डंडिया, पटवार।	कविता में चोवर अर्थ में चीवर तथा पटवार के स्थान में पटवा छपा है।	उजिया, धना; दीपाकर, लोटा, पठवल, सीग, उठा, घघर, डड़िया, डोंगर, सिरवार, पद्मावत।
कोइल्ल	चुचा, चांचरौ, पपिद, कठिया, सिसयारौ, कुशवाल, विमहा, उदहा, इंदारौ, खेंकवार, मिडला, गहोटी।	दोनोंके मिलते-जुलते हैं।	पलावत, बुद्धवारी, चाचो, गगाडिम्म, उदाडिम्म, कसवारो, भामार, पाहूडिम्म, इँगली-चिंगुली, सिंधवारो, फठा, पपहद।
खोइल्ल	सेतसागर, हाड़िया, मनहारो, किरवार, इंगलीचिगली, कोइल्ल, रहारो, खरहत, सुराइच, लुहारच, खकोटा, नगाव्रत	एक ही है।	सेतगागर, कलगा, गढ़िया, छोड़ाडिम्म, रुहारौडिम्म, नंगाइचडिम्म, वसुहाडिम्म, खटहाडिम्म, बगहाडिम्म, घोघठ, लुहाइच, वराहन

भारिल्ल	भगवंता, विगहा, विग, खोना, इंग, अगा, पुनहोरा, मारू, पहुना, कुवा, कुहारी हिण्डिम्म।	वही हैं।	विग, खोना, अंग, कुवा, पगुवा, मारू, कुनाडिम्म, भगवत, विगहा, गाहेडिम्म, हारूडिम्म, इंग।
माडिल्ल	माड, हंसारो, सकती, रोदा, खितवां, वेलाडिम, भटारो, खोंखर, सितावर, स्वितागांगर, इंगली, नगाइच।	भटारो और भटारी दोनों हैं। शेष दोनों एक हैं।	माडू, रूदा, उदहा, वाहिलडिम्म, सिकाडिम्म, गमलाडिम्म, वरायचडिम्म, झांझाडिम्म, भटियाडिम्म, भटोहाडिम्म, लालडिम्म, रूपाडिम्म।
कोछल्ल	बहुरिया, मसो, रेंचा, गंगवा, वसबल, कुछाछरे, सर्वछोला, ध्याइच, सुवहा, ओछल, विसासर, बुधवारो।		बहुरिया, सर्वछोला, मसता, स्त्रि, कुछाछरो, उछिल्ल, गगवारो, सुपहाडिम्म, वसवाल, घिया, सिरपरो, वगुयाडिम्म।
फागुल्ल	झिझारो, छोवर, फागुल, कुटहटी रिहारो, कठल, मंगला, वलासदा, पटहारो, बुधारो, जजेसुर, वसाइच।		छीनर, मालेडिम्म, भगीली, वराइच, वड़ोहाडिम्म, जाजाडिम्म, कफाडिम्म, सिहर, गांगरो, पुनहोरो, नाहडिम्म, कण्हा।

ये बारह गोत्रों के १४४ मूर (मूल) या शाखा हैं। इनमें बड़ी गड़बड़ है।

जैसा कि हम पहले सूचित कर आये हैं, इस अन्वय के १२ गोत्रों में से प्रत्येक गोत्र के अन्तर्गत जो १२-१२ मूल हैं वे ग्रामों के नामों के आधार पर ही हैं। अर्थात् जिस ग्राम के रहवासी जिस कुटुम्ब ने इस

अन्वयको स्वीकार किया उस कुटुम्ब का वही मूल हो गया। इसकी पुष्टि में हम यहाँ पर एक तुलनात्मक सूची दे रहे हैं। वह इस प्रकार है:—

१. ईडरीमूल	ईडरशहर में रहने वालों का मूल ईडर है।		
२. रक (ख) या मूल	रखयाल ग्राम (सौराष्ट्र) में रहने वालों का मूल रखयाल है।		
३. नारद मूल	मारवाड़ के मेड़ता जिले के पार्श्वनाथ मन्दिर में नारदपुरी का उल्लेख है।		
४. कठिया मूल	काठियाबाड़ के निवासियों के इस अन्वय में सम्मिलित होने पर उनका मूल 'कठिया' प्रसिद्ध हुआ।		
५. दुगायत मूल	दो नदियों का संगम स्थान (गुजरात), उसके आस-पास रहने वालों का मूल दुगायत हुआ।		
६. पद्मावतमूल	गुजरात के इस शहर में रहने वाले।		
७. पद्मावती मूल	पद्मावती शहर (गुजरात) में रहने वाले।		
८. बेला	बेला स्टेशन (सौराष्ट्र), डिम या डिम्मका अर्थ छोटा होता है। बेलाडिम अर्थात् बेला नाम का छोटा ग्राम।		
९. बहुरिया मूल	बहेरिया रोड स्टेशन है। बहेरिया में रहने वाले।		
१०. मांडू	माडलगढ़का संक्षिप्त नाम मांडू है। यहाँ रहने वाले।		
११. कुआ	गुजरात मे एक ग्राम का नाम कुआ या पाटना कुआ है। एक दूसरा गाँव रानकुआ भी है।		
१२. कठा	कठासा स्टेशन	(यहाँ रहने	वाले)
१३. पटवा मूल	पटवारा स्टेशन	,,	,,
१४. लोटा मूल	लोटासा स्टेशन	,,	,,
१५. छना मूल	छना खड़ा स्टेशन	,,	,,
१६. बाला मूल	बाला रोड स्टेशन, ग्राम का नाम बाला या गुजरात का बल्लापुर ग्राम।		

१७. डेरिया मूल	डेरोन स्टेशन (तत्सम)।
१८. डंडिया मूल	डंडिया एक खेड़े का नाम है, उस पर से इस नाम से प्रसिद्ध।
१९. देदा मूल	दुद्दा स्टेशन।
२०. किड मूल	किडिया नाम का नगर है (तत्सम)।
२१. धना मूल	धनाखड़ा स्टेशन। इस ग्राम के रहने वाले।
२२. उजया मूल	उजेडिया ग्राम (तत्सम), इस ग्राम के रहने वाले।
२३. किड मूल	किडिमा नगर का नाम (तत्सम)। ,, ,,
२४. सर्व छोला मूल	छोला स्टेशन। ,, ,,
२५. गोदू मूल	गोदौ ग्राम (गोदौ ग्रामः)। ,, ,,
२६. तका मूल	टाका टुक्का ग्राम (तत्सम)। ,, ,,
२७ बंसी मूल	बंसी पहाड़पुर स्टेशन में रहने वाले।

ये कतिपय मूल हैं। जिनमें से कई ग्रामों के नाम तो गुजरात मे उसी रूप मे पाये जाते है। कई मूल ऐसे है जिनमे ग्राम का पूरा नाम प्रयुक्त हुआ है। कई मूल ऐसे भी है, जिनमें ग्राम के प्रारम्भ या अन्त के भाग को छोड़कर मूल के रूप में उसे स्वीकार किया गया है। जैसे 'सत्यभामा' मे सत्य पद को छोड़कर 'भामा' पद से ही सत्यभामा का ग्रहण हो जाता है। कई मूल ऐसे भी है जिनमें तत्सम ग्राम के नाम से ही उसका मूल ग्रहण हो जाता है। यदि गुजरात और मेवाड़ प्रदेश के ग्रामों के पूरे नामों की सूची के आधार से मूलो के नामों की खोज की जाय तो बहुत ही कम ऐसे मूलों के नाम शेष रह जावेंगे जिन मूलों के नाम पर ग्रामों का नाम वर्तमान में उपलब्ध नही हो सकेगा। उन ग्रामों का या तो लोप हो गया होगा या नाम बदल गया होगा।

२३. अध्यात्मप्रेमी पौरपाट अन्वय :

मूलसंघ नन्दि आम्नाय की परम्परा में भट्टारक पद्मनन्दी का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, उनके पट्टधर देवेन्द्रकीर्ति का उनसे कम महत्त्व नहीं है। उन्होंने गुजरात के अनेक नगरों मे धर्म प्रचार किया था। बाद में उन्होंने बुन्देलखण्ड में आकर चन्देरी को मुख्य केन्द्र बनाकर इस

प्रदेश के श्रावकों को **समयप्राभृत** आदि ग्रन्थों की शिक्षा देकर अध्यात्म का जो बिगुल बजाया उसकी महिमा आज भी जन-जन में व्याप्त है।

वर्तमान में कुछ नामधारी भट्टारकों को अध्यात्म प्रेमी भाइयों द्वारा केवल नमन न करने के आधार पर अध्यात्म के उच्चाटन में लगे हुये हैं। परन्तु वे यह नहीं जानते कि स्वयं आत्मा होकर भी जिस आत्मा के उच्चाटन का उन्होंने बीड़ा उठाया है, वह उनके रग-रग में समाया हुआ है। वे उसका कितना ही निषेध क्यों न करें, वह द्रव्यदृष्टि से न कभी मरेगा और न कभी ज्ञान-दर्शन रूप मूल स्वभाव को छोड़कर नया स्वरूप धरेगा। वह जब है तो उसकी कथा करना ही अध्यात्म की कथा है। उसका निषेध करना ही पुद्गल की कथा है। भला, ऐसा कौन विवेकी होगा जो स्वयं के घर को न सम्हालकर मात्र शरीर के आधार पर पुद्गल की कथा और सम्हाल करने में अपना हित देखेगा और स्वयं पुद्गल के रंग में रंगा रहेगा।

यह आक्षेप किया जाता है कि जैनधर्म एकान्त का निषेध करता है। केवल अध्यात्म के गुण गाने से जीवन अध्यात्ममय नहीं बन जाता और न जन्म-मरण से मुक्ति मिल सकती है। यह आक्षेप ठीक है। यह हम जानते हैं कि केवल अध्यात्म के गुण गाने से शुद्धात्मा की उपलब्धि नहीं हो सकती है और न जन्म-मरण के चक्कर से बचा जा सकता है। इसलिये जैनधर्म कहता है कि कथञ्चित् शरीराश्रित व्यवहार को छोड़ने या कम करने के अभिप्राय से व्यवहार की केवल चर्चा न करो, इसे चरित्र के रूप में जीवन का अंग बनाकर और उपादेय जानकर अध्यात्म को जीवन मे उतारो। यह अनेकान्तमय मार्ग है। जिस व्यक्ति का जीवन इस रूप मे बन जाता है, वही सिद्ध पद का अधिकारी होकर अनन्तकाल तक अपने स्वोत्थ अनन्त सुख का भोक्ता होता है।

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति इसका ही बिगुल फूंकते हुये गुजरात से लेकर बुन्देलखण्ड तक घूमते रहे। वे भ० पद्मनन्दि के शिष्य थे और मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ कुन्दकुन्दाचार्याम्नाय के अनुसर्ता थे। वे बुन्देलखण्ड मे भ० त्रिभुवनकीर्ति (चंदेरीपट्ट) और गुजरात मे भ० विद्यानन्दी के गुरु थे। भ० विद्यानन्दी ने उनको मुनि चक्रवर्ती और स्वयं को उनके पादपद्म का अनुसर्ता कहा है।[1] भ० देवेन्द्रकीर्ति स्वयं पौरपाट

१. सुदर्शनचरित, पृ० ११३।

(परवार) अन्वय में उत्पन्न हुये थे। उन्होंने ही बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत चंदेरी (चन्द्रपुरी) में पौरपाट (परवार) भट्टारकपट्ट की स्थापना की थी।[1] इसके पहले भ० देवेन्द्रकीर्ति ने गांधार नगर में भट्टारकपट्ट की स्थापना की थी। अनन्तर उसे समाप्त कर सूरत के पास रांदेर में वि० सं० १४६१ में भट्टारकपट्ट को प्रारम्भ किया था। सम्भवतः वहीं पर विद्यानन्दी को उन्होंने भट्टारक के पट्ट पर स्थापित कर वे स्वयं बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत चन्देरी चले आये थे और यहाँ भट्टारकपट्ट को प्रारम्भ किया था।[2]

यह घटना वि० सं० १४९३ के पूर्व की होनी चाहिये। क्योंकि वि० सं० १४९३ में उन्होंने ललितपुर के पास देवगढ़ क्षेत्र पर भ० शान्तिनाथ के मन्दिर में भगवान् शान्तिनाथ की मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी और प्रतिष्ठाकारक को संघपति (सिंघई) पद से अलंकृत किया था। वह लेख इस प्रकार है—

संवत् १४९३ शाके १३५८ वर्षे वैशाख वदि ५ गुरौ दिने मूलनक्षत्रे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० प्रभाचन्द्र देवाः तत्पट्टे वादिवादीन्द्र भ० श्री पद्मनन्दिदेवाः तत्पट्टे श्री देवेन्द्रकीर्तिदेवाः पौरपाटान्वयि अष्टसाखे आहारदानदानेश्वर सिंघई लक्ष्मण तस्य भार्या अक्षयसिरी कुक्षि समुत्पन्न अर्जुन····।

वे सघटनकर्ता अधिक थे। अपने शिष्यों को आगे करके उनसे प्रतिष्ठा आदि विधि को सम्पन्न कराते रहते थे। सूरत, घोघा आदि के अधिकतर प्रतिमालेखों में उन्हें इसी रूप में देखा जा सकता है।

उनके बाद पट्ट पर उनके शिष्य भ० त्रिभुवनकीर्ति बैठे। इनके कामों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। उसके बाद सहस्रकीर्ति, पद्मनन्दी, यशःकीर्ति, ललितकीर्ति, धर्मकीर्ति, पद्मकीर्ति, सकलकीर्ति और सुरेन्द्रकीर्ति क्रम से पट्ट पर बैठे। भ० सुरेन्द्रकीर्ति का समय वि० सं० १७५६ है। इसके बाद चन्द्रकीर्ति हुए और फिर यह पट्ट समाप्त हो गया। इन भट्टारकों में इस पट्ट में भ० श्रुतकीर्ति का नाम तो नहीं है, परन्तु उन्होंने हरिवंशपुराण में आचार्य कुन्दकुन्द नन्दिसंघ बलात्कारगण और वागेश्वरी गच्छ के अन्तर्गत जिन भट्टारकों

१. चांदखेड़ी मन्दिर के बाहर के स्तम्भ का लेख।
२. देखो, क्षु० विद्यानन्द स्मृतिग्रन्थ, पृ० १२०।

का स्मरण किया है उनके क्रम से नाम इस प्रकार हैं—प्रभाचन्द्र गणी, भ० पद्मनन्दी, भ० शुभचन्द्र, गणी जिनचन्द्र और भ० विद्यानन्दी। ये सब भट्टारक पद्मनन्दी मण्डलाचार्य के पट्ट के क्रम से अधिकारी हुये। इन्होंने दो पुराण अपभ्रंश भाषा के अन्तर्गत लिखे। **धर्मपरीक्षा** ग्रन्थ भी इनकी अमरकृति है। इन सबकी रचना इन्होंने मालवा देश के रहट नगर में भगवान् नेमिनाथ के मन्दिर में रहकर की थी। **हरिवंशपुराण** का रचनाकाल संवत् १५५२ है तथा **परमेष्ठीसार** का रचनाकाल वि० स० १५५३ है। **हरिवंशपुराण** में उन्होंने प्रियभाषी भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति और भ० त्रिभुवनकीर्ति का भी उल्लेख किया है और स्वयं को भ० त्रिभुवनकीर्ति का शिष्य कहा है।

उनके बाद भ० धर्मकीर्ति पट्ट के अधिकारी हुये। उन्होने थूबोन क्षेत्र पर वि० सं० (१६) ४५ माघ सुदि ५ को एक जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कर उसकी स्थापना की। इसके बाद उनके द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ बड़ा मन्दिर नागपुर मे उपलब्ध होती है। उन्होंने **हरिवंशपुराण** की वि० सं० १६७१ मे रचना की थी। यह संस्कृत भाषा मे कविताबद्ध लिखा गया है। साथ ही इनके द्वारा प्रतिष्ठित नागपुर बड़ा मन्दिर मे एक और भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति उपलब्ध होती है। इसकी प्रतिष्ठा भी इन्ही के हाथों से हुई है। इनके द्वारा प्रतिष्ठित षोडशकारण यन्त्र प्राणपुरा के मन्दिर मे तथा एक यन्त्र अहार क्षेत्र में पाया जाता है। कुण्डलगिरि क्षेत्र के जीर्णोद्धार मे भ० ललितकीर्ति और भ० धर्मकीर्ति का प्रमुख हाथ रहा है। वि० स० १६१४ मे इन दोनो के द्वारा प्रतिष्ठित भगवान् पार्श्वनाथ की एक मूर्ति पाई जाती है। इससे मालूम पड़ता है कि भट्टारक ललितकीर्ति के काल में भट्टारक धर्मकीर्ति भट्टारक बन गये थे। इतना अवश्य है कि भट्टारक ललितकीर्ति के काल में वे बाल-भट्टारक रहे होगे।

इनके बाद पद्मकीर्ति के द्वारा प्रतिष्ठित कोई मूर्ति आदि नहीं पाई जाती। परन्तु भट्टारक पद्मकीर्ति के पट्ट पर बैठने वाले भट्टारक सकल-कीर्ति के द्वारा प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ भगवान् की एक मूर्ति बाजार गाँव (नागपुर) के मन्दिर में और एक मूर्ति नारायणपुर (टीकमगढ़) के मन्दिर में और एक मूर्ति पपौरा (टीकमगढ़) अतिशय क्षेत्र के मन्दिरों में पाई जाती है।

इनके पट्ट पर भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति अधिष्ठित हुए।[1] इन्होंने भगवान् आदिनाथ के स्तोत्र की हिन्दी छन्द में रचना की।

इसके बाद यह पट्ट समाप्त हो जाता है। इसके समाप्त होने का प्रमुख कारण आम्नाय भेद है। यद्यपि ये भगवान् कुन्दकुन्द का नाम ख्यापित करते थे, परन्तु क्रिया में बीसपन्थ आम्नाय को ही प्रश्रय देते थे। इतने काल तक एक ओर मतभेद चलता रहा और दूसरी ओर आम्नाय के विरुद्ध इनके क्रियाकाण्ड को देखकर विरोध का भी वातावरण बनता रहा। अन्त में समाज ने एक मत होकर इस भट्टारक-परम्परा को समाप्त कर दिया और जो पुरानी आम्नाय चली आ रही थी उसे एक मत से स्वीकार कर लिया।

यह चंदेरी पट्ट का विवेचन है। भट्टारक धर्मकीर्ति के काल में सिरोज में भी एक पट्ट की स्थापना हो गई थी। उसके प्रथम भट्टारक सम्भवतः रत्नकीर्ति बने। उनके पट्ट पर भट्टारक चन्द्रकीर्ति अधिष्ठित हुए।

२४. चन्देरी-सिरोंज (परवार) पट्ट

खन्दारगिरि चन्देरी से लगभग १$\frac{१}{२}$ मील दूरी पर है। यहाँ संवत् ११०३ तक के शिलालेख मिले है तथा संवत् १६००-१७०० के भी शिलालेख मिले है, जिनमे पौरु एवं पौर, पौर्वपट्ट तथा अष्टशाखान्वय का उल्लेख आया है।[2]

मूलसंघ नन्दि-आम्नायको परम्परा मे भट्टारक पद्मनन्दी का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, उनके पट्टधर भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति का उनसे कम महत्त्वपूर्ण स्थान नही है। इनका अधिकतर समय गुजरात की अपेक्षा बुन्देलखण्ड मे और उससे लगे हुए मध्यप्रदेश मे व्यतीत हुआ है। चन्देरी-

---

१. भगवान् चन्द्रप्रभ पा० १ अं० चमरधारी फण सहित वि० स० १८३३ मू० ब० कु० आ० श्री भ० सुरेन्द्रकीर्ति पम० ब १२, बार सू०।

२. परवार बन्धु, फरवरी १९४०, चन्देरी की रिपोर्ट : श्री मगनलाल जैन कौशल्य, पपौरा क्षेत्र, पृष्ठ ४३।

पट्ट की स्थापना का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। श्री मूलचन्द किशनदास जी कापडिया द्वारा प्रकाशित 'सूरत और सूरत जिला दिगम्बर जैन मन्दिर लेख संग्रह' संक्षिप्त नाम 'मूर्ति लेख संग्रह' के पृष्ठ ३५ के एक उल्लेख में कहा गया है कि 'गांधार की गद्दी टूट जाने से सं० १४६१ में भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने इस गद्दी को रांदेर मे स्थापित किया। जिसे सं० १५१८ में भट्टारक विद्यानन्दी जी ने सूरत मे स्थापित किया।' किन्तु अभी तक जितने मूर्तिलेख उपलब्ध हुए है उनसे इस तथ्य की पुष्टि नही होती कि देवेन्द्रकीर्ति १४६१ वि० मे या इसके पूर्व भट्टारक बन चुके थे। साथ ही पुस्तक मे जितने भी मूर्तिलेख प्रकाशित हुए हैं उनमें केवल इनसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई स्वतन्त्र मूर्तिलेख भी उपलब्ध नहीं होता। इसके विपरीत उत्तर भारत मे ऐसे लेख अवश्य पाये जाते हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि इनका लगभग पूरा समय उत्तर भारत में ही व्यतीत हुआ था। यहाँ हम ऐसी एक प्रशस्ति जयपुर के एक जैन मन्दिर में स्थित **पुण्यास्रव** (संस्कृत) ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति से उद्धृत कर रहे हैं। जिसमे इन्हे भ० पद्मनन्दी का शिष्य स्वीकार किया गया है। प्रशस्ति इस प्रकार है :

स० १४७३ वर्षे कार्तिक सुदी ५ गुरदिने श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे नन्दिसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दीदेवास्तच्छिष्य मुनिश्री देवेन्द्रकीर्तिदेवाः। तेन निजज्ञानावर्णीकर्मक्षयार्थं लिषापितं शुभं।

इस लेख मे इन्हे मुनि कहा गया है। इसके अनुसार यह माना जा सकता है कि इस समय तक ये पट्टधर नही हुए होगे। किन्तु मुनि भी भट्टारको के शिष्य होते रहे है। इतना ही नहीं, मुनि दीक्षा भी इन्ही के तत्त्वावधान मे दी जाने की प्रथा चल पड़ी थी। मेरा ख्याल है कि वर्तमान मे जिस विधि से मुनि दीक्षा देने की परिपाटी प्रचलित है वह भट्टारक बनने के पूर्व की मुनि-दीक्षा का रूपान्तर है। इसी से उसमे विशेष रूप से सामाजिकता का समावेश दृष्टिगोचर होता है।

जो कुछ भी हो, उक्त प्रशस्ति से इतना निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि सम्भवतः उस समय तक इन्होंने किसी भट्टारक गद्दी को नही सम्हाला होगा। किन्तु **'भट्टारक सम्प्रदाय'** पृ० १६९ के देवगढ़ (ललितपुर) से प्राप्त एक प्रतिमा-लेख से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि ये वि० सं० १४९३ के पूर्व भट्टारक पद को अलंकृत कर चुके थे।

देवगढ़ बुन्देलखण्ड में है और चन्देरी के सन्निकट है। साथ ही इनके प्रमुख शिष्य विद्यानन्दी परवार थे। इससे ऐसा तो लगता है कि वि० सं० १४९३ के पूर्व ही चन्देरी पट्ट स्थापित किया जा चुका होगा। फिर भी उनकी गुजरात मे भी पूरी प्रतिष्ठा बनी हुई थी और उनका गुजरात से सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं हुआ था। सूरत के पास रान्देर पट्ट का प्रारम्भ होना और उस पर उनके शिष्य विद्यानन्दी का अधिष्ठित होना तभी सम्भव हो सका होगा। 'भट्टारक सम्प्रदाय' पुस्तक में चन्देरी पट्ट को जेरहट पट्ट कहा गया है, वह ठीक नहीं है। हो सकता है कि वह भट्टारकों के ठहरने का मुख्य नगर रहा हो। परन्तु वहाँ कभी भट्टारक गद्दी स्थापित नहीं हुई, इतना सुनिश्चित प्रतीत नहीं होता।

विद्यानन्दी कब रान्देर पट्ट पर अधिष्ठित हुए इसका कोई स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध नहीं होना। 'भट्टारक सम्प्रदाय' पुस्तक में वि० सं० १४९९ से लेकर अधिकतर लेखों में से किसी में इनको देवेन्द्रकीर्ति का शिष्य, किसी में दीक्षिताचार्य, किसी में आचार्य तथा किसी में गुरु कहा गया है। परन्तु भावनगर के समीप स्थित घोघानगर के सं० १५११ के एक प्रतिमालेख में इन्हें भट्टारक अवश्य कहा गया है। यह प्रथम लेख है जिसमें सर्वप्रथम ये भट्टारक कहे गए हैं। इससे ऐसा लगता है कि रान्देर पट्ट की स्थापना इसके पूर्व ही हो गयी होगी।

यदि हमारा यह अनुमान सही है तो ऐसा स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि चन्देरी पट्ट की स्थापना के बाद ही रान्देर से बदल कर सूरत पट्ट की स्थापना हुई होगी। ऐसा होते हुए भी बुन्देलखण्ड और उसके आसपास का बहुभाग चन्देरी मण्डल कहा जाता था, यह उल्लेख वि० संवत् १५३२ के पूर्व के किसी प्रतिमालेख में दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इसमे चन्देरी मण्डलाचार्य देवेन्द्रकीर्ति को स्वीकार किया गया है। यह प्रतिमालेख हमें विदिशा के बड़े मन्दिर से उपलब्ध हुआ है। पूरा लेख इस प्रकार है :

संवत् १५३२ वर्षे वैशाख सुदी १४ गुरौ श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नन्दिसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री प्रभाचन्द्रदेव त० श्री पद्मनन्दिदेव त० शुभचन्द्रदेव भ० श्री जिनचन्द्रदेव भ० श्री सिंह-कीर्तिदेव चन्देरीमण्डलाचार्य श्री देवेन्द्रकीर्तिदेव त० श्री त्रिभुवन

कीर्तिदेव पौरपट्टान्वे अष्टन्वये सारवन पु० समवेतस्य पुत्र रउत पाये त० पुत्र सा० अर्जुन त० पुत्र सा० नेता पुत्र सा० धीरजु भा० विरेजा पुत्र सघे संघ तु० भा०……सघे……सघे।

ठीक इसी प्रकार का एक लेख कारंजा के एक मन्दिर में भी उपलब्ध हुआ है। इसके पूर्व जिनमें चन्देरी मण्डल का उल्लेख है ऐसे दो लेख वि० सं० १५३१ के गंजबासौदा और गुना मन्दिरों के तथा दो लेख वि० सं० १५४२ के भी उपलब्ध हुए हैं। किन्तु वि० सं० १५३१ को चन्देरी मण्डल की स्थापना की पूर्वावधि नही समझनी चाहिए। कारण कि ललितपुर के बड़े मन्दिर से प्राप्त वि० सं० १५२५ के एक प्रतिमालेख में त्रिभुवनकीर्ति को मण्डलाचार्य कहा गया है। इसमें भ० देवेन्द्रकीर्ति का नामोल्लेख नही है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वि० सं० १५२५ के पूर्व ही त्रिभुवनकीर्ति चन्देरी पट्ट पर अभिषिक्त हो गये थे। साथ ही यहाँ भ० जिनचन्द्र और भ० सिहकीर्ति की भी आम्नाय चालू थी यह भी इससे पता लगता है। पूरा लेख इस प्रकार है :

संवत् १५२५ वर्षे माघ सुदि १० सोमदिने श्री मूलसंघे भट्टारक-श्रीजिनचन्द्रदेवस्तत्पट्टे भट्टारक श्री सिहकीर्तिदेव मंडलाचार्य त्रिभुवन-कीर्तिदेवा गोलापूर्वान्वये सा० श्री तम तस्य भार्या संघ इति।

इसके पूर्व बड़ा मन्दिर चन्देरी मे भ० त्रिभुवनकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित वि० सं० १५२२ का एक चौबीसी पट्ट और है। इसके पूर्व के किसी प्रतिमालेख में इनके नाम का उल्लेख नही हुआ है। इससे मालूम पड़ता है कि वि० सं० १५२२ के आसपास के काल मे ये पट्टासीन हुए होंगे। यत: भ० देवेन्द्रकीर्ति भी चन्देरी मण्डल के मण्डलाचार्य रहे हैं, अत: सर्वप्रथम वे ही चन्देरी पट्ट पर आसीन हुए होगे यह स्पष्ट हो जाता है। वि० सं० १५२२ का उक्त प्रतिमालेख इस प्रकार है :

सं० १५२२ वर्षे फाल्गुन सुदी ७ श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती-गच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति त्रिभुवन……ति……।

भानुपुरा के बड़े मन्दिर के शास्त्र भण्डार में **शान्तिनाथ पुराण** की एक हस्तलिखित प्रति पाई जाती है। उसके अन्त में जो प्रशस्ति अंकित

है उसमें देवेन्द्रकीर्ति आदि की भट्टारक परम्परा को मालवाधीश कहा गया है। इससे मालूम पड़ता है कि चन्देरी पट्ट को मालवा पट्ट भी कहा जाता था। यह भी एक ऐसा प्रमाण है जिससे स्पष्टतः इस तथ्य का समर्थन होता है कि चन्देरी पट्ट के प्रथम भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ही रहे होंगे। उक्त प्रशस्ति इस प्रकार है :

अथ संवत्सरे स्मिन् नृपतिविक्रमादित्यराज्ये प्रवर्तमाने संवत् १६६३ वर्षे चैत्र द्वितीयपक्षे शुक्ले पक्षे द्वितीया दिने रविवासरे···· सिरोंजनगरे चन्द्रप्रभचैत्यालये श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती-गच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये तत्परम्परायेन मालवादेशाधीश भट्टारक श्री श्री श्री देवेन्द्रकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्री त्रिभुवन-कीर्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारक श्री सहस्रकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भट्टारकश्री पद्मनन्दिदेवा तत्पट्टे भट्टारक श्री जलकीर्ति नामधेया तत्पट्टे भट्टारक श्री श्री ललितकीर्तिदेवाः तत्शिष्य ब्रह्म बालचन्द्रमिदं ग्रन्थ लिष्यतं स्वपठनार्थं।

सिरोंज के टोरी का दि० जैन मन्दिर मे वि० सं० १६८८ का एक प्रतिमालेख है। उसमे चन्देरी पट्ट के सहस्रकीर्ति के स्थान में रत्नकीर्ति और पद्मनन्दि के स्थान मे पद्मकीर्ति ये नाम उपलब्ध होते है। भ० ललितकीर्ति के शिष्य भ० रत्नकीर्ति ने इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई थी। उक्त प्रतिमालेख इस प्रकार है :

सं० १६८८ वर्षे फागुन सुदि ५ बुधे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री त्रिभुवनकीर्तिदेवा तत्पट्टे श्री रत्नकीर्ति तत्पट्टे भ० श्री पद्म-कीर्तिदेवा तत्पट्टे भ० यशकीर्तिदेवा तत्पट्टे भ० श्री ललितकीर्ति रत्न-कीर्ति देवा तस्य मालवदेशे सरोजनगरे गोलाराडचैत्यालये गोलापूर्वान्वये —तस्य प्रतिष्ठायां-प्रतिष्ठितं।

यहाँ के दो प्रतिमालेखों मे भ० रत्नकीर्तिको मण्डलेश्वर और मण्डलाचार्य भी कहा गया है। लेख इस प्रकार है :

सं० १६७२ फा० सु० ३ मूलसंघे भ० श्री ललितकीर्ति तत्पट्टे मण्डलाचार्य श्री रत्नकीर्त्युपदेशात् गोलापूर्वान्वये सं० सनेजा····।

ये कहाँ के मण्डलाचार्य थे यह नहीं ज्ञात होता है। ये भी भ० ललितकीर्तिके पट्टधर थे। यह **भट्टारक सम्प्रदाय** पुस्तक से भी ज्ञात होता है। इनके पट्टधर चन्द्रकीर्ति थे, इसके सूचक दो प्रतिमालेख यहाँ भी पाए जाते हैं।

चन्देरी पट्ट के भट्टारकों की सूची इस प्रकार है: १. देवेन्द्रकीर्ति, २. त्रिभुवनकीर्ति, ३. सहस्रकीर्ति, ४. पद्मनन्दी, ५. यशःकीर्ति, ६. ललितकीर्ति, ७. धर्मकीर्ति, ८. पद्मकीर्ति, ९. सकलकीर्ति और १०. सुरेन्द्रकीर्ति। जान पड़ता है कि सुरेन्द्रकीर्ति चंदेरी पट्ट के अन्तिम भट्टारक थे। इसके बाद यह पट्ट समाप्त हो गया।

भट्टारक पद्मकीर्ति का स्वर्गवास वि० सं० १७१७ मार्गशीर्ष सुदि १४ बुधवार को हुआ था, ऐसा चंदेरी-खंदार मे स्थित उनके स्मारक से ज्ञात होता है। सम्भवतः इसके बाद ही इनके पट्ट पर भ० सकलकीर्ति आसीन हुए होंगे। **भट्टारक सम्प्रदाय** पुस्तक पृ० २०५ मे वि० सं० १७१२ और वि० सं० १७१३ के लेखो मे इनके नाम के जो दो लेख संगृहीत किए गए हैं वे दूसरे सकलकीर्ति होने चाहिए। मैने चंदेरी और सिरोंज दोनों नगरों के श्री दि० जैन मन्दिरों के प्रतिमालेखों का अवलोकन किया है। परन्तु भ० सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठापित कोई मूर्ति या यंत्र वहाँ मेरे देखने मे नहीं आया। हो सकता है इनके काल मे कोई पंचकल्याणक प्रतिष्ठा न हुई हो।

उक्त दोनों नगरों के मूर्तिलेखों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि भ० धर्मकीर्ति के दूसरे शिष्य भ० जगत्कीर्ति थे। सम्भवतः सिरोंज पट्ट की स्थापना इन्हीं के निमित्त हुई होगी। इनका दूसरा नाम यशकीर्ति भी जान पड़ता है। इनके पट्टधर त्रिभुवनकीर्ति और उनके शिष्य भ० नरेन्द्रकीर्ति थे। नरेन्द्रकीर्ति के पट्टाभिषेक का विवरण सिरोंज के एक गुटके में पाया जाता है। उसका कुछ अंश इस प्रकार है:

मुनिराजकी दिक्ष्या को परभाव।
श्रावक सब मिलि आनिके जैसो कियो चाउ ॥६॥
धनि नरेन्द्रकीर्ति मुनिरा। भई जग मे बहुत बढ़ाई ॥
जहाँ पौरपट्ट सुखदाई। परवारवंस सोई आई ॥
बहुरिया मूर तहाँ साई। धनि मथुरामल्ल पिताई ॥

माता नाम रजौती कहाई। जाके है घनश्याम से भाई ॥
तप तेज महा मुनिराई। कापै महिमा वरनी जाई ॥
कहा कहों मुनिराजके गुणगण सकल समाज।
जो महिमा भविजन करे भट्टारक पदराज ॥
भट्टारक पदराज की कीरति सकल भवि आई।
अलप बुद्धि कवि कहा कहै बुधिजन थकित रहाई ॥
विधि अनेक सो सहर सिरोंज में भयो पट्ट अपना चारु।
सिंघई माधवदास भवन ते निकसे महा महोच्छव सारु ॥

यहाँ से वस्त्राभूषण से सुसज्जित कर चांदा सिंघई के देवालय में ले गये। वहाँ सब वस्त्राभूषण उतारकर केशलोंचकर मुनिदीक्षा ली। उस समय १०८ कलश से अभिषेक किया। सर्वप्रथम भेलसा के पूरनमल्ल बड़कुर आदि ने किया।

जगत्कीर्ति पद उधरन त्रिभुवनकीर्ति मुनिराई।
नरेन्द्रकीर्ति तिस पट्ट भये गुलाल ब्रह्म गुन गाई ॥

शुभकीर्ति, जयकीर्ति, मुनि उदयसागर, पं० परसराम, ब्र० भयसागर, रूपसागर, रामश्री आर्यिका, बाई विभौनी, चन्द्रामती, पं० रामदास, पं० जगमनि, पं० घनश्याम, पं० बिरधी, पं० मानसिह, पं० जयराम··· परगसेनि भाई दोनों, पं० मकरन्द, पं० कपूरे, पं० कल्याणमणि।

संवत् सत्रहसै चालिस अब इक तहँ भयो।
उज्वल फागुन मास दसमि सो मह गयो ॥
पुनरवसू नक्षत्र सुद्ध दिन सोदयो।
पुनि नरेन्द्रकीरति मुनिराई सुभग संजम लह्यो ॥

वि० सं० १७४६ माघ सुदी ६ सोमवार को चाँदखेड़ी में हाडा माधोसिह के अमात्य श्री कृष्णदास बघेरवालने आमेर के भट्टारक श्री जगत्कीर्ति के तत्त्वावधान में बृहत्पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई थी। उसमें चन्देरी पट्टके भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति भी सम्मिलित हुए थे। इस सम्बन्ध की प्रशस्ति चाँदखेड़ी के श्री जिनालय में प्रवेशद्वार के बाहर बरामदे के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। उसमें चंदेरी, सिरोंज और विदिशा (भेलसा) पट्टको परवारपट्ट कहा गया है। उसका मुख्य अंश इस प्रकार है :

॥१॥ संवत् १७४६ वर्ष माह सुदी ६ षष्ठयां चन्द्रवासरान्वितायां श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सकल-भूमंडलवलयेकभूषण सरोजपुरे तथा चेदोपुरभद्दिलपुर—वतंस परवार-पट्टान्वये भट्टारक श्री धर्म्मकीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्री पद्मकीर्तिस्तत्पट्टे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिस्तत्पट्टे ततो भट्टारक श्री सुरेन्द्रकीर्ति तदुपदेशात् "......॥

मालूम पड़ता है कि चंदेरी ओर सिरोंज भट्टारक पट्टों की स्थापना परवार समाज के द्वारा ही की जाती थी, इसलिए इन पट्टों को परवार-पट्ट कहा गया है। इस नामकरण से ऐसा भी मालूम पड़ता है कि इन दोनों पट्टो पर परवार समाज के व्यक्ति को ही भट्टारक बनाकर अधिष्ठित किया जाता था। सिरोज के पट्टाभिषेक का विवरण हमने प्रस्तुत किया ही है। उससे भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। विदिशा मे कोई स्वतन्त्र भट्टारक गद्दी नही थी, किन्तु वहाँ जाकर भट्टारक महीनो निवास करते थे और वह मुख्य रूप से परवार समाज का ही निवास स्थान रहा चला आ रहा है, इसलिए उक्त प्रशस्ति में भद्दलपुर (विदिशा) का भी समावेश किया गया है।

चंदेरीपट्ट की अपेक्षा उत्तरकाल मे सिरोंजपट्ट काफी दिनों तक चलता रहा। इसकी पुष्टि गुना के दि० जैन मन्दिर से प्राप्त इस यंत्रलेख से भी होती है। यंत्रलेख इस प्रकार है :

सं० १८७१ मासोत्तममासे माघमासे शुक्लपक्षे तिथौ ११ चन्द्रवासरे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सिरोंजपट्टे भट्टार्कश्री राजकीर्ति आचार्य देवेन्द्रकीर्ति उपदेशात् ग्याति परिवाटि राउत ईडरीमूरी चौधरी घासीरामेन इदं यंत्रं करापितं।

सिरोंज पट्टके ये अन्तिम भट्टारक जान पड़ते हैं।

२५. पौरपाट (परवार) भट्टारक

श्री भट्टारक पद्मनंदी के तीन शिष्य थे—शुभचन्द्र, सकलकीर्ति और देवेन्द्रकीर्ति। इसमे भ० देवेन्द्रकीर्ति ने सबसे पहले गांधार (गुजरात) में भट्टारक पट्ट की स्थापना की थी। उसके बाद वे उस पट्ट को रांदेर ले आये थे। यहीं पर उन्होंने विद्यानंदी को पट्ट पर स्थापित करके वे स्वयं चंदेरी चले आये थे और यहाँ उन्होंने भट्टारक पट्ट को स्थापित

किया था। इसका विशेष विवरण **मूर्तिलेख संग्रह** (मूलचंद किसनदास कापड़िया, वीर सं० २४९० ता० १८-८-६४) गुजराती प्रकाशन में देखने को मिलता है।

उसके पृ० ३५ पर लिखा है कि वि० संवत् १४६१ में भ० देवेन्द्र-कीर्ति ने गांधार से भट्टारक पट्ट को लाकर रांदेर में स्थापित किया और भ० विद्यानंदी उसी पट्ट को वि० संवत् १५१८ में सूरत ले आये। चन्देरी के प्रतिमालेखों को देखने से यह भी पता लगता है कि श्री भ० देवेन्द्रकीर्ति अठसखा परवार थे। वह लेख इस प्रकार है :

संवत् १५३२ वर्षे वैशाख सुदी १४ गुरौ श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नन्दिसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेव भ० शुभचन्द्रदेव भ० श्री जिनचन्द्रदेव भ० श्री सिंहकीर्तिदेव चन्देरी मण्डलाचार्य श्री देवेन्द्रकीर्तिदेव भ० श्री त्रिभुवनकीर्तिदेव पौरपट्टान्वये अष्टान्वये सारस्वतपु-समवेतस्य पुत्र रौतपाये ता पुत्र सा० अर्जुन त० पुत्र सा० नेता पुत्र सा० धीरजु भा० विरेजा पु० सघे संघ तु भा०. . सदो ··· सघे।

ठीक इसी प्रकार का एक लेख कारंजा के एक मन्दिर में भी उपलब्ध हुआ है।

वे परवार थे इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि चन्देरी के भट्टारक पट्ट को परवार भट्टारक पट्ट कहा गया है। इसकी पुष्टि के प्रमाण स्वरूप हम 'चन्देरी-सिरोज (परवार) पट्ट' का उल्लेख ऊपर कर आये हैं। (देखो पृ० ८३)। इससे मालूम पड़ता है कि इस पट्ट पर बैठने वाले जितने भी भट्टारक हुए है वे सब परवार थे। उनके नाम इस प्रकार हैं— भ० देवेन्द्रकीर्ति, त्रिभुवनकीर्ति, सहस्रकीर्ति, पद्मनन्दि, यशकीर्ति, ललित-कीर्ति, धर्मकीर्ति, सकलकीर्ति और सुरेन्द्रकीर्ति। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि भ० ललितकीर्ति के एक शिष्य का नाम रत्नकीर्ति था और रत्नकीर्ति के बाद उनके शिष्य का नाम चन्द्रकीर्ति था।

ये दोनों किस पट्ट के पट्टधर भट्टारक थे इसका अभी तक मूर्ति-लेखों से कोई पता नहीं चलता। इतना अवश्य है कि सिरोंज के कई मन्दिरों में ऐसे मूर्तिलेख अवश्य पाये जाते है जिनमें इनके नामों का

उल्लेख हुआ है। इससे ऐसा भी माना जा सकता है कि बहुत सम्भव है कि सिरोंज में जिस परवार पट्ट की स्थापना हुई थी वह इनके द्वारा ही प्रारम्भ किया गया जान पड़ता है।

वैसे भ० धर्मकीर्ति के सकलकीर्ति के सिवाय एक दूसरे शिष्य का नाम जगत्कीर्ति था। इसलिए यह भी सम्भावना की जाती है कि सिरोंज पट्ट की स्थापना इन्हीं के द्वारा हुई है। इनके उत्तराधिकारी का नाम त्रिभुवनकीर्ति था। इनके पट्टाभिषेक की एक चर्चा छन्दों के संकलन में विशेष रूप से देखने को मिलती है। इसके लिए 'चन्देरी-सिरोंज (परवार) पट्ट' शीर्षक से लिखे गये लेख मे हमने उद्धृत की है। इनके उत्तराधिकारी शिष्य उत्तरोत्तर कौन-कौन हुए इसका विशेष उल्लेख इस समय उपलब्ध नहीं है। किन्तु संवत् १८७१ में राजकीर्ति नामक एक भट्टारक हुए है जिन्हें एक प्रतिमालेख मे सिरोंज पट्ट का अधिकारी कहा गया है। बहुत सम्भव है कि ये ही सिरोंज पट्ट के अन्तिम भट्टारक हों।

इस भट्टारक परम्परा मे जो धर्मकीर्ति नाम के भट्टारक हुए हैं, उन्होंने **हरिवंशपुराण** की रचना अपभ्रंश भाषा मे की थी। साथ ही उनका लिखा हुआ एक **धर्मपरीक्षा** नाम का ग्रन्थ भी पाया जाता है।

यहाँ हमे दो बातें और विशेष रूप से कहनी है—एक तो भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य भट्टारक विद्यानन्दी के विषय में। ये सूरतपट्ट के दूसरे भट्टारक थे, ये परवार थे, इनकी उस प्रदेश मे बहुत ख्याति रही है। सूरत के पास कातार नाम का एक स्थान है जहाँ पर इनके चरण-चिह्न पादुकायें पाई जाती है। साथ ही इन्होंने संस्कृत मे **सुदर्शनचरित्र** नाम के एक ग्रन्थ की रचना भी की है।

दूसरी बात भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति के शिष्य भ० श्रुतकीर्ति के विषय में कहना है। यद्यपि इनका **भट्टारक सम्प्रदाय** ग्रन्थ में उल्लेख तो नहीं है, फिर भी ये अपभ्रंश भाषा के असाधारण विद्वान् हो गये है। इस भाषा मे उनका लिखा हुआ एक **पद्मपुराण** नाम का ग्रन्थ अनेक ग्रन्थागारों में पाया जाता है। इस प्रकार देखने से मालूम पड़ता है कि इन भट्टारकों ने बुन्देलखण्ड क्षेत्र में धर्मप्रभावना में अच्छा योगदान किया है।

द्वितीय खण्ड : ऐतिहासिक अभिलेख

पट्टावलियाँ :

उज्जैन पट्टावली
आ० महावीरकीर्ति के गुटके से उपलब्ध पट्टावली

प्रतिमालेख आदि

तेरापन्थ बनाम मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय

परवार जाति के इतिहास पर कुछ प्रकाश

कटक की चिट्ठी

आचार्य गुप्तिगुप्त

वि स २६ फागुन सुदी १४ गुप्तिगुप्त जी ग्रहस्थ वर्ष २२
दीक्षा वर्ष ३४ पदस्थ वर्ष ९ मास ६ दिन २५
बिरह दिन ५ सर्वायु वर्ष ६५ मास ६
"जाति परवार विक्रमादित्य को पोतो"
ईडर-जयपुर की पट्टावली मे

उज्जैन के महाराजा विक्रमादित्य परमार क्षत्रिय वश के थे।

उनके नाती गुप्तिगुप्त हुए जिन्होने २२ वर्ष की अवस्था में जैन दिगम्बरी दीक्षा लेकर मुनि हो गये थे। जिनके तीन नाम थे, गुप्तिगुप्त, अर्हदवलि, विशाखाचार्य

द्वितीय खण्ड : ऐतिहासिक अभिलेख

१. उज्जैन पट्टावली :

जैन समाज मे सामाजिक इतिहास लिखने की कोई पद्धति नहीं रही है, किन्तु धार्मिक क्षेत्र में यह पद्धति प्रचलित थी। जैन समुदाय मुनि-आर्यिका और श्रावक-श्राविका—इन चार भागों में विभक्त था। इन पर आचार्यगण धार्मिक शासन करते थे।

भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद गुरु-शिष्य परम्परा लोहाचार्य तक रही। इस परम्परा मे वीर प्रभु का उपदेश, जो अङ्ग-पूर्वो मे विभक्त था, उसका मौखिक आदान-प्रदान चलता था। लेखन पद्धति या तो उस समय प्रचलित नही थी अथवा अङ्ग-पूर्व ज्ञान लिपिबद्ध न होकर मौखिक ही शिष्य-परम्परा मे चालू थे। कालक्रम से वह ज्ञान कम होता गया और आचार्य लोहाचार्य पर वह समाप्त हो गया। पश्चात् अङ्ग और पूर्वों के एकदेश ज्ञाता रहे।

आचार्य धरसेन जिनकी गुरु-परम्परा अज्ञात है, पूर्वांश के ज्ञाता थे। उन्होने भूतबलि और पुष्पदन्त नामक अपने दो शिष्यों को विद्या देकर लिपिबद्ध करने की प्रेरणा दी थी, तब से ग्रन्थ-लेखन प्रारम्भ हुआ। ऐसा अनुमान है कि धरसेन पट्टधर शिष्यों की परम्परा मे पट्ट पर आसीन न थे, किन्तु अपट्टधर ज्ञानियो मे विशिष्ट ज्ञानी थे।

पट्टधर परम्परा में आचार्य अर्हद्‌बलि ने अपना पट्ट यद्यपि लोहाचार्य को दिया था, तथापि आगे भी आचार्य परम्परा और चतुर्विध संघ में धर्म की परम्परा चले, इसके लिए मूलसंघ की परम्परा में सर्वप्रथम उनके गुरु श्री भद्रबाहु (द्वितीय) उस पट्ट पर आसीन हुए। उनका समय वि० सं० ४ था। उसके २२ वर्ष पश्चात् उनके पट्ट पर आचार्य अर्हद्‌बलि जिनके गुप्तिगुप्त, अर्हद्‌बलि और विशाखाचार्य[1]—ये तीन नाम प्रसिद्ध थे, वि० सं० २६ में उस पट्ट पर बैठे। इनके बाद माघनन्दि, जिनचन्द्र और कुन्दकुन्द आदि आचार्य पट्ट पर बैठे और पट्टाधीश आचार्यों की परम्परा चली।

---

१. खण्डेलवाल जैन समाज का बृहद् इतिहास, पृष्ठ ८।

इस परम्परा को सुरक्षित रखने की लिखित पद्धति चालू हुई, तदनुसार वि० सं० ४ से लेकर जो पट्टावली चली उसका प्रचलन प्रत्येक प्रान्त में रहा। महाभिषेक के अन्त में गुर्वावली पढ़ी जाती थी। इससे उसकी परम्परा अक्षुण्ण रूप से सर्वत्र ज्ञात रही।

वर्तमान मे आरा, ईडर, नागौर, जयपुर और उज्जैन आदि नगरों के ग्रन्थ-भण्डारों मे पट्टावलियाँ पाई जाती है। जैन समाज के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन द्वारा प्रेषित उज्जैन की पट्टावली यहाँ प्रकाशित की जा रही है।

॥ ॐ नमः ॥ अथ शुभ संवत्सरतो मुनिजन पट्टावली भट्टारकाणां क्रमेण लिख्यते ॥ अथ दिगम्बर पट्टावली लिख्यते ॥

१—संवत् ४ चैत सुदि १४ भद्रबाहुजी जाति ब्राह्मण गृहस्थ वर्ष २४ दीक्षा ३० पट्टस्थ वर्ष २२ मास १० दिन २७ विरह दिन ३ सर्वायु ७६ मास ११ ॥छा॥

२- संवत् २६ फागुन सुदि १४ गुप्तगुप्ति[1] जी गृहस्थ वर्ष २२ दीक्षा वर्ष ३४ पट्टस्थ वर्ष ९ मास ६ दिन २५ विरह दिन ५ सर्वायु ६५ मास ७ जाति **परवार** ॥छा॥

३—संवत् ३६ आसोज सुदि १४ माघनन्दि जी गृहस्थ वर्ष २० दीक्षा वर्ष ४४ पट्ट वर्ष ४ मास ४ दिन २६ विरह दिन ४ सर्व ६८ मास ५ ॥छा॥

४—संवत् ४० फागुन सुदि १४ जिनचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष २४ मास ९ दीक्षा वर्ष ३२ मास ३ पट्ट वर्ष ८ माम ९ दिन ६ विरह दिन ३ सर्वायु वर्ष ६५ मास ९ दिन ९ ॥छा॥

५—संवत् ४९ पौस वदि ८ कुन्दकुन्द जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष ३३ पट्ट वर्ष ४१ मास १० दिन १० विरह काल दिन ५ सर्वायु वर्ष ८४ मास ८ दिन ६ ॥छा॥ पद्मनन्दि ॥१॥ वक्रग्रीवा ॥२॥ गृध्रिपक्ष ॥३॥ एलाचार्य ॥४॥ कुन्दकुन्दाचार्य ॥५॥ एवं नाम पाँच हूवा ॥छा॥

---

१. यहाँ शुद्ध शब्द 'गुप्तिगुप्त' होना चाहिए।

६—संवत् १०१ कार्ती सुदि ८ उमास्वामी जी गृहस्थ वर्ष १९ दीक्षा वर्ष २५ पट्टवर्ष ४० मास ८ दिन १ विरह दिन ५ सर्व वर्ष ८४ मास ८ दिन ६ ॥छा॥

७—संवत् १४२ आषाढ सुदि १४ लोहाचार्य जी गृहस्थ वर्ष २१ दीक्षा वर्ष ३८ पट्टवर्ष १० मास १० दिन २० विरह दिन ६ सर्वायु वर्ष ६९ मास ९ दिन २६ ॥छा॥

८—संवत् १५३ जेठसुदि १० यशकीर्तिजी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष २१ पट्टवर्ष ५८ मास ८ दिन २१ विरह दिन ५ सर्व आयु वर्ष ९१ मास ९ दिन १५ ॥छा॥

९—सं० २११ फागुन वदि १० यशोनन्द जी गृहस्थ वर्ष १६ दीक्षा वर्ष १७ पट्टवर्ष ४६ मास ४ दिन ९ विरह दिन ४ सर्व वर्ष ७९ मास ४ दिन १३ ॥छा॥

१०—सं० २५८ आसाढ सुदि ८ देवनन्दिजी गृहस्थ वर्ष ११ मास ५ दीक्षा वर्ष १५ मास ७ पट्टवर्ष ४९ मास १० दिन २८ विरह दिन ४ सर्व वर्ष ७५ मास ११ दिन २ ॥छा॥

११—संवत् ३०८ जेठ सुदि १० पूज्यपाद जी गृहस्थ वर्ष १५ दीक्षावर्ष ११ मास ७ पट्टवर्ष ४४ मास ११ दिन २२ विरह दिन ७ सर्वायु वर्ष ७१ मास ६ दिन २९ ॥छा॥

१२—सं० ३५३ जेठ सुदि ९ गुणनन्दिजी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष १३ मास ५ पट्टवर्ष ११ मास ३ दिन १ विरह दिन ४ सर्व वर्ष ३८ मास ८ दिन ५ । छा॥

१३—सं० ३६४ भादवा सुदि १४ व्रजनन्दिजी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष १३ मास ३ पट्टवर्ष ४ मास २ दिन २० विरह दिन ९ सर्व वर्ष ७६ मास ५ दिन २० ॥छा॥

१४—संवत् ३८६ फागुन वदि ४ कुमारनन्दि जी गृहस्थ वर्ष १६ दीक्षा वर्ष १० मास २ पट्टवर्ष ४० मास २ दिन २० विरह दिन ९ ॥

१५—सं० ४२७ जेठ वदि ३ लोकचन्द्रजी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष १६ पट्टवर्ष २६ मास ३ दिन १६ विरह दिन १० ॥

१६—सं० ४५३ भादवा सुदि १४ प्रभाचन्द्रजी गृहस्थ वर्ष ९ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष २५ मास ५ दिन १५ विरह दिन ११ ॥

१७—सं० ४७८ फागुन सुदि १० नेमिचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा वर्ष २२ पट्ट वर्ष ८ मास ९ दिन १ विरह दिन ९ ॥

१८—सं० ४८७ पोस वदि ५ भानुनन्दिजी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा वर्ष १५ पट्ट वर्ष २१ दिन २४ विरह दिन १२ ॥

१९—सं० ५०८ माह सुदि ११ हरिनन्द जी गृहस्थ वर्ष ९ दीक्षा वर्ष १५ पट्ट वर्ष १६ मास ७ दिन १५ विरह दिन १४ ॥

२०—सं० ५२५ आसोज सुदि १० वसुनन्दि जी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा वर्ष ३० पट्ट वर्ष ६ मास ७ दिन २२ विरह दिन ९ ॥

२१—सं० ५३१ पौस सुदि ११ वीरनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ९ दीक्षा वर्ष १३ पट्ट वर्ष ३० दिन १४ विरह दिन १० ॥

२२—सं० ५६१ माह सुदि ५ रत्ननन्दि जी गृहस्थ वर्ष ८ दीक्षा वर्ष १२ पट्ट वर्ष २३ मास ४ दिन ७ विरह दिन ११ ॥

२३—सं० ५८५ आसाढ वदि ८ माणिकनन्दि जी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा वर्ष १९ पट्ट वर्ष १६ मास ५ दिन १० विरह दिन १५ ॥

२४—सं० ६०१ पौस वदि ३ मेघचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष २४ मास ३ दिन १७ दीक्षा वर्ष ७ मास ६ दिन १३ पट्ट वर्ष २५ मास ५ दिन २ विरह दिन १२ ॥

२५—सं० ६२७ आसाढ वदि ५ शान्तिकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष १० पट्ट वर्ष १५ दिन २५ विरह दिन २० ॥

२६—सं० ६४२ श्रावण सुदि ५ मेरुकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ८ दीक्षा वर्ष ११ पट्ट वर्ष ४४ मास ३ दिन १६ विरह दिन १३ ॥

२७—सं० ६८६ मागिसिर सुदि ४ महीकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ६ दीक्षा वर्ष २९ पट्ट वर्ष १७ मास ११ दिन ५ विरह दिन १५ ॥

२८—सं० ७०४ मागिसिर वदि ९ विष्णुनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष १४ पट्ट वर्ष २१ मास ४ दिन १ विरह दिन १५ ॥

२९—संवत् ७२६ चैत सुदि ९ श्रीभूषण जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष ८ पट्ट वर्ष ९ विरह दिन २६ ॥

३०—सं० ७३५ वैसाख सुदि ५ श्रीचन्द्रजी गृहस्थ वर्ष ६ दीक्षा वर्ष १२ पट्ट वर्ष १४ मास ३ दिन ४ विरह मास ७ दिन १ ॥

३१—सं० ७४९ भादवा सुदि १० श्रीनन्दि जी गृहस्थ वर्ष १५ दीक्षा वर्ष २० पट्ट वर्ष १५ मास ६ दिन ४ विरह दिन १३ ॥

३२—सं० ७६५ चैत वदि १२ देशभूषण जी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष ······ मास ६ दिन ६ विरह दिन ७॥

३३—सं० ७६५ आसोज सुदि १२ अनन्तकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष १३ पट्ट वर्ष १९ मास ९ दिन २५ विरह दिन १० ॥

३४—सं० ७८५ श्रावण सुदि १५ धर्मनन्दि जी गृहस्थ वर्ष १३ दीक्षा वर्ष १८ पट्ट वर्ष २२ मास ९ दिन २५ विरह दिन ५ ॥

३५—सं० ८०८ जेठ सुदि १५ विद्यानन्दि जी गृहस्थ वर्ष १३ दीक्षा वर्ष २५ पट्ट वर्ष ३२ दिन ४ विरह दिन ४ ॥छ॥

३६—सं० ८४० आसाढ़ वदि १२ रामचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष ८ दीक्षा वर्ष ११ पट्ट वर्ष १६ मास १० विरह दिन ६ ॥

३७—सं० ८५७ वैसाष सुदि ३ रामकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष १६ पट्ट वर्ष २१ मास ४ दिन २६ विरह दिन ११ ॥

३८—सं० ८७८ आसोज सुदि १० अभयचन्द्रजी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष १० पट्ट वर्ष १७ दिन २७ विरह दिन ४ ॥

३९—सं० ८९७ काती सुदि ११ नरचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १५ दीक्षा वर्ष २१ पट्ट वर्ष १८ मास ९ विरह दिन ९ ॥

४०—सं० ९१६ भादवा बुदि (वदि) ५ नागचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष २१ दीक्षा वर्ष १३ पट्ट वर्ष २३ दिन ३ विरह दिन १० ॥

४१—सं० ९३९ भादवा सुदि ३ नयणनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ८ दीक्षा वर्ष १० पट्ट वर्ष ८ मास ९ दिन ११ विरह दिन ९ ॥

४२—स० ९४८ आसाढ वदि ८ हरिचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष ८ मास ४ दीक्षा वर्ष १४ मास ८ पट्ट वर्ष २६ मास १ दिन ८ विरह दिन ८ ॥छ॥

४३—स० ९७४ सावण सुदि ९ महीचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष १० मास ११ पट्ट वर्ष १६ मास ६ विरह दिन ५ ॥

४४—सं० ९९० माह सुदि १४ माघचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १३ दीक्षा वर्ष २० पट्ट वर्ष ३२ मास २ दिन २४ विरह दिन ९ ॥

४५—सं० १०२३ जेठ वदि २ लक्ष्मीचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष २५ पट्ट वर्ष १४ मास ४ दिन ३ विरह दिन ११ ॥

४६—स० १०३७ आसोज वदि १ गुणकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष २० पट्ट वर्ष १० मास १० दिन २९ विरह दिन १४ ॥

४७—सं० १०४८ भादवा सुदि १४ गुणचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा वर्ष २२ पट्ट वर्ष १७ मास ८ दिन ७ विरह दिन १० ॥

४८—सं० १०६६ जेठ सुदि १ लोकचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १५ दीक्षा वर्ष ३० पट्ट वर्ष १३ मास ३ दिन ३ विरह दिन ४ ॥

४९—स० १०७९ भादवा सुदि ८ श्रुतकीर्ति गृहस्थ वर्ष १३ दीक्षा वर्ष ३२ पट्ट वर्ष १५ मास ६ दिन ६ विरह दिन ६ ॥

५०—स० १०९४ चैत वदि ५ भावचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष २५ पट्ट वर्ष २० मास ११ दिन २५ विरह दिन ५ ॥

५१—सं० १११५ चैत वदि ५ महीचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा वर्ष २६ पट्ट वर्ष २५ मास ५ दिन १० विरह दिन ५ ॥ एता पट्ट मालवा मे भदलापुर[1] हुआ ॥

५२—सं ११४० भादवा सुदि ५ माघचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष १३ पट्ट वर्ष ४ मास ३ दिन १७ विरह दिन ७ ॥

५३—सं० ११४४ पोस वदि १४ ब्रह्मनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष ३७ पट्ट वर्ष २ मास ४ दिन १ विरह दिन ४ ॥

---

१. भद्दलपुर या भेलसा ।

५४—सं० ११४८ वैसाष सुदि ४ शिवनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ९ दीक्षा वर्ष ३९ पट्ट वर्ष ७ मास ६ दिन १७ विरह दिन १४ ॥

५५—सं० ११५५ मागसिर सुदि ५ विश्वचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष····· · · · मास ७ दिन २८ विरह दिन ३ ॥

५६—सं० ११५६ श्रावण सुदि ६ सिंहनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष ३२ पट्ट वर्ष ४ दिन २४ विरह दिन ५ ॥

५७—सं० ११६० भादवा सुदि ५ भावनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष ३० पट्ट वर्ष ७ मास २ विरह दिन ३ ॥

५८—सं० ११६७ काती सुदि ८ देवनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष ३० पट्ट वर्ष ३ मास ३ दिन २ विरह दिन १० ॥

५९—सं० ११७० फागुन वदि ५ विद्याचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष ३८ पट्ट वर्ष ५ मास ५ दिन ५ विरह दिन १४ ॥

६०—सं० ११७६ श्रावण सुदि ९ सुरचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष ३५ पट्ट वर्ष ८ मास १ दिन २९ विरह दिन २ ॥

६१—सं० ११८४ आसोज सुदि १० माघनन्दि जी गृहस्थ वर्ष १४ मास ६ दीक्षा वर्ष ३२ मास २ पट्ट वर्ष ४ मास १ दिन १६ विरह दिन ५ ॥

६२—सं० ११७८ मागसिर सुदि १ ज्ञाननन्दि जी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा वर्ष ३४ पट्ट वर्ष ११ दिन ३ अन्तर दिन ७ ॥

६३—सं० ११९९ मागसिर सुदि ११ गंगकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १३ दीक्षा (वर्ष) ३३ पट्ट वर्ष ७ मास २ दिन ८ अन्तर दिन १० ॥

६४—सं० १२०६ फागुण वदि १४ सिंहकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ८ दीक्षा वर्ष ३७ पट्ट वर्ष २ मास २ दिन १५ अन्तर दिन १६ ॥

६५—सं० १२०९ जेठ वदि ८ हेमकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १३ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष ७ मास ३ दिन २७ विरह दिन ६ ॥

६६—सं० १२१६ आसोज सुदि ३ चारुनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ६ मास ९ दीक्षा वर्ष १९ मास ३ पट्ट वर्ष ६ मास ६ दिन २० विरह दिन १० ॥

६७—सं० १२२३ वैसाष सुदि ३ नेमिनन्दि जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष २१ पट्ट वर्ष ७ मास ८ दिन २९ अन्तर दिन ९ ॥

६८—सं० १२३० मास सुदि ११ नाभिकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ५ दीक्षा वर्ष ३५ पट्ट वर्ष १ मास ११ दिन २६ मास[१] अन्तर दिन ४ ॥

६९—सं० १२३२ माह सुदि ११ नरेन्द्रकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष १३ पट्ट वर्ष ९ दिन १८ विरह दिन १२ ॥

७०—सं० १२४१ फागुन सुदि ११ श्रीचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष २५ पट्ट वर्ष ६ मास ३ दिन २४ विरह दिन ७ ॥

७१—सं० १२४८ आसाढ सुदि १२ पद्मकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १० दीक्षा (वर्ष) २२ पट्ट वर्ष ४ मास ११ दिन २५ विरह दिन ६ ॥

७२—सं० १२५३ आसाढ सुदि १३ वर्द्धमान जी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष ५ पट्ट वर्ष २ मास ११ दिन ८ विरह दिन ३ ॥

७३—सं० १२५६ आसाढ़ सुदि १४ अकलंकचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १४ दीक्षा वर्ष ३३ पट्ट वर्ष १ मास ३ दिन २४ विरह दिन ७ ॥

७४—सं० १२५७ काती सुदि १५ ललितकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १३ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष ४ विरह दिन ५ ॥

७५—सं० १२६१ मार्गसिर वदी ५ केशवचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष ३४ पट्ट मास ६ दिन १५ विरह दिन ६ ॥

७६—सं० १२६२ जेठ सुदी ११ चारुकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष ३२ पट्ट वर्ष २ मास ३ दिन २ विरह दिन ७ ॥

७७—सं० १२६४ आसोज सुदी[२] ३ अभयकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ११ मास २ दीक्षा वर्ष ३० मास ५ पट्ट वर्ष ७ मास ४ दिन ११ अन्तर दिन ७ ॥

---

१. यहाँ मूल मे 'मास' शब्द अतिरिक्त प्रतीत होता है।

२. ख० जै० स० वृ० इ०, पृष्ठ १५ पर 'बुदि' पाठ है, जो उचित प्रतीत होता है।

७८—सं० १२६४ माह सुदि ५ वसंतकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष २० पट्ट वर्ष १ मास ४ दिन २२ विरह दिन ८ ॥

७९—सं० १२६६ आसाढ सुदि ५ प्रख्यातकीर्तिजी[1] गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष १५ पट्ट वर्ष २ मास ३ दिन १६ विरह दिन ४ ॥

८०—सं० १२६८ काती वदि ८ शान्ति[2] या शुभकीर्ति[3] जी गृहस्थ वर्ष १८ दीक्षा वर्ष २३ पट्ट वर्ष २ मास ९ दिन ७ विरह दिन ८ ॥

८१—सं० १२७१ सावण सुदि १५ धर्मचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १६ दीक्षा वर्ष १४ पट्ट वर्ष १५ विरह दिन ५ ॥

८२—सं० १२९६ भादवा वदि १३ रत्नकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष १९ दीक्षा (वर्ष) २५ पट्ट वर्ष १४ माम ४ दिन १० विरह दिन ६ ॥

८३—सं० १३१० पौस सुदि १४ प्रभाचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष १२ पट्ट वर्ष ७४ मास ११ दिन १५ विरह दिन ८ ॥

सं० १३७५ का दिन सू प्रभाचन्द्र जी के आचार्य छौ गुजरात में श्री भट्टारक जी तो न छा सो महाजन १ प्रतिष्ठा को उद्यम गुजरात मे श्री भट्टारक जो नै कागद दीधौ सो भट्टारक जी को आयवो प्रतिष्ठा का जोग परिनवण्यै १ अर तदि आचार्य ने सूरिमंत्र दिवाय भट्टारक पदत्री आचार्य जी ने दीन्ही पछै प्रतिष्ठा कराई अर गुजरात में पट्ट जुदो ही ठाहरयो आचार्य सौं भट्टारक हूवो तब नाम पद्मनन्दि जी दीयो ॥श्री॥[4]

१. इनका नाम विशालकीर्ति भी मिलता है।
२. ख० जै० स० वृ० इति०, पृष्ठ १५।
३. जै० सि० भा०, भाग १, किरण ४, जून १९१३।
४. नं० ८३—संवत् १३१० पौस सुदि १४ को प्रभाचन्द्र जी हुए। संवत् १३७५ के वर्ष मे गुजरात मे कोई भट्टारक नही थे, किन्तु वहाँ के महाजन एक प्रतिष्ठा कराना चाहते थे। उन्होने भट्टारक जी को एक पत्र दिया और उन्होंने आकर प्रतिष्ठा करवाई, सूरिमन्त्र दिया। आचार्य पदवी आचार्य जी ने अपने शिष्यों को नहीं दी और गुजरात में एक जुदा पट्ट स्थापित किया तथा उन्होने भट्टारक पद अपने शिष्य पद्मनन्दि को दिया।

८४—सं० १३८५ पोस सुदि ७ पद्मनन्दि जी गृहस्थ वर्ष १० मास ७ दीक्षा वर्ष २३ मास ५ पट्ट वर्ष ६५ दिन १८ विरह दिन १० ॥

८५—सं० १४५० माह सुदि ५ शुभचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १६ दीक्षा वर्ष २४ पट्टस्थ वर्ष ५६ मास ३ दिन ४ विरह दिन ११ ॥

८६—सं० १५०७ जेठ वदि ५ जिनचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १२ दीक्षा वर्ष २४ पट्ट वर्ष ५६ मास ३ दिन ४ विरह दिन ११ ॥

८७—सं० १५७१ फागुन वदि २ प्रभाचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष १५ दीक्षा वर्ष ३५ पट्ट वर्ष ९ मास ४ दिन २५ विरह दिन ८ ॥

८८—सं० १५८१ श्रावण वदि ५ धर्मचन्द्र जी गृहस्थ वर्ष ९ दीक्षा वर्ष २१ मास ८ दिन १३ विरह दिन ५ ॥

८९—सं० १६०३ चैत्र सुदि ८ ललितकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष २५ पट्ट वर्ष १९ मा० दिन १५ विरह दिन ७ ॥

९०—सं० १६२२ वैसाख वदि ८ चन्द्रकीर्ति जी पट्ट वर्ष ४० मास ९ दिन २३ विरह दिन ७ जाति गोधा ॥

ऐसा ज्ञात होता है कि भट्टारक नाम तभी से चला। इस विषय मे खण्डलवाल जैन समाज का वृहद इतिहास प्रथम भाग, पृष्ठ १०१ में यह लिखा है कि "दिल्ली के बादशाह फिरोजशाह के प्रधान अमात्य चांदा एव गूजर दोनो पापडीवाल थे। भट्टारक प्रभाचन्द्र को उन्होने ही दिल्ली मे बुलाया था तथा राघो और चेतन से शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्तकर फिरोजशाह एव उनकी मलिका को प्रभावित किया था। भट्टारक प्रभाचन्द्र जी समाज के आग्रह को देखते हुए लगोट धारण करके मलिका को दर्शन देने गये थे। इस सब घटना का प० बखतराम के बुद्धि विलास मे विस्तृत वर्णन मिलता है।" स्वय प्रभाचन्द्र जी ने लगोट लेने के कारण स्वय को भट्टारक मानकर आगामी पट्टाधीश को आचार्य पद न देकर भट्टारक पद दिया, तभी से जैन आचार्यो ने वस्त्र लेने के कारण एक नये भट्टारक पथ की रचना की और मुनि पद की गरिमा को बचाया।

— खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास, पृष्ठ २५२

९१—सं० १६६२ फागुन वदि ८ देवेन्द्रकीर्ति जी पट्टस्थ वर्ष २० मास ७ दिन २५ विरह दिन ५ जाति ठौल्या ॥

९२—सं० १६९१ काती बदि ५ नरेन्द्रकीर्ति जी पट्टस्थ वर्ष ३० मास ८ दिन १५ विरह दिन ८ गृहस्थ वर्ष ११ ॥

९३—सं० १७२२ श्रावण वदि ८ सुरेन्द्रकीर्ति जी पट्टस्थ वर्ष (१०) मास ११ दिन १० विरह दिन १७ जाति काला ॥

९४—सं० १७३३ श्रावण वदि ५ जगत्कीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ११ दीक्षा वर्ष २६ पट्टस्थ वर्ष ३७ मास ५ दिन २८ विरह दिन ९ जाति सांपूराय ॥१॥

९५—सं० १७७० माह वदी ११ देवेन्द्रकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ७ दोक्षा वर्ष ३५ पट्टस्थ वर्ष २२ विरह काल दिन ७ जाति ठौल्या ॥

९६—सं० १७९२ पोस सुदि १० महेन्द्रकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ७ दीक्षा वर्ष २१ पट्टस्थ वर्ष २१ मास ९ दिन २४ विरह मास ८ जाति पापडीवाल ॥

९७—सं० १८१५ आसाढ़ सुदि ११ क्षेमेन्द्रकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ५ दीक्षा वर्ष २७ पट्टस्थ वर्ष ७ मास ३ दिन २२ विरह मास ४ दिन २ जाति पाटणी ॥

९८—सं० १८२२ फागुन सुदि ४ सुरेन्द्रकीर्ति जी गृहस्थ वर्ष ६ दीक्षा वर्ष १२ मास ४ पट्टस्थ वर्ष··· मास··· दि०··· जाति पहाडिया ॥

अथ भट्टारक पदस्थ जिठै २ हूवा त्यांह को ब्योरो लिखिजे छै ॥ भद्रबाहु जी सौ लेर मेरुकीर्ति जी तां यू पट्ट ॥ २६ भद्दलपुर दक्षिण देश में हूवा ।।२६।। महोकीर्तिजी ने आदिदेर महीचन्द्रजी ता यू पट्ट २६ तिह मै उज्जी[1] णितो ॥१८॥ चंदेरी ॥४॥ भेलसै ॥३॥ कुंडलपुर ॥१॥ ए सगला २६ मालवै हूवा ।।छा॥ वृषभनन्दिजी ने आदिदेर सिहकीर्ति जी तायू पट्ट ॥१२॥ बारां में हूवा ॥छा॥ कनककीर्ति ने आदिदेर वसंतकीर्ति जी ता यू पट्ट १० चित्तौड़

---

१. उज्जैन ।

में हूवा ॥६॥ सूरिचन्द ॥१॥ माघचन्द ॥२॥ ज्ञानकीर्ति ॥३॥ नरेन्द्रकीर्ति ॥४॥ ए चारि पट्ट बघेरा में हूवा ॥छ॥ पौष्टिककीर्ति जी ने आदि देर प्रभाचन्द्र जी ता यू पट्ट छै॥ अजमेर हूवा पद्मनन्दि जी ॥१॥ शुभचन्द्र जी ए दोय पट्ट दिल्ली में हूवा ॥छ॥ जिणचन्द्र जी गुवालेर हूवा ॥ छ ॥ प्रभाचन्द्र जी चितोड़ हूवा छै ॥ चन्द्रकीर्ति जी ॥१॥ देवेन्द्रकीर्ति जी ॥ २ ॥ ए दोय पट्ट चंपावती हूवा ॥छ॥ नरेन्द्रकीर्ति जी सांगानेर हूवा ॥ छ ॥ सुरेन्द्रकीर्ति जी ॥ १ ॥ जगत्कीर्ति जी ॥२॥ देवेन्द्रकीर्ति जी ॥३ ॥ ए तीन पट्ट अम्बावती हूवा ॥ छ ॥ महेन्द्रकीर्ति जी दिल्ली हूवा ॥ छ ॥ क्षेमेन्द्रकीर्ति जी ॥ १ ॥ सुरेन्द्रकीर्ति जी ॥ ए दोय पट्ट सवाई जयपुर हूवा ॥ एवं सर्व पट्ट ९८ हूवा ॥ संवत् १८२२ काताय ॥ छ ॥ इति सम्पूर्ण ॥

इस उज्जैन पट्टावली के अन्त मे जो नोट है उसमे यह स्पष्ट किया गया है कि भट्टारकों के पट्ट भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुए है, उनका विवरण इस प्रकार है—

श्रीभद्रबाहुजी से लेकर मेरुकीर्ति जी तक पट्ट २६ तक भद्दलपुर दक्षिण देश मे हुआ तथा नं० २७ महीकीर्ति से लेकर महीचन्द तक पट्ट उज्जैन मे रहे। इसके बाद चार पट्ट चदेरी में रहे, तीन आचार्य के पट्ट विदिशा में रहे, एक आचार्य का पट्ट कुडलपुर (दमोह) मे रहा, उज्जैनी से लेकर कुंडलपुर तक २७ आचार्यो के पट्ट मालवा प्रान्त के माने गये, आचार्य वृषभनन्दिजी से लेकर सिंहकीर्ति तक १२ आचार्यो के बारां मे हुये, फिर हेमकीर्ति (कनककीर्ति) से लेकर के बसंतकीर्ति तक के पट्ट चित्तौड़[1] मे हुये।

सूरिचन्द, माघचन्द्र, ज्ञानकीर्ति, नरेन्द्रकीर्ति—ये चार पट्ट बघेरा में हुआ। पौष्टिककीर्ति से लेकर प्रभाचन्द जी तक पट्ट अजमेर मे हुआ। पद्मनन्दि जो, शुभचन्द्र जी—ये दो पट्ट दिल्ली मे हुआ। जिनचन्द्र जी ग्वालियर मे हुआ। प्रभाचन्द जी चित्तौड़ मे हुआ। चन्द्रकीर्ति जी, देवेन्द्रकीर्ति जी—ये दो पट्ट चम्पावती मे हुआ। नरेन्द्रकीर्ति जी सांगानेर

---

१. वसुनन्दि श्रावकाचार के अनुसार चित्तौड़ ही है, किन्तु आरा की पट्टावली के अनुसार ६५ से लेकर ७८ तक के ये पट्ट ग्वालियर के है।

में हुआ। सांगानेर में नरेन्द्रकीर्ति के समय में ही शुद्धाम्नाय के तेरापंथ और बीसपंथ का भेद हुआ। सुरेन्द्रकीर्ति जी दिल्ली में हुये। क्षेमेन्द्र-कीर्ति जी, सुरेन्द्रकीर्ति जी—ये दो सवाई जयपुर में हुए। इस प्रकार सर्व पट्ट ९८ हुए॥ संवत् १८२२ तक। इति सम्पूर्ण॥

प्राग्वाट इतिहास, पृ० ३५ पर लिखा है : वच्छल काश्यप २९ कासव गोत्र राठोड़, गोयल गोत्रीय (परमार १) कासव गोत्र परमारे अकेले काश्यपगोत्रीय (४५) तिनके कुल (४६) गोतम, कुत्स, वुत्स, काश्यप, कौशिक (४७) सूदासदा (४९) जो बीकानेर के जंगली प्रदेश में बसे थे, वे जांगड़ा कहे जाने लगे।

ऊपर मुद्रित उज्जैन पट्टावली मे वि० सं० ४ से लेकर १८२२ तक श्री सुरेन्द्रकीर्तिजी तक की नामावली अंकित है।

श्री डॉ० कस्तूरचन्द्र जी कासलीवाल ने खंडेलवाल जाति का बृहद् इतिहास का प्रथम भाग मार्च १९८९ में प्रकाशित किया है, उस ग्रथ मे भी आचार्य पट्टावली प्रकाशित है, वह जयपुर के किसी भंडार से प्राप्त है।

इसमें वि० सं० १२७१ तक आचार्य धर्मचन्द्र जी तक का उल्लेख है और वह समाप्त हो गई फिर भी डॉ० कासलीवाल ने किसी अन्य पट्टावली के आधार पर वि० सं० १२९६ से वि० सं० १८२२ तक आ० सुरेन्द्रकीर्ति तक की भी पट्टावली दी है, जैसी कि उज्जैन की ऊपर प्रकाशित है तथा उससे आगे भी पट्टाचार्यों के नाम व उनका काल दिया है, जो श्री देवेन्द्रकीर्ति जी तक वि० सं० १८३९ तक विधिवत् है। पश्चात् देवेन्द्रकीर्ति जी के पट्ट पर भट्टारक महेन्द्रकीर्ति और भट्टारक चन्द्रकीर्ति के नाम लिखे हैं और यह भी सूचना दी है कि भट्टारक चन्द्रकीर्ति के पश्चात् भट्टारक-परम्परा समाप्त हो गई।

इस पट्टावली में प्रत्येक पट्टाधीश का नाम, संबत्, दीक्षाकाल आदि तो उज्जैन की ऊपर प्रकाशित पट्टावली के अनुसार ज्यों का त्यों है, कोई अन्तर नहीं है। विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक पट्टाधीश की जाति का भी उल्लेख है। इस पट्टावली के अनुसार पट्टाधीशों में निम्न आचार्य परवार जाति के भी पट्ट पर बैठे हैं, जो इस प्रकार हैं :

पट्ट क्रमाङ्क २ पर वि० सं० २६ फागुन सुदी १४ को श्री आचार्य गुप्तिगुप्त पट्ट पर बैठे इनकी जाति "पंवार राजपूत" थी।

पट्ट क्रमाङ्क ४ पर वि० सं० ४० फागुन सुदी १४ को जिनचन्द्र जी पट्टाधीश हुए, ये चौसखा पोरवाड़ (परवार) थे। स्मरण रहे कि श्री जिनचन्द्र जी के ही शिष्य प्रसिद्ध आचार्य कुंदकुंद थे, जो वि० सं० ४९ में उनके पट्ट पर बैठे।

पट्ट क्रमाङ्क १० पर वि० सं० २५८ असाड़ सुदी ८ को देवनन्दि जी पट्ट पर बैठे, इनकी जाति पोरवाल थी।

पट्ट क्रमाङ्क ११ पर वि० सं० ३०८ जेठ सुदी १० को पूज्यपाद आचार्य पट्ट पर बैठे, इनकी जाति पद्मावती पोरवाल थी।

पट्ट क्रमाङ्क ३३ पर वि० सं० ७६५ आसोज सुदी १२ को अनन्तकीर्ति जी पट्ट पर बैठे, इनकी जाति "पोरवाल द्विसखा" थी।

पट्ट क्रमाङ्क ४४ पर वि० सं० ९९० माह सुदी १४ को आचार्य माघचन्द्र पट्ट पर बैठे, इनकी जाति पद्मावती पोरवाल थी।

पट्ट क्रमाङ्क ७१ पर वि० सं० १२४८ आसाढ़ सुदी १२ को आ० पद्मकीर्ति पट्ट पर बैठे, इनकी जाति "पोरवाल" थी।

पट्ट क्रमाङ्क ७३ पर वि० सं० १२५६ आषाढ़ सुदी १४ को श्री अकलंकचन्द्र पट्ट, पर बैठे इनकी जाति "अठसखा पोरवाल" थी।

पट्ट क्रमाङ्क ७७ पर वि० सं० १२६४ आसोज वदी ३ मे आ० अभयकीर्ति पट्ट पर बैठे, इनकी जाति "अठसखा पोरवाल" थी।

पट्ट क्रमाङ्क ८३ पर वि० सं० १३१० पोम सुदी १४ को भ० प्रभाचन्द्र जी पट्ट पर बैठे, इनकी जाति "पद्मावती पोरवाल"[1] थी।

इस तरह पट्टाधीशों की परम्परा मे १० परवार आचार्य पट्ट पर बैठे।

शेष पट्टों पर पल्लीवाल, जैसवाल, गोलापूर्व, सहजवाल, लमेंचू नैगम, पंचम, दूसर, बघनोर, खंडेलवाल, अग्रवाल आदि विभिन्न जैन उपजातियों के आचार्य पट्टाधीश हुए, ऐसा जयपुर[2] पट्टावली मे उल्लेख है।

---

१. देखिये, ख० जैन स० का वृ० इति०, पृष्ठ १४६।

२. देखिये, वही, पृष्ठ ८-१५, १४६।

आ० महावीरकीर्ति जी के गुटके से उपलब्ध पट्टावली :

प्रस्तुत पट्टावली पूज्य आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी के गुटके से प्राप्त हुई है। इसमें पट्टधर आचार्यों की नामावली के अतिरिक्त उनका क्रमाङ्क, संवत्, दीक्षा तिथि, जाति, गृहस्थ वर्ष, दीक्षा वर्ष, पट्ट वर्ष, अन्तर दिन और सर्व वर्षायु का उल्लेख है। पूरी पट्टावली[1] इस प्रकार है :

क्र०	संवत्	तिथि	आचार्य नाम	जाति	गृहस्थवर्ष	दीक्षावर्ष	पट्टवर्ष	अन्तरदिन	सर्ववर्षायु
१	४	चैत्रसुदी १४	श्री भद्रबाहु	पंवार रजपूत	२४	३०	२२-१०-२७	३	७६-११-०
२	२६	फाल्गुनसुदी १४	गुप्तगुप्तिश्री	पंवार	२२	३४	९-६-२५	५	६५-७-०
३	३६	आश्विनसुदी १४	श्री माघनन्दि	जैसवाल	२०	४४	४-४-२६	४	६८-५-०
४	४०	फाल्गुनसुदी १४	श्री जिनचन्द्र	चोसखा पोरवाड	२४-९-०	३३-३-०	८-९-६	३	६५-९-९
५	४९	पौषवदी ९	श्री कुन्दकुन्द	पल्लीवाल	११	५१-१०-१०	०	५	९५-१०-१५
६	१०१	का० सु० ८	उमास्वामी	अयोध्यापुरी श्रावक	१९	२५	४०-८-१	५	८४-८-६
७	१४२	आसाढ़ सु० १४	लोहाचार्य	लमेंचू	२१	३८	१०-१०-२७	६	६९-१०-२६
८	१५३	ज्येष्ठ सु० १०	यशकीर्ति	जैसवाल	१२	२१	५८-८-१०	५	९१-८-१५
९	२११	फा० व० १०	यशोनन्दि	जैसवाल	१६	१७	४६-४-९	४	७९-४-१३
१०	२५८	आषाढ़ शु० ८	देवनन्दि	पोरवाल	१०-५-०	१५-१७-०	४९-१०-२८	४	७५-११-२
११	३०८	ज्येष्ठ सु० १०	श्री० पूज्यपाद	पद्मावती पोरवाल	१५	११-७-०	४४-११-२२	७	७१-६-२९

1. भारतीय संस्कृति के विकास मे जैन वाङ्मय का अवदान, प्रथम खण्ड : स्व० डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, प्रकाशक—अ० भा० दि० जैन विद्वत्परिषद, प्रथम संस्करण, सन् १९८२, पृष्ठ ४५१ से ४५६ तक से उद्धृत।

क्र०	संवत्	तिथि	आचार्य नाम	जाति	गृहस्थवर्ष	दीक्षावर्ष	पट्टवर्ष	अन्तरदिन	सर्ववर्षायु
१२	३५३	ज्येष्ठ सु० ९	गुणनन्दि	गोलापूरब	१४	१३-५-०	१३-३-१	४	४०-८-५
१३	३६४	भा० सु० १४	जम्मूनन्दि	×	१९	१६-३-०	२२-५-१	४	५७-८-५
१४	३८६	फाल्गुन व० ४	कुमारनन्दि	महालवाल	१६	१०-२-०	४०-२-२०	९	६६-४-२९
१५	४२७	ज्येष्ठ व० ३	लोकचन्द्र	लमेचू	१८	१६	२६-३-१६	१०	६०-३-२६
१६	४५२	भा० सु० १४	श्री प्रभाचन्द्र	पचम श्रावक	९	२४	२५-५-१	१९	५८ ५-२६
१७	४७८	फाल्गुन सु० १०	श्री नेमिचन्द्र	नैगम श्रावक	१०	२२	८-९-१	९	४० ९-१०
१८	४८७	पौष वदी ५	भावनन्दि	ईसर	११	१५	२१-७-२४	१२	४६-१-९
१९	५०८	माघ सु० ११	हरिनन्दि	श्री० मालसीकसपा	९	१५	१६-१७-१५	१४	४०-७-२९
२०	५२५	आसौज सु० १०	वसुनन्दि	वघनौरा	१०	३०	६-२-२२	९	४६-३-१
२१	५३१	पौष सु० ११	श्री वीरनन्दि	लमेंचू	९	१३	३० ०-१४	१०	५२ ०-२४
२२	५६१	माघ सु० ५	श्री रतनकीर्ति	अग्रवाल	८	१२	२३-४-७	११	४३-५-१८
२३	५८५	आषाढ़ व० ८	श्री माणिक्यनन्दि	अग्रवाल	१०	१९	१६-५-१०	१५	४५-५-२५
२४	६०१	पौष वदी ३	श्री मेघचन्द्र	खण्डेलवाल	२४-३-२९	६-७-१३	२५-५-२०	१२	५६-६-२
२५	६२७	आसौज व० ५	श्री शान्तिकीर्ति	सहलवाल	७	१०	१५-० २५	२०	३२-१-१५
२६	६४२	श्रा० सु० ५	श्री मेरुकीर्ति	सहलवाल	८	११	४४-३-१६	१३	६३-३-२९
२७	६८६	मगसिर सु० ४	श्री महाकीर्ति	सहलवाल	६	१२	१७-११-५	१५	३५-११-२०
२८	७०४	मगसिर व० ९	श्री विजयनन्दि	बागडा	७	१४	१२-४-०	१५	४२-४-१५
२९	७२६	चैत्र सु०	श्री भूषण	सहलवाल	१४	८	९	२६	३१-०-२६
३०	७३५	वैशाख सु० ५	श्री चन्द्र	श्रीपाल	६	१२	१४-३-४	११	३२-४-५

क्र०	संवत्	तिथि	आचार्य नाम	जाति	गृहस्थवर्ष	दीक्षावर्ष	पट्टवर्ष	अंतरदिन	सर्ववर्षायु
३१	७४९	भा० सु० १९	श्री नन्दकीर्ति	नागदही	१५	२०	१५-६-४	१३	५०-६-१७
३२	७६५	चैत्र व० १२	श्री देशभूषण	श्रीमाल	१८	२४	०-६-६	७	४२-६-१३
३३	७६५	आसोज सु० १०	श्री अनन्तकीर्ति	**पोरवालशाखा**	११	१६	१९-९-२५	१०	४३-१०-५
३४	७८१	श्रावण सुदी	श्री धर्मनन्दि	नागडा	१३	१८	२२-९-२५	५	५३-१०-०
३५	८०८	ज्येष्ठ सु० १५	श्री वीरचन्द्र	बघेरवाल हरसोरा	१३	२५	३२-०-४	८	७०-०-१२
३६	८४०	आषाढ़ व० १२	श्री रामचन्द्र	पंचम श्रावक	८	११	१६-१०-०	६	३५-१०-०
३७	८५७	पौ० सु० ३	श्री रामकीर्ति	लमेचू	१४	१६	२१-४-२६	११	५१-५-७
३८	८७८	आसोज सु० १०	श्री अभयचन्द्र	अयोध्यापुरी श्रावक	१८	१०	१७-०-२७	४	४५-१-१
३९	८९७	का० सु० ११	श्री नरचन्द्र	नैगम श्रावक	१५	२१	१८-९-०	९	५४-९-९
४०	९१८	भादो व० ५	श्री नागचन्द्र	बागडा	२१	१३	२३-३-३	१०	६७-०-१३
४१	९३९	भादो सु० ३	श्री नैणनन्दि	इसर	८	१०	८-९-११	९	२६-९-२०
४२	९४८	आसाढ ब० ८	श्री हरिचन्द्र	बघेरकल हरवोस	८-४-०	१४-८-०	२६-१-८	८	४९-१-२६
४३	९७४	श्रा० शु० ९	श्री महीचन्द्र	धाकडा	१४	१०-११-०	१६-६-०	५	४१-५-५
४४	९९०	मा० सु० १४	श्री माघचन्द्र	**पद्मावती पोरवाल**	१३	२०	३२-०-२४	९	६५-३-३
४५	१०३३	ज्येष्ठ ब० २	श्री लक्ष्मीचन्द्र	—	११	२५	१४-४-३	१०	४९-११-१३
४६	१०३७	आसो० सु० १	श्री गुणनन्दि	नगौलवाल	१८	२०	१०-१०-२९	१४	४८-११-१३
४७	१०४८	भादों सु० १४	श्री गुणचन्द्र	गोलादूख	१०	२२	१७-८-७	१०	४९-८-१७
४८	१०६६	ज्येष्ठ सुदी १	श्री लोकचन्द्र	सहलवाल	१५	३०	१३-३-३	४	५८-३-७

क्र०	संवत्	तिथि	आचार्य नाम	जाति	गृहस्थवर्ष	दीक्षावर्ष	पट्टवर्ष	अन्तरदिन	सर्वंवर्षायु
४९	१०७५	भाद्रपद सु० ८	श्री श्रुतकीर्ति	सचाणु श्रावक	१३	३२	१५-६-६	६	६०-६-१२
५०	१०९४	चैत्र व० ५	श्री भावचन्द्र	—	१२	२५	२०-११-२५	५	५८-०-०
५१	११९५	चैत्र व० ६	श्री महीचन्द्र	श्रीमाली	१०	२६	२५-६-१०	५	६१-५-१५
५२	११४०	भादों सु० ११	श्री माघचन्द्र	पंचम श्रावक	१४	१३	४-३-१७	७	३१-३-२४
५३	११४४	पौष व० १४	श्री वृषभनन्दि	बघनोरा	७	३७	३-४-१	४	४७-४-५
५४	११४८	वै० सु० ४	श्री शिवनन्दि	सहलवाल	९	३९	७-६-७	१४	५५-७-१
५५	११५५	म० सु० ५	श्री वसुचन्द्र	बघनोरा	११	४०	०-७-२८	३	५१-८-१
५६	११५६	श्रा० सु० ६	श्री सहनन्दि	सचाणु श्रावक	७	३२	४-०-२४	५	४०-०-२९
५७	११६०	भा० सु० ५	श्री भावनन्दि	हुम्मड श्रावक	११	३०	७-२-०	३	४८-२-३
५८	११६७	का० सु० ८	श्री देवनन्दि	धाकड श्रावक	११	३०	७-२-०	३	४४-३-१३
५९	११७०	फा० व० ५	श्री विद्याचन्द्र	बागड	१४	३८	५-५-५	१४	५७-५-१९
६०	११७६	श्रा० सु० ९	श्री सूरचन्द्र	नरसिंहपुरा	१०	३५	८-१-२९	२	५३-२-१
६१	११८५	आसो० सु० १०	श्री माघनन्दि	चतुर्थ श्रावक	३-३-०	३२-२-०	४-१-१६	५	५०-६-२१
६२	११८८	मग० सु० १	श्री ज्ञानकीर्ति	गंगरी श्रावक	१०	३४	११-०-३	७	५५-०-१०
६३	११९९	माग० सु० ११	श्री अगकीर्ति	×	१३	३३	७-२-८	१०	५३ २-१८
६४	१२०६	फागु० व० १४	श्री सिंहकीर्ति	नरसिंहपुरा	८	३७	२-२-१५	१६	४७-३-१
६५	१२०९	ज्येष्ठ व०	श्री हेमकीर्ति	हुमवड	१३	२४	७-२-२७	१६	४४-४-३
६६	१२१६	आसो० सु० ३	श्री सुन्दरकीर्ति	सहलवाल	६-९-०	१९-३-०	६-६-२०	१०	३२-७-०
६७	१२२३	वै० सु० ३	श्री नेमिचन्द्र	नागदुहा	७	१९	७-७-२९	९	३५-९-८

क्र०	संवत्	तिथि	आचार्य नाम	जाति	गृहस्थवर्ष	दीक्षावर्ष	पट्टवर्ष	अन्तरदिन	सर्वबर्षायु
६८	१२३०	मा० सु० ११	श्री नाभिकीर्ति	नैगम श्रावक	५	३५	१-११-२६	४	४२-०-०
६९	१२३२	मा० सु० ११	श्री नरेन्द्रकीर्ति	नागदुहा	१४	१३	९-०-२८	१२	३६-१-०
७०	१२४१	फा० सु० ११	श्री श्रीचन्द्र	बघेरवाल	७	२५	६-३-२४	७	३८ ४-१
७१	१२४८	आ० सु० १२	श्री पद्मकीर्ति	पोरवाल	१०	२२	४-११-२५	६	३७-०-१
७२	१२५३	आ० सु० १३	श्री वर्द्धमान	वघनोरा	१८	५	२-११-२८	३	२६-०-१
७३	१२५६	आ० सु० १४	श्री अकलंकचन्द्र	अठशाखा पोरवाल	१४	३३	१-३-२४	७	४८-४-१
७४	१२५७	का० सु० १५	श्री ललितकीर्ति	लमेंचू	१३	२४	४-०-०	५	४१-०-५
७५	१२६१	मगसिर व० ५	श्री केशवचन्द्र	लमेचू	११	३५	०-६-१५	६	४६ ६-२१
७६	१२६२	ज्येष्ठ सु० ११	श्री चारुकीर्ति	पंचम श्रावक	१३	२२	२-३-१	७	४९.३-८
७७	१२६४	आषाढ़ व० ३	श्री अभयकीर्ति	अठसाखा पोरवाल	११-१-०	३०-५-०	०-४-१०	७	४१-११-७
७८	१२६४	माघ सु० ५	श्री वसन्तकीर्ति	साहगोत्र	१२	२०	१-४-२२	८	३३-५-०
७९	१२६६	आसो० सु० ५	श्री प्रख्यातकीर्ति	पंचम श्रावक	११	१५	२-३-२९	४	२८-३-२३
८०	१२६८	का० व०	श्री शान्तिकीर्ति	छावडा गोत्र	१८	२३	२-९-७	८	४३-९-१५
८१	१२७१	श्रा० सु० १५	श्री धर्मचन्द्र	सेठी गोत्र	१६	२४	२५-०-५	८	६५-०-१३
८२	१२९६	मा० व० १३	श्री रत्नकीर्ति	नागदुहा	१९	२५	१४-४-१०	६	५८-४-१६
८३	१३१०	पौ० सु० १४	श्री प्रभाचन्द्र	पद्मावती पोरवाल	१२	१२	७४-११-१५	८	९८-११-२२
८४	१३८५	पौ० सु० ७	श्री पद्मनन्दि	,,	१०-७-०	२३-५-०	६५-०-१८	१०	९१-०-२८
८५	१४५०	मा० सु० ५	श्री शुभचन्द्र	अग्रवाल	१६	२४	५६-३-४	११	९६-३-१५
८६	१५०७	ज्येष्ठ व० ५	श्री जिनचन्द्र	अग्रवाल	१२	१५	६४-८-१७	१०	९१-८-२७

८

प्रतिमालेख आदि :

पार्श्वनाथ : साढ़ोरा ग्राम

संवत् ६१० वर्षे माघ सुदि ११ मूलसंघे **पौरपाटान्वये** पाट(ल)न-पुर सघई।

पार्श्वनाथ : कृष्ण पा०, वन मन्दिर, **बड़ोह**

सं० ७०६ वर्षे वैसाख सुदि सोमवारू श्री मूलसंघे ब० कुन्दकुन्दान्वये तत्पट्टे…… ।

सोनागिर : पहाड़ से उतरते समय अन्तिम द्वार के पास एक कोठे मे भग्न जिनबिम्ब

संवत् ११०१ **दकागोत्रे परवार** ज्ञातिय।

शिलालेख : पचराई

(१) ओं (श्री स्त्री मा (शां)तिनाथो इति मुक्तिनाथः। यश्चक्रवर्ती भुवनांश्च धत्ते ॥ (१) सौभाग्य रासिव्वरभाग्यरासिस्नानो

(२) भृत्यै न सो विभूत्यै ॥ श्री कू (कु)दकू(कु)दस(सं)ताने गणे देसि(शि)के संज्ञिके। सु (शु)भनंदिगुरा:(रोः) सि(शि)ष्यः सूरिः श्री ली-

(३) ल चन्द्रकः ॥ हरीव भूत्या हरिराजदेवो बभूव भीमेव हि तस्य भीमः। सुतस्तदीयो रणपालनाम ॥ एतद्धिरा

(४) ज्ये कृतिराजनस्य ॥ **परपाटान्वये** सु(शु)द्धे साधुर्नाम्ना महेस (श्व)रः। महेस (श्व) वरेव विख्यातस्तत्सुतो वो(बो)ध-

(५) संज्ञकः। (॥) सत्पुत्रो राजनो ज्ञेयः कीर्तिस्तस्येयमद्भुता। जिनेंदुवत्सुभाल्यं तं। राजते भुवनत्र-

(६) ये ॥ तस्मिन्नेवान्वये दिव्ये गोष्ठिकावपरौ सु(शु)भौ। पंचमांसे (शे) स्थितो ह्येको द्वितीयो द-

(७) स(श)मांसके ॥ आद्यो जसहडो ज्ञेयः समस्तजससां निधिः (?) भक्तो जिनवरस्चा यो विख्यातो

(८) जिनसा (शा) सने ॥ मंगलं महाश्रीः ॥ भद्रमस्तु जिनशासनाय

(९) संवत् ११२२

["ओम्" मुक्ति के नाथ श्री शांतिनाथ भगवान् जो चक्रवर्ती हुये, छह खण्ड पृथ्वी का पालन करते थे, जो सुन्दर स्वरूप और सौभाग्य की राशि थे। जिनकी विभूति लोक सेवा के लिये थी, प्रदर्शन के लिये नही। उस समय आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा मे देशीगण में शुभनंदी आचार्य के शिष्य आचार्य लीलचन्द हुये तथा हरिराज देव हुये जो अपनी विभूति से नारायण तुल्य थे। उनके भीम की तरह बलवान् भीम नामक पुत्र था। उनका पुत्र रणपाल था। उनके राज्य मे वह मंदिर निर्माण "राजन्" की कृति है।

शुद्ध आम्नाय परपाट (परवार) वंश मे महेश्वर नाम के एक श्रावक हुये, जो महादेव जी की तरह विख्यात थे। उनके पुत्र का नाम "बोध" था। उनका सुपुत्र राजन जिनचन्द्र के समान सौभाग्यशाली और तीनों जगत् में विख्यात था।

इसी वंश में दो "गोष्ठिक" (धर्माधिकारी) हुए, जो दिव्य शुभ रूप थे[1] इनमे से पहले गोष्ठिक का नाम 'जसहड' था, जो समस्त जनता में आदरणीय था, जिनधर्म का भक्त था और जिनशासन में जिसका नाम प्रसिद्ध था।[2] ॥ मंगल महा श्रीः ॥ जिन शासन की प्रभावना के लिये कल्याण हो ॥संवत् ११२२॥]

बड़ोह : वन मन्दिर

आचार्य मन्त्रवादिन् सं० ११३४
करदेव वासल प्रणमति........।

कथाकोष : रचनाकाल सं० ११८३ के लगभग, रचयिता : श्रीचन्द्र कवि

---

१. मूल लेख मे पाँच माह और दस माह की बात कुछ स्पष्ट नहीं जानी जा सकी।

२. गोष्ठिक शब्द का अर्थ गोष्पति है जिसे धर्माधिकारी ही कह सकते हैं, नीचे के लेख से भी यही अर्थ स्पष्ट होता है।

यह अपभ्रंश रचना है। इसकी प्रशस्ति में कहा है कि "मूलराज का धर्मस्थानीय गोष्ठिक **प्राग्वाटवंशी** सज्जन नामक विद्वान् था, और उसी के पुत्र कृष्ण के कुटुम्ब के धर्मोपदेश निमित्त आ० कुन्दकुन्दान्वयी मुनि सहस्रकीर्ति के शिष्य श्रीचन्द्र ने उक्त ग्रन्थ लिखा।"[1]

अणहिल्लपुरे रम्ये सज्जनः सज्जनोऽभवत्।
प्राग्वाटवंश-निष्पन्नो मुक्तारत्न-शताग्रणीः॥
मूलराजनृपेन्द्रस्य धर्मस्थानस्य गोष्ठिकः।
धर्मसार-धराधारः कूर्मराजसमः पुरा॥[2]

सं० १२०९ वैशाख सुदी १३ **पौरपाटान्वय** साहु कोके भार्या मातिणी साहु महेश भार्या सलखा।

—प्राचीन शिलालेख **अहार जी**

संवत् १२१० वैशाख सुदी १३ **पौरपाटान्वये** साहू टूदू भार्या यशकरी तत्सुत साढू भार्या दिल्हीन लच्छी तत्सुत पोपति एते प्रणमन्ति नित्यम्॥

— प्राचीन शिलालेख **अहार जी**

संवत् २१० (१२१०) **पौरपाटान्वये** साहु श्री गदधर भार्या गांग सुत साहू माहव एते सर्वश्रेयसे प्रणमन्ति नित्यम्। वैशाख सुदी १३ बुधदिने।

—प्राचीन शिलालेख **अहार जी**

अहारक्षेत्र :

"संवत् १२०७ माघवदि ८ वाणपुरे गृहपत्यन्वये **कोछल्लगोत्रे** साहु रुद्र तत्सुता पाल्हिण मोल्लाया तथा साहु महावली रैमले पुत्र हरिषेण झिणे-तत्सुकारापितेयं नित्यं प्रणमन्ति।"

अहारक्षेत्र :

"संवत् १२१३ आषाढ़ सुदी २ सोमदिने गृहपत्यन्वये **कोछल्लगोत्रे** वाणपुर वास्तव्य तद सुत माहवा पुत्र हरिषेण उदई जलखू विअंदु प्रणमन्ति नित्यं।

---

१. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृष्ठ ४३।

२. सुन्दर अणहिल्लपुर में एक सज्जन नाम के श्रेष्ठ सज्जन प्राग्वाट वंश में उत्पन्न हुए थे, जो सैकड़ों मोतियों में एक अग्रगण्य मोती के समान श्रेष्ठ थे। ये मूलराज राजा के धर्मस्थान के "गोष्ठिक" (धर्माधिकारी) थे, जो धर्मरूपी धरा को धारण करते थे, जैसे लोक में प्रसिद्ध पृथ्वी के धारक कूर्मराज हैं, ऐसा कहा जाता है।

हरिषेण पुत्र हाडदेव पुत्र महीपाल गंग बसबचन्द्र लाहृदेव माहिश्चन्द्र सहृदेव एते प्रणमन्ति नित्यं।"

अहारक्षेत्र :

"संवत् १२०३ आषाढ़ वदी ३ शुक्रे श्रीवर्द्धमानस्वामि प्रतिष्ठापिकः गृहपत्यन्वये साहु श्री उल्कण..... अल्हण साहु मातेण वैश्यवालान्वये साहुवासलस्तस्य दुहिता मातिणी साहु श्री महीपती।"

अहारक्षेत्र :

"संवत् १२०७ आषाढ़ वदी ९ शुक्रे श्री वीरवर्द्धमानस्वामि प्रतिष्ठापितो गृहपत्यन्वये साहु श्री राल्हणश्चतुर्विधदानेन ..पठलित विमुक्त सुख शीतल उलक प्रवर्द्धित कीर्तिलतावगुण्ठित ब्रह्माण्ड....................तत्सुत श्री आल्हस्तथा तत्सुत साहु मातनेन पौरवालान्वये साहु वासलस्तस्य दुहिता मातिणी साहुश्री महीपति तत्सुत साहु........ ....तत्सुत सीदू एते नित्यं प्रणमन्ति। मंगलं महाश्री।"[1]

---

१. अहार क्षेत्र के उपर्युक्त सवत् १२०७, १२१३, १२०३ और १२०७ के लेखों के सन्दर्भ मे प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला का मन्तव्य है कि—अब तक पठित एवं प्रकाशित शिलालेखों मे १४ शिलालेखों मे 'गृहपतिवंशे' या 'ग्रहपत्यन्वये' आया है। और इसका अर्थ (गहोई) वैश्य किया जा रहा है। किन्तु उपरिलिखित प्रशस्तियाँ दूसरा ही सकेत करती हैं—

"वाणपुर के गृहपतिवंशके कोच्छल्ल-गोत्री साहु रुद्र के पुत्र पाल्हिण मोल्ला तथा साहु महाबली रैमिले के पुत्र हरिषेण क्षिणेने माघ कृष्ण ८ सवत् १२०७ में इस मूर्ति की प्रतिष्ठा नित्य वन्दनार्थ करायी।"

इसी प्रकार 'वाणपुर निवासी गृहपति वंशी, कोच्छल्ल गोत्री [... ....] उनके पुत्र माहवा पौत्र हरिषेण, उदई, जलखू, बिन्दू ने सवत् १२१३ आषाढ़ शुक्ला २ सोमवार को नित्य-प्रति वन्दनार्थ प्रतिष्ठा करायी।

हरिषेण के (अन्य) पुत्र हाडदेव पौत्र महीपाल गस-वसब-चन्द्र-लाहृदेव-माहिश्चन्द्र-सहृदेव [भी अधः उत्कीर्ण] नित्य-प्रति वन्दना में [सहयोगी] हैं।'

विक्रम संवत् १२०७(११५० ई०) और विक्रम सवत् १२१३ (११५६ ई०) दोनों मूर्ति-(प्रशस्ति-लेख) गृहपति-अन्वय के साथ इनके कोच्छल्ल गोत्र तथा निवास स्थान वाणपुर का स्पष्ट निर्देश करते हैं।

पाँचजिन : एक पट्ट शुक्ल पाषाण, ३० अं०, **प्रान्तिज**[1] **गुजरात**
प्राऊाग्र वटामान…… प्रणमति संवत् १२१९।

भगवान् शान्तिनाथ[2] **: अहारक्षेत्र**

ॐ नमो वीतरागाय ॥
ग्रहपतिवंशसरोरुहसहस्ररश्मिः सहस्रकूटैयः ।
वाणपुरे व्याधितासीत् श्रीमानिह देवपाल इति ॥ १ ॥

श्री रत्नपाल इति तत्तनयो वरेण्यः पुण्यैकमूर्तिरभवद्वसुहाटिकायां ।
कीर्तिर्जगत्त्रयपरिभ्रमणश्रमार्त्ता यस्य स्थिराजनि जिनायतनच्छलेन ॥२॥

एकस्तावदनूनबुद्धिनिधिना श्रीशान्तिचैत्यालयो,
दिष्ठ्यानन्दपुरे परः परतरानन्दप्रदः श्रीमता ।
येन श्रीमदनेशसागरपुरे तज्जन्मनो निर्म्मिमे,
सोऽयं श्रेष्ठिवरिष्ठगल्हण इति श्रीरल्हणाख्यादभूत् ॥३॥

तस्मादजायत कुलाम्बरपूर्णचन्द्रः श्रीजाहडस्तदनुजोदयचन्द्रनामा ।
एकः परोपकृतिहेतुकृतावतारो धर्म्मात्मकः पुनरमोघसुदानसारः ॥४॥

सवत् १२०३ (११४६ ई०) आषाढ़ कृष्ण ३ शुक्रवार की **गृहपति वंश** की प्रशस्ति इस वश के साथ ही **वैश्यवाल वंश** के साहु वासल **और** उनकी पुत्री मातिणी का स्पष्ट निर्देश करते हैं। तथा सवत् १२०७ (११५० ई०) के मूर्तिलेखो मे आषाढ़ शुक्ल ९ शुक्रवार की प्रशस्ति सबसे पुरानी है। इसमे **गृहपति** **वश** की कई पीढ़ियो को गिनाते हुए **साहु** मातन को **पोरवाल** अन्वय का लिखा है।

इस प्रकार इस प्रशस्ति के **पोरवालवंशी** प्रतिष्ठापक वासल तथा पुत्री मातिणी का उपरिलिखित प्रशस्ति (१२०३) के **वैश्यवालवंशी** प्रतिष्ठापक साहु और उनकी दुहिता का नाम-साम्य के कारण; ऐक्य स्थापित होता है। तथा ये चारो प्रशस्तियाँ **गृहपतिवंश, पोरवाल** या **पोरपट्ट** और **वैश्यवाल** की एकता का सकेत करते हुए **इनके कोच्छल्ल गोत्र** को भी टकोत्कीर्ण करते है।……तथा लगता है कि गृहपतिवश उस वर्तमान जाति (वश) का नाम था, जिसमे **कोच्छल्ल गोत्र** आज भी है।

—वैभवशाली अहार, पृ० २९-३१

१. प्राचीन नाम प्रजितपुर
२. विशेष के लिये देखें, इसी ग्रन्थ का पृष्ठ ७३।

ताभ्यामशेषदुरितौघशमैकहेतुं निर्मापितं भुवनभूषणभूतमेतद् ।
श्रीशान्तिचैत्यमतिनित्यसुखप्रदातृ मुक्तिश्रियो वदनवीक्षणलोलुपाभ्याम्॥५॥

संवत् १२३७ मार्ग सुदी ३ शुक्रे श्रीमत्परमर्द्धिदेवविजयराज्ये ।
चन्द्रभास्करसमुद्रतारका यावदत्र जनचित्तहारकाः ।
धर्म्मकारिकृतशुद्धकीर्त्तनं तावदेव जयतात् सुकीर्त्तनम् ॥६॥
वाल्हणस्य सुतः श्रीमान् रूपकारो महामतिः ।
पापटो वास्तुशास्त्रज्ञस्तेन बिम्बं सुनिर्मितम् ।[1]

—वैभवशाली अहार, पृष्ठ २५-२६

---

१. वीतराग के लिए नमस्कार (है)। जिन्होंने बानपुर में एक सहस्रकूट-चैत्यालय बनवाया, वे ग्रहपतिवंशरूपी कमलों (को प्रफुल्लित करने) के लिए सूर्य के समान श्रीमान् देवपाल यहाँ (इस नगर में) हुए,

जिनके रत्नपाल नामक एक श्रेष्ठ पुत्र हुए, जो वसुहाटिका में परिव्रता की एक (प्रधान) मूर्ति थे, जिनकी कीर्ति तीनों लोकों में परिभ्रमण करने के श्रम से थककर इस जिनायतन के बहाने ठहर गई ।

श्रीरल्हण के, श्रेष्ठियों में प्रमुख, श्रीमान् गल्हण का जन्म हुआ, जो समग्र बुद्धि के निधान थे और जिन्होंने नन्दपुर में श्री शान्तिनाथ भगवान् का एक चैत्यालय बनवाया था; और इधर सभी लोगों को आनन्द देने वाला दूसरा चैत्यालय अपने जन्म-स्थान श्री मदनेशसागरपुर में भी बनवाया था ।

उनसे कुलरूपी आकाश के लिए पूर्णचन्द्र के समान श्री जाहड उत्पन्न हुए। उनके छोटे भाई उदयचन्द्र थे। उनका जन्म मुख्यता से परोपकार के लिए हुआ था। वे धर्मात्मा और अमोघदानी थे ।

मुक्तिरूपी लक्ष्मी के मुखावलोकन के लिए लोलुप उन दोनों भाइयों ने समस्त पापों के क्षय का कारण पृथ्वी का भूषण-स्वरूप और शाश्वतिक महान् आनन्द को देने वाला श्री शान्तिनाथ भगवान् का यह प्रतिबिम्ब निर्मापित किया ।

सवत् १२३७ अगहन सुदी ३, शुक्रवार, श्रीमान् परमर्द्धिदेव के विजयराज्य में ।

इस लोक में जबतक चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र और तारागण मनुष्य के चित्तों का हरण करते हैं। तब-तक धर्मकारी का रचा हुआ सुकीर्तिमय यह सुकीर्तन विजयी रहे ।

पार्श्वनाथ मन्दिर, **चंदेरी**

सं० १२५२ फाल्गुन सुदि १२ सोमे **पौरपाटान्वये** यशहृद रुद्रपाल साधु नाम भार्या यनि "य" पुत्र सोलु भोभू प्रणमन्ति नित्यम् ।

—अनेकान्त, जून १९६९

पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर, **सिरोंज**

सं० १२९९ **पौरपट्टान्व**............ ।

भ० नेमिनाथ : पद्मासन देशी पाषाण ३६ अ०, छोटा मन्दिर, **चंदेरी**

सं० १३१६ पष वदि १ सोम आचार्य धर्मचंददेव: **पौरपाटान्वये** साधु सन्दि भार्या कड्डु पुत्र वीकव भार्या शामिता पुत्र गंगादाउ प्रण० ।

ग्वालियर म्यूजियम :

एक लेख सं० १३१९ का भीमपुर (नरवर) का है, जो ६९ पद्यों मे उत्कीर्ण है और जिसमे यज्वपाल के सामन्त जैत्रसिंह द्वारा जैन मन्दिर बनवाने और **पौरपट्टान्वयी** नागदेव द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। यह लेख भी मूल शिला पर से नोट करके लाया गया है।

—अनेकान्त, द्वैमासिक, पृ० ९१, जून १९६९

भ० पार्श्वनाथ : धातु पद्मासन ५ अंगुल, आसन का एक भाग खण्डित भेलूपुर, **वाराणसी**

.........वतु । १३३५ वैसाख सु० ११ बुधे **पौरपाटान्वये** ।

पार्श्वजिन : धातु ४ अं०, **कुण्डलगिरि** (?)

संवतु १३३५ वैसाख सु० **११** बुधे **पौरपाटान्वये** ।

प्रानपुरा, **चंदेरी**

सं० १३४५ आषाढ़ सुदि २ बुधौ(धे) श्रीमूलसंघे भट्टारक श्री रत्नकीर्तिदेवाः **पौरपाटान्वये** साधु याहद भार्या वानी सुतश्चासौ प्रणमन्ति नित्यम् ।

—अनेकान्त, जून १९६९

वाल्हण के पुत्र महामतिशाली मूर्तिनिर्माता और वास्तुशास्त्र के ज्ञाता श्रीमान् पापट हुए । उन्होंने इस प्रतिबिम्ब की सुन्दर रचना की ।

अनु० : यशपाल जैन

आदिनाथ जिन : का० पा० पद्मासन ३६ अं०, चंदेरी

संवत् १३४५ आसाढ़ सुदि २ बुधे। मूलसंघ भट्टारक श्री मत्थन-कीर्तिदेवः **पौरपट्टान्वये**। साधु वाहड भार्या वानी॥ सुत असौ प्रणमति नित्यं।

लेख : जैन धर्मशाला, देवगढ़

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।
आत्मार्थं श्रय मुंच मोहगहनं मित्रं विवेकं कुरु।
वैराग्यं भज भावयस्व नियतं भेदं शरीरात्मनोः।
धर्मध्यानसुधासमुद्रकुहरे कृत्वाऽवगाहं परम्।
पश्यानन्तसुखस्वभावकलितं मुक्ति मुखाम्भोरुहं॥१॥

आयुस्त्वं नयन्तु तुष्टि विदधतु विविधाश्चापदः घ्नन्तु विघ्नान्।
कुर्वन्त्वारोग्यमुर्वी वलय-विलसितां कीर्तिवल्लीं सृजन्तु।
धर्मं सम्वर्धयन्तु श्रियमभिरामामनपायां · चेष्टिकामान्।
कैवल्यश्री कटाक्षानपि जिनचरणा सज्जयन्तं · ·· सावः॥

संवत् १४९३ शाके १३५८ वर्षे वैशाख वदी ५ गुरौ दिने मूलनक्षत्रे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दस्वाम्यन्वये भट्टारकः श्रीप्रभाचन्द्रदेवः तच्छिष्यः वादवादीन्द्रभट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेवः तच्छिष्यः श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेव**स्तत्पौरपाटान्वये अष्टशाखे** आहारदान-दानेश्वरः श्रीसिघई लक्ष्मणः तस्य भार्या श्रीअक्षयश्रीः तस्याः कुक्ष्यावुत्पन्नः सिघई अर्जुनस्तस्य भार्या क्षेमा त(त्र)तः जातः खेमराजः तत्भार्या खियुसिणि संघाधिपतिरर्जुनस्तत्पुत्रः संघाधिपतिः सिघई जुगराजश्च तस्य भार्या गुणश्रीः सुबान्धववंद्यस्तत्पुत्रभार्या पद्मश्रीः तत्पुत्रः बंवबं रामदेवः तत्भार्या कालश्रीः तत्पुत्रः सिघई चतुर्थवतः तत्भार्या रव्युश्रीः रव्युराजः तस्य पुत्रः म्युराजश्च म्युश्रीः तस्य भार्या सघनपतिः तत्पुत्रः भ्राता वेनुः श्री शान्तिनाथचैत्यालये सकलकलाप्रवीणः पद्मस्तस्य भार्या पूर्णश्रीः तस्याः पुत्रः पण्डितनयनसिंहस्तेन प्रतिष्ठितं संघाधिपतिः सिघई जुगराजः तेन कर्मक्षयनिमित्तेनेदं कारितं नित्यं प्रणमन्ति। सूत्रधारः जैनसि पुत्रक कर्मचन्द्रः सघनपतिः तत्पुत्रः जिनः तस्य पुत्र संघपेन सासा सूत्रधारः। येन कृतमिदं नित्यं प्रणमन्तीति।[1]

---

१. प्रस्तुत लेख 'परवार डायरेक्टरी' भूमिका, पृष्ठ २९-३० और 'देवगढ़ की जैन कला : एक सांस्कृतिक अध्ययन' पृष्ठ १६५ से संकलित किया

ती० सम्भवनाथ : देशी पाषाण २४ अं०, खंधारगिरि, **चन्देरी**

सं० १४१० वर्षे फाल्गुण सुदि गुरुवासरे श्री मू० भ० देवेन्द्रकीर्ति **पौरपट्टे।**

सम्भवनाथ जिन : देशी पाषाण पद्मा० २४ अं०, प्राणपुरा, **चंदेरी**

संवत् १४१० वर्षे फाल्गुण सुदि पूनो गुरुवासरे श्रीमूलसंघे भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति **पौरपट्टे** ··· ।

चौबीसी मूर्ति : बड़ा मन्दिर, सेठ का कूचा, **दिल्ली**

सं० १४५४ वर्षे वैशाख मुदि १२ सोमे दिने श्रीचन्द्रवाट दुर्गे चाहुवाणराज्ये श्री अभयचन्द्रदेव सुपुत्र श्री जयचन्द्रदेवराज्ये श्री काष्ठासंघे माथुरान्वये आचार्य श्रीदेवास्तत्पट्टे क्षेमकीर्तिदेवा **पद्मावतीपौरपाटान्वये** साधुमाहण पुत्र सा० देवराज भार्या प्रभा पुत्राः पंच करमसिंह नरसिंह हरिसिंह वीरसिंह रामसिंह एतैः कर्मक्षयार्थं वतुर्विशतिका प्रतिष्ठा कारितः पंडित मारु शुभं भवतु।

चौबीस जिन : धा० १० अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १४७१ फागुण सुदि ३ भौमे श्री मू० श्री पद्मनन्दिदेवाः **पौरपाटान्वये** साधुः जोन्हि भार्या रजू पुत्र नाल्ह भा० रमू।

एकपट्ट चौबीस मूर्ति : पद्मा० धा० १० अं० बड़ा मदिर, **चंदेरी**

सं० १४७१ फागुण सुदी ३ भौमे श्रीमूलसंघे श्रीपद्मनन्दिदेवाः **पौरपाटान्वये** साधु जोन्हि भार्या रजू पुत्र नाल्ह भार्या रमू दुतीक पुत्र पहराज भार्या साहूतिः कर्मक्षयनिमित्तं चतुर्विसतिका प्रतिष्ठापितं।

ग्रन्थलेख :[1]

संवत् १४७३ वर्षे कार्तिक सुदि ५ गुरुदिने श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे नन्दिसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेवा तच्छिष्य

है। 'परवार डायरेक्टरी' भूमिका, पृष्ठ २९ पर इस लेख का संवत् १३९३ शाके १२५८, 'भट्टारक सम्प्रदाय' पृष्ठ १६९, लेखांक ४२५ मे सवत् १४९३ शाके १३५८ एवं 'देवगढ़ की जैन कला : एक सास्कृतिक अध्ययन' मे सवत् १४९३ शाके १३६८ मुद्रित है।

१. प्रस्तुत ग्रन्थलेख एव इसके बाद के दो अन्य लेख एक ही प्रतीत होते हैं।

मुनिश्री देवेन्द्रकीर्तिदेवा:, तेन निजज्ञानावरणकर्मक्षयार्थं लिखापितं शुभम्। श्रीमूलसंघे भट्टारिक श्रीभुवनकीर्ति तत्पट्टे भट्टारिक श्रीज्ञानभूषणपठनार्थम्। नरहडीवास्तव्य **परवाडज्ञातीय** सा० काकल भा० पुण्यश्री सुत सा० नेमिदास। दासा। शिवदा **ठाकुर** एतैः इदं पुस्तकं दत्तम्।

ह० लि० शास्त्रकी प्रशस्ति : बागायण वालों का मन्दिर, जयपुर

श्री मूलसंघे भट्टारिक श्रीभुवनकीर्ति तत्पट्टे भट्टारिक श्री ज्ञानभूषण पठनार्थं। नरहडीवास्तव्य। **परवाडज्ञातीय**। सा० काकल भा० पुण्यश्री सुत सा०। नेमिदास। दास। सिवदा। **ठाकुर** एतैः इदं पुस्तकं दत्तं।

पुण्यास्रव (संस्कृत) : श्री जिन मन्दिर लूनकरणजी जयपुर या जिन-मन्दिर आगरा

श्रीमूलसंघे भट्टारिक श्री भुवनकीर्ति तत्पट्टे भट्टारिक श्री ज्ञानभूषणपठनार्थं। नरहडीवास्तव्य **परवार ज्ञातीय** सा० काकल भा० पुण्यश्री सुत सा० नेमिदास दासा शिवदा **ठाकुर** एतैः इदं पुस्तकं दत्तं।

भगवान् महावीर : देशी पाषाण, २१ अं०, वेदी ५, छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १४९० वर्षे फागुण सुदि १५ श्रीमूलसंघे देवेन्द्र कीर्ति ·····।

भेलसा (विदिशा) :

भद्दलपुर श्री राजारामराज्ये महाजन **परवाल**। सं० ···· भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवस्तच्छिष्य भट्टारक श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेव **पौरपट्टान्वये**।

सिद्धयंत्र चौकोर तांबा : दि० जैन मन्दिर, घोघा

सं० १४९५ वर्षे कार्तिक सुदी १४ देवेन्द्रकीर्ति विद्यानन्दी····

—सू० दि० जै० ले० सं० पृ० ३२४

पट्टावली : जैन सिद्धान्त भास्कर १७, पृष्ठ ५१

तत्पट्टोदयसूर्य-आचार्यवर्य-नवविधब्रह्मचर्यपवित्र-चर्यामन्दिर-राजाधिराजमहामंडलेश्वर-वज्रांग-गंग-जयसिंह-व्याघ्रनरेन्दादिपूजितपादपद्मानां **अष्टशाखा-प्राग्वाटवंशावतंसानां** षड्भाषाकविचक्रवर्तिभुवनतलव्याप्तविशदकीर्ति-विश्वविद्याप्रसारसूत्रधारसद्ब्रह्मचारिशिष्यवरसूरिश्रीश्रुत-

सागरसेवितचरणसरोजानां श्रीजिनयात्राप्रसादोद्धरणोपदेशनैकजीव-प्रतिबोधकानां श्रीसम्मेदगिरिचंपापुरि-पावापुरी ऊर्जयंतगिरीअक्षयवड-आदीश्वरदीक्षा-सर्वसिद्धक्षेत्रकृतयात्राणां श्रीसहस्रकूटजिनबिंबोपदेशक-हरिराजकुलोद्योतकराणां श्रीविद्यानंदीपरमाराध्यस्वामिभट्टारकाणाम्।'[1]
—भट्टारक सम्प्रदाय, ले० ४३९

भ० महावीर : पद्मासन धातु १२ अं०, पंचायती मन्दिर, **वाराणसी**

संवत् १४९९ वर्षे वैशाख वदि २ मूलसंघे बलात्कारगणे भट्टारक श्रीपद्मनन्दिदेवाः तत्पट्टे श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तच्छिष्य **श्रीविद्यानन्दि-गुरोपदेशात्** ब्रह्म उधरणसाधारणकरापितं ..... मुनि यशचंद्र देवाः।

पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर, **सिरोंज**

संवत् १५०० **प्राग्वाटवंशे**।

भ० महावीर : पद्मासन धा० १८ अं० बड़ा मन्दिर, **ललितपुर**

सं० १५०१ वर्षे वैशाख सुदि ३ सोमवार श्री मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवस्तच्छिष्य भट्टारक श्री देवेन्द्र-कीर्तिदेव **पौरपट्टान्वये** सघं कानुधे भार्या खिमाई वीणभाई तत्पुत्र ... भ्राता रामा भार्या गोराई तत्पुत्र · नित्यं प्रणमति। पं० तेणसी प्रतिष्ठितं।

---

१. आचार्यवर्य नवविध ब्रह्मचर्यरूप पवित्र-चारित्र के मन्दिर, राजाधिराज महामण्डलेश्वर बलवान् गग-जयसिंहदेव व्याघ्रादि राजाओ से पूजित चरणों वाले **अष्टशाखा प्राग्वाटवंश** मे जिनका जन्म है, षड्भाषा कवि चक्रवर्ती हैं, समस्त भूतल पर जिनकी कीर्ति फैली है, **विश्वविद्या** के प्रसार मे जो प्रमुख सूत्रधार हैं, शिष्यों मे श्रेष्ठ ब्रह्मचारी श्री श्रुतसागर जी से जिनके चरण पूजित है, श्री जिन यात्रा के प्रसाद से उपदेश देकर जिन्होंने अनेक जीवो को प्रतिबोधित कर उनका उद्धार किया है, श्री सम्मेदशिखर-चपापुरी-पावापुरी-गिरनार-अक्षयवट [आदीश्वर दीक्षा स्थान] आदि सर्व क्षेत्रों की जिन्होंने यात्रा की है, श्री सहस्रकूट जिनबिम्ब के उपदेशक हरिराज के कुल को उद्योतित करनेवाले श्री विद्यानन्दी परम आराध्य भट्टारक महोदय थे।

कुन्थुनाथ : पद्मा० दे० पा० २२ अं० छोटा मन्दिर, **चंदेरी**

संवत् १५०३ वर्षे माघ सुदि ९ बुधे मूलसंघे भट्टारक श्री पद्मनंदिदेव-शिष्य देवेन्द्रकीर्ति **पौरपाटान्वये** सं० धणक भार्या पूना पुत्र काकुलि स्त्री आमिणि······ ।

आदिनाथ जिन : पद्मा० दे० पा० २८ अं०, छोटा मन्दिर, **चंदेरी**

संवत् १५०३ वर्षे माघ सुदि ९ बुधदिने मूलसंघे भट्टारक श्री पद्म-नन्दिदेवशिष्य देवेन्द्रकीर्ति । **पौरपाट अष्टसख** आम्नाए सं० धणउ भार्या पुनी तत्पुत्र सं० का ''''''भार्या आमिणि तत्पुत्र सं० जैसिंघ भार्या महासिरि तत्पुत्र सं० तावणि ··· द्यौपति सं० करमतो सं० नरपति पंचा० सं० भावणि भार्या अमा पुत्र सारंग पौ०······ ।

भ० नेमिनाथ : धातु ऊँचाई ६ अं० दि० जैन मन्दिर, **घोघा**

सं० १९१३ वर्षे वैशाख सुदी १० बुधे श्रीमूलसंघे श्रीपद्मनन्दीवंशे आचार्य श्रीविद्यानन्दीगुरूपदेशात् हुंबडजातीय श्रेष्ठी वेला भामीनु पुत्र ज्ञांतृ भा० मांजीन्द्रिय भ्राता भाड नेमिनाथस्य नित्यं प्रणमति।

—मू० दि० जैन ले० सं०

चौबीसी : धातु पद्मा० २० अं०, प्राणपुरा, **चंदेरी**

संवत् १५१४ वर्षे वैशाख सुदि १० बुधे श्रीमूलसंघे भट्टारक श्रीजिन-चन्द्रदेवास्तस्याम्नाये **पौरपाटान्वये** सां० अमरद्यो भार्या कौलसिरि । पुत्र सं० रजा सं० लोला सं० लषे । रजा भार्या रूपा द्वि० भार्या उदेसिरि पुत्र उधरणु । लोला भार्या दुणिया पुत्र पडो पहुणसी । लषे भार्या ऊना द्वि लखनसिरि । मंडे भार्या सुहगा । नित्यं प्रतिष्ठाप्य प्रणमति पूजयति ॥ शुभं भवतु मंगलं ।

चौबीसी : धातु २० अं०, बड़ा मन्दिर, **चंदेरी**

सं० १५१४ वैसाख सुदि १० बुधे श्री मू० भ० जिनचन्द्रदेवास्तदा-म्नाये **पौरपाटान्वये** सा० अमरद्यो भा० कोलसिरि ।

आदिनाथ : धा० १५ अं० बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १५१५ चैतवदि ४ समौ भ० जिनचन्द··· · **पौरपट्टे** ।

यन्त्र : बड़ा मन्दिर, **विदिशा**

सं० १५१५ वैशाख सुदि १० सोमे श्रीमूलसंघे भ० **जिनचन्द्रदेवाम्नाये बारहश्रेणीवंशे** ······**अष्टशाख** · ···· ।

संवत् १५१७ वर्षे माघ सुदि १० बुधे कोरंटगच्छे उपकेशज्ञातीय काला **परमार** शाखायां श्राविका ।

—प्राचीन लेख-संग्रह, भा० १, पृ० ८९

सिद्धचक्रयन्त्र गोल ताबाँ : ७ इच दि० जैन मन्दिर, **घोघा**

सं० १५१९ वर्षे माघ सुदी ५ श्री मूलसंघे विद्यानन्दी··· ।

—सू० दि० जै० सं०, पृ० ३२३

पार्श्वजिन : धा० ८॥ अं० बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १५२१ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १० बुधदिने श्री मू० ब० भ० सिंहकीर्ति देवाः **पौरपट्टान्वये** श्री० सा०·······भार्या फलो पुत्र विरो प्रणमति नित्यम् ।

पार्श्वनाथ जिन : पद्मा० धा० ९ अं० बड़ा मन्दिर, **चंदेरी**

संवत् **१५२१** वर्षे ज्येष्ठ सुदि १० बुधदिने श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे ·········रग सीहकीर्तिदेवा **पौरपट्टान्वये** श्री सा० ······· भार्या फलो पुत्र विरो प्रणमति नित्यं ।

पाँच जिन : धा० लगभग ११ अं०, **सावली, गुजरात**

सं० १५२५ फा० सु० २ **प्राग्वाटज्ञाति** आ···· · ···श्रेयसे श्री सुमतिनाथ बिम्बं कारितं ।

भ० **वासुपूज्य** : ऊँचाई १०६ दि जैन मन्दिर, **घोघा**

सं० १५२७ वर्षे वैशाख वदी १२ शुक्रे श्रीमूलसघे सरस्वतिगच्छे बलात्कारगणे श्री कुं० भ० श्री पद्मनन्दी तत्पट्टे देवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे भ० विद्यानन्दीगुरूपदेशात् गंधारनगरे बाई अजिका कल्याणश्री वचनश्री सागनश्री वासुपूज्य प्रतिमा कारापित रोहिणीव्रतनिमित्तम् नित्यं प्रणमति ।

—सू० दि० जै० ले० सं०, पृ०३२५

यन्त्र पीतल : गोल १५ अं०, हाटकापुरा, **चंदेरी**

संवत् १५२८ वर्षे मा० सुदि १३ रवौ श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीपद्मकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्री सकलकीर्त्युपदेशात् **पौरपट्ट अष्टसाखान्वये वैशाखमूर गोहलगोत्रे** मोदी जगमणि भार्या······ पुत्रद्वय ज्येष्ठ पु० रूपचंद भार्या श्यामा पुत्रत्रय द्वितीय पुत्र त्रिलोकचंद भा० कंजा पुत्रद्वय ज्ये० मोहणदास द्वि० घनसाम इदं यंत्रं करापितं।

भ० सम्भवनाथ : पद्मा० देशी पा० १५ अं०, बड़ा मन्दिर, **चंदेरी**

संवत् १५३२ वर्षे वैसाख सुदि ४ गुरो श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिदेव।········ मण्डलाचार्य श्री त्रिभुवनकीर्ति **पौरपट्टान्वए**। ततु: साधो।

भगवान् सम्भवनाथ : देशी पा० १५ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १५३२ वर्षे वैशाख सुदि ४ गुरो श्री मू० ब० स० कु० भ० ···· कीर्तिदेव[1] मण्डलाचार्य श्रीत्रिभुवनकीर्ति **पौरपट्टान्वये**।

चौबीसी : धातु १६ अं० पद्मासन, सेनगण मन्दिर, **कारंजा**

सवत् १५३२ वर्षे वैशाख सुदि १४ गुरो श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे नन्दिसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री त चन्द्रदेव त श्री पद्मनन्दिदेव त शुभचन्द्रदेव त० श्री जिनचन्द्रदेव भ० श्री सिहकीर्तिदेव चन्देरी मण्डलाचार्य देवेन्द्रकीर्तिदेव त० श्री त्रिभुवनकीर्तिदेव **पौरपट्टने अष्टसखे** सारवन पु० समवेतस्य पुत्र राउत पापेता पुत्रा सा अरजुय त० पुत्र सा० पवेता पु० साद्योरनु भा० विरजा पु० संघे संघ तु भा········ संघे-संघे।

यह लेख कोटा मन्दिर **चन्देरी** के एक जिनबिम्ब पर भी अंकित है।

चन्देरी और **कारंजा** के मन्दिरों मे यह लेख अंकित है।

१५३२ · चन्देरी मण्डलाचार्य श्री देवचन्द्रकीर्तिदेव त० श्री त्रिभुवन-कीर्तिदेव **पौरपटान्वे अष्टान्वये**।

---

१. सम्भवतः देवेन्द्रकीर्तिदेव।

भ० पार्श्वनाथ : धा० १४ इंच, काष्ठासंघ मन्दिर, **कारंजा**

श्री संवत् १५३४ वर्षे शके १३९७ वैशाख वदी ५ श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्रीसकलकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ० श्री भुवनकीर्ति तत्पट्टे भ० श्रीधर्मकीर्ति मुनि श्री देशभूषण मुनि श्री गुणकीर्ति ब्र० श्री जिनदास आ० धन श्री ब्र० न्यानदास क्षु० सुमति पं० नाकू **जाँगड़ा पोरवाड** ज्ञातीय सं० प्रभु भा० रमाई सु० ससुराज सोनपाल भगनि विराई नेताई पदमाह सं० ससराजस्य भार्या हरषु सू० धर्मधर इत्यादि समस्त कुटुम्ब संयुक्तेन श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरस्य प्रणमति ।

रत्नत्रयमूर्ति : धा० १४ अं०, बडा मन्दिर, **चंदेरी**

सवत् १५४१ वर्षे जेष्ठ वदी ५ शुक्रे श्रीमूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिदेवा । तत्पट्टमण्डलाचार्य त्रिभुवनकीर्तिदेवा **अठसखाज्ञातीय** सा पीथा भा० सिवदे पु० स० तस्य स गोमी **भा०** धनसिरि तस्य पुत्र पचाइन भा० चाइ द्वितीय स्त्री ··· ।

रत्नत्रयमूर्ति : धा० १४ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १५४१ वर्षे जेष्ठ वदि ५ शुक्रे श्री मू० स० ब० कु० भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवाः तत्प० भट्टारकदेवेन्द्रकीर्तिदेवाः तत्पट्ट मण्डलाचार्य-त्रिभुवनकीर्तिदेवा **अष्टसखाज्ञातीय** सा० पीथा भा० सिवदे · ।

भ० पद्मप्रभ मूर्ति : अनेकान्त, व० ४ पृ० ५०२

संवत् १५४२ वर्षे ज्येष्ट सुदि ८ शनौ श्री मूलसघे ···भ० सकलकीर्ति तत्पट्टे भ० भुवनकीर्ति तत्पटटे भ० श्रीज्ञानभूषणगुरूपदेशात् **जाँगड़ा पोरवाडज्ञातीय** स० वाजु मानेजु·······।

—म० सं० ले० ३५४

पंचपरमेष्ठी : धातु ऊँचाई ८ इंच दि० जैन मन्दिर, **घोघा**

सं० १५४४ वैशाख सुदी ३ सोमे मूलसंघे विद्यानन्दी शिष्य मल्लीभूषण प्रतिष्ठितम् मोढज्ञातीय भाहीया भा०.... ।

—सू० दि० जे० ले० सं०, पृ० ३२२

सोलह तीर्थंकर : धा० ९ अं०, (वेदी दीवाल) बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**
संवत् १५४९ ज्येष्ठ वदी ५ वर्षे तदाम्नाय **गोहिल्लगोत्रे** सा० कोप ।

पार्श्व जिन : पद्मा० का० पा० ४४ अं०, छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १५५२ फालगुन सुदि १२ सोमे **पौरपाटान्वे** साधु यसहड इन्द्रपालु साधु रालु याइं तिस पुत्रु सोलपीमू प्रणमति नित्यं ।

भ० बाहुबली : धातु खड्गासन १० इंच (आसन कमल), **सूरत**

संवत् १५८७ वर्षे चैत्र वद ५ शुक्रे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ० श्री देवेन्द्रकीर्ति जी श्री धर्मचन्द्र उपदेशात् ज्ञाति **जांघडा पोरवाड** संघा सुतः हसः पुत्र वीरः पुत्र रंभाकु प्रतिष्ठितम् ।

—सूरत दि० जैन मन्दिर ले० सं०, पृ० ८७

सुदर्शनचरित : प्र०—भारतीय ज्ञानपीठ, वी० नि० सं० २४८४

श्रीमूलसंघे वरभारतीये गच्छे बलात्कारगणेऽतिरम्ये ।
श्रीकुन्दकुन्दाख्य मुनीन्द्रवंशे जातः **प्रभाचन्द्र** महामुनीन्द्रः ॥४७॥

पट्टे तदीये **मुनिपद्मनन्दि** भट्टारको भव्यसरोजभानुः ।
जातो जगत्त्रयहितो गुणरत्नसिन्धुः कुर्यात् सतां सात्सुखं यतोशः ॥४८॥

तत्पट्टपद्माकरभास्करोऽत्र **देवेन्द्रकीर्तिर्मुनिचक्रवर्ती** ।
तत्पादपंकेजसुभक्तियुक्तो **विद्यानिन्दी**चरितं चकार ॥४९॥

मध्यप्रान्त और बरार के हस्तलिखितों की सूची—

वन्दे **देवेन्द्रकीर्तिं** च सूरिवर्यं दयानिधिम् ।
मद्गुरुर्यो विशेषेण दीक्षालक्ष्मीप्रसादकृत् ॥
तमहं भक्तितो वन्दे **विद्यानन्दी** सुसेवकः ॥

ग्रन्थसंख्या १३६२ संवत् १५९१ वर्षे आषाढ़मासे शुक्लपक्षे लिखितम् ।

—भट्टारक सम्प्रदाय, ले० ४३४

चौबीसी : धातु १६ अंगुल, **खण्डवा**

सं० १६४४ फाल्गुन सुद दशम्यां शुक्ले कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीअमरकीर्तिदेवा···आचार्य श्री शुभचन्द्रोपदेशात् **जांगडा प्राग्वाट** वदगोत्रे सा० इसा० तत्पा० बा० पडा त० सुत सा० राउ तद्भार्या बा० रमा तत्सुन ····श्री वासुबिबं प्रणमति ।

मूर्ति : थूवोन

सं० (१६)४५ माघ सुदि ५ श्रीमूलसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० यशकीर्तिपट्टे भ० श्री ललितकीर्ति पट्टे भ० श्री धर्मकीर्ति उपदेशात् **पौरपट्ट छितरामूर गोहिल्लगोत्र** साधु दीनू भार्या··· ।

—अ० व० ३, पृ० ४४५, भ० सं० ले० ५२५

ताम्रयन्त्र : गोल, बड़ा मन्दिर, **चंदेरी**

संवत् १६५८ वर्षे श्री मूलसंघे श्रीजसकीर्ति तत्पट्टे भ० श्री ललितकीर्तिगुरूपदेशात् **पौरपट्ट अष्टसाखे** सा० मानु भार्या जिया तयो पुत्र सा० भवानी पुत्र राजमलु साहिवु पुत्रु छीतरु प्रणमति ।

ताम्रयन्त्र : गोल १० अं०, बड़ा मन्दिर, **चंदेरी**

सं० १६५८ वर्षे श्रीमूलसघे आ० श्री जसकीर्ति तत्पट्टे भ० श्री ललितकीर्तिगुरूपदेशात् **पौरपट्ट अष्टसाखे** सा० रत्नपारु भार्या लाडो पुत्रु मगणु भार्या केसरि पुत्रु मकुन्द नित्यं प्रणमति ।

सिद्धयन्त्र : गोल ९ अ० वेदी गर्भालय, बड़ा मंदिर **चन्देरी**

सं० १६६२ वर्षे माह वदि १ भ० ललितकीर्तिपट्टे भ० धर्मकीर्ति उपदेशात् **परवार वैसाखनन्दन** ।

भ० चन्द्रप्रभ : प० धा० ७ अ०, बड़ा मन्दिर, चदेरी

१६६९ ··· **पौरपट्ट** · ··· ।

भ० पार्श्वनाथ : धा० २० अं० बड़ा मन्दिर **चन्देरी.**

नमः सिद्धेभ्यः । सं० १६६९ वर्षे चैत्र सुदि १५ रवौ श्री मू० ब० स० कु०भ० त्रिभुवनकीर्तिस्तत्पट्टे भ० यशोकीर्तिदेवस्तत्पट्टे भ० ललितकीर्तिदेवस्तत्पट्टे भ० धर्मकीर्त्युपदेशात् **पौरपट्टान्वये** चलोतरी साहु ठाकुर भार्या गंगा ···· । तिलोकचन्द्र प्रतिष्ठामध्ये प्रतिष्ठितम् ।

पार्श्वनाथ जिन : पद्मा० धा० २० अं०, **चन्देरी**

नमः सिद्धेभ्यः ॥ सवत् १६६९ वर्षे चैत्र सुदि १५ रवौ श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ० त्रिभुवनकीर्तिस्तत्पट्टे भ० सहस्रकीर्तिस्तत्पट्टे भ० पद्मनन्दिदेवस्तत्पट्टे भ० यशोकीर्तिदेव-

स्तत्पट्टे भ० ललितकीर्तिदेवस्तत्पट्टे भ० धर्मकीर्त्युपदेशात् **पौरपट्टान्वये** चेलोत्तरी ? सां० ठाकुरु, भार्या गंगा पुत्र सा० अचलु भार्या ३ सिंगारदे पुत्र ३ पं० आस मानिकचंद भार्या मानो पुत्र भोगा॥ पंडित रनपाल नित्यं पणमंति सरूपचंद गोगरसी तिलोकचंद प्रतिष्ठामध्ये प्रतिष्ठितं जहागीरपुर।

चौबीसी : धा० १९ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १६६९ वर्षे वैसाख सुदि १५ रवौ श्री मू० स० कुं० भट्टारक श्रीयशकीर्तिस्तत्पट्टे भट्टारक श्रीललितकीर्तिस्तत्पट्टे भट्टारक श्रीधर्मकीर्त्युपदेशात् **पौरपट्टान्वये**…… ……।

चौबीसी एक पट्ट : धा० १९ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १६६९ वर्षे वैशाख सुदि १५ रवौ श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीयशकीर्तिस्तत्पट्टे भट्टारक श्री ललितकीर्तिस्तत्पट्टे श्री धर्मकीर्त्युपदेशात् **पौरपट्टान्वये** सीमान पुलंद भार्या जिया पुत्र २ जेष्ठ प्रधान भवानी भार्या माना पुत्र राजमल धनु सहसमल। दुतिय प्रधान साहिउ भार्या केसरिदे पुत्र नछीतामल चतुरमनि एतान्मद्व प्र० भवानीदास अनुजा अजेया नित्यं प्रणमति। सरूपचंदप्रतिष्ठामध्ये।

बड़ा मन्दिर, **ललितपुर**

श्री संवतु १६६९ शके १५६० वर्षे भादो सुदि ९ दिने शुक्रे श्री श्री श्री पारसनाथचैत्यालये जिर्णबिंबे श्रीमूलसघे बलात्कारगण सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्रीललितकीर्ति त० धर्मकीर्ति तत्पट्टे श्री श्री श्री पद्मकीर्तिः तच्छिष्यः उपाध्याय श्री श्री श्री णेमिचन्द्रः तद्गुरुभ्राता पं० गुणदास ग्राम ललितपुरे…… ……उपाध्याय श्री श्री श्री णेमिचन्द्रः जीर्णचैत्यालयः कारापितं। ……इत्यादि समस्त पंच।

ताम्रयन्त्र : गोल ९ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १६७१ वैसाख सुदि ५ सोमे श्री मूलसंघे भट्टारक श्री ललितकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री धर्मकीर्त्योप(दे)सात् **पौरपट्ट**………।

भ० पार्श्वनाथ : पद्मा० धा० १५ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १६७१ वर्षे वैशाख सुदि ५ सोमे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्रीललितकीर्तिदेव तत्पट्टे भ० धर्मकीर्त्युपदेशात् सं० भवानीस साहिब प्रतिष्ठामध्ये प्रतिष्ठितं । **पौरपट्टे** रावतगोत्रे सं० साहिमल भार्या गोध पुत्र गोविद नित्यं प्रणमति । उदयगिरि प्रतिष्ठितं । दामोदर उस्ता ।

भ० पार्श्वनाथ : धा० १५ अं०, बडा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १६७१ वर्षे वैसाख सुदि ५ सोमे श्री मू० ब० स० कु० भ० ललितकीर्तिदेव तत्पट्टे भ० धर्मकीर्त्युपदेशात् सं० भवानीस साहिब प्रतिष्ठामध्ये प्रतिष्ठितं **पौरपट्टे** रावतगोत्रे ······ ।

नंदीश्वरमूर्ति : पार्श्वप्रभु बड़ा मन्दिर, **नागपुर**

संवत् १६७१ वर्षे वैसाख सुद ५ मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० यशकीर्ति तत्पट्टे भ० ललितकीर्ति तत्पट्टे भ० धर्मकीर्ति उपदेशात् **पौरपट्टे** सा० उदयचदे भार्या ····उदयगिरेन्द्र प्रतिष्ठा प्रसिद्ध ।

—भ० सं०, ले० ५२८

यन्त्र : पीतल, गोल, ९ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १६७६ वर्षे फागुण सुदि ५ सोमे श्रीमूलसंघे कुन्दकुन्दाचार्या० भट्टारक श्री ललितकीर्तिस्तत्पट्टे मण्डलाचार्य श्रीरत्नकीर्तिस्तदुपदेशात् **पौरपट्टे अष्टसाखे** सा० लखमीचन्द भार्या गोठा पुत्र हीराचन्द १ सतुराई २ माडन ३ ज्येष्ठस्य भार्या चतुरा पुत्र देउ १ गंगा २ वसन्ते ३ मध्य भरथ भार्या पार्वती पुत्र गोविन्दे १ मुकटे २ मथुरे ३ कनिष्ठस्य भार्या सुमा पुत्र चम्पति नित्यं प्रणमति ।

ताम्रयन्त्र : गोल १० अं०, हाटकापुरा, **चन्देरी**

संवत् १६८० चैत्र सुदी १३ गुरौ मूलसंघ कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्रीललितकीर्तिस्तत्पट्टे भ० श्रीधर्मकीर्ति उपदेशात् **परवार लालू मूरी** सा० किसुन भा···· ···क पुत्र ···············।

नेमिनाथ जिन : खड्गा० धा० २२ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

१६८१ वर्षे माघ सुदि १५ गुरौ मूलसंघे भ० ललितकीर्तिपट्टे भ० धर्मकीर्ति उपदेशात् **परवाज्ञातौ** सा० गुणदास भा० पारवती। पुत्रः पं० चिन्तामणि तत्पुत्रः सुन्दरः एते नमन्ति ग० टोडरमल्ल की प्रतिष्ठा।

भ० नेमिनाथ : खड्गा० धा० २२ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १६८१ वर्षे माघ सुदि १५ गुरौ मू० भ० ललितकीर्तितत्पट्टे भ० धर्मकीर्ति उपदेशात् **परवारज्ञातौ** सा० गुणदास भा० पारवती ग० टोडरमल्ल की प्रतिष्ठा।

भ० पार्श्वनाथ मूर्ति : पार्श्वनाथ बड़ा मन्दिर, **नागपुर**

संवत् १६८१ वर्षे माघ सुदी १५ गुरौ भ० धर्मकीर्ति उपदेशात् **परवारज्ञातौ**……।

—भ० सं०, ले० ५३०

षोडशकारण यन्त्र : ताम्र गो० ८ अ०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १६८२ मार्गशिर वदि २ रवौ भ० ललितकीर्तिपट्टे भ० धर्मकीर्तिगुरूपदेशात् **परवार धनमूर** सा० हठीले भा० दया ……।

षोडशकारणयन्त्र : ताम्र गोल ८ अं०, प्राणपुरा, **चन्देरी**

संवत् १६८२ मार्गशिर वदि २ रवौ भ० ललितकीर्तिपट्टे भ० श्री धर्मकीर्तिगुरूपदेशात् **परवार धनामूर** सा० हठीले भा० दमा पुत्र दयाल। भा० केसरि पुत्र भोगे गरीबे भालदास भा० सुभा। गुपाले भा० केसरि। खरगसेनि। भा० करमैती। पुत्र भिखारी। उग्रसेन। भा० दीपा। चन्दसेन भा० उत्तमदे। एते नमन्ति।

अहारक्षेत्र :

संवत् १६८६ के फाल्गुन सुदी ३ श्रीधर्मकीर्तिउपदेशात् संभु कुठ भा० किशुन पुत्र मोदन श्याम रामदास नन्दराम सुखानन्द भगवानदास पुत्र आसा जात सिसराम दामोदर विरदेराम किशुनदास **वैशाखनन्दन परवार** एते नमन्ति।

—प्राचीन शिलालेख अहार जी

श्रीऋषभनाथ, मन्दिर नं० २१, पपौरा

संवत् १६८७ वर्षे वैशाख सुदी ८ शनौ श्रीमूलसंघे भ० श्री ललितकीर्तितत्पट्टे भट्टारक श्रीरत्नकीर्तिदेवोपदेशात् **पौरपट्टान्वये** सा०

हीराचन्द भार्या चतुरा पुत्र २ सा० दया सा० खम……भ्राता सा० सतुराय भार्या पारवती तत्पुत्र ४ गोविन्द १ भ्रमर २ मथुरा ३ सदई ४ सा० मोहन भार्या शुभ तत् चर्चति ।

—पपौरा दर्शन, पृष्ठ ३६-३७

श्री कुन्थुनाथ : पद्मा० शु० पा० १० अं०, छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १६८९ व० पौ० व० ५ बु० श्री मूलसंघे भट्टा० पद्मकीर्त्युपदेशात् **पौरपट्टे अष्टशाखान्वये** … … ।

मेरु : धातु ११ अं०, प्रत्येक दिशा मे पाँच जिन, छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १६८९ वर्षे पौष वदि ५ भ० धर्मकीर्ति भ० पद्मकीर्त्युपदेशात् **पौरपट्टे रामूर गोयल गोत्र** सा० राम भा० दर्दसा पु० ४ स० गुपाल भा० अनमा पुत्र कीर्ति भा० विसुना धा जे भा० हयारदे राभता लि० गुनदास ।

मेरु : ११ अं०, प्रत्येक दिशा में ५ जिन, **चन्देरी**

सं० १६८९ वर्षे पौष वदी ५ भ० धर्मकीर्ति भ० पद्मकीतिर्युपदेशात् **पौरपट्टे** " मूर **गोयलगोतु** सा० राम भा० दईसा पुत्र ४ सं० गुपाल भार्या अनमा पुत्र कीर्ति भा० विसुना धाजे भा० हमारदेवी राम तालि० गुनदास।

पाँच जिन : पद्मा० धा० १० अं०, छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १६८९ वर्षे पौष वदि ५ भ० धर्मकीर्ति तत्पट्टे भ० पद्मकीर्त्यो पदेशात् रतनकीर्ति छ जे हीरामनि पं० गुणदास **पौरपट्टे छोरामोरु गोयल गोतु** सा० राम भा० सु० ४ सं० गुपाल भगत वबे ।

मानस्तम्भ चतुर्मुखी : छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

···· गणे स० कुन्द० भ० ललितकीर्ति तत्पट्टे धर्मकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्री पद्मकीर्ति तदुपदेशात् ब्र० जिनदास वर पण्डित गुणदास **पौरपट्टे** साहु लाल तस्य भार्या हीरा तयोः पुत्र दयादास······· ।

मानस्तम्भ चतुर्मुखी : छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

सं०··· ····कुं भ० ललितकीर्ति तत्पट्टे धर्मकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्रीपद्मकीर्ति तच्छिष्य ब्रह्म जिनदास वा पंडितराज गुणदास तत्पदेशात् **पौरपट्टे** साहु लाल तस्य भार्या हीरा तयोः पुत्र दमोदांत सा०····· ।

भ० बाहुबली : ४८ अं० खड्गा०, पहाड़ी का मध्य भाग, खंदारगिरि, **चन्देरी**

संवत् १६९० वर्षे माघ सुदि ६ शुक्रवासरे श्रीमूलसंघे सरस्वती-गच्छे बलात्कारगणे कुदकुदाचार्यान्वये श्री भ० ललितकीर्ति उपदेशात् तत्शिष्य पंडित गुणदास ॥ **पौरपट्टे अष्टशाखान्वये ।**

यह मूर्ति पहाड़ में उकेरी गई है ।

भ० पार्श्वनाथ : १२ फुट कायोत्सर्ग, **बड़ोहर पठारी**

संवत् १६९२ फाल्गुन वदि ७ बुधे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवाः तत्पट्टे भ० गुणकीर्तिदेवास्तत्पट्टे जसकीर्तिदेवाः तत्पट्टे रत्नकीर्तिदेवाः शाहशाह पातिसाह शाहजहाँराज्ये **अष्टशाखे तत् गोहिल्लगोत्रे** स० सरपंच नरसिंह पांड़े तत्पुत्र शाह राहो भार्या रुक्मिणी तत्पुत्र सा० हल्के भार्या रत्नदेवी तत्पुत्र मगनीराज नित्यं प्रणमति चौ० रामचन्द्र वघोरा स० ।

शिलालेख : बड़ा मन्दिर, **ललितपुर**

श्री संवत् १६९६ शके १५६० वर्षे भादों सुदि ५ दिने शुक्ले श्री श्री श्रीपारसनाथचैत्यालये जिणबिंबे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती-गच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्रीललितकीर्ति भ० धर्मकीर्तिः तत्पट्टे भट्टारक श्री श्री श्री पद्मकीर्तिः तच्छिष्यः उपाध्याय श्री श्री श्री णेमिचन्द्र तद्गुरुभ्राता पं० गुणदास ग्राम ललितपुरे·········साहिभुज-माण्डे तत् राजा श्री देवीसिंघ नरेस तत् भ्राता बिसुन राइ बुन्दला तत् मन्त्री प्रसिद्ध राजधर श्री थीवर मिश्र वर्तमाने यो विश्ववेद (इत्यादि पूरा श्लोक) उपाध्याय श्री श्री श्री णेमिचन्द्रः जीर्ण चैत्यालय करावितं । श्री·······रदास इत्यादि समस्त पंच ॥ ५०······ सिध ॥ श्री

भ० पार्श्वनाथ : पद्मा० शु० पाषाण १९ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १७०६ वर्षे वैशाख सुदि ७ ·· · ·· श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० धर्मकीर्ति तत्पट्टे भ० श्री पद्म-कीर्त्युपदेशात् **पौरपट्टे** ·······।

चन्द्रप्रभजिन : शु० पा० पद्मासन २६ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १७१६ वर्षे वैशाख वदि ७ ·· ·· पं० श्री गुणदास **पौरपट्ट** ·········· काशीराम तुलसीराम विहारीदास प्रणमन्ति नित्यं ।

पादुका युग्म : खंदार, **चन्देरी**

संवत् १७१७ मार्गशीर्ष चतुर्दश्यां बुधवासरे .... भट्टारक श्री पद्मकीर्तिदेवाः गतास्तेषामिदं पादुकायुग्मं।[1]

वृषभनाथ, मन्दिर नं० १३, **पपौरा**

संवत् १७१८ वर्षे फाल्गुनमासे कृष्णपक्षे ''श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० श्री ६ धर्मकीर्ति तत्पट्टे भ० श्री ६ पद्मकीर्ति तत्पट्टे भ० श्री ६ सकलकीर्ति उपदेशेनेयं प्रतिष्ठा कृता तद्गुरुराद्योपाध्याय नेमिचन्द्रः **पौरपट्टे अष्ठशाखाश्ये घनामूले कासिल्लगोत्रे** साहु अधार भार्या लालमती ।

अ० व० ३ पृ० ४४५, भ० सं० ले० ५३६

सिद्धयन्त्र : गोल, ७ अं० व्यास, **वमनावर**

संवत् १७२२ वर्षे माहसुदी १ गुरौ श्रीमूलसघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० जगत्कीर्ति तत्पट्टे भ० त्रिभुवनकीर्ति गुरूपदेशात् म० मदारी नित्यं प्रणमति।

पार्श्वनाथ : धातु १६ अंगुल, छोटा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १७२५ वर्षे मार्गवदि ५ शुक्रे श्रीमूलसंघे भ० श्री श्री श्री पद्मकीर्तिदेवस्तत्पट्टे भ० श्री श्री श्री सकलकीर्तिदेवस्तच्छिष्य आचार्य श्री श्री श्री शुभचन्द्रदेवोपदेशात् **पौरपट्टे अष्टशाखान्वये इंगमूले भारल्लगोत्रे** सा० चरणे तत्पुत्र ३ सा० चतुरर्मात......।

नेमिनिर्वाणकाव्य :

अहिछन्नछुरोत्पन्न प्राग्वाट कुलशालिनः
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्ध वाग्भटः कविः ॥८७॥[2]

इतिश्री नेमिनिर्वाणे महाकाव्ये महाकवि श्रीवाग्भटविरचिते नेमिनिर्वाणाभिधानं नाम पंचदशः सर्गः ॥१५॥ ग्रन्थ संख्या ......संवत् १७२७ वर्षे पौषमासे कृष्णपक्षे अष्टमी ८ शुक्रवासरे।

—जैनसिद्धान्त भास्कर, कि० १,२४९०

---

१ स० १७१७ मे खंदार चन्देरीमे भ० पद्मकीर्ति के चरण स्थापित हुए।

२. यह श्लोक देहली, जयपुर और नागौर की प्रतियो में है। निर्णयसागर से मुद्रित प्रति मे नहीं है।

चौमुखी : धा० १२ अं०, बड़ा मन्दिर, चन्देरी

सं० १७२९ वर्षे माह सुदी १४ श्री मू० कुं० वणिग्वर **परवार**।

भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति का पट्टाभिषेक : वि० सं० १७४१ सिरोंज

मुनिराज की दिक्ष्या को परभाव।
श्रावक सब मिलि आनि के जैसो कियो चाउ ॥६॥
धनि नरेन्द्रकीर्ति मुनिराई। भई जग में बहुत बढ़ाई॥
जहाँ **पोरपट्ट** सुखदाई। **परवारवंश** सोई आई॥
बहुरिया मूर तहाँ साई। धनि मथुरामल्ल पिताइ॥
माता नाम रजौती कहाई। जाके हैं घनश्याम से भाई॥
तप तेज महा मुनिराई। कापै महिमा वरनी जाई॥......
कहा कहों मुनिराज के गुणगण सकल समाज।
जो महिमा भविजन कहै भट्टारिक पदराज॥
भट्टारक पदराज की कीरति सकल भवि आई।
अलपबुद्धि कवि कहा कहै बुधिजन थकित रहाई॥
विधि अनेक सो लहर सिरोंज मे भयो पट्ट अपना चारु।
सिंघई माधवदास भवन ले निकसे महामहोच्छव सारु॥

अभिषेक स्थल चांदा सिंघईका देवालय। वहाँ वस्त्राभूषण उतार कर और केशलोंच कर मुनि दीक्षा ली। १०८ कलशों से अभिषेक हुआ। सर्व प्रथम भेलसा (विदिशा) के पूरणमल बड़कुर आदि ने अभिषेक किया।

जगत्कीर्ति पद उधरत त्रिभुवनकीर्ति मुनिराई।
नरेन्द्रकीर्ति तिस पट्ट भये गुलाल ब्रह्म गुनगाई॥

उपस्थिति—शुभकीर्ति, जयकीर्ति, मुनि उदयसागर, ब्र० परसराम, ब्र० भयसागर, रूपसागर, रामश्री आर्यिका, बाईषिमौनी, चन्द्रामती, पं० रामदास, पं० जगमति, पं० घनश्याम, पं० विरधी, पं० मानसिंह पं० जयराम........ परमसेनिभाई दोनों, पं मकरंद, पं० कल्याणमणि।

संवत् सत्रहसै चालीस अरइक तहां भयो।
उज्वल फागुन मास दसमि सो मह भयो॥
पुनरवसू नक्षत्र सुद्ध दिन सोदयो।
पुनि नरेन्द्रकीरति मुनिराई सुभग संजम लह्यो॥

भ० आदिनाथ : धा० १२ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १७८९ माह सुदि १ शुक्रे मू० ब० स० कुं० वनिग्वर······
पौरपट्ट ।

चन्द्रप्रभ जिन : पद्मा० धातु १९ अं०, प्राणपुरा, **चन्देरी**

संवत् १७८९ वर्षे माह सुदि १ शुक्रवासरे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्रीसुधर्माचार्योपदेशात् वनिग्वर **परवार श्री वढीया** गन्धराज तत्पुत्र श्री से० वढीया प्रानसुख श्री जिनप्रतिमा प्रतित प्रतियापित प्रवंयेत् **चन्द्रपुरी मध्ये** ।

चारों ओर जिनबिम्ब : पद्मा० धा० १२ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

संवत् १७८९ वर्षे माह सुदी १४ श्री मूलसघे कुन्दकुन्दान्वये **वनिग्वर परवार** डेव० मेघराज तत्पुत्र डे० प्राणसुख जिन ···· ।

आदिनाथमूर्ति : सूरत

श्री जिनो जयति । स्वस्ति श्री १८०५ वर्षे शाके १६७५ प्रवर्तमाने वैशाखमासे शुक्लपक्षे चन्द्रवासरे गुर्जरदेशे सूरतबन्दरे जुगादि चैत्यालये श्री मूलसंघे नन्दीसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक **श्रीपद्मनन्दीदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीविद्यानन्दीदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीमल्लीभूषणदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीवीरचन्द्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीज्ञानभूषणदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीप्रभाचन्द्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीवादीचन्द्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीमहीचन्द्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीमेरुचन्द्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीजिनचन्द्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक **श्रीविद्यानन्दीगुरू**पदेशात् सूरतवास्तव्यरायकवालजातीय धर्मधुरन्धरसम्यग्व्रतधारकगुर्वाज्ञाप्रतिपालकसदा क्षेत्रविलसनवित् सा कुंवर जी सुत सौजीसुतलक्ष्मीदामस्तत्पुत्रधर्मदासभार्या रतनबाई तयोः सत्पुत्र-धर्मधुरन्धर पूजाबिम्बप्रतिष्ठासंघवच्छलकरणसमर्थजैनप्रसिद्धमार्गे विल-सतवित् श्रावकाचारचतुर्गुर्वाज्ञाप्रतिपालकजगजीवनदास भार्या नवीवहू ताभ्यां बिम्बप्रतिष्ठा करीता सेठ श्रीलालभाईस्तेषां पुण्यपवित्रसमस्त-प्राणिगणप्रतिपालक करुणामूर्ति सेठ जगन्नाथ बाई सानिध्यविराजमाने

श्रीआदिनाथ जी मूलनायक जी प्रतिष्ठित नित्यं प्रणमति। श्रीरस्तु। लेखक-वाचकयोः भद्रं भूयात्।[1]

—दानवीर माणिकचन्द, पृ० ३०

नोट : सूरतथी २॥ माईल पर सामे पार आवेलुं तापी तटे रांदेर (रानेर) शहेर सुरतथी पण घणुं प्राचीन छे। ज्यारे सुरत आशरे सं० १२०० मां वसेलुं त्यारे रांदेर ते पहेला बसो त्रणसो वर्ष पहेलां वसेलुं होवुंज जोइए। भट्टारकनी दील्होनी एक गादी गांधारमां आवेली त्यांथी रादेर मां आवेली त्यारे भ० देवेन्द्रकीर्ति रांदेर मां हता ते पछी

---

१. श्री जिन जयवन्त हों। स्वस्ति श्री १८०५ वर्षे शाके १६७५ वैशाख शुक्ल पक्ष चन्द्रवार को गुजरात प्रान्त सूरतबन्दर स्थान मे आदिनाथ चैत्यालय मे श्री मूलसंघ के अन्तर्गत नन्दीसघ के सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण मे आचार्य कुन्दकुन्द के अन्वय मे भट्टारक श्री **पद्मकीर्तिदेव,** उनके पट्ट पर भट्टारक श्री **देवेन्द्रकीर्तिदेव,** उनके पट्ट पर श्री **विद्यानन्द जी देव,** उनके पट्ट पर श्री भ० **मल्लीभूषणजी देव,** उनके पट्ट पर श्री **लक्ष्मीचन्द्र जी देव,** उनके पट्ट पर श्री **वीरचन्द्र जी देव,** उनके पट्ट पर भट्टारक **ज्ञानभूषण जी देव,** उनके पट्ट पर **प्रभाचन्द्र जी देव,** उनके पट्ट पर श्री **वादीचन्द्र जी देव,** उनके पट्ट पर श्री **महीचन्द्र जी** देव, उनके पट्ट पर श्री **मेरुचन्द्र जी देव,** उनके पट्ट पर श्री **जिनचन्द्र जी देव,** उनके पट्ट पर भट्टारक **विद्यानन्द जी देव** गुरु के उपदेश से सूरत निवासी रायकबाल-जातीय, धर्मधुरन्धर, भले प्रकार व्रत पालने वाले, गुरु की आज्ञा का पालन करने वाले, क्षेत्रो के विकास मे धन खर्च करने वाले साहू कुवर जी, उनके पुत्र सौजी उनके सुत लक्ष्मीदास, उसके पुत्र धर्मदास और उनकी पत्नी रतनबाई, उन दोनो के सुपुत्र धर्म धुरन्धर पूजा-बिम्ब-प्रतिष्ठा आदि सघ के कार्यों मे प्रीति करने मे समर्थ, अत्यन्त नम्र, सिद्ध क्षेत्रो के कार्यों मे धन खर्च करने वाले, श्रावकोचित आचार पालने में चतुर, गुरु की आज्ञा के प्रतिपालक श्री जीवनदास इनकी पत्नी, नई बहू, उनके बिम्बप्रतिष्ठा कराने वाले पुत्र सेठ लालभाई, उनके पुण्य से पवित्र समस्त प्राणियों का प्रतिपालन करने वाले दया की मूर्ति सेठ जगन्नाथ बाई के सान्निध्य मे विराजमान प्रतिष्ठित मूल नायक आदिनाथ जी उनको नित्य प्रणाम करते हैं। कल्याण हो। लेखक-वाचक का कल्याण हो।

आ गादी सुरत आवेली त्यारे तेना भट्टारक श्री विद्यानंदी हता जे सं० १५०० मां थई गया छे।[1]

—सूरत दि० जैन मं० लेखसंग्रह, पृ० १९१

सं० १५०० अरसामां सुरतनी जुथी गादीए थई गयेला महाविद्वान् भट्टारक १०८ श्रीविद्यानन्द जी जेओ सुरतमा रहेता हता पण गूजराज अने सौराष्ट्रमां बारंबार भ्रमण पण करना हता अने जे मणे अनेक प्रतिष्ठाओ करावी हमी, तेमनो स्वर्गवास सुरतमां सं० १५१८ ना मागसर वद १० सुरतमां थयो हमीव जे महान् उत्सवरूपे उजवावा पछी श्री विद्यानंदस्वामीनां पगलां (चरण पादुका) सुरतथी २॥ माइल पर कनारगामनी पासे वरमीया देवडीपर के ज्यां श्री विद्यानन्द स्वामीनो अंतीम दाहसंस्कार थयो हतोत्यां पधारववामां आव्या हतां जे पगलां हाल मंडपनी पाछली बाजुए छे तेनो लेख घसाई गयो छे, लगभग एक एक कानो मात्रा जणाय छे। तेमज वहारनी बाजुए वच्चेना गोखलामां "श्री" छे। ते ते वखतनो अतीव प्राचीन छे।[2]

—सूरत दि० जैन मन्दिर लेखसंग्रह, पृ० १९२

१. सूरत से ढाई मील पर आने वाली तापी नदी के तट पर रादेर (रानेर) शहर सूरत से प्राचीन है, सूरत नगर स० १२०० मे बसा और रादेर उससे ३०० वर्ष पहले बसाया गया। होबुज से चलकर भट्टारक जी ने एक गद्दी (गादी) गाधार मे थापी, वहाँ पर भट्टारक विद्यानदी थे जो सं० १५०० मे हो गये हैं।

२. सवत् १५०० के वर्ष मे सूरत मे गद्दी आई। महाविद्वान् भट्टारक श्री १०८ विद्यानदी जी सूरत मे थे, परन्तु वे गुजरात और सौराष्ट्र में बार बार भ्रमण करते थे। उन्होंने अनेक बिम्ब-प्रतिष्ठाएँ कराई थी। उनका स्वर्गवास सूरत मे सं० १५१८ मगसर वदी दसमी को हुआ।

इसके बाद चरण पादुका सूरत से २॥ मील दूर पर कनार गामनी के पास वरमीया देवडी पर जहाँ श्री विद्यानन्द स्वामी का अन्तिम दाहसस्कार हुआ था वहाँ पर बड़े उत्सव के साथ स्थापित की गई। ये चरण पादुका बड़े मडप के पिछली बाजू मे हैं। एक लेख उनके परिचय का लिखा गया है। लेख इतना स्पष्ट लिखा गया है कि एक एक मात्रा स्पष्ट है। उस मंडप के बाहरी बाजू मे एक छोटे आले मे "श्री" शब्द लिखा गया है। ये सब अत्यन्त प्राचीन हैं।

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति द्वारा जैनविजय प्रि० प्रेस से सं० १९७४ में प्रकाशित **"प्रायश्चित्त"** नाम की पुस्तक से ज्ञात होता है कि सं० १३८३ को **दिल्ली में जो भट्टारक पट्ट की स्थापना** हुई थी उसकी एक शाखा आमोद के दास गांधार में स्थापित की गई थी, जिसके स्थापित हो जाने पर **सं० १४६१ में भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने सूरत के पास रांदेर में मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ कुंदकुंद आम्नाय के अन्तर्गत भट्टारक पट्ट की स्थापना की।** गुजराती मे अन्त का उपयोगी अंश इस प्रकार लिपिबद्ध किया गया है :

" पछी गांधार लूटी जवाथी आगछी सं० १४६१ मां भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति सूरत पासे रांदेर मां स्थापित करेल **जे सं० १५१८ मां भट्टारक विद्यानन्दी जी एक सुरतमां स्थापित** करेली।

भ० **चन्द्रप्रभ** : धातु ११ अं० चरमधारी ३ फणसहित, **चन्देरी**

सं० १८३३ मूल सं० स० बला० कु० आम्नाये श्री सुरेन्द्रकीर्ति **वार मूल भारल्लगोत्र** फागुण वदि १२।

चन्द्रप्रभ : धा० ११ अं० चरमधारी फण सहित, **कुण्डलगिरि**

सं० १८३३ मू० सं० स० ब० कु० श्री भ० सुरेन्द्रकीर्ति**वारीमू० भारल्लगोत्र** फा० सुदि १२।

भ० **पार्श्वनाथ मूर्ति** : परवार मन्दिर, **नागपुर**

संवत् १८५७ शके १७२२ भादवा सुदी १० सोमवासरे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे भ० श्री अजितकीर्ति तस्य उपदेशात् गोहिल **परवारज्ञाते** ...।

भ० **पार्श्वनाथ** : धातु ९ इंच, दि० जैन मं० मस्का साथ, **नागपुर**

संमत् १८५९ दुंदुभिनामसंवत्सरे नागपुरनगरे रघुवरराज्ये भ० श्रीरत्नकीर्तिउपदेशात् **श्रीपरवार वंशे**....।

भ० **पद्मप्रभ** : धातु ११ अं०, दि० जैन मं० मस्का साथ, **नागपुर**

संमत् १८५९ शके १७२४ श्री मूलसंघ बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे भ० रत्नकीर्ति उपदेशात् नागपुरनगरे रघुवरराज्ये **परवारान्वये सेतगागर गोहिल्लगोत्र** ...भार्या ...प्रतिष्ठा करापितं।

चौबीसी पीतल : वैद्य जी का मन्दिर, मड़ावरा

संवत् १८६४ मार्गशीर्ष शुक्ला ५ शुक्रवार परगनो सागर नग्र मराठवरी पं० मोरोजी राज्योदयात् **परवारमूर सर्वछोला वैद्य** नंदजू भार्या गोदा तयोः पुत्रः ? हरीसिंहः प्रणमति।

ऋषभदेव : मन्दिर नं० ३८, पपौरा

संवत् १८७६ अथ श्रीमन्नृपति विक्रमाजीतराज्यात् गवय भाद्रपद शुक्ल पंचम्या बुधवासरे परगनौ ओड़छौ नग्र टेहरी तत्समीपे श्रीमत् क्षेत्र पपौरा मध्ये श्री महाराजाधिराज श्री महेन्द्र महाराज श्री राजा विक्रमाजीत तस्यात्मज श्री महेन्द्र महाराजा—श्रीमान् नृपति धर्मपाल बहादुर जू प्रवर्तमाने श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्याम्नाये **चन्द्रपुरीपट्ट भट्टारक श्रीमन्नरेन्द्रकीर्ति तदाम्नाये गोदूमूर गोहिल्लगोत्र** श्री कटता साहजू तस्य भार्या सन्तो तयो पुत्र ३ प्रथम जेष्ठ पुत्र संघापित कुलदीपक बालाक्ष सुम तसु भार्या पुत्र वृन्दावन द्वितीय भार्या नवलो पुत्र हीरालाल द्वितीय पुत्र श्री राजाराम भार्या बून्दा पुत्र जोरावल तृतीय भ्राता माढन तस्य भार्या भिम्मो तेभ्यः मिद प्रतिष्ठां करापित श्री ऋषभदेवो चरणकमलयो नित्य प्रणमन्ति शुभं भवतु, मंगलं ददातु।[1]

—पपौरा दर्शन, पृष्ठ ४१-४२

---

१. संवत् १८७६ श्रीनृपति विक्रमादित्य के राज्य से भाद्रपद शुक्ला पचमी बुधवार परगनो ओरछो नगर टेहरी उसके समीप में श्री पपौरा क्षेत्र के बीच में महाराजाधिराज श्री महेन्द्र महाराज श्री राजाविक्रमाजीत उनके पुत्र महाराजाधिराज श्री महेन्द्र महाराजा श्रीमान् राजा धर्मपाल बहादुर, जिनके राज्य में मूलसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ श्रीकुन्द-कुन्दाचार्य की आम्नाय मे चन्द्रपुरी (चन्देरी) पट्ट के भट्टारक श्री नरेन्द्रकीर्ति उनके आम्नाय गोदूमूर गोहिल्लगोत्र के श्री कटतासावजी उनकी भार्या सन्तो उनके पुत्र तीन ज्येष्ठ पुत्र सघादिक कुलदीपक बालाक्ष उनकी भार्या सुम उनका पुत्र वृन्दावन द्वितीय भार्या नवली उनका पुत्र हीरालाल द्वितीय पुत्र राजाराम भार्या बून्दा उनका पुत्र जोरावल तृतीय भ्राता माढ़न उनकी भार्या भम्मो इन सबके द्वारा यह प्रतिष्ठा कराई गई। श्री ऋषभदेव के चरण कमलो मे नित्य प्रणाम करते है। शुभ हो, मगल हो।

भ० पार्श्वनाथ[1] : मथुरा

सं० **१८९०** माघ शुक्ला ८ **आष्टाशाखे** प्रतिष्ठितम् **डेरियामूरी श्रीकरढाकेन।**

भ० चन्द्रप्रभ : पद्मा० बादामी पाषाण ९ अं०, बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

·· ···१८९३ वा० सि० रामचन्द **परवार**

?जिनमूर्ति : पद्मा० स० पा०, ४३ अ०, **बरुआसागर**

स० १८९३ माघ शुक्ला १३ सनवार श्री कुन्दकुन्द आचार्य आम्नाय मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे तत् पटे श्री भटारक हरचंद भुवन-श्री उपदेशात् श्री नग्र उदोतगंज के **परवार** सकल पंच श्रावक····· ।

चन्द्रप्रभ : पद्मा० म० पा० ४३ अं०, **बरुआसागर**

स० १८९३ वर्षे माघ शुक्ला १३ सनवार श्री आचार्य कुन्दकुन्द जी आम्नाय मूलसघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री भट्टारक चंदभूषण उपदेशात् श्री नग्र उदोतगंज के **परवार** श्री सकल पंच श्रावक बड़े देहुडे मै नित ।

भ० महावीर : बादामी पट्ट पद्मा० ५६ अं० बड़ा मन्दिर, **चन्देरी**

सं० १८९३ वर्षे फाल्गुण वदि ११ भृगौ सुवर्णगिरिस्थ भट्टारक हरचन्द्रभूषणस्योपदेशात् रामनगरे **परवार वैसाखिया** चौ० हरजू पुत्र इन्द्रजीत कु० अरजू प्यारेलाल तयो पुत्र सिंघई रामचन्द्र लछमन बदलो मानिक नित प्रणमत प्रतिष्ठा के ···।

श्री पार्श्वनाथ जी; मन्दिर नं० ८, **पपौरा**

संवत् १९०३ वैशाखमासे शुक्लपक्षे तिथौ ३ भौमवासरे परगनौ औरछौ नग्र टीकमगढ तत्समीपे पुन्यक्षेत्र श्री महाराजाधिराज महाराज श्री सुजानसिह देव जू राज्यमध्ये श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्याम्नाये **बहुरिया मूर कोछल्लगोत्रे** नायक दलसींघ तस्य भार्या सुबेसी नित्य प्रणमन्ति शुभ भवस्तु ।

—पपौरा-दर्शन, पृष्ठ ३१-३२

---

१. प्रस्तुत मूर्तिलेख मे अङ्कित संवत् को श्रीमान् प० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने १८९ पढ़ा है। देखिए—सिद्धान्ताचार्य प० फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृष्ठ ३४२। किन्तु श्रीमान् प० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने इस मूर्तिलेख में अङ्कित सवत् को १८९० पढ़ा है।

श्री पार्श्वनाथ; मन्दिर नं० ५, **पपौरा**

संवत् १९०४ व्रषे फाल्गुणमासे शुभे कृष्न पक्षे तिथ ८ रविवासरे कौं श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीकुन्दकुन्दाचार्याम्नाये नपत **परवार ओछल्ल** मूरी कोछल्ल गोत्र सराफ सुकल तस्य भार्या द्वयो प्रथम भार्या मायादे दुतिय भार्या श्यामा.... प्रणमन्ति परगनौ ओरछौ नग्र टीकमगढ तत्समीपे क्षेत्र पपौराजू मध्ये श्री जिनचैत्यालय प्रतिष्ठितं।

—पपौरा-दर्शन, पृष्ठ ३१

भ० आदिनाथ : धातु १ फु०, दि०जै० परवार मन्दिर, इ० **नागपुर**

संमत् १९१६ मिती फागुण सुदी ११ शनिवासरे श्री मू० स० ब० कुं० नागपूरनगरे श्रीजिनचैत्यालये अयं श्रीआदिनाथस्वामी मूलनायक भ० श्री देवेन्द्रकीर्तिस्वामी उपदेशात् गकुरदास तत्पुत्र मनीलाल **परवार बोछल मुर कोछल गोत्र ते** प्रतिष्ठितं।

भ० चन्द्रप्रभ : धातु ७ इं०, परवार मंदिर, इतवारी, **नागपुर**

संमत् १९२५ का मिती माघ सुदी ५ सोमवासरे श्री मूलसंघ ब० स० कुन्दकुन्दाचार्यान्वये नागौरपट्टे भ० श्रीविद्याभूषणजो तत्पट्टे भ० हेम-कीर्तिना तदाम्नायवरती पंडित सवाईरामोपदेशात् **परवारान्वये कोछल्ल-गोत्रे** संघई तुलसीदास तत्पुत्र सं० · लाल कुञ्जलाल बिहारीलालेन प्रतिष्ठा की।

भ० पार्श्वनाथ : धातु ९ इं० जैन मंदिर केलीबाग, **नागपुर**

संवत् १९२५ श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये नागौरपट्टे भ० श्रीविद्याभूषणजी तत्पट्टे भट्टारक श्रीहेमकीर्तिजी तदाम्नाय···· **परवालान्वये कोछलगोत्रे** संघवी भुरसीदास तत्पुत्र मनालालेन प्रतिष्ठा करान्वितं।

भ० नेमिनाथ : धातु ७ इं० परवार मन्दिर इतवारी, **नागपुर**

संमत् १९३९ शके १८०४ प्रतिष्ठाचार्य विशालकीर्ती भट्टारक प्रतिष्ठा करविणार सुतीयाबाई **परवारीन**।

पार्श्वजिन : पद्मा० धा० १५ अं०, छोटा मन्दिर, **चंदेरी**

संवत् १९४२ फाल्गुणमासे शुधे कृष्णपक्षे ११ श्रीमूलसंघे बलात्कार-गणे सरस्वतीगच्छे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये खनियाधानैमध्ये प्रतिष्ठा कारापित **वैसाखिया गोइलगोत्र** विया देवीसिंह हीरालाल पूरणचद चंदेरीवारे नित्यं प्रणमति।

भ० आदिनाथ : धातु ६॥ इं०, परवार मंदिर, इतवारी, **नागपुर**

स्वस्ति श्री २४५८ श्रीवीरसंवत्सरे १९८८ विक्रम माघमासे शुक्लपक्षे दशम्यां तिथौ बुधवासरे श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्याम्नाये फणिन्द्रपुरनिवासी **परवारज्ञातिय खेलामूर गोइल्ल-गोत्रोत्पन्न** परमानन्दीप्रजात्मज परवारभूषण फत्तेचन्ददिपचन्दाभ्यां छपारानगरे प्रतिष्ठितं।

भ० महावीर : धातु एक फुट तीन इंच, किराना बाजार, **नागपुर**

श्रीमहावीरनिर्वाणसंमत २४६० विक्रम संमत १९९० शके १८५५ फालगुण शुद्ध १२ सोमवार श्रीमूलसंघ सरस्वतीगच्छ बलात्कारगण श्रीकुन्दकुन्दाचार्याम्नायांतील **वासल गोत्रांतील परवारज्ञाति** नागपूर-निवासी शेठ कनईलाल नेमिचंदजी यानी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र **गजपंथ** येथील श्री ब्र० जीवराज गौतमचद सोलापूर **याचे** प्रतिष्ठामध्ये श्रीमहावीर तीर्थंकराचे बिंब प्रतिष्ठित केले असे॥

जसवन्तनगर की एक मूर्ति पर **अष्टशाखा** का उल्लेख है।

धर्मामृत, प्रकाशक : कपूरचंद जी घिया कोसीवाले, मंडी, मथुरा वी० नि० २४९२,

इस ग्रन्थ में लिखा है कि कोई धनद नामक मुनि विदिशा (अवन्ती प्रदेश) क्षुत्रनदी के किनारे भैरण पर्वत से मोक्षगामी हुए।

बूढ़ी चंदेरी :

श्रीकुन्दकुन्दान्वयनदिसंघे जातो मुनिः श्रीशुभकीर्तिसूरिः।
चरणाम्बुजापीन्दुमरीचिगौहे विभ्राजितानां तिणो यशोभिः॥
समजनि शुभनंदी तस्य शिष्यः रामाबुधजननयनदालोकेकभानुः॥१॥
यम-नियम...... सुद्धं सिद्धांतबली परिगतभवकीर्तिः वीतसंसारचिन्तः।
बाभूव भद्रो वनिजां स तेना कषायदोषप्रसारस्य हन्ता॥२॥
निशाकरो बन्धुः कुमुद्वतीनां मौनी व्यलोके परदोषवादे।
मृदीरनामा प्रबभूव तस्य मैत्रीक्षमा त्यागरतस्तनूजः॥३॥
निर्मापितस्तेन।

वनमन्दिर :

महुमा से १ मील पर श्री विद्यानन्द के चरणचिह्न १५०० श्री विद्यानन्दी गुरूपदेशात् १५३४ श्री श्रीनर आचार्य श्री विद्यानन्दी।

१४७२भ० धर्मचन्द्र **पद्मावती।**

१४९९ भ० देवेन्द्र विद्यानन्दी श्रीरत्नकीर्ति।

१५१८ देवे० तत्पट्टे सूरत श्री विद्यानान्दी १५३७ भ० देवो तत्पट्टे भ० श्री विद्यानन्दी।

सिरोंजपट्ट

सं० १७१२ भ० ललित भ० धर्म० तत्पट्टे भ० जगत्कीर्ति गुरूपदेशात्।

सिरोंजपट्ट

जगत्कीर्ति त्रिभुवनकीर्ति नरेन्द्रकीर्ति।

तेरापन्थ बनाम मूलसंघ कुन्दकुन्द आम्नाय :

तेरापंथ शुद्धाम्नाय तथा मूलसंघ कुन्दकुन्दाम्नाय बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ ये दोनो एक है। इसकी पुष्टि निम्न प्रशस्ति से होती है। यह प्रशस्ति शत्रुजय क्षेत्र पालीताना के छोटे दि० जैन मन्दिर मे स्थित मूर्तिलेख से ली गई है, जो श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन डिरेक्टरी के पृ० ८०० पर मुद्रित है। पूरा मूर्तिलेख इस प्रकार है—

सं० १७३४ वर्षे माघ मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुंदकुदाचार्याम्नाये भट्टारक सकलकीर्ति तत्पट्टे श्री पदमनन्दी तत्पट्टे भट्टारक श्री देवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे भट्टारक श्रीक्षेमकीर्ति **शुद्धाम्नाये** वागडदेश शीतलवाडानगरे हूमडज्ञातीय लघुशाखाया कमलेश्वरगोत्रे दोसी की सूरदास तथा सूरमद तयोः पुत्र दोसी सांगीता सरताण एतयोः पुत्री····।

तेरापन्थ का अर्थ :

ज्ञानानन्द श्रावकाचार :

तेरपंथी हो। ते सिवाय और कुदेवादिकको हम नही सेवैं हैं।

तुम ही नै सेवों सो **तेरापंथी**। सो म्हां तुम्हारो आज्ञाकारी हों।

प्रवचनसार (जोधराज गोदीका) :

कहे जोध अहो जिन **तेरापंथ** तेरा है ।

अर्धकथानक (पं० बनारसीदासजी) :

बनारसी विहेलिया **अध्यातमी** रसाल ॥६७१॥
ताके मनु आई यहु बात । अपनौ चरित कहौ विख्यात ।
तब तिनि वरष पंच पचास । परमिति दसा कही मुखभास ॥६७२॥

जैन निबन्ध रत्नावलि :

तेरा संख्यावाची नही । तेरा-जिनेन्द्र का ।
संवत् सत्रहसै विख्यात । ता परि धरि सत्तर अरु सात[1] ॥
भादव मास कृष्ण पक्ष जानि । तिथि पांचै परवीन बखान ।
रवि सुत कौ पहिलौ दिन जोय । अर सुरगुरु के पिछे होय ॥
वार एह गनि लीज्यौ सही । ता दिन ग्रन्थ समापित लही ।
—बड़ा मन्दिर, ललितपुर

चिद्विलास (पं० दीपचन्द जी) :

वास सागानेरयौ आवरे मै आये तब यह ग्रन्थ कीयो । संवत् सतरासे गुणयासी यै १७७९ मिति फागण वदि पंचमी कौ यह ग्रन्थ पूर्ण कीयौ ॥ संतजन याकौ अभ्यास करयो ।""""

दीपचंद गुणचंद सो निहचै धामको ज्ञान ।
वाद-विवाद जाकै नहीं परम प्रवीन सुजान ॥१॥
इह ग्रन्थ की रचना करी भविजनकौ हितकार ।
अध्यातम का ज्ञान सु पौंहचे मुकति मझार ॥२॥
—बड़ा मन्दिर, ललितपुर

ज्ञानार्णव :

तेरापंथको मंदिर एव । धर्मध्याया तामै सदा जैनी करै सुसेव ॥४॥
—बड़ा मन्दिर, ललितपुर

---

1. वि० सं० १७७७ ।

समयसार टीका (पं० जयचन्द जी) :

जैपुर नगर माहि तेरापंथ शैली बड़ी बड़े गुनी जहां पढ़े ग्रन्थ सार है ।
जयचंद नाम मैं हूँ तिन मैं अभ्यास कछू कीयो बुद्धि सारू धर्मरागते
विचार है ॥
समैसार ग्रन्थ ताकी देस की वचन रूप भाषा करी पढ़ो सुनू करो
निरधार है ।
आपा-पर भेद जानि हेय त्याग उपादेय गहो शुद्ध आतमकूं यहै
बात सार है ॥

संवत्सर विक्रम तनू अष्टादश सत और ।
चौसठ[1] कातिक वदि दसै पूरन ग्रन्थ सुठौर ॥

—बड़ा मन्दिर, ललितपुर

ज्ञानार्णव (पं० जयचन्द जी) :

जैनी लोक घने तहाँ जिन मन्दिर बहुसार।
तिनमे **तेरापंथ** के तहां तत्त्व निरधार ॥
शैली साधरमानिकी पंडित पढ़ै अनेक।
शब्दन्याय आदिक प्रचुर धर्मशास्त्र विन टेक ॥

१८६९ माघसुदि ५ भृगुवारको पूर्ण जिहानाबादके संतलाल की प्रेरणा से टीका की ।

देवागमस्तोत्र वचनिका (पं० जयचन्द जी) :

देश ढुंढाहड़जैपुर थान महान् नरेश जगेश विराजे ।
न्याय चलै तब लोक भलै विधिवास लहै सुख सूं डर भाजे ॥
जैनजनाबहुते तिन मै जु अध्यातम शैलि भली सु समाजे ।
हो तिमिमे जयचंद सुनाम कियो यह काम पढ़ो निज काजे ॥

उपदेश सिद्धान्तरत्नमाला की प्रशस्ति (पं० भागचंद जी) :

गोपाचल के निकट सिंधिया नृपति कटकवरा ।
जैनीजन बहु बसहिं जहाँ जिन भक्ति भाव भर ॥
तिन मह **तेरापंथ** गोष्ठि राजन विशिष्ट अति ।
पार्श्वनाथ जिन धाम रचो जिन शुभ उत्तुंग अति ॥

---

१. वि० सं० १८६४

तहँ देशवचनिका रूप यह भागचंद रचना करी।
जयवन्त होऊ सत्संग तिन जा प्रसाद बुधि विसारी ॥
संवत्सर गुनईस से द्वादश[1] ऊपर धार।
दोज कृष्ण आषाढ की पूरण वचनिका सार ॥
—बड़ा मन्दिर, ललितपुर

रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पं० सदासुख जी) :

गोत काशिलीवाल है नाम सदासुख जास।
सहली **तेरापंथ** में करो जु ज्ञान अभ्यास ॥११॥
समयसार गुण कहन हूँ काराकित न सुरगुरु होय।
ताको कारण सदा रहो रागादिक मल धोय ॥१४॥

स० १९१९ मगसिर सुदि ८ रविवार को प्रारम्भ। समाप्त सं० १९२० चैत्र वदि १४ ॥

अड़सठि वरस ज आयुके वीते तुझ आधार।
शेष आयु नव शरण में जाहु यही भवसार ॥१७॥
जितने भव तितने रहो जैन धर्म अमलान।
जिनवरधर्म विनाजु मम अन्य नहीं कल्याण ॥१८॥

●

१. संवत् १९१२।

परवार जाति के इतिहास पर कुछ प्रकाश[1]

श्री नाथूराम जी प्रेमी

उपोद्घात :

इस समय इस बात की चर्चा बड़े जोरों पर है कि परवार जाति का एक इतिहास तैयार किया जाय। अपनी प्राचीनता और गत गौरव की कहानी जानने की किसे इच्छा नही होती ? परन्तु वास्तव में जिसे इतिहास कहते हैं उसका लिखना इतना सहज नही है जितना कि लोग समझते हैं। जातियों का इतिहास लिखना तो और भी कठिन है। क्योंकि इसके लिए जो उपयोगी सामग्री है अभी तक उसे प्रकाश में लाने की ओर ध्यान ही नही दिया गया है। फिर भी जो कुछ सामग्री मिल सकी है उसके आधार पर मैं इस लेख मे कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करूँगा।

परवार जाति का परिचय और उसके भेद :

लेख शुरू करने के पहले यह जरूरी है कि परवार जाति का थोड़ा सा परिचय दे दिया जाय। इस बारे मे हमे इतना ही कहना है कि वैश्यों की जो सैकड़ों जातियाँ है, परवार जाति भी उन्ही मे से एक है। बुन्देलखंड, मध्यप्रदेश के उत्तरीय जिले, मालवे की ग्वालियर और भोपाल आदि रियासतों के कुछ हिस्से प्रधानता से इन्ही मे यह जाति आबाद है। दि० जैन डिरेक्टरी (सन् १९१४) के अनुसार परवारों की जनसंख्या लगभग ४२ हजार है। साहूकारी, जमीदारी, दुकानदारी और बजाजी इस जाति की मुख्य जीविकाएँ हैं। रग-रूप और शरीर-संगठन से यह शुक्ल वर्ण आर्य जाति ही मालूम होती है। जैनधर्म के दिगम्बर सम्प्रदाय की यह अनुयायिनी है। अन्य जातियों के समान न इसमे कोई श्वेतांबर सम्प्रदाय का अनुयायी है और न जैनेतर सम्प्रदायों का। हाँ, इसमे कुछ लोग तारनपंथ के अनुयायी अवश्य हैं, जो 'समैया' कहलाते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय की और सब बातों को मानते हुये भी

१. "परवार बधु" (मासिक) अप्रैल-मई १९४० से उद्धृत।

मूर्ति-पूजा नहीं करते, केवल शास्त्रों को ही पूजते हैं और वे शास्त्र गिनती में चौदह हैं, जिन्हें विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के तारनस्वामी नामक एक संत ने रचा था।

परवारों के अठसखे, छहसखे, चौसखे और दोसखे—ये चार भेद किसी समय हुए थे, जिनमें से इस समय केवल अठसखे और चौसखे रह गये हैं। सुना जाता है कि दोसखे परवारों के भी कुछ घरों का अस्तित्व है, परन्तु हमें उनका ठीक पता नहीं है।

जातियों की उत्पत्ति कैसे होती है ?

परवार जाति की उत्पत्ति पर गहराई से विचार करने के लिए यह जरूरी है कि पहले यह जान लिया जाय कि भारतवर्ष की उसके समान अन्य जातियों की उत्पत्ति कैसे होती रही है। इसके लिए पहले हम भगवज्जिनसेनाचार्य का मत उद्धृत करते है। भगवज्जिनसेन के कथनानुसार पहले मनुष्य जाति एक ही थी, पीछे जीविकाओं के भेद के कारण वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन भेदों में बँट गई।[१]

महाभारत के शांतिपर्व मे भी यही बात कही गई है।[२] परन्तु इस समय भारतवर्ष में सब मिलाकर २७३८ जातियाँ हैं। अब प्रश्न यह होता है कि मूल के उक्त चार वर्णों में से ये हजारो जातियाँ कैसे बन गईं ? इस विषय मे इतिहासकारो ने बहुत कुछ छानबीन की है। हम यहाँ जाति बनने के कारण बहुत ही संक्षेप मे बतलाएँगे।

कुछ जातियाँ तो भौगोलिक कारणो से—देश, प्रान्त, नगरों के कारण बनी हैं। जैसे ब्राह्मणों की औदीच्य, कान्यकुब्ज, सारस्वत, गौड़ आदि जातियाँ और वैश्यो की श्रीमाली, खंडेलवाल, पालीवाल या पल्लीवाल, ओसवाल, मेवाड़ा, लाड आदि जातियाँ। उदीची अर्थात् उत्तर दिशा के औदीच्य, कान्यकुब्ज देश के कान्यकुब्ज या कनबजिया, सरस्वती-तट के सारस्वत और गौड़ देश या बंगाल के गौड़। इसी तरह श्रीमाल नगर जिनका मूल स्थान था, वे श्रीमाली कहलाये, जो ब्राह्मण भी है, वैश्य भी है और सुनार भी हैं। इसी तरह खंडेला के रहनेवाले खंडेलवाल, पाली के रहने वाले पालीवाल या पल्लीवाल, ओसिया के

१. आदिपुराण, पर्व ३८, श्लोक ४५।

२. शांतिपर्व, अ० १८८, श्लोक १०।

ओसवाल, मेवाड़ के मेवाडा, लाट (गुजरात) के लाड आदि। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि जब किसी राजनीतिक या धार्मिक कारण से कोई समूह अपने प्रांत या स्थान का परिवर्तन करके दूसरे स्थान में जाकर बसता था, तब से ये नाम प्राप्त होते थे और नवीन स्थान में स्थिर स्थावर हो जाने पर धीरे-धीरे उनकी एक स्वतन्त्र जाति बन जाती थी। उदीची या उत्तर के ब्राह्मणों का दल जब गुजरात में आकर बसा तब यह स्वाभाविक था कि वह अपने जैसे अपने ही दल के लोगों के साथ सामाजिक सम्बन्ध रक्खे और अपने दल को औदीच्य कहे।[1] कुछ जातियाँ सामाजिक कारणों से बन गई है, जैसे प्रत्येक जाति के दस्सा, बीसा, पाँचा आदि भेद और परवारों के चौसखे, दोसखे आदि शाखायें। कुछ जातियाँ विचार-भेद से या धर्म से बन गई हैं, जैसे वैष्णव और जैन खंडेलवाल, -श्रीमाल, -पोरवाड, गोलापूरब आदि।

पेशों के कारण बनी हुई भी बीसों जातियाँ है, जैसे सुनार, लुहार, धीवर, बढई, कुम्हार, चमार आदि।[2] इन पेशे वाली जातियों में भी फिर प्रांत, स्थान, भाषा आदि के कारण सैकड़ो उपभेद हो गये है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्वर्गीय काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने 'हिंदू-राजतन्त्र' नामक ग्रन्थ में बतलाया है कि कई जातियाँ प्राचीन काल के गणतंत्रों या पंचायती राज्यों की अवशेष है, जैसे पंजाब के अरोड़े (अरट्ट) और खत्री (क्सेथ्रोई) और गोरखपुर, आजमगढ़ जिले के मल्ल आदि। अभी-अभी डाक्टर सत्यकेतु विद्यालंकार ने अग्रवाल जाति के इतिहास मे यह सिद्ध किया है कि अग्रवाल लोग 'आग्रेय' गण के उत्तराधिकारी है। ये गणतंत्र एक तरह के पंचायती राज्य थे और अपना शासन आप ही करते थे। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे इन्हें **'वार्ताशस्त्रोपजीवी'** बतलाया है। 'वार्ता' का अर्थ कृषि, पशुपालन और

---

१. अनहिलबाडा के सोलकी राजा मूलराज (ई० सन् ९६१-९६) ने यज्ञ के लिए जिन ब्राह्मण परिवारो को उत्तर भारत से बुलाकर अपने यहाँ बसाया था, उन्हें ही औदीच्य कहते हैं।

२. इनका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों मे भी मिलता है, परन्तु वह केवल पेशे की पहिचान के रूप मे, वर्तमान जातिरूप मे नही। जैसे यूरोप के लुहार, बढ़ई आदि।

वाणिज्य है। ये तीनों कर्म वैश्यों के है। इसके साथ शस्त्र धारण भी वे करते थे। जब इनकी स्वाधीनता छिन गई और एकतंत्र राज्यों ने इनको समाप्त कर दिया, तब ये शस्त्र छोड़कर केवल वैश्यकर्म ही करने लगे और अब उनमे से कितने ही अपने पुराने नामों को लिये हुए जाति के रूप में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। संभव है कि अन्य वैश्य जातियों के विषय में भी खोज करने पर उनका मूल भी अरोड़ा, खत्री, मल्ल आदि जातियों के समान प्राचीन गणतंत्रों में मिल जाय[1] इस विषय में यह भी संभव है कि कई बार स्थान परिवर्तन के कारण नये स्थानों पर से नये नाम प्रचलित हो गये हों और पुराने गणतंत्र वाले नाम भूल गये हों।

परवारों के विषय में प्रचलित मान्यताओं का खंडन और अपने मत का स्थापन

परवार जाति के विषय में अधिक खोज करने के पहले यह जरूरी है कि इसके संबंध में प्रचलित मान्यताओं का विचार किया जाय।

'परवार' शब्द को बहुत से लोग 'परिवार' का अपभ्रष्ट रूप बतलाते है जिसका अर्थ कुटुम्ब होता है। कोई-कोई यह भी कल्पना करते है कि शायद परवार 'परमार' राजपूतों मे से है, जिन्हें आजकल पँवार भी कहते है। परन्तु ये सब कल्पनायें है। मूलशब्द से अपभ्रष्ट होने के भी कुछ नियम हे और उनके अनुसार 'परमार' से परवार' नही बन सकता। अपभ्रंश मे 'म' का कुछ अंश शेष रहना चाहिए, जैसा कि 'पँवार' मे वह अनुस्वार बनकर रह गया है। हमारी समझ मे परवार[2] शब्द पल्लीवाल, ओसवाल, जैसवाल जैसा ही है और उसमे नगर या स्थान का संकेत सम्मिलित है। मेहतरों या महाब्राह्मणो से जो परवारों की उत्पत्ति का अनुमान किया है वह तो निराधार और हास्यास्पद है ही, इसलिये उसपर कुछ लिखने की जरूरत ही नही मालूम होती।[3]

---

१. इस विषय की विशेष जानकारी के लिए देखो स्वर्गीय म० म० के० पी० जायसवाल कृत 'हिन्दू राजतत्र'।

२. परवार, पल्लीवाल वगैरह शब्दो का 'वार' या 'वाल' शब्द संस्कृत के 'वाट' या 'पाट' प्रत्यय से बना है। देखो आगे पृ० १५७ पर अङ्कित सन्दर्भ क्रमाङ्क १।

३. "परमार" शब्द का "परवार" बन जाना कोई कल्पना नहीं है—क्योंकि जयपुर, सीकर-उज्जैन और कारंजा इन चारो स्थानो

अगर हम 'परवार' शब्द के अन्त का 'वार' 'वाट' के अर्थ में लें तो यह सिद्ध करना जरूरी है कि इस समय परवार जाति का जहाँ आवास है वहाँ वह किसी समय कहीं अन्यत्र से आकर बसी है। उसे वर्तमान आवास स्थान मे आये हुए कई शताब्दियाँ बीत गई हैं इसलिए उनके रहन-सहन, रीति-रिवाजों मे पहले का कुछ खोज निकालना अशक्य सा है, फिर भी कुछ बातें ऐसी है जिनसे बाहर से आने का अनुमान जरूर हो सकता है। सबसे पहली बात पंचायती संगठन है। बुंदेलखंड और मध्य-प्रदेश में शायद ही कोई ऐसी मूल जाति हो जिसमें इस तरह का पंचायती अनुशासन हो। यह अनुशासन उन्ही जातियों में होना स्वाभाविक है जो कहीं अन्यत्र से आकर बसती हैं और जिन्हें दूसरों के बीच अपना स्थान बनाकर रहना पड़ता है या जो गणतंत्रों की अवशेष है। इनके ब्याह-शादी आदि के रीति-रिवाज भी अन्य पड़ोसी जातियों से निराले है : ब्राह्मणों को इस जाति ने अपने सामाजिक और धार्मिक कार्यों से बिलकुल बहिष्कृत कर दिया है। यहाँ तक कि उनके हाथ का भोजन भी ये नहीं करते। यदि ये जहाँ है वही के रहने वाले होते, तो ब्राह्मणों का प्रभाव इन पर भी होता जो प्रत्येक प्रांत की प्रत्येक जाति में परम्परागत रहा है। इनकी स्त्री-पुरुषों की पोशाक में भी विशेषता थी, जो अब लुप्त हो रही है। हमारी समझ में घाँघरा, चूनरी और तनीदार चोली परवार स्त्रियों की ही विशेषता थी जो पडोसी जातियो में नहीं थी और यदि थी तो इन्ही के अनुकरण पर।

परवार जाति बाहर से आकर बसी है, इसके अन्य प्रमाण इसी लेख मे अन्यत्र मिलेंगे।

परवार जाति का प्राचीन नाम :

अब देखना चाहिए कि प्राचीन लेखों में इस जाति का नाम किस रूप में मिलता है। मेरे सम्मुख परवारों द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओं और मन्दिरों के जो थोड़े से लेख हैं, उनमें से सबसे पहला लेख अतिशय

की प्राचीन पट्टावलियो में आचार्य श्री गुप्तिगुप्त को किसी में 'परमार', किसी मे 'परवार' किसी मे 'पवार' और अन्य में 'पवारी' राजपूत शब्दों से उल्लेख किया गया है।

—पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री

क्षेत्र 'पचराई' के शांतिनाथ के मन्दिर का है जो वि० सं० ११२२ का है। उसका यह अंश देखिए :

पौरपट्टान्वये शुद्धे साधु नाम्ना महेश्वरः।
महेश्वरेव विख्यातस्तत्सुतः ध(र्म) संज्ञकः॥

अर्थात् पौरपट्ट वंश में महेश्वर के समान साहु महेश्वर थे जिनका पुत्र ध(र्म) नाम का था।

दूसरा लेख चंदेरी के मन्दिर की पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर इस तरह है :

"संवत् १२५२ फाल्गुन सुदि १२ सोमे पौरपाटान्वये साधु यशहद रूपपाल साधु नालु भार्याय नि····पुत्र सोलु भीमू प्रणमंति नित्यम्।"

साहु सोलू भीमू ने सं० १२५२ में यह प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी और वे पौरपाट अन्वय या वंश के थे।

तीसरा लेख प्रानपुरा (चँदेरी) की एक प्रतिमा का है :

"संवत् १३४५ आषाढ़ सुदी २ बुधौ (धे) श्री मूलसंघे भट्टारक श्री रत्नकीर्तिदेवाः पौरपाटान्वये साधु वाहुव भार्या वानी सुतश्च सौ प्रणमति नित्यं।"

इसमें भी मूर्ति प्रतिष्ठित करने वाले पौरपाट अन्वय के हैं।

स्पष्ट मालूम होता है कि इन लेखों मे "पौरपाट" या "पौरपट्ट" शब्द परवारों के लिए ही आया है, क्योंकि इन प्रांतों में जैनियों में परवार लोग ही ज्यादा है। फिर भी अगर इस पर शंका की जाय कि पौरपट्ट या पौरपाट वंश परवार ही है, इसका क्या प्रमाण ? तो इसके लिए चन्देरी की श्री ऋषभदेवजी की मूर्ति का यह लेख देखिए :

---

१. यह लेख पचराई तीर्थ की रिपोर्ट मे छपा है। इसकी कटिंग बाबू ठाकुरदास जी बी० ए० टीकमगढ़ ने कृपा करके मेरे पास भेजी है। उसके नीचे छपा है, 'पुरातत्त्व विभाग ग्वालियर से प्राप्य' इस निबन्ध के अन्य प्रतिमा-लेख भी उक्त बाबू सा० की कृपा से ही प्राप्त हुए हैं। लेखों की कापी सावधानी से नहीं की गई है। पढ़ने मे भी भ्रम हुआ है

"संवत् ११०३ वर्षे[1] माघ सुदी ९ बुधौ (धे) मूलसंघे भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेव शिष्य-देवेन्द्रकीर्ति पौरपाट अष्टशाखा आम्नाय सं० थणऊ भार्या पु तत्पुत्र सं० कालि भार्या आमिणि तत्पुत्र स० जैसिंघ भार्या महासिरि तत्पुत्र सं० .. ....''

इसी तरह का लेख देवगढ मे है[2] जिसका एक अंश हो यहाँ दिया जाता है।

"संवत् १४९३ शाके १३५८ वर्षे वैशाख वदि ५ गुरौ दिने मूलनक्षत्रे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री प्रभाचन्द्रदेवाः तच्छिष्य वादिवादीन्द्रभट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवास्तच्छिष्य श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवाः पौरपाटान्वये अष्टशाखे आहारदानदानेश्वर सिंघई लक्ष्मण तस्य भार्या अखयसिरिकुक्षिसमुत्पन्न अर्जुन ..।"

उक्त लेखो मे 'पौरपाट' के साथ 'अष्टशाखा' लिखा गया है और चूकि अठसखा परवार ही होते है, इससे सिद्ध होता है कि 'पौरपाट' 'परवार' जाति के ही लिए प्रयुक्त किया गया है।

अब एक और लेखांश देखिए जो पपौरा जी के भौहिरे के मन्दिर के दक्षिण पार्श्व के मन्दिर की एक प्रतिमा पर खुदा है।

... 'सवत् १७१८ वर्षे फाल्गुने मासे कृष्णपक्षे........श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री ६ धर्मकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री ६ पद्मकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारक श्री ६ सकलकीर्तिरुपदेशेनेयं प्रतिष्ठा कृता तद्गुरराद्योपाध्याय नेमिचन्द्रः पौरपट्टे अष्टशाखाश्रये धनामूले कासिल्ल गोत्रे साहु अधार भार्या लालमती . "[3]

---

१ यह सवत शायद १४९३ हो। प्रतिलिपि करने वाले ने गलत पढ लिया है, ऐसा जान पडता है।

२. यह लेख हमे बाबू नाथूरामजी सिं० की कृपा से प्राप्त हुआ है। इसकी नकल बहुत ही अशुद्ध की हुई है। पूरा लेख इसी ग्रन्थ के पृष्ठ १२१ पर द्रष्टव्य है।

३. साहु अधार के ही वश का स० १७०६ का एक लेख ललितपुर के क्षेत्रपाल के दक्षिण तरफ पार्श्वनाथ की खड्गासनस्थ मूर्ति पर खुदा है। उसमे भट्टारकों की परम्परा भी यही दी है, पर मूर और गोत्र नही है। सिर्फ 'पौरपट्टे अष्टशाखान्वये' लिखा है।

एक और लेख थूबोन जी की एक प्रतिमा पर इस प्रकार है :

"सं० (१६) ४५ माघसुदी ५ श्री मूलसंघे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० यशकीर्ति पट्टे भ० श्री ललितकीर्ति पट्टे भ० श्री धर्मकीर्ति उपदेशात् पौरपट्टे छितरामूर गोहिल गोत्र साधू दीनू भार्या …।"

इस तरह के और भी अनेक लेख है जिनमे मूर और गोत्र भी दिये हैं। इससे इस विषय मे कोई सन्देह नही रह जाता कि पौरपट्ट या पौरपाट[1] परवारों का ही पर्यायवाची है।

लगभग इसी समय का एक और लेख प्रानपुरा (चँदेरी) में षोडश-कारण यंत्र पर खुदा हुआ देखिए :

"संवत् १६८२ मार्गसिर वदि रवौ भ० ललितकीर्तिपट्टे भ० श्री धर्मकीर्ति गुरूपदेशात् परवार धनामूर सा० हठीले भार्या दमा (या) पुत्र दयाल भार्या केशरि पुत्र भोजे गरीबे भालदास भार्या सुभा ·।"

यह यंत्र भी उन्ही भट्टारक धर्मकीर्ति के उपदेश से स्थापित हुआ है जिन्होंने थूबोन की पूर्वोक्त प्रतिमा को प्रतिष्ठित कराई थी। पर उसमे तो 'पौरपट्ट' खुदा है और इसमे 'परवार'। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि पौरपट्ट और परवार एक ही है और यह लेख लिखनेवाले की इच्छा पर था कि वह चाहे पौरपट्ट या पौरपाट लिखे और चाहे परवार। अर्थात् परवार शब्द ही संस्कृत लेखों में 'पौरपट्ट' बन जाता था।

परवार और पोरवाड़ :

अब हमे यह देखना चाहिए कि इस 'पौरपाट' या 'पौरवाट' के के सम्बन्ध में अन्यत्र भी कुछ जानकारी मिलती है या नही। यह सोचते ही हमारा ध्यान सबसे पहले नाम-साम्य के कारण वैश्यों की एक और प्रसिद्ध जाति पोरवाड़ की ओर जाता है, जिसकी आबादी दक्षिण मारवाड़, सिरोही राज्य और गुजरात में काफी तादाद में है। कुछ लेखों और ग्रन्थों में इसे भी परवार जाति के समान पोरवाट या पौरपाट कहा गया है, जैसे :

---

१. 'वाट' या 'वाटक' और 'पाट' या 'पाटक' शब्द भौगोलिक नामों के साथ विभाग के अर्थ मे प्रयुक्त होते है। 'वाट' से ही 'वार' हो जाता है। इसके लिये देखो स्व० रा० ब० हीरालाल कृत इन्सक्रिप्शन्स आफ सी० पी० एण्ड बरार, पृष्ठ २४ और ८७।

श्रीमाली उसपालाश्च पौरवाटाश्च नागराः ।
दिक्पालाः गुर्जराः मोढ़ाः ये वायुवटवासिनः ॥
—वायुपुराण[1]

इसमे वायुवट अर्थात् वायड (पाटण के समीप) में रहने वाली वैश्य-जातियों के नाम बतलाये है—श्रीमाली, उसपाल (ओसवाल), पौरवाट (पोरवाड़), नागर, दिक्पाल (डीसावाल या दीसावाल), गुर्जर और मोढ़ ।

यह बात विद्वानो ने मान ली है कि गुजरात की 'पौरवाट' जाति पोरवाड़ ही है। वहाँ के पोरवाड़ भी अपने को 'पोरपाट' या 'पौरवाट' मानते हैं।

ऐसी दशा मे यदि यह अनुमान किया जाय कि पोरवाड़ और परवार मूल मे एक ही थे तो वह अयुक्त न होगा। और यह सिद्ध हो जाने पर कि 'पोरवाड़' और 'परवार' एक ही है, 'पोरवाड़ों' का इतिहास एक तरह से परवारो का ही इतिहास हो जाता है और पोरवाड़ों की उत्पत्ति जहां से हुई है वहाँ से ही परवारो की उत्पत्ति सिद्ध हो जाती है। अब हम यह देखेंगे कि विद्वानों का पोरवाड़ों की उत्पत्ति के विषय मे क्या कहना है।

परवारों और पोरवाड़ों का मूल स्थान :

पोरवाड़ो का पुराना नाम 'पौरपाट' 'पोरवाट' और 'प्राग्वाट' मिलता है। इस सम्बन्ध मे सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय पं० गौरीशकर हीराचद ओझा अपने 'राजपूताने का इतिहास' की पहली जिल्द में लिखते है—

"करनबेल (जबलपुर के निकट) के एक शिलालेख में प्रसंगवशात् मेवाड़ के गुहिलवंशी[2] राजा हंसपाल, वैरिसिंह और विजयसिंह का

१. यह उद्धरण श्री मणिलाल बकोरभाई व्यास लिखित श्रीमाली-ओना 'ज्ञातिभेद' नामक पुस्तक पर से लिया गया है।

२. प्राग्वाट प्रदेश के गुहिलवशी राजाओ के सबध मे यह विचारणीय है कि परवार जाति का मूल निवास प्राग्वाट क्षेत्र माना गया है और परवारो मे "गोहिल्ल" एक गोत्र है। यह भी रेखाकित करने योग्य है कि "करनवेल" जबलपुर (म० प्र०) के निकट है, जहाँ परवार समाज के हजारो घर आज भी हैं।

—पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री

वर्णन आया है, जिसमें उनको 'प्राग्वाट्' का राजा कहा है। अतएव 'प्राग्वाट' मेवाड़ का ही दूसरा नाम होना चाहिए। संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में 'पोरवाड़' महाजनों के लिए 'प्राग्वाट' नाम का प्रयोग मिलता है और वे लोग अपना निकास मेवाड़ के 'पुर' नामक कस्बे से बतलाते हैं, जिससे सम्भव है कि प्राग्वाट देश के नाम पर वे अपने को प्राग्वाटवंशी कहते रहे हों।'

हम विभिन्न प्रतिमा-लेखों से ऊपर सिद्ध कर चुके है कि 'परवार' शब्द में जो 'वार' प्रत्यय है वह 'वाट' या 'पाट' शब्द से बना है जिसका प्रचलित अर्थ होता है 'रहने वाले'। इस तरह 'पौरपाट' शब्द का अर्थ 'पौर के रहने वाले' होता है। मेरे ख्याल से इसी पुर नाम से 'पौर' बन गया है और परवार और पोरवाड़ लोग मूल मे इसी 'पुर' के रहने वाले थे। 'पौरपाट' का अर्थ 'पुर की तरफ के' भी लिया जा सकता है। 'पुर' गाँव जिसका कि ऊपर जिक्र है अब भी मेवाड़ मे भीलवाड़े के पास एक कस्बा है जो किसी समय बड़ा नगर था।

कभी-कभी शब्दों के दुहरे रूप भी बना लिये जाते है जैसे 'नीति' शब्द से "नैतिकता'। 'नीति' से 'नैतिक' बना और फिर उसमें भी 'ता' जोड़कर 'नैतिकता' बनाया गया, यद्यपि 'नीति' और 'नैतिकता' के अर्थ एक ही है। इसी तरह मालूम होता है 'पुर' से भी 'पौर' बनाकर उसमे 'वाट' या 'पाट' लगा लिया गया जबकि 'पुर' के आगे 'वाट' या 'पाट' लगा देने से भी काम चल सकता था।

पर यदि 'पुर' का पौर न कर सीधा ही उसमे 'वाट' या 'पाट' प्रत्यय जोड़ दें तो 'पुरवाट' 'पुरवाड़' या 'पुरवार' शब्द बनता है जो 'परवार' शब्द के अधिक निकट है। संभव है 'परवार' लोग अपने 'पोरवाड़' कहलाने वाले भाइयों से पहले ही मेवाड़ छोड़ चुके हों, पर बाद मे बहुत दिनों तक सम्बन्ध बना रहा हो और तब जिस तरह लेखों में पोरवाड़ 'पौरपाट' लिखे जाते रहे हो उसी तरह इन्हे भी 'पोरपाट' लिखा जाता रहा हो। पर बोलचाल में 'पुरवार' या 'परवार' ही बने रहे हों।

इसके सिवाय एक संभावना और भी है। वह यह कि गुजराती और राजस्थानी भाषाओं में शब्द के शुरु और बीच का 'उ' कार 'ओ'

कार में बदल जाता है। अक्सर लोग 'बहुत' का उच्चारण बहोत 'लुहार' का 'लोहार' 'सुपारी' का 'सोपारी' 'मुहर' का 'मोहर' 'गुड़' का 'गोड़' 'पुर' का 'पोर' करते है और लिखते भी है। इस तरह सहज में ही उस तरफ के लोग 'पुरवार' या 'पुरवाट' को 'पोरवार' 'पोरवाट' या 'पोरवाड़' उच्चारण करने लगे हों और एक ही जाति इस तरह दो बन गई हो। कुछ भी हो पर यह बात निश्चित है कि 'पौरपाट' शब्द जब बना तब वह 'पोरवाड़' का ही संस्कृत रूप माना गया।

'वैश्यवंशविभूषण' नामक पुस्तक मे जो बहुत पहले एंग्लो ओरियण्टल प्रेस लखनऊ से छपी थी उसमें परवारों का नाम 'पुरवार' छपा है। इससे मालूम होता है कि परवारों के लिए 'पुरवार' शब्द भी व्यवहृत होता था।

परवार जाति का मूल राजस्थान मे है, यह बात सुनने में कुछ लोगो को भले ही विचित्र मालूम हो, पर जातियों के इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि वैश्यों की करीब-करीब सभी जातियाँ राजस्थान से ही निकली है। उदाहरणार्थ बघेरवालो का मूलस्थान 'बघेरा' साँभर के आस-पास था।[1] पर बघेरवाल आजकल बरार मे ही अधिक है। पल्लीवालो का मूलस्थान 'पाली' मारवाड़ मे है जो अब यू० पी० के अनेक जिलो मे फैले हुए है। इसी तरह श्रीमाल, ओसवाल, मेडतवाल, चित्तोडा आदि जातिया है जिनके मूलस्थान राजस्थान मे निश्चित है।[2]

१. प० आशाधरजी बघेरवाल थे। वे माडलगढ मे पैदा हुए और शहाबुद्दीन गोरी के आक्रमणो से त्रस्त होकर बहुत लोगो के साथ मालवे मे आ बसे थे। देखो मेरी विद्वद्रत्नमाला का पृ० ९२-९३। पूर्वकाल मे इसी तरह के कारणो से जातियाँ बन जाती थीं।

२. इनमे 'नेमा' और 'गोलालारे' जातियो को भी शामिल किया जा सकता है। मालवा और सी० पी० मे 'नेमा' वैष्णव और जैन दोनो है। बरार मे ये 'नेवा' कहलाते है और श्वेताबर जैन डायरेक्टरी के अनुसार १९०८ मे गुजरात मे इनकी संख्या ११०२ थी। सिर्फ बागड मे इनके कई हजार घर हैं। सूरत जिले मे और उसके आस-पास एक 'गोलाराणे' नाम की जाति आबाद है जिसके बारे में मेरा अनुमान है कि यही बुन्देलखड मे आकर 'गोलालारे' कहलाने लगी है। ये लोग अपने को क्षत्रिय बताते

ऐसी दशा में परवारों का भी मूलस्थान मेवाड़ में होना संभव है। आज भी अपने देश को छोड़कर दुनियाँ भर में व्यापार निमित्त जाने की जितनी प्रवृत्ति राजस्थानी और मारवाड़ी लोगों मे है उतनी और किसी मे नहीं।

पोरवाड़ों की उत्पत्ति के सम्बन्ध की कथाएँ और गलत धारणायें :

प्राग्वाट और पोरवाड़ों की उत्पति के सम्बन्ध मे अनेक कल्पित कथायें **'श्रीमालीपुराण'** और **'विमल-प्रबन्ध'** आदि ग्रन्थों में मिलती हैं। परन्तु वे सब शब्दों के अर्थ पर से ही गढ़ी गई जान पड़ती है। जब लोग किसी जाति के मूल इतिहास को भूल जाते हैं, तब कुछ न कुछ कहने के लिए संभव-असंभव कथायें रच डालते है। उन्हे क्या पता कि मेवाड़ का एक नाम प्राग्वाट भी था और वहाँ कोई 'पुर' नामक नगर था। उदाहरण के लिये एक कथा देखिये—

जब लक्ष्मीजी को श्रीमाल नगर की समृद्धि की चिता हुई, तब विष्णु भगवान् ने उनके मन की बात जानकर ९० हजार वणिकों को श्रीमाल नगर मे दाखिल किया। तब उनमे से जो पूर्व दिशा मे बसे, वे प्राग्वाट कहलाये। 'प्राग्' का अर्थ पूर्व होता है और वाट का दिशा-स्थान आदि। बस शब्दार्थ में से ही कथा बन गई।

गरज यह कि इस तरह की कथाओं पर विश्वास नहीं करना चाहिए। प्रायः सभी जातियों के सम्बन्ध मे इस तरह की अद्भुत-अद्भुत कथायें प्रचलित है।[1]

है और वैश्य है। **जैन-धातु-प्रतिमा-लेख-संग्रह'** नामक पुस्तक के पहले भाग के ५० न० के एक लेख मे एक प्रतिमा के स्थापक को **'गोलाबास्तव्य'** लिखा है, जिससे मालूम होता है कि 'गोला' नाम का कोई नगर था, जिसमे से गोलापूरब, गोलालारे और गोल-सिंघाड़े—ये तीनो ही समय-समय पर निकले होगे।

१. चौलुक्य या सोलकी राजवश के विषय मे भी ऐसी ही एक कथा शब्द पर से गढी गई है। 'चुलुक' का अर्थ होता है—चुल्लू। ब्रह्मा जी या किसी देवता ने चुल्लू भर पानी डालकर जिला दिया, बस उसी से चौलुक्य वश उत्पन्न हो गया।

'महाजन-वंश-मुक्तावली' के लेखक यति रामलाल जी ने और **'जैन-सम्प्रदाय-शिक्षा'** के लेखक यति श्रीपाल जी ने पोरवाड़ों का मूल-स्थान 'पारेवा' या 'पारा' नगर बतलाया है, मगर वह कहाँ पर है इसका कुछ पता नही दिया। संभव यही है कि 'पुर' कसबा ही बिगड़कर 'पारा' या 'पारेवा' बन गया हो।

मेवाड़ से बाहर फैलाव :

जातियों के एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के अनेक कारण होते है। उनमे मुख्य है आर्थिक कारण। अक्सर प्राचीन समृद्धि नगर राजनीतिक उथलपुथलो से, आक्रमणकारियों के उपद्रवो से और प्रकृति-प्रकोप से उजड जाते है। जहाँ जीविका के साधन नही रहते तब जातियाँ वहाँ से उठकर दूसरे समृद्धिशाली नगरो या प्रांतों में चली जाती है। वर्तमान स्थान की अपेक्षा दूसरे स्थानों मे लाभ की अधिक आशा से भी गमन होता है। अक्सर प्रतापी राजा नये नगर बसाते हैं और उनमे पुरुषार्थियो को बुलाकर बसाते हैं। ऐसे ही किसी कारण से पोरवाड या परवार जाति ने मेवाड़ से बाहर कदम रक्खा होगा। जहाँ जहाँ जाकर ये बसे वहाँ वहाँ इन्होंने अपना परिचय प्राग्वाट या पोरवाड़ विशेषण के साथ दिया और तभी से ये इस नाम से प्रसिद्ध हुए।

पद्मावती-पुरवार परवारों की एक शाखा :

ऐसा जान पड़ता है कि प्राग्वाटों या पोरवाड़ों का एक दल पद्मावती नगरी मे भी आकर बसा था। पीछे जब यह महानगरी ऊजड़ हो गई, और इस कारण उसे वहाँ से अन्यत्र जाना पड़ा तब उस दल का नाम 'पद्मावती पोरवाड़' या 'पद्मावती पुरवार' हुआ।

पद्मावती किसी समय बड़ी ही समृद्धिशाली नगरी थी। खजुराहा के एक शिलालेख मे[1] जो ईस्वी सन् १००१ का है, इसकी समृद्धि की अत्यन्त प्रशंसा की गई है। उसे ऊँचे गगनचुम्बी भवनों से सुशोभित अनुपम नगर बतलाया है, जिसके राजमार्गों में बड़े-बड़े घोड़े दौड़ते हैं, और जिसकी दीवारें चमकती हुईं, स्वच्छ, शुभ्र और आकाश से बातें करती है।

---

१. देखो—इंडियन एण्टिक्वेरी, पहला खंड, पृ० १४९।

ग्वालियर राज्य का 'पदम पवांया' नामक स्थान प्राचीन पद्मावती के स्थान पर बसा हुआ है,[1] यह बहुत समय तक नाग-राजाओं की राजधानी रहा है।

'पद्मावती पोरवाड़' परवारों की ही एक शाखा है, इस बात का प्रमाण पं० बखतराम जी कृत **'बुद्धिविलास'** नामक ग्रन्थ के **'श्रावकोत्पत्ति-प्रकरण'** में भी मिलता है।[2]

सात खाँप परवार कहावें, तिनके तुमकों नाम सुनावें।
अठसक्खा फुनि हैं चौसक्खा सेंहसक्खा फुनि हैं दोसक्खा।
सोरठिया अरु गाँगज जानौ, पदमावतिया सप्तम जानौ।

अर्थात् परवार सात खाँप के हैं—१. अठसखा, २. चौसखा, ३. छहसखा, ४. दोसखा, ५. सोरठिया, ६. गांगज और ७. पदमावतिया। इनमें से पहले चार तो परवारों के प्रसिद्ध भेद है ही जिनमे से अब केवल अठसखा और चौसखा रह गये हैं और पदमावतिया से मतलब पद्मावती पोरवाड़ से है जो इस समय एक जुदी जाति है।[3] परवारों से दूर पड़ जाने के कारण ही कालान्तर मे इसका परवार सम्बन्ध टूट गया होगा।

---

१. झाँसी-आगरा लाइन पर डबरा स्टेशन से कुछ दूर पर ग्वालियर राज्य में।

२. मेरे मित्र तात्या नेमिनाथ पागल ने बहुत बरस पहिले बारसी टाउन के जैन मन्दिर से लेकर भेजा था। उस समय मैंने एक नोट भी जैनहितैषी (भाग ६, अंक ११-१२) मे प्रकाशित किया था। इस समय यह ग्रन्थ मेरे सम्मुख नही है। इसलिए मह नही कह सकता कि ग्रन्थ किस समय का बना हुआ है।

३. दि० जैन डिरेक्टरी के अनुसार पद्मावती पोरवाड़ों की जनसख्या ११५९१ थी। इनका एक जत्था सौ-दो सौ वर्ष पहले शायद बघेरवालो के ही साथ बराबर मे जा बसा था जो भाषा-वेष आदि मे बिलकुल दक्षिणी हो गया था, इससे उत्तरभारत वालो का इनके साथ विवाह-संबंध टूट गया था; जो अब जारी किया गया है।

पद्मावती पोरवाड़ों मे जिस तरह 'पाँड़े' हुआ करते है उसी तरह परवारों मे भी है। पहिले शायद इनसे वही काम लिया जाता था, जो अन्य जैनेतर जातियों मे ब्राह्मणों से लिया जाता है।[१]

परवारों के मूल-गोत्रों में भी 'बाझल्ल' गोत्र का एक मूर 'पद्मावती' नाम का है[२] जान पड़ता है इस मूर के लोग ही दूर चले जाने पर एक स्वतन्त्र जाति के रूप मे परिणत हो गए होंगे। जो थोड़े लोग परवारों के साथ रह गये, वे पद्मावती मूर वाले कहलाते है। जैसा कि ऊपर कहा है, यह नाम पद्मावती नगरी के नाम से ही पड़ा होगा।

जातियो के इतिहास मे ऐसी बहुत-सी जातियाँ है जो पहले एक बडी जाति के अन्तर्भूत गोत्र रूप मे थी और फिर पीछे एक अलग जाति बन गई।

सोरठिया परवार :

'सोरठिया पोरवाड़' नामकी जाति गुजरात मे है। सोरठ मे बसने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। इस जाति मे जैन और वैष्णव दोनो धर्मों के अनुयायी है। इन्हे परवारो की एक खाँप बतलाया है और इस तरफ ये पोरवाड़ ही माने जाते है, इससे भी परवार और पोरवाड़ पर्यायवाची मालूम होते है।

जाँगड़ा परवार :

अब शेष रहे 'गागज', सो मेरा ख्याल है कि लिखने वाले की भूल से यह नाम अशुद्ध लिख गया है। संभवतः यह 'जाँगड़' होगा जो 'जाँगडा पोरवाड़ो' के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जाँगडा पोरवाड वैष्णव और जैन दोनो है। चम्बल नदी की छाया मे रामपुरा, मन्दसोर, मालवा तथा होल्कर राज्य मे वैष्णव जाँगड़ा और बड़वाहा नीमाड के आस-पास तथा कुछ बरार मे जैन जाँगड़ा रहते है, जो सिर्फ दिगम्बर सम्प्रदाय के ही अनुयायी है।

---

१. हमारे गाँव मे एक पाँडे परिवार है, अमरावती में भी एक पाँड़े हैं। अन्यत्र भी इनके घर होंगे।

२. एक सूची मे कोसल्ल गोत्र का मूर भी पद्मावती लिखा है, कोसल्ल गोत्र के एक मूर का नाम 'पद्मावती डिम' भी है।

जाधपुर राज्य का उत्तरी भाग जिसमे नागौर आदि परगने हैं 'जांगड़ देश' कहलाता था। शायद इसी कारण से ये जांगड़ा कहलाये होगे और मेवाड़ से निकल कर पहले उधर बसे होंगे।

इनका रहन-सहन और आचार-विचार परवार जाति से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। दूसरों के हाथ से खाने-पीने का इन्हें भी बड़ा परहेज है। रंगरूप मे भी ये परवारो के समान है।

बुन्देलखण्डी और गढ़ावाल :

परवारों का सबसे पिछला भेद बुन्देलखण्डी और गढावाल है, जो पृथक् जाति के रूप में परिणत न हो सका। पर इससे यह पता लगता है कि महाकौशल में जबलपुर, नरसिंगपुर, सिवनी आदि की तरफ परवार दो स्थानों से जाकर आबाद हुए हैं। जो सीधे बुन्देलखण्ड से आये वे बुन्देलखण्डी और जो गढ़ा (जबलपुर के पास) से आये वे गढ़ा-वाले। गढा पहले समृद्धिशाली नगर था। उसके उजड़ जाने पर इन्हें नीचे की तरफ आना पड़ा होगा।

'बुन्देलखण्डी' और 'गढ़ावाले' यह भेद परवारों की पड़ौसी गहोई जाति में भी है। वैश्य होने के कारण यह जाति भी साथ-साथ ही नई जगहों मे आबाद हुई होगी। गहोइयों मे इन दोनो दलों मे बेटी व्यवहार तक बन्द हो गया था, जो बड़े आन्दोलन के बाद अब जारी हुआ है।

परवारों और पोरवाड़ों के बाकी उपभेद :

परवारों की सात खांपे ऊपर बतलाई जा चुकी है। उनमे से दोसखे-छहसखे समाप्त होकर दो खांपे—अठसखा और चौसखा रह गयी हैं। चौसखे भी अब अठसखों में मिल रहे है।[1] तारनपंथी समैया उपजाति

---

१. श्री मणिलाल बकोर भाई व्यास के पास सवत् १७०० के आस-पास का लिखा हुआ एक 'पाना' है जिसमे राजोर जाति के १. बड़ी सखा, २. लहुड़ी सखा, ३. चउसखा, ४. द्विसखा, और ५. राजसखा—ये पाँच अन्तर्भेद बतलाये है। 'जैन-सम्प्रदाय-शिक्षा' के अनुसार इस जाति का उत्पत्ति-स्थान 'राजपुर' बतलाया है। पूर्वकाल में परवार जाति से इस जाति का भी कुछ सम्बन्ध था? कहीं 'पुर' का ही दूसरा नाम 'राजपुर' न हो?

का जिक्र ऊपर किया जा चुका है। इसका सम्बन्ध भी अब परवारों से होने लगा है और अब सिर्फ एक पन्थ के रूप में ही इसका अस्तित्व रह गया है।

हाँ, परवारों मे दस्से भी है जो 'बिनैकया' कहलाते हैं। उनमें भी नये और पुराने ये दो भेद है। पुराने बिनैकया वैसे ही है जैसे श्रीमाली, हूमड़ आदि जातियों में दस्सा हैं, अर्थात् उनमें विधवा-विवाह नहीं होता और पहले कभी हुआ था, इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। नये बिनैकयों से भी इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।[1] पुराने बिनैकया कहीं-कहीं अपने को 'जैसवार' भी कहलाने लगे है, पर वास्तव मे जैसवारों से उनका कोई सम्बन्ध नही है। एक दल ऐसा भी है जो अपने को चौसखा परवार कहता है। जान पड़ता है कि पंचायती दण्ड विधान की सख्ती और प्रायश्चित्त देकर शुद्ध करने की बन्दी ही बिनैकयों की उत्पत्ति के लिए जिम्मेवार है। पुराने बिनैकयों के विषय मे तो हमारा ख्याल है कि किसी समय किसी हुकुम-उदूली आदि के अपराध मे ही ये अलग किये गये होंगे और फिर अल्पसंख्यक होने के कारण लाचारी से इन्हें अपने मूर गोत्रों को अलग रख देना पड़ा होगा।

पोरवाड़ों के तीन भेद हैं—शुद्ध पोरवाड़, सोरठिया पोरवाड़, और कंडुल या कपोल।[2]

फिर इन सबमे गुजरात और राजपूताने की अन्य जातियों के समान बीसा और दस्सा—ये दो मुख्य भेद और है। प्राचीन लेखों में 'बृहत्शाखा' और 'लघुशाखा' नाम से इनका उल्लेख मिलता है। परन्तु दस्सा कहला

---

१. दिगम्बर जैन डिरेक्टरी (सन् १९१४) के अनुसार बिनैकया परवारो की संख्या ३६८५ और चौसखो की १२७७ थी।

२. ततो राजप्रसादात्समीपपुरनिवासतो वणिज. प्राग्वाटनामानो बभूवुः। तेषा भेदत्रयम्। आदौ शुद्ध प्राग्वाटाः। द्वितीयाः सुराष्ट्रं गता। केचित्सौराष्ट्रप्राग्वाटाः। तदवशिष्टाः कंडुल महास्थान निवासिताऽपि कडुल प्राग्वाटा बभूवुः।

—'श्रीमालीओनो ज्ञातिभेद' के १०७ वे पेज का ज्यो का त्यों उद्धरण।

कर भी इनमें विधवा-विवाह की चाल नहीं है और पहले भी थी, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है।[1]

धर्मों के कारण पड़े हुए पोरवाड़ों के उक्त भेदों के दो-दो भेद और हैं, जैन और वैष्णव। जैनों में भी मूर्तिपूजक और स्थानकवासी हैं।

इनके सिवाय सूरती, खंभाती, कपड़बंजी, अहमदाबादी, मांगरोली, भावनगरी, कच्छी आदि स्थानीय भेद हो गये है और इससे बेटी व्यवहार मे बड़ी मुसीबतें खड़ी हो गई है। क्योंकि[2] ये सब अपने अपने स्थानीय गिरोहो में ही विवाह-सम्बन्ध करते हैं।

ऐसा जान पड़ता हैं कि पोरवाड़ जाति पहले दिगम्बर सम्प्रदाय को ही मानने वाली थी। **नेमिनिर्वाण** दिगम्बर सम्प्रदाय का श्रेष्ठ काव्य है। उसके कर्त्ता पं० वाग्भट अहिच्छत्रपुर मे उत्पन्न हुए थे। अहिच्छत्र-पुर नागौर (मारवाड़) का प्राचीन नाम था।[3] गुजरातादि में श्वेताम्बर

---

१. कई प्रबन्धों और पुस्तको मे लिखा है कि आबू के ससार प्रसिद्ध जैन मन्दिर बनवाने वाले महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल की माता बाल-विधवा थी। ये दोनो पुत्र उन्हे पुनर्विवाह से प्राप्त हुए थे। इस बात को कोई जानता न था। पुत्रो की ओर से एक बार तमाम वैश्य जातियों को महाभोज दिया जा रहा था कि यह बात किसी जानकार की तरफ से प्रकट कर दी गयी। तब जो लोग भोज मे शामिल रहे वे दस्सा कहलाये और जो उठकर चले गये वे बीसा। कहा जाता है कि उसी समय तमाम जाति मे दस्सा-बीसा की ये दो-दो तडें हो गयी।

२ श्वेताबर जैन डिरैक्टरी के अनुसार बीसा पोरवाड़ो की संख्या १९०१० और दस्सा पोरवाड़ो की ६२८१ थी और बम्बई अहाते की सन् १९११ की सरकारी मनुष्य गणना के अनुसार वैष्णव पोरवाड़ों की सख्या ७७४८ थी। सोरठिया वैष्णव इनसे अलग ११४४६ थे।

३. अहिच्छत्रपुरोत्पन्नः प्राग्वाटकुलशालिनः।
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कवि.॥

श्री ओझाजी के अनुसार अहिच्छत्रपुर नागौर का प्राचीन नाम था। बरेली जिले का रामनगर भी अहिच्छत्र कहलाता है, जो प्राचीन तीर्थ है। परन्तु वाग्भट नागौर में ही उत्पन्न हुए होंगे, ऐसा जान पड़ता है।

सम्प्रदाय का प्राधान्य था, इसलिए वहाँ पोरवाड़ श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी रहे और मालवा-बुन्देलखण्ड आदि में दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रधानता थी इससे परवार और जाँगड़ा पोरवाड़ दिगम्बर रहे। जातियों में धर्म परिवर्तन और सम्प्रदाय परिवर्तन भी अक्सर होते रहे हैं।

परवार तथा अन्य जातियों की उत्पत्ति का समय :

अब सवाल यह उठता है कि परवार जाति की उत्पत्ति कब हुई? इसका निर्णय करने के लिए यह जानना जरूरी है कि अन्य जातियाँ कब पैदा हुईं? अन्य जातियों की उत्पत्ति का जो समय है लगभग वही समय परवार जाति की उत्पत्ति का भी होगा। इसके लिए पहले उपलब्ध सामग्री की छानबीन की जानी चाहिए।

भगवज्जिनसेन का **आदिपुराण** विक्रम की दशवी शताब्दी का ग्रन्थ है। उसमे वर्ण व्यवस्था की खूब विस्तार से चर्चा की गई है, परन्तु वर्तमान जातियों का वह कोई जिक्र नही करता। जैनों का कथा-साहित्य बहुत विशाल है। उसमे पौराणिक और ऐतिहासिक स्त्री-पुरुषो की कथाएँ लिखी गई है, परन्तु उसमे भी कही कोई पात्र ऐसा नही मिलता जो इनमें से किसी जाति का हो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नाम मे ही सब पात्र परिचित किये गये है। इससे मालूम होता है कि उक्त कथा-साहित्य जिस समय अपने मौलिक रूप में लिखा गया था, उस समय ये जातियाँ थी ही नहीं।

जैन साहित्य में जाति का सबसे पहला उल्लेख :

आचार्य अनन्तवीर्य ने अपनी **'प्रमेयरत्नमाला'** हीरप नामक सज्जन के अनुरोध से बनाई थी। इन हीरप के पिता को उन्होने 'बदरीपाल' वंश का सूर्य कहा है।[1] यह कोई वैश्य जाति ही मालूम होती है। अनन्तवीर्य का समय विक्रम की दशवी शताब्दी है। जहाँ तक हम

१. 'बदरीपालवशालिव्योमद्युमणिरूर्जितः'।

वर्तमान जातियो की सूची मे हमे इस जाति का नाम नही मिला। या तो यह लुप्त हो गई है या कुछ नामान्तर हो गया है।

जानते हैं, जैन साहित्य में जाति का यही पहला उल्लेख है। दूसरा उल्लेख महाराजा भीमदेव सोलंकी के सेनापति और आबू के आदिनाथ के मन्दिर के निर्माता विमलशाह पोरवाड़ का वि० सं० १०८८ का है। इनकी वंशावली मे इनके पहले की भी तीन पीढ़ियों का उल्लेख है। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिये २०-२५ वर्ष रख लिये जाँय तो यह समय वि० सं० १०२० के लगभग तक पहुँचेगा।

जैन प्रतिमा-लेखों में प्राय: प्रतिमा स्थापित करने वालों का परिचय रहता है। दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रतिमाओं के तो अब तक बहुत ही कम लेख प्रकाशित हुए है।[1]

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्वानों ने अवश्य ही इस ओर बहुत ध्यान दिया है। उनके प्रकाशित किये हुए कई हजार लेखों को मैंने देखा है, परन्तु उनमें भी कोई लेख ग्यारहवी शताब्दी के पहले का ऐसा नही मिला जिसमें किसी जाति का उल्लेख हो।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान जातियाँ नौवीं-दशवी शताब्दी मे पैदा हुई होना चाहिए।[2] और यही समय परवार जाति की उत्पत्ति का भी होगा।[3]

---

१. जहाँ तक हम जानते हैं बाबू कामताप्रसाद जी का एक छोटासा सग्रह और प्रो० हीरालाल जी का जैनलेख-संग्रह प्रकाशित हुए है। पहले मे मैनपुरी, एटा आदि के मन्दिरों की प्रतिमाओं के लेख हैं और पिछले में श्रवणबेलगोला और उसके समीप के ही लेख हैं।

२. नौवी-दशवी शताब्दी मे वर्तमान जातियाँ पैदा हुई यह सभावना सही नही है। क्योंकि साढौरा (म० प्रा०) की जैन प्रतिमा मे वि० स० ६१० का लेख है और उसमें "पौरपाटान्वय" (परवार-जाति) का उल्लेख है। अभी भी यह सभावना की जा सकती है कि इससे भी प्राचीन प्रतिमा लेख हो! (साढोरा के प्रतिमालेख के लिये इसी ग्रन्थ का पृष्ठ ११४ द्रष्टव्य है।)

—पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री,

३. स्वर्गीय इतिहासज्ञ पं० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने 'मध्य-युगीन भारत' मे लिखा है कि विक्रम की आठवी शताब्दी तक ब्राह्मणों और क्षत्रियों के समान वैश्यों की सारे भारत मे एक ही जाति थी।

जातियोंकी उत्पत्तिके पहलेकी सामाजिक अवस्था—गोष्ठियाँ :

ग्यारहवीं सदी के कई लेख ऐसे मिले हैं जिनमें मन्दिरों या प्रतिमाओं के स्थापित करने वालों को या तो केवल 'श्रावक' विशेषण दिया गया है या गोष्ठिक। इसीसे ऐसा मालूम होता है कि जातियाँ निर्माण होने के पहले गोष्ठियाँ थीं जिन्हें हम संघ, या जत्थे कह सकते हैं।

सिरोह राज्य के कायन्द्रागाँव के श्वेताम्बर जैन मन्दिर की एक देवकुलिका पर वि० सं० १०९१ का एक लेख है, जिसमें उसके निर्माता को **भिल्लमालनिर्यातः प्राग्वाटवणिजांवरः** अर्थात् भिल्लमाल से निकला हुआ प्राग्वाट वणिकों में श्रेष्ठ कहा है।[1] एक और शिलालेख दुबकुण्ड (ग्वालियर) गाँव में सं० ११४५ का है।[2] जिसमे वहाँ के दिगम्बर जैन मन्दिर के निर्माता को 'जायसपूर्वविनिर्गतवणिग्वंश' का सूर्य कहा है। इसका अर्थ होता है पूर्व में जायस से निकले हुए वैश्य वंश का प्रसिद्ध पुरुष। यह वह समय मालूम होता है जब जातियों को नाम प्राप्त हो रहा था अर्थात् उनके संघों या जत्थों को उनके निकास के स्थान के नाम से अभिहित किया जाने लगा था।

दक्षिण महाराष्ट्र और उसमे और नीचे के भाग के जैन धर्मानुयायियों में तो उत्तर भारत के समान जाति-संस्था का विस्तार शायद हुआ ही नहीं। जैन शिलालेख संग्रह के शक सं० १०४२ के नं० ४९ (१२९) में चामुण्ड नामक राजमान्यवणिक् की पत्नी देवमती के समाधिमरण का उल्लेख है। उसमे किसी जाति का निर्देश नही। शक १०५९ के लेख नम्बर ६८ (१५९) मे चट्टिकब्बे नामक स्त्री ने अपने पति मल्लिसेट्टि की निषद्या बनवाई। इसी तरह नं० ७८ (१८२), ८१ (१८६), ९२ (२४२), ३२९ (१३७) के भी लेख हैं जिनमें सबको सेट्टि (श्रेष्ठि) या व्यापारी ही लिखा है। इनसे यह स्पष्ट है कि निदान विक्रम की १३वी शताब्दी तक कर्नाटक में वैश्यों की विविध जातियाँ नही थी।

असगकवि का **महावीर चरित** सं० ९१० (शायद शक संवत्) चोल देश की बिरला नगरी मे बना है। असग ने अपने पिता पटुमति को केवल

---

१. मुनि श्री जिनविजय जी सम्पादित 'प्राचीन-जैन लेखसंग्रह' के द्वितीय भाग का ४२७वे नम्बर का लेख।

२. एपिग्राफिआ इडिका, जिल्द २, पृ० २३७-४०।

श्रावक लिखा है। अर्थात् चोल देश में भी विक्रम की ग्यारहवीं सदी तक भी वैश्यों की वर्तमान जातियाँ नहीं थीं।

स्थानों पर से जातियाँ बन जाने पर जब उनका और फैलाव हुआ वे दूर-दूर तक फैल गयीं, तब यह भी लिखा जाने लगा कि अमुक जाति का अमुक स्थान में उत्पन्न हुआ या रहने वाला। जिस तरह **नेमिनिर्वाण** के कर्त्ता वाग्भट ने अपने को 'अहिच्छत्रपुरोत्पन्नः प्राग्वाटकुलशालिनः' लिखा है। अथवा गिरनारपर्वत के नेमिनाथ मन्दिर की सं० १२८८ की प्रशस्ति में वस्तुपाल-तेजपाल को 'अणहिल्लपुर वास्तव्य-प्राग्वाटान्वय प्रसूत' लिखा है। अर्थात् अणहिलपुर के निवासी प्राग्वाट जाति के। इसके बाद और आगे चलकर जातियों के गोत्रादि भी लिखे जाने लगे।

जातियों की उत्पत्ति के समय के बारे में अन्यमतों का खण्डन :

चौदहवी सदी के भट्टारक इन्द्रनन्दि ने अपने **नीतिसार** मे लिखा है कि विक्रमादित्य और भद्रबाहु के स्वर्गगत होने पर जब प्रजा स्वच्छन्द-चारिणी हो गयी तब जातिसंकरता से डरनेवाले महर्द्धिकों ने सबके उपकार के लिए ग्रामादि के नाम ये जातियाँ बनायी[1], परन्तु इसके लिए कोई विश्वास योग्य प्रमाण नही है। विक्रम या भद्रबाहु का समय भी एक नहीं है। इसके सिवाय जातियों का संकर न हो जाय अर्थात् मिश्रण न हो जाय, इसका अर्थ भी कुछ समझ में नहीं आता है। जाति संकरता का अर्थ यदि वर्णसंकरता है तब तो प्राचीन जैनधर्म इसका विरोधी नही था, क्योंकि भगवज्जिनसेन अपने **आदिपुराण** मे अनुलोम विवाहों का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करते हैं।[2] और अनुलोम-विवाहों से अर्थात् ऊपर के वर्ण वालों के नीचे की वर्ण की कन्या के साथ सम्बन्ध होने से वर्णसंकरता होती ही है और यदि 'जाति-संकरता' में जाति का अर्थ वर्तमान जातियाँ हैं, तो वे तो इन्द्रनन्दि के कथनानुसार उस समय थीं ही नहीं। **आदिपुराण** के मत से तो वर्णसंकरता का अर्थ वृत्ति या

---

१. स्वर्गे गते विक्रमार्कें भद्रबाहौ च योगिनि।
प्रजाः स्वच्छन्दचारिण्यो बभूवुः पापमोहिताः ॥
तदा सर्वोपकाराय जातिसकरभीरुभिः।
महर्द्धिकैः पर चक्रे ग्रामाद्यभिधया कुलम् ॥ नीतिसार।

२. आदिपुराण, पर्व १६, श्लोक २४७।

पेशे को बदलना है, अर्थात् किसी वर्ण के आदमी का अपना पेशा छोड़ कर दूसरे वर्ण का पेशा करने लगना है और उस समय इस संकरता को रोकना राजा का धर्म था।[1] गरज यह कि जातियों के स्थापित करने और वर्ण-संकरता को मिटाने मे कोई कारण-कार्य सम्बन्ध समझ में नहीं आता है।

एक और प्रमाण जातियों की प्राचीनता के विषय मे यह दिया जाता है कि आचार्य गुप्तिगुप्त परवार थे, कुन्दकुन्दस्वामी पल्लीवाल थे, उनके गुरु जिनचन्द्र चौसखे परवार, वज्रनन्दि गोलापूरब और लोहाचार्य लमेचू थे, इसलिए सिद्ध होता है कि कुन्दकुन्दाचार्य से भी पहले जातियाँ थी। परन्तु जिस पट्टावली के आधार से यह बात कही जाती है उसकी प्रामाणिकता मे सन्देह है।[2] और वह भी चौदहवी सदी से पहले की नही है। उसके कर्त्ता को शायद इसके सिवाय कोई धुन ही नही रही

१. स्वामिमा वृत्तिमुत्क्रम्य यस्त्वन्या वृत्तिमाचरेत्।
स पार्थिवैर्नियतव्यो वर्णसकीर्णिरन्यथा ॥

अर्थात् जुदा-जुदा वर्णों की जो वृत्ति (पेशा) नियत की गयी है, उसे छोडकर दूसरे वर्ण की वृत्ति करने लगने को राजा लोग रोके, अन्यथा वर्णसकरता हो जायेगी।

—आदिपुराण, पर्व १६, श्लोक २४८।

२. स्व० प्रेमीजी के सामने जो पट्टावली थी उसमे पट्टधर आचार्यों के नाम के साथ उनकी जातियो का उल्लेख है। उसकी प्रामाणिकता उन्होने सदिग्ध बताई—उस पट्टावली के सिवाय जयपुर, सीकर, उज्जैन, आरा, महाराष्ट्र आदि की पट्टावलियाँ प्रायः इसी रूप मे पाई जाती हैं। भिन्न-भिन्न स्थानो मे पाई जाने वाली पट्टावलियों की एकरूपता सत्यता को स्वय प्रमाणित करती है।

गुरु परम्परा को जीवित रखने का यही प्रयास उस काल मे था। साथ ही वर्ष मे एक बार या कभी भी भगवान् के महाभिषेक के समय पूरी गुर्वावली पढ़ी जाती थी और उसे लिपिबद्ध कर शास्त्र-भण्डारो मे रखा जाता था तथा समय-समय पर होने वाले गुरुओं के नाम जोड दिये जाते थे। यह पद्धति श्वेताम्बर समाज मे भी थी। (पट्टावलियों के लिये इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ९५ से ११३ तक द्रष्टव्य हैं)

—जगन्मोहनलाल शास्त्री

है कि बड़े-बड़े आचार्यों की खास-खास जातियों में खतौनी कर दी जाय। उस बेचारे ने यह सोचने की भी आवश्यकता नही समझी कि जिस सुदूर कर्नाटक में कुन्दकुन्दादि हुए हैं वहाँ कभी पल्लीवाल, चौसखों और गोलापूरबों की छाया भी न पड़ी होगी। इसके सिवाय और किसी प्राचीन गुरु-परम्परा में भी गुरुओं की इन जातियों का उल्लेख नहीं।

जैन जातियों की उत्पत्ति की सारी दन्तकथाओं मे प्रायः एक ही स्वर सुनाई देता है और वह यह कि अमुक जैनाचार्य ने अमुक नगर के तमाम लोगों को जैनधर्म की दीक्षा दे दी और तब उस नगर के नाम से अमुक जाति का नामकरण हो गया और उक्त सब आचार्य पहली शताब्दी या उसके आस-पास के बतलाये जाते हैं। परन्तु ये सब दन्तकथायें ही है और जब तक कोई प्राचीन प्रमाण न मिले तब तक इन पर विश्वास नही किया जा सकता। यह ठीक है कि कभी जत्थे के जत्थे भी जैनी बने होगे, परन्तु यह समझ में नही आता कि उनमें सभी जातियों के ऊँच-नीच लोग होंगे और वे सबके सब एक ग्राम के नाम की किसी जाति में कैसे परिणत हो गये होंगे। क्योकि ऐसी प्रायः सभी जातियों मे जो स्थानों के नाम से बनी हैं जैनी-अजैनी दोनों ही धर्मों के लोग अब भी मिलते है। जैनी अजैनी भी बनते रहे हैं और अजैनी जैनी।

गोत्र :

परवार जाति के बारह गोत्र है, परवारों के इतिहास के लेखक के लिये जरूरी है कि गोत्रों के बारे मे भी वह लिखे। गोत्रो के विषय में कुछ लिखने के पहले हमें यह जानना चाहिये कि गोत्र चीज क्या है ? वैयाकरण पाणिनि ने गोत्र का लक्षण किया है 'अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम्'। अर्थात् पौत्र से शुरू करके संतति या वंशजों को गोत्र कहते है। वेद काल से लेकर अब तक ब्राह्मणों मे, चाहे वे किसी भी प्रांत के हों, यह गोत्र-परम्परा अखण्ड रूप से चली आ रही है। महाभारत के अनुसार मूल गोत्र चार है—अंगिरा, कश्यप, वशिष्ठ, और भृगु।[१] इन्ही से तमाम कुलों और लोगों की उत्पत्ति हुई है और आगे चलकर इनकी संख्या हजारों पर पहुँच गई है।[२] ज्यों ज्यों आबादी बढ़ती गई त्यों त्यों

---

१ शांतिपर्व, अध्याय २९६।

२. गोत्राणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च।

—प्रवरमंजरी।

कुलों और परिवारों की संख्या बढ़ने लगी। किसी कुल में यदि कोई विशिष्ट पुरुष हुआ, तो उसके नाम से एक अलग कुल या गोत्र प्रख्यात हो गया। उसके बाद आगे की पीढ़ियों में और कोई हो गया, तो उसका भी जुदा गोत्र प्रसिद्ध हो गया। इसी तरह यह संख्या बढ़ी है।

गोत्रों के बारे में वैश्यों की अपनी विशेषता :

क्षत्रियों की गोत्र-परम्परा के विषय मे इतिहासज्ञों का कथन है कि वह बीच में शायद बौद्धकाल में विच्छिन्न हो गई और उसके बाद जब वर्ण व्यवस्था फिर कायम हुई, तो क्षत्रियों ने अपने पुरोहितों के गोत्र धारण कर लिये। अर्थात् पुरोहित का जो गोत्र था वही उनका हो गया। विज्ञानेश्वर ने **मिताक्षरा** में यही कहा है कि क्षत्रियों के अपने गोत्रप्रवर नही है, पुरोहितों के जो हैं वही उनके हैं। परन्तु बहुत से विद्वानों का इस विषय में मत-भेद है। वैश्यो के विषय में भी यही कहा जाता है कि उनकी गोत्र-परम्परा नष्ट हो चुकी थी और पुरोहितों के गोत्र उन्होंने भी ग्रहण कर लिये होंगे। परन्तु अग्रवाल आदि जातियों के गोत्र देखने से यह बात गलत मालूम होती है। उनके गोत्र पुरोहितों से जुदे है।

बहुत-सी वैश्य जातियाँ ऐसी भी है जिनमे गोत्र हैं ही नही। ओसवाल आदि कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनके गोत्र ग्रामों या पेशों आदि के नाम से पड़े हैं और बहुतों के ऐसे अद्भुत है कि उनके विषय मे कुछ कल्पना ही नहीं हो सकती। उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में तरह-तरह की कथायें भी गढ ली गई हैं।

परवारों के गोत्र और उनका अन्य जातियों के गोत्रोंसे मिलान :

हमारा अनुमान है कि परवारों के गोत्र गोत्रकृत् या वंशकृत् पुरुषों के ही नाम से प्रारम्भ हुए होंगे और उनकी परम्परा बहुत पुरानी होना चाहिए।

परवारो के बारह गोत या गोत्र हैं। इनमें से कुछ गोत्र गहोइयों और अग्रवाल आदि जातियों जैसे है। इसका कारण शायद यह हो कि मूल मे ये एक ही रहो हो और आगे चलकर अलग हो गई हों। जो गोत्र मिलते नही है, भिन्न है, वे शायद अलग होने के बाद के है।

आगे हम परवार, गहोई और अग्रवाल जाति के गोत्र दे रहे हैं—

	परवार	गहोई	अग्रवाल
१.	गोहिल्ल	गांगल	गोभिल
२.	गोइल्ल	गोइल, गोयल, गोल	गोयल
३.	वाछल्ल	वाछिल	वत्सिल
४.	कासिल्ल	काछिल	कासिल
५.	वासिल्ल	वासिल	
६.	भारिल्ल	भारल, माल	
७.	कोछल्ल	कोछिल	
८.	वाझल्ल	बादल	
९.	कोइल्ल	कोइल, कोहिल	
१०.	खोइल्ल	(जैतल)	
११.	माडिल्ल	(कासव)	
१२.	फागुल्ल	(सिंगल)	सिंहल

ऊपर की सूची मे परवारों के और गहोइयो के नौ गोत्र बिलकुल एक जैसे हैं और अग्रवालों के चार गोत मिलते हुए है।

गहोइयों के परवारों के ही समान बारह गोत्र है, परन्तु अग्रवालों के अठारह गोत्र है।

गहोई कौन हैं ?

अग्रवालों का थोड़ा परिचय ऊपर दिया जा चुका है। अब हम परवारों के अतिशय सामीप्य के कारण गहोइयों का थोड़ा परिचय देना जरूरी समझते हैं।

संस्कृत-लेखों में गहोई वंश को 'गृहपति-वंश' लिखा गया है। गृहपति से गहवइ और फिर गहोई हो गया है। बौद्ध-ग्रंथों में गृहपति शब्द बहुत जगह वैश्य के अर्थ मे आता है।[1] हमारा ख्याल है कि जिस

---

१. देखो महाबोधिसभा द्वारा प्रकाशित दीघनिकाय पृ० ५१, १४३, १५४, १७५।
पउमचरिय (२०-११६) में गृहस्थ, गृही, ससारी के अर्थ में भी 'गहवइ' शब्द आया है।

समय वैश्यों में भेद नहीं हुए थे, आमतौर से सभी वैश्य लोग गहवई कहलाते होंगे, पीछे जातियों के बनाने पर एक समूह गहवई या गहोई ही कहलाता रहा, उसने अपना नाम नहीं बदला, जबकि दूसरे समूह नगर-स्थानादि के नामो से आपको परिचित कराने लगे।

गहोइयों का बुंदेलखंड में प्रवेश :

गहोई जाति के पटिया एक दन्तकथा कहा करते हैं कि पवाया या या पद्मावती नगरी के कई द्वार थे। एक दिन अम्बिका देवी एक द्वार छेंककर लेटी हुई थी। नगर की स्त्रियाँ उनकी परवा किये बिना ऊपर से निकल गईं, परन्तु पटियो के पूर्वज बीघा पाड़े की पत्नी सम्मानपूर्वक बचकर निकली, इससे प्रसन्न होकर अम्बिका ने पाड़े जी को स्वप्न में कहा कि मैं अन्य स्त्रियो की अशिष्टता के कारण इस नगरी को नष्ट करने वाली हूँ, तुमसे जितनी दूर भागा जा सके भाग जाओ। आखिर पांड़े जी अपने ग्यारह शिष्यों के साथ भाग निकले। आगे उन्ही की सन्तान गहोई हुए और पाड़े जी की सन्तान पटिया। इस कथा से यह मालूम होता है कि परवारो के समान गहोई भी पद्मावती छोडकर बुन्देलखंड की तरफ आबाद हुए थे और इन दोनों जातियों का बहुत पुराना सम्बन्ध है।

समस्त वैश्य जातियों की मौलिक एकता :

गहोई और परवार जाति के नौ गोत्र एक से होना बहुत अर्थपूर्ण है। हमारे बहुत से पाठक शायद यह न जानते होंगे कि पूर्वकाल मे गहोई भाई भी जैनधर्म के अनुयायी थे। इस जाति के बनवाये हुए कई जैन मन्दिरो का पता लगा है।[1] इसके सिवाय गहोइयों का एक मूर या

१. अहार क्षेत्र (टीकमगढ से १० मील पूर्व) में श्री शान्तिनाथ की प्रतिमा के आसन पर एक लेख वि० स० १२३७ का है। उसमे 'गृहपतिवशसरोरुहसहस्ररश्मि' (गहोई वश रूपी कमल के सूर्य) देवपाल का वर्णन है जिन्होने बाणपुर (अहार से १६ मील) मे सहस्रकूट नाम का जैन मन्दिर बनवाया था, और फिर जिनके उत्तर पुरुषो मे से एक ने यह शान्तिनाथ का मन्दिर बनवाया और प्रतिष्ठा कराई। यह लेख प्रो० हीरालाल जैन द्वारा नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे प्रकाशित हो चुका है। (मूल लेख के लिये अब इसी ग्रन्थ का पृष्ठ ११८ द्रष्टव्य है)

आंकना 'सरावगी' नाम का है, जो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि वर्तमान सरावगी गहोइयों के पुरखा श्रावक या जैन थे।

झांसी, चिरगाँव आदि में परवारों और गहोइयों में पक्की रसोई का व्यवहार अब तक है, यह भी इस बात का सुबूत है कि पूर्वकाल में इन दोनों जातियों में घनिष्ठता थी और इन दोनों का मूलस्रोत एक ही होगा। पद्मावती नगरी से गहोइयों के निकलने की दन्तकथा भी इस बात को पुष्ट करती है।

परवारों, गहोइयों और अग्रवालों के गोतों की समानता इस बात का भी संकेत करती है कि पूर्व में वैश्य जाति एक ही थी और 'स्थान-स्थितिविशेषतः' ये सब भेद बहुत बाद में हुए है।

परवारों के मूर :

ऊपर जो बारह गोत्र बतलाये गये है, उनके प्रत्येक के बारह-बारह मूर बतलाये जाते हैं। इस तरह सब मिलाकर १४४ मूर हैं।

गोत-मूरो का मिलान किये बिना परवारों मे कोई विवाह सम्बन्ध नही होता है, फिर भी दुर्भाग्य देखिए कि इन मूर-गोतों की एक भी प्रामाणिक सूची उनके पास नही है। एक तो उनके नाम ही अतिशय अपभ्रष्ट हो गये है और दूसरे जो मूर एक सूची में एक गोत्र के अन्तर्गत है, वही दूसरी सूची में दूसरे गोत्र मे गिना गया है। किसी गोत्र के मूर बारह से कम है और किसी के ज्यादा। डावडिम, रकिया, पद्मावती, कुआ, भारू, खौना आदि मूर ऐसे हैं जो दो-दो गोतों मे आते हैं।[1] इस बात का पता लगाने की भी कभी कोशिश नहीं की गई है कि इस समय इन १४४ मूरों मे से कितने जीते-जागते हैं और कितनो का नाम शेष हो चुका है।

---

१. हमारे सामने इस समय मूर-गोतों की चार सूचियाँ हैं, एक जैन मित्र पौष सुदी ९ सं० ९६ के अक मे प्रकाशित पं० जम्बूप्रसाद शास्त्री की भेजी हुई, दूसरी दो भिन्न सूचियाँ माघ वदी ८ स० ९६ के जैन मित्र में मास्टर मोतीलाल जी की भेजी हुई, और चौथी बाबू ठाकुरदास जी बी० ए० द्वारा भेजी हुई सौ डेढ़-सौ वर्ष पहले की हस्तलिखित सूची। पिछली सूची मे दो गोतों में तेरह-तेरह, दो में ग्यारह-ग्यारह, एक में दस और एक में नौ ही मूर हैं।

परवारों के मूर और गहोइयों के आँकने :

गहोइयों मे भी मूर हैं, परन्तु उन्हें वे आँकने कहते है। कहा तो यह जाता है कि प्रत्येक गोत के छह-छह मिलाकर ७२ आँकने हैं; परन्तु अब इन का परिवार बढ़कर सौ के पास पहुँच गया है।[१] इन आँकनों की सूची देखने से मालूम होता है कि खेड़ों या गाँवों के नामों से इनका नामकरण हुआ होगा, जैसे बड़ेरिया, रूसिया, नगरिया, बजरंगढ़िया आदि। कुछ आँकने पेशों के कारण भी बने हुए जान पड़ते हैं, जैसे सोनी, गंधी आदि।

'मूर' का शुद्ध रूप 'मूल' होता है। मूर को एक रूढ़ शब्द ही मानना पड़ता है जो गोत्रों के अन्तर्गत भेदों को बतलाता है और शायद उनसे मूल गोत्रों का ही बोध होता है। किसी मूर में पेशे की गन्ध नहीं मिलती।

मूरों के जो अपभ्रष्ट नाम हमे इस समय उपलब्ध है, उनसे उनकी उत्पत्ति बिठाना कठिन है। यही ख्याल होता है कि गहोइयों के समान खेड़ों या गाँवों के नामों से ही इनका नामकरण हुआ होगा। पद्मावती, सकेसुर, बड़ेसुर, डेरिया, बैसाखिया, बहुरिया, आदि मूरों मे ग्रामों या नगरो का आभास मिलता भी है।

इस समय इस विषय मे इससे और अधिक कुछ भी नही कहा जा सकता कि गोत्र प्रख्यात पुरुषो के नाम से स्थापित हुए है और मूर गाँवो या खेड़ों के नाम से। गोत्र और मूरो के विषय मे हमे यही मालूम होता है।

पोरवाड़ों के गोत्र :

चूंकि परवार और पोरवाड़ हमारे ख्याल से एक ही है, इसलिए हम पोरवाडो के गोत्रो की भी यहाँ चर्चा कर देना चाहते है। पोरवाड़ों के चौबीस गोत्र बतलाये जाते है।[२] परन्तु उनमें गोत्र परम्परा एक तरह

१. देखो 'गहोई वैश्यबन्धु' के दिसम्बर १९३८ के विशेषाक मे श्रीयुत झुंडीलाल वकील का विस्तृत लेख जिनमे प्रत्येक गोत के आँकनो पर विचार किया गया है।

२. १. चोधरी, २. काला, ३. धनदाड, ४. रतनावत, ५. धन्पौत, ६. मनावर्या, ७. डबकरा, ८. भादल्या, ९. कामल्या, १०. सेठिया, ११. अधिया, १२. वरवण्ड, १३. भूत, १४. फरक्या, १५. लमेपर्या, १६. मडावर्या, १७. मुनियाँ, १८. छाँटचा, १९. गलिया, २०. भेसोटा, २१. नवेपर्या, २२. दानगड़, २३. मेहता, २४. खरड्या।

से नष्ट हो गई है। जो चौबीस नाम मिलते हैं वे पुस्तकों में ही लिखे हैं उनका कोई उपयोग नहीं होता है। गुजरात की तो प्रायः सभी जातियों ने अपने गोत भुला दिये है। यहां तक कि मारवाड़ में जिन ओसवालों, श्रीमालों में गोत्रों का व्यवहार अब भी होता है, वे ही ओसवाल, श्रीमाल गुजरात मे आकर गोत्रों को बिलकुल ही भूल चुके है। इसी तरह पद्मावती पोरवाड़ों में भी गोत्र नही रहे है। कम से कम उनका उपयोग नही किया जाता है।

क्या परवार क्षत्रिय थे ?

वर्तमान की अनेक वैश्य जातियाँ अपने को क्षत्रिय बतलाती हैं। यह संभव भी है। जैसा कि प्रारम्भ में लिखा जा चुका है, बहुत-सी वैश्य जातियाँ प्राचीन गणों या संघों की अवशेष है और वे गण 'वार्ता-शस्त्रोपजीवी' थे अर्थात् कृषि, गोपालन, वाणिज्य और शस्त्र उनकी जीविका के साधन थे। गणराज्य नष्ट हो जाने पर यह स्वाभाविक है कि उन्हे शस्त्र छोड़ देने पड़े और केवल कृषि, गोपालन और वाणिज्य ही उनकी जीविका के साधन रह गये। कालान्तर मे अहिंसा की भावना तीव्र होने पर खेती करना भी उन्होंने छोड़ दिया जिसके साथ साथ गोपालन भी चला गया और तब उनकी केवल वाणिज्यवृत्ति रह गई।[1]

इसके सिवाय इतिहास के विद्यार्थी जानते है कि प्रख्यात गुप्तवंश मूल मे वैश्य ही था, जिसमे समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त जैसे महान् सम्राट् हुए है। सम्राट् हर्षवर्धन भी वैश्य वंश के ही थे। ऐसी दशा मे बहुतसी वैश्य जातियाँ यदि अपने को क्षत्रियों का वंशज कहती है, तो कुछ अनुचित नही है। वृत्तियाँ तो सदा ही बदलती रही है।

प्राग्वाटों या पोरवाड़ों में तेरहवी सदी तक बड़े बड़े योद्धाओं का पता लगता है। प्राचीन काल मे इस जाति को 'प्रकटमल्ल' का विरुद मिला हुआ था। पाटण नरेश भीमदेव सोलंकी (ई० सं० १०२२-१०६२)

---

१. स्व० प्रेमी जी का यह लिखना यथार्थ है क्योंकि मुगलशासन में शस्त्रोपजीवी क्षत्रियों के लिए कोई राज्याश्रय नहीं दिया जाता था, तब उन्होने व्यापार-खेती आदि के कार्य शुरु किए और वे वैश्य वंश के जाने जाने लगे, किन्तु मूल मे क्षत्रिय थे।

के प्रसिद्ध सेनापति विमलशाह पोरवाड़ ही थे, जिन्हें द्वादशसुरत्राण-छत्रोत्पाटक (बारह सुलतानों का छत्र छीनने वाला) कहा जाता था और जो आबू के प्रसिद्ध आदिनाथ के मन्दिर के निर्माता थे। इसी तरह आबू के जगत्प्रसिद्ध जैनमन्दिरों के निर्माता वस्तुपाल-तेजपाल (वि० सं० १२८८) भी पोरवाड़ ही थे, जो महाराजा वीरधवल बाघेला के मंत्री और सेनापति थे। ये जैसे वीर थे वैसे ही दाता और धर्मोद्योतक थे। इनके बाद भी पोरवाड़ों में अनेक राजनीतिज्ञ और वीर मंत्री और सेनापति हुए है, जिससे यदि पोरवाड़ों को क्षत्रिय कहा जाय तो अनुचित न होगा।

पोरवाड़ और परवार मूल में एक ही है यह ऊपर सिद्ध किया जा चुका है। परन्तु परवारों का इतिहास अभी तक अंधकार में ही है। हम सिर्फ मंजु चौधरी नामक परवार वीर को ही जानते है जिन्होने नागपुर में भोंसला राजा की ओर से उड़ीसा पर चढ़ाई की थी और जिनके वंश के लोग अब भी कटक मे रहते है।

परवारों के इतिहास की सामग्री :

लेख समाप्त करने के पहले मैं अपने पाठकों के समक्ष यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि साधनसामग्री की कमी से यह लेख जैसा चाहिए वैसा नही लिखा जा सका। मित्रो का अत्यन्त आग्रह न होता तो शायद मै इसके लिखने की कोशिश भी न करता। लिखते समय जिन-जिन साधन-सामग्रियों की कमी महसूस हुई, उनका उल्लेख भी मै इसलिए यहाँ कर देना चाहता हूँ कि परवार-समाज यदि वास्तव मे अपना प्रामाणिक इतिहास तैयार कराना चाहता है तो इस ओर ध्यान दे और इस सामग्री को लेखकों के लिये सुलभ कर दे।

१. **मूर-गोतावली का शुद्ध पाठ**—इस समय मूर-गोतों के जो पाठ मिलते है वे बहुत ही भ्रष्ट है। उनमे परस्पर विरोध भी है। इसलिए जरूरी है कि पुराने-पुराने लिखे हुए 'सकेसरा' जगह-जगह से खोजकर संग्रह किए जाएँ और फिर उन सबका मिलान करके किसी इतिहासज्ञ विद्वान् से एक शुद्ध पाठ तैयार कराया जाय।

२. **प्रतिमा-लेख-संग्रह**—प्रायः प्रत्येक धातु-पाषाण की प्रतिमाओं के आसन पर कुछ न कुछ लेख रहता है, जिसमें प्रतिमा स्थापित करने

वालों और प्रतिष्ठाचार्य का उल्लेख अवश्य रहता है। उसमें संघ, गण, गच्छ और जाति-गोत्रादि भी लिखे रहते हैं। नवीं-दशवीं शताब्दि से इधर के ऐसे हजारों लेख संग्रह किये जा सकते हैं। कहीं कहीं उस समय के राजाओं का भी उल्लेख मिल जाता है। मध्यकालीन इतिहास पर इन लेखों से बहुत प्रकाश पड़ सकता है। इन लेखों के प्रकाशित हो जाने पर वर्तमान सभी जातियों का इतिहास लिखा जा सकेगा, उन जातियों का भी पता लगेगा जो पहिले जैनधर्म धारण करती थीं, परन्तु अब छोड बैठी हैं। इससे जैनाचार्यों की भी गण-गच्छादि सहित एक सिलसिलेवार सूची समय-क्रम से तैयार हो जायेगी, जो जैन साहित्य के इतिहास के लिए भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

इनके लेखों के समक्ष होने पर हम बड़ी आसानी से बतला सकेंगे कि जातियों का अस्तित्व कब से है। इनका विकास और विस्तार किस क्रम से हुआ, अठसखा, चौसखा, दोसखा आदि भेद कब हुए, असली गोत्र-मूर आदि क्या थे, उनमे प्रसिद्ध और प्रभावशाली पुरुष कौन-कौन हुए और किस-किस जाति की बस्ती किन-किन प्रांतों मे और कब तक थी।

ये लेख शुरू से लेकर अब तक के संगृहीत किये जाने चाहिए और सभी जातियो के होने चाहिए। इस कार्य मे अन्य सब जातियों का सहयोग भी वांछनीय है।

३. लेख और दान-पत्रादि संग्रह—प्रतिमाओं के अतिरिक्त मन्दिरों को दिये हुए दानों के भी सैकड़ों लेख मिलते हैं। बहुत से इंडियन एण्टिक्वेरी एपिग्राफिआइडिया आदि में प्रकाशित हो चुके है। वे सब भी संग्रह किये जाने चाहिए।

४. ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ और लिपि कराने वालों की प्रशस्तियाँ—प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में जो लेखकों की और ग्रन्थ लिखने वालों की प्रशस्तियाँ रहती है, उनमें भी जातियों का तथा दूसरी बातों का परिचय रहता है। इन सबका संग्रह भी बहुत उपयोगी होगा।

५ पटियों के कागज-पत्रों का अन्वेषण—प्राचीन काल में वंशावलियों और कुलों का इतिहास भाट-चारण लोग रक्खा करते थे। प्रत्येक घर से इन्हें ब्याह-शादी के मौकों पर और दूसरे शुभ कार्यों पर बँधी

हुई दक्षिणा मिला करती थी। उसके बदले में वे लोग पीढ़ी दर-पीढ़ी यह काम किया करते थे। बुन्देलखड में इन्हे 'पटिया' कहते हैं। वंशावली को पट्टावली भी कहते है। इन पट्टावलियों के कारण ही शायद इनका नाम 'पटिया' प्रसिद्ध हुआ है। इन लोगों का अब पहले के समान सम्मान नही रहा, इनको दक्षिणा भी लोग नहीं देते, इसलिए अब यह जाति नष्टप्राय है। गहोई और परवार दोनों जातियों के 'पटिया' है जिनमे से गहोइयों के पटिये अब भी अपने पेशे से किसी कदर चिपटे हुए है। बन्धुवर सियारामशरण गुप्त के पत्र से मालूम हुआ कि गहोई जाति के पटिया कहते हैं कि उनके पास 'गृहपतिवंशपुराण' है जिसमें गहोइयों का इतिहास है। परवार जाति के पटियो का भी अभी तक अस्तित्व है। बहुत संभव है कि उनके पास परवार वंश के सम्बन्ध मे भी कोई पुस्तक हो। उनके पास के कागज-पत्रों और पुराना बहियों को छानबीन करनी चाहिए। उनके पास से और कुछ नही तो पुरानी वंशावलियाँ, किंवदन्तियाँ और मूर-गोत्रावलियाँ संग्रह की जा सकती हैं। मूरों और खेड़ो के सम्बन्ध की जानकारी भी उनसे मिल सकती है।

विविध सामग्री—अनेक भारतीय और यूरोपियन लेखकों ने जातियों के सम्बन्ध मे बीसों ग्रन्थ लिखे है, जो अग्रेजी मे है। मर्दुमशुमारी को रिपोर्टों मे भी जाति भेद सम्बन्धी अध्याय रहते है, इसके सिवाय प्रत्येक जिले के गैजेटियरो मे भी वहाँ की जातियों के विषय मे साधारण सा इतिहास और किंवदन्तियाँ लिखी रहती है, ये सब पुस्तकें संग्रह की जानी चाहिए। हिन्दी मे भी पृथक्-पृथक् जातियों पर और समग्र जातियों पर अनेक पुस्तके लिखी गई है। कुछ पुराण भी उपयोगी हो सकते है। इतिहास के अन्य ग्रन्थो का संग्रह तो होना ही चाहिए। उनकी चर्चा करने की जरूरत नही।[1]

---

१. परवार जाति के इतिहास लेखन का यह प्रयास स्व० पं० नाथूराम जी प्रेमी ने १९४० मे किया था। उन्होने अपने इस लेख के अन्त मे कुछ सूचनाएँ भी दी हैं, जिनके आधार पर इतिहास की शोध-खोज को आगे बढाया है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे प० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री द्वारा यथासभव प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है, फिर भी बहुत सी सामग्री उपलब्ध नही हो सकी और

सं० नोट—जैन ससार में ही नही किन्तु हिन्दी ससार मे श्रद्धेय पं० नाथूराम जी प्रेमी का नाम जिस गौरव के साथ लिया जाता है वह 'बन्धु' के पाठकों से छिपा हुआ नही है। आपने मेरे व श्रीमान् सेठ विरधीचन्द्र जी मन्त्री परवार सभा के विशेष अनुरोध व आग्रह को स्वीकार कर उक्त ऐतिहासिक खोजपूर्ण लेख लिखा है। परवार जाति के ही नही, बल्कि जैनेतिहास के प्रेमी सज्जनो के लिये इस लेख मे पर्याप्त सामग्री है। जातियाँ कब कैसे बन जाती हैं इस पर खासा प्रकाश पडता है। परवार जाति का सम्बन्ध परमारो से है या नही, इत्यादि बातो पर हमारा कुछ मतभेद है। आगामी किसी अङ्क मे हम अपने विचार इस सम्बन्ध मे प्रकट करेगे।

—सम्पादक (जगन्मोहनलाल शास्त्री)

●

प्रयास करने वाले तथा जानकार विद्वानो का सहयोग भी कम मिला है। अत: हम इस इतिहास को अन्तिम नही मानते; किन्तु अभी भी इसमे बहुत कुछ शोध और खोज की आवश्यकता है। हम प्रेमी जी का उपकार मानते हैं कि जो सामग्री उन्होने अपने लेख मे दी है उसके आधार पर हम लोग आगे बढ़ सके हैं और हमारा यह इतिहास ग्रन्थ भविष्य मे शोध करने वाले विद्वानो के लिए भी प्रकाश स्तम्भ का काम करेगा।

"परवार बन्धु" के प्रस्तुत लेख के अन्त मे सम्पादकीय नोट मे हम सकेत दे चुके हैं कि कुछ विषयो मे हमारा लेखक से मतभेद है। उसका स्पष्टीकरण भी हम इसी लेख की टिप्पणी में यथास्थान दे चुके हैं।

—जगन्मोहनलाल शास्त्री

कटक की चिट्ठी[1]

श्रीयुत बाबू ईश्वरलाल कपूरचन्दजी कटक वालों ने एक पत्र हमें भेजा था वह उपयोगी होने के कारण केवल भाषा परिमार्जित करके पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ प्रकाशित किया जाता है। आशा है कि विद्वान् सज्जन उस पर अच्छी तरह विचार करके अपनी-अपनी सम्मति प्रकट करने की कृपा करेंगे—

परवार-बन्धु के पाँचवें अंक के विविध विषय में रोटी-बेटी के सम्बन्ध मे एक लेख प्रकाशित हुआ है। वह गोत्रावली और चरित्र के आधार पर लिखा गया है। उसी प्रकार उड़ीसा प्रान्त में भी सराक और रंगणी जाति वालों मे चार गोत्र सदाचार सहित पाये जाते है। इस जाति के लोग रात को नही खाते, अनछना पानी नही पीते, अभक्ष-भक्षण नहीं करते और मांस-मदिरा का तो सर्वथा त्याग ही है। यहाँ तक परहेज करते हैं कि यदि किसी वस्तु के तराशते समय या हँसिया, चाकू से शाक बनाते समय कोई उनसे यह कह देवे कि "तुम क्या काटते हो" तो वे इसको अन्तराय समझकर उन पदार्थों को मांस तुल्य जानकर फेंक देते है। और फिर उनको भोजन के काम मे नहीं लाते। यथार्थ में यही लोग दया धर्म के पालने वाले है।

ये सराक और रगणी जाति वाले सदाचारी और अच्छी चाल-चलन के पाये जाते हैं। इनकी रहन-सहन भी ठीक है। ये क्षमा और दया के समुद्र है। सहनशील, परोपकारी और सच्चो क्रिया वाले हैं। आजीविका के लिए केवल कपड़े का व्यापार करते हैं। इन लोगों के पास द्रव्य भी अच्छी है।

श्रीमान् जैनधर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी वर्णी तथा बाबू जगूलाल वा कन्हैयालालजी ने कटक और उड़ीसा प्रान्त के रुगडी, नुआयाटणा, मणियाबध, जरियाटणां, बालूबीसी आदि बहुत से ग्रामो मे जाकर जैनधर्म का उपदेश दिया था। तभी से वे लोग जब कटक आते है तो जैन मन्दिर मे आकर दर्शन करते और शास्त्र सुनते हैं।

१. 'परवार बन्धु' दिसम्बर १९२० से उद्धृत।

गढ़ाकोटा निवासी ब्रह्मचारी आत्मानन्दजी आसोज सुदी ८ को यहीं पर उपस्थित थे। अतः उपरोक्त ग्रामों के सराक और रंगणी भाई मिलकर महाराज के दर्शनों को आये थे। उस समय ब्रह्मचारीजी ने परीक्षा लेकर उनसे जो कुछ कहा था उसका भी यथेष्ट पालन करते हैं। और भविष्य में शिक्षा-दीक्षा लेने की भी सलाह दे गये हैं। इसलिए वे प्रायः माघ के महीने में उपदेश के लिए विहार करेंगे।

जिस प्रकार गहोई वैश्य जिन-मत प्रतिमा नहीं पूजते, छानकर पानी नहीं पीते और रात्रि को भोजन करते हैं। परन्तु उनके साथ व्यवहार करना निश्चित किया है। तब सराक और रंगणी जाति के भाइयों से विवाह-सम्बन्ध करने मे क्या दोष है ?

विगतवार सराक और रंगणी भाइयों की गोत्रावली नीचे प्रकट करता हूँ। यह परवार-गोत्रावली से बहुत-कुछ मिलती है :

उड़िया अहाता :

सराक और रंगणीगोत्र	—धन्धा	—परवार-गोत्र
१. अनन्तदेव	—बजाजी	ओछलमूर
२. खेमदेव	— „	खोनामूर
३. काश्यपदेव	— „	कासल्यमूर
४. कृष्णदेव	— „	कोछलमूर

बंगाल अहाता :

१. आदिदेव	—	
२. अनन्तदेव	— „	ओछलमूर
३. धर्मदेव	— „	धनामूर
४. काश्यपदेव	— „	कासल्यमूर

इनका विशेष परिचय जानने के लिए ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कृत **"प्राचीन जैन सराक इतिहास"** उड़िया और बगला भाषा में प्रचलित है जिसकी हिन्दी किसी परोपकारी धर्मात्मा महाशय की कृपा से हो सकेगी। **विवाहकरण** तथा **शुद्धि क्रिया** इन दोनों पुस्तकों का उल्था ब्रह्मचारीजी के पास हो रहा है।[1]

---

१. श्री बाबू ईश्वरलाल कपूरचन्दजी कटक (उडीसा) वालो के प्रकाशित इस पत्र के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि परवार समाज के कुछ लोग उडीसा और बगाल प्रान्त मे भी बसे थे। उडीसा और बगाल मे जो रगणी जाति के लोग पाये जाते है उनके गोत्र परवार जाति के ही हैं, उनसे भिन्न नही। इनमे कुलदेवता के रूप मे जैन तीर्थङ्करो के नाम हैं तथा पूजे जाते हैं। किन्हीं-किन्ही मे किसी अन्य देवता को भी कुलदेव माना है तथा उनके मूर-गोत्र वे ही हैं, जो परवार जाति के हैं। यह सब उक्त पत्र मे उड़ीसा अहाता (प्रान्त) और बगाल अहाता (प्रान्त) की दी गयी सूची से स्पष्ट प्रतीत होता है।

— जगन्मोहनलाल शास्त्री

तृतीय खण्ड : ऐतिहासिक पुरुष

सिंघई पद से अलङ्कृत श्री लक्ष्मण सिंघई
श्री जुगराज पुरवाड़
श्री गढ़ासाव
संघही श्रीकरठाक पौरपाट
कटक के पुण्याधिकारी दीवान मंजु चौधरी
चौधरी भवानीदास दीवान

सिंघई पद से अलंकृत श्री लक्ष्मण सिंघई

देवगढ़ ललितपुर से बहुत दूर नही है। यह एक पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ प्राचीन मन्दिर है। पुरातत्त्व की सामग्री से यह स्थान भरपूर है। यहाँ पाँच परमेष्ठियो की मूर्तियो के दर्शन होते है। यहाँ के मानस्तम्भ दर्शनीय है। मध्य मे भगवान् शान्तिनाथ का मन्दिर बना हुआ है। वह जीर्ण हो रहा था। उसकी स. सिं. गनपतलाल गुरहा खुरई ने मरम्मत कराकर यहाँ धूमधाम से पंचकल्याणक गजरथ प्रतिष्ठा कराई थी। उसमे मुख्य तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की मूर्ति के आसन मे यह लेख अकित है—

संवत् १४९३ शाके १३५८ वर्षे वैशाख वदि ५ गुरौ दिने मूल नक्षत्रे श्रीमूलसघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीप्रभाचन्द्रदेवास्तच्छिष्यवादिवादीन्द्र भट्टारक श्री पद्मनन्दिदेवास्तच्छिष्य श्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवा· पौरपाटान्वये अष्टशाखे आहारदानदानेश्वर सिघई लक्ष्मण तस्य भार्या अखयसिरिकुक्षिसमुत्पन्न अर्जुन_ ।[१]

इस लेख में कई महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ अकित है, उनका विवरण इस प्रकार है—

१. भट्टारक पद्मनन्दि का गिरनार पर श्वेताम्बरो से जो वाद हुआ था, उसमे भट्टारक पद्मनन्दि के गले मे विजयश्री पड़ी थी। उसके उपलक्ष्य मे उन्हे वादिवादीन्द्र पद से अलंकृत किया गया था। इसका उल्लेख मूलसंघ के अन्तर्गत नन्दिसंघ की जो पट्टावली है उसमें भी मिलता है—

पद्मनन्दी गुरुर्जातो बलात्कारगणाग्रणीः ।
पाषाणघटिता येन वादिता श्रीसरस्वती ।
उर्ज्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतोऽभवत्
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने ॥६३ ॥

१. पूरे मूर्तिलेख हेतु इसी ग्रन्थ का पृष्ठ १२१ द्रष्टव्य है।

१. ये आचार्य कुन्दकुन्द के अन्वय मे हुए थे ।

२. इनके शिष्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति थे, जो मूल मे गुजराती थे । उन्होने ही इस पञ्चकल्याणक गजरथ महोत्सव का नेतृत्व किया था ।

३ इस पञ्चकल्याणक गजरथ महोत्सव के अन्त मे इन्हे सवाई सिघई पद से अलकृत किया गया था । यह सघई (सघवई) का रूपान्तर है ।

४ इन्हे इस लेख मे '**आहारदानदानेश्वर**' कहा गया है । इससे मालूम होता है कि इन्होने पचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय वहाँ आई हुई समाज को पॉच दिनो तक भोजन आदि से सतुष्ट किया था और वहॉ आये हुए त्यागी-मुनियो को आहार देकर आहारदान का लाभ लिया था । यह हमारा दुर्भाग्य है कि इस समय वह प्रथा समाप्त हो गई है । अन्यथा इस समय पचकल्याणक गजरथ का रूप दूसरा ही होता । ये ललितपुर या चदेरी के रहने वाले होने चाहिये ।

इस समय गजरथ के अन्त म जो चदेरी की पगड़ी का रिवाज है, वह समाज द्वारा चलाई गई पद्धति है, इससे यह भी पता चलता है कि इस पद्धति का अधिकारी चदेरी समाज का मुखिया होता है और उसके द्वारा वह बाधी जाती है ।

जब से चौबीसी का निर्माण हुआ है तब से भले ही खण्डेलवाल समाज के एक घराने को चदेरी समाज का मुखिया मान लिया गया है, परन्तु खण्डेलवाल समाज मे पचकल्याणक गजरथ प्रथा कभी चालू नही रही ।यह विशेषता परवारो की ही है । इसलिये मालूम पडता है कि परवार समाज मे पगड़ी के साथ सम्मान करने की यह प्रथा चली आ रही है । गोलापूर्व समाज और गोलालारे समाज मे यह प्रथा पूर्व मे कभी चालू नही रही । परवार समाज की देखादेखी ही उन दोनो समाजो ने इस प्रथा को स्थान दिया है ।

श्री जुगराज पुरवाड़[१]

रइधू साहित्य की प्राचीन पाण्डुलिपियो की खोज के प्रसग मे डा राजाराम जी जैन को रइधूकृत **शान्तिनाथ चरित** की सचित्र हस्तलिखित प्रति सूरत के शास्त्र भण्डार मे मिली है। यह कृति बहुत ही सुन्दर, किन्तु अपूर्ण है। रइधू ने इसे जुगराज पुरवाड़ के आश्रय मे रहकर लिखा था। पुरवाड़ शब्द परवार का द्योतक है। रइधू ने जुगराज की तीन पीढ़ियो का परिचय दिया है। यह घराना बड़ा समृद्ध था। सम्भवत· जुगराज कही के राज्यमंत्री थे। उन्होने गिरनार पर्वत पर शिखर बन्द मन्दिर बनवाकर अनेक जिनमूर्तियो की प्रतिष्ठा आदि कराई थी। वे विद्वत्सम्मेलन कर अनेक विद्वानो का सम्मान करते रहते थे।

उनके गुरु का नाम भट्टारक जिनचन्द्र था। इन्ही की प्रेरणा से रइधू ने **शान्तिनाथ चरित** की रचना की थी। जुगराज के पितामह लक्ष्मण ने मूलसंघ के तपस्वी देवेन्द्र कीर्ति के उपदेश से वि स १४३७ मे एक प्रतिष्ठा कराई थी। वे पुरवाड़ (परवार) जाति के शृगार थे।

भारत भर मे उक्त **शान्तिनाथ चरित** की दूसरी प्रति उपलब्ध नही है। जितना अश उपलब्ध है वह भाषा, भाव, चरित्र एव प्राचीन चित्रो की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि का है तथा परवार समाज के लिए एक गौरव ग्रन्थ की श्रेणी का है। छपने पर लगभग १५० पृष्ठो का सुन्दर ग्रन्थ बन सकता है।

डा. राजाराम जी जैन ने कुछ मूर्तिलेखो के आधार पर निर्णय किया है कि जुगराज पुरवाड़ धोपे नामक ग्राम (सम्भवतः धौलपुर, राजस्थान) के निवासी या प्रवासी रहे होगे। इन्होने अनेक मूर्ति प्रतिष्ठाएँ, साहित्य निर्माण मे योगदान, मुनि सघो की सेवा-सत्कार आदि कार्य तो किए ही हैं, समाज एव राष्ट्र के निर्माण मे भी बहुत योगदान किया है।

---

१. यह सामग्री डॉ. राजाराम जैन (आरा, बिहार) द्वारा प्रेषित की गई है।

श्री गढ़ासाव

दिल्ली के प्रथम लोधी सुल्तान बहलोल(१४५१-१४८८ई)के समय मे मध्यप्रदेश के कटनी-मुड़वारा से १०-१२ किलोमीटर पर एक पुष्पावती(जिसे आजकल बिलहरी कहते है) नामक नगरी थी। सभवतः वहाँ बहुत बड़े तालाब मे हजारो कमल-पुष्पो के पाये जाने के कारण इसका नाम पुष्पावती रहा होगा। आज भी कमल-पुष्प वहाँ के तालाबो मे पाये जाते है। इस नगर के निवासी गढ़ासाव चौसखा परवार (पौरपाट) थे। ये गाहे मूर गोहिल्ल गोत्र के थे। इनके परिवार के द्वारा एक जिनबिम्ब की स्थापना भी की गई थी, जो वहाँ दूसरे जिनालय मे विराजमान है। गढ़ासाव सागर मे सम्भवतः क्षेत्रीय शासन मे किसी पद पर नियुक्त थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम वीरश्री था। इनके अगहन सुदी सप्तमी वि स १५०५ मे एक पुत्ररत्न हुआ, जो आगे तरणतारण स्वामी कहलाये।

उस समय चदेरी और सिरौज मे पौरपट्टान्वय (परवार) भट्टारको के पट्ट (गद्दियाँ) थे। उनमे **समयसार** के स्वाध्याय की प्रवृत्ति थी। तरणतारण स्वामी जब ८ वर्ष के थे तब अपने पिता के साथ अपने मामा के घर सिरौज जा रहे थे। मार्ग मे देवेन्द्रकीर्तिजी भट्टारक (श्रुतसागर) से भेट हो गई। भट्टारक जी के अनुरोध पर बालक तरणतारण को चदेरी भेज देने की स्वीकृति गढ़ासाव ने दे दी और कालातर मे उन्हे भट्टारक जी के पास चंदेरी भेज दिया।

यह पहिले लिख आये है कि वहाँ **समयसार** का स्वाध्याय चला करता था। बालक तरणतारण भी स्वाध्याय गोष्ठी मे बैठते थे। उनके जीवन पर **समयसार** की आध्यात्मिकता की छाप पड़ी। आगे चलकर इस आध्यात्मिकता का प्रभाव उनके जीवन मे बढ़ता गया। उन्होने अपने जीवनकाल मे चौदह ग्रन्थो की रचना की है, जिनमे सर्वप्रथम **श्रावकाचार** और अंतिम ग्रन्थ **सिद्धस्वभाव** है।[१]

---

१. विशेष परिचय के लिये इसी ग्रन्थ का पृष्ठ ५९ भी द्रष्टव्य है।

संघही श्रीकरठाक पौरपाट

अठसखा परवार अन्वय मे एक श्रीकरठाक हो गये है। ये डेरियामूरी थे। इन्होने मात्र जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा कराई थी या उसके निमित्त जिनालय भी बनवाया था, यह लेख से कुछ पता नही चलता। वे मेरे ख्याल से गुजरात के होने चाहिए। मथुरा पहले जैनधर्म का गढ़ रहा है। अब वहाँ केवल पुरातत्त्व की सामग्री पाई जाती है।

मथुरा से जो मार्ग वृन्दावन को जाता है उस मार्ग से हटकर एक टीले से एक जिनबिम्ब पं हुकमचन्द शास्त्री को स्वप्न देकर मिला था। पूरा विवरण इस प्रकार है—उपदेश करते हुए प हुकमचन्द जी मथुरा पहुँचे। वे रात्रि मे सो रहे थे। रात्रि मे अर्ध जाग्रत अवस्था मे रात्रि के उत्तरार्ध के अन्त मे उन्होने एक स्वप्न मे देखा कि मानो जिनदेव कह रहे है कि हम मथुरा से वृन्दावन जाने वाले-मार्ग पर मध्य मे सड़क से कुछ हटकर एक टीले मे छुपे हुए है। तुम आकर हमे निकाल लो।

शास्त्री जी ने स्वप्न पर विशेष ध्यान नही दिया। सायकाल के समय एक बगीचे मे जाने पर वहाँ शास्त्री जी को एक सफेद साँप ने अगुली मे काट लिया। इससे वे घबड़ाकर बेहोश हो गये। अन्त मे घूमने आये हुए किसी सज्जन ने उन्हे उसी समय वहाँ के अस्पताल मे भर्ती कर डाक्टर से निवेदन किया कि इसे साँप ने काट खाया है। डाक्टर ने उनसे कहा कि इसकी दवाई के दाम कौन देगा। वहाँ उपस्थित नर्स यह सब सुन रही थी। वह डाक्टर से बोली—"डाक्टर सा. यह जवान है। इसके हाथ मे घड़ी बधी है, उससे दवाई का रुपया वसूला जायेगा। इसके बिना इसके बाल-बच्चे भूखो तड़फ-तड़फ कर मर जायेगे। इसका इलाज करिये।"

इलाज किया गया। वे अच्छे होने लगे। समाज को पता लगा कि एक जैन भाई, जिसे साँप ने काट खाया था, वह अच्छा होने लगा है तो समाज के कुछ भाई गये और उन्हें घर ले आये। उस रात्रि में उनको पुनः स्वप्न मे सर्प दिखाई दिया और साँप ने क्यों काटा? इसका कारण बतलाया। फिर स्वप्न

मे आगे-आगे चलकर सर्प ने वह स्थान बतलाया। सुबह जागकर वे वृन्दावन के मार्ग पर स्वप्न मे बतलाये हुये स्थान पर गये और सड़क के एक ओर टीला देखकर उस पर गये। परन्तु उनके पास खोदने का फावड़ा और कुदाली नही थी। बगल मे झोपड़ियॉ थी। वहाँ से खोदने का फावड़ा और कुदाली ले आये। मूर्ति ऊपर तो थी ही, इसलिये उसे खोदने पर वह आसानी से बाहर निकल आई। उसे ही चौरासी (मथुरा) के बडे मन्दिर मे मुख्य वेदी के पीछे की वेदी पर शास्त्री जी ने प्रतिष्ठित कर दिया।

मान्य प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री प्राय मथुरा सघ की व्यवस्था देखने और उसे यथावस्थित चालू रखने के लिये मथुरा जाते ही रहते थे। उस समय वे मथुरा सघ के प्रधानमन्त्री भी थे। जैन मित्र मे उन्होने इस घटना को पढ़ा था, इसलिये उसकी जानकारी लेने के लिये वे समाज से मिले। समाज से घटना की सत्यता जानकर उन्होने हमे भी लिखा। हम पौरपाट (परवार) अन्वय का इतिहास संकलित करने के लिये प्रारम्भिक तैयारी कर ही रहे थे। इसलिये इस घटना को इस लेख मे जैसा सुना और एक प्रामाणिक व्यक्ति से जाना, वैसा यहाँ दे रहे है। मूर्तिलेख इस प्रकार है—

[१]संवत् १८९ माघ शुक्ला ८ आष्टासाखे प्रतिष्ठितं डेरियामूरी श्रीक-रठाकेन।

---

१ यह सवत् १८९० होना चाहिये, ऐसा पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री का मत है, क्योंकि उस लेख को उन्होंने स्वयं पढ़ा है।

कटक के पुण्याधिकारी दीवान मंजु चौधरी

बुन्देलखण्ड के ललितपुर जिले की महरौनी तहसील में स्थित कुम्हेड़ी (चन्द्रापुरी) ग्राम मे १७२० के लगभग एक अति साधारण स्थिति के परवार (पौरपाट) जातीय जैन परिवार मे मंजु चौधरी का जन्म हुआ था। बाल्यावस्था मे ही माता-पिता स्वर्गवासी हो गये। शिक्षा के साधन नही थे, इसलिये शिक्षा नही हो सकी। वे जुए के शौकीन थे, इसलिये उसके चक्करवश घर मे जो कुछ था, गवाँ बैठे। नाते-रिश्तेदारो से कोई सहारा नही मिला। इसलिये अकेले ही घर से पाव-पियादे देशान्तर को चल दिये। साहस की कमी न थी, फिर मार्ग मे मेहनत-मजदूरी करने और एक दिन के अन्तर से दूसरे दिन केवल दो सूखी रोटी खाकर महीनो निर्वाह करते हुए १७४०-४५ ई. के लगभग अन्तत· नागपुर जा पहुँचे। वहाँ छोटा-मोटा धन्धा शुरु किया। भाग्य से पुरुषार्थ ने साथ दिया, अच्छी स्थिति बन गई और तत्कालीन राजा मुकुन्ददेव के दरबार मे पैठ हो गई।

जब १७५० ई. के लगभग मराठा सरदार रघु जी भोसले ने नागपुर पर अधिकार कर लिया और १७५१ ई. मे बगाल के नबाब पर चढ़ाई करके पूरा उड़ीसा प्रान्त उससे छीन लिया, तब मजु चौधरी भोसले के मोदी बन गये और शीघ्र ही उनके रसद विभाग के भी अध्यक्ष बन गये। अपनी कार्यकुशलता से वह भोसले के इतने विश्वासपात्र बन गये कि उन्होने उन्हे कटक के राजा के दरबार मे अपना चौधरी नियुक्त कर दिया।

अब मजु चौधरी ने स्वदेश जाकर अपना विवाह किया। पत्नी का नाम नगीना बाई था।

बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ को उड़ीसा प्रान्त का अपने हाथ से निकल जाना बहुत अखरा और भोसला राजा इस समय अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समाचारों से अन्यत्र व्यस्त था। अतएव नबाब ने उड़ीसा पर चढ़ाई कर दी। कटक के राजा ने दरबार में बीड़ा रखा कि नबाब के आक्रमण का कौन निवारण करेगा। कोई भी राजपूत या मराठा सरदार

तैयार नही हुआ, तब वीर मंजु चौधरी ने बीड़ा उठा लिया और सेना संगठित करके नबाब के प्रतिरोध के लिये चल पड़े। इस सदल-बल दृढ़ विरोध को देखकर नबाब हताश हो वापिस लौट गया।

इस घटना से रघु जी भोसला और राजा मुकुन्ददेव— दोनों ही मंजु चौधरी से बहुत ही प्रसन्न हुए और परिणाम स्वरूप मंजु चौधरी राज्य के दीवान और वास्तविक कार्य संचालक बना दिये गये।

राज्य की आय ५० लाख रुपया थी, जिसमे से २० लाख रुपया नागपुर के भोसला दरबार को भेजते थे और शेष मे अपने कटक व राज्य का कार्य कुशलता के साथ चलाते थे। राज्य की ओर से इन्हे जागीर भी मिली थी और नगर मे इन्होने बड़े बाजार की स्थापना की थी।

इन्होने १७६० ई. के लगभग निकटवर्ती प्राचीन दि. जैन तीर्थ खण्डगिरि पर एक विशाल दि. जैन मन्दिर बनवाया। साथ ही बुन्देलखण्ड से अपने तीन भानजो को बुला लिया। उनके नाम है— भवानीदास, तुलसी और मोती। भवानीदास तो इनके राज्यकार्य मे इन्हें अच्छा सहयोग देने लगा। आमेर के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति की प्रसिद्धि सुनकर दीवान सा. ने १७८० ई मे उन्हे कटक मे आमन्त्रित किया। यहाँ उन्होने उनकी विदुषी एव सुलक्षणा धर्मपत्नी की प्रेरणा से **ज्येष्ठ जिनवर पूजा-व्रत कथा** की रचना की। सेठानी सा. ने उनके उपदेश से वह व्रत पूरा करके उसका उद्यापन भी किया।

दो वर्ष बाद जब दीवान सा. अपनी जन्मभूमि कुम्हेड़ी गये तो वहाँ भी उन्होंने १७८२ ई. मे अचलसिंह प्रधान से **पुण्यास्रव कथाकोश** की प्रति लिखवाई थी। अपने धर्मकार्यों के कारण चौधरी मंजु दीवान 'पुण्याधिकारी' की उपाधि से विभूषित किये गये थे।

अपने अभ्युदय मे वे न अपनी जन्मभूमि को भूले और न नाते-रिश्तेदारो को ही भूले। कटक के इन प्रसिद्ध पुण्याधिकारी चौधरी मंजु दीवान का निधन १७८५ ई. के लगभग हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है।

चौधरी भवानीदास दीवान

उपनाम भवानी दादू दीवान मंजु चौधरी के भानजे थे और उनके पद पर उनके बाद मे प्रतिष्ठित हुए थे। पुण्याधिकारी दीवान मंजु चौधरी का एकमात्र पुत्र लक्ष्मण अयोग्य और निकम्मा निकला। अतएव नागपुर और कटक के दरबारो ने भवानी दादू को दीवान मजु चौधरी का उत्तराधिकारी बनाया था। ये भी नीतिकुशल, कार्यदक्ष और विद्याप्रेमी थे, इसलिए अपने मामा की 'पुण्याधिकारी' की उपाधि भी इनके नाम के साथ समाज मे प्रयुक्त होती थी। उन्होने भी अपने दक्षिणी ब्राह्मण गोपाल पण्डित से १७८७ ई. मे '**पुण्यास्रव कथाकोश**' की प्रति लिखवायी थी। दीवान मजु चौधरी के पुत्र लक्ष्मण ने अपना हक मारा जाने से क्षुब्ध होकर अंग्रेजो की सहायता लेने का प्रयत्न किया था, क्योंकि इन दिनो अंग्रेजो की शक्ति और प्रभाव द्रुतगति से फैलता जा रहा था, किन्तु लक्ष्मण के सफल प्रयत्न होने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई। स्वय भवानी दादू की भी १८०० ई. के पूर्व ही निस्सतान मृत्यु हो गई थी। उनके बाद उनका छोटा भाई तुलसी दादू चौधरी हुआ, किन्तु वह अपने मामा और बड़े भाई के समान योग्य नही निकला।

सन् १८०३ के अन्त मे लगभग अंग्रेजो द्वारा उड़ीसा दखल कर लिये जाने पर भोसला राजा और कटक के मुकुन्ददेव के अधिकारो का अन्त हो गया। १८०५ ई मे लक्ष्मण बजाज द्वारा दो ग्रन्थो की प्रतिलिपियाँ कराई गई थी। जिनदास कवि ने १८०५ मे खण्डगिरि की ससंघ यात्रा की थी तथा चौधरी परिवार द्वारा वहाँ चालू किये गये वार्षिक उत्सव और दीवान द्वारा निर्मापित शिखरबन्द मन्दिर का सुन्दर वर्णन किया था।

तुलसी दादू की दो पुत्रियॉ थी, जिनमे से छोटी मुक्ताबाई थी। उसकी पुत्री सोनाबाई का विवाह हीरालाल मोदी के साथ हुआ था। जिसने १८४० ई. मे पचास धार्मिक रचनाओ के संग्रह की प्रतिलिपि करवायी थी।

उसकी भावज धूमाबाई ने उसी समय के लगभग खण्डगिरि का छोटा मन्दिर बनवाया था। हीरालाल मोदी की मृत्यु के पश्चात् सोनाबाई ने अपने देवर मल्लू बाबू के पुत्र ईश्वरलाल को गोद लिया था। ईश्वरलाल और उनके पुत्र कपूरचन्द १९१२ ई. मे विद्यमान थे और कपूरचन्द के पुत्र या पौत्र कुञ्जीलाल चौधरी हुये।

■

वर्तमान परवार जैन समाज का परिचय

चतुर्थ खण्ड : संस्था परिचय

(क) परवार सभा का इतिहास

(ख) 'परवार बन्धु' का उद्गम

परवार सभा का इतिहास

श्री दिगम्बर जैन परवार जाति के इतिहास से भा. दि. जैन परवार सभा का इतिहास भी सम्बद्ध है। सन् १९०८ में संस्थापित भा. व. दि. जैन बुन्देलखण्ड मध्यप्रान्तीय सभा का अन्त सन् १९१३ में जातीय सभाओं से ही हुआ। परवार सभा की स्थापना श्री रामटेक अतिशय क्षेत्र पर सन् १९१८ के पूर्व हुई थी। समागत सज्जनो की भोजन व्यवस्था ब्राह्मण हलवाईयो के द्वारा कराई थी, उसके औचित्य और अनौचित्य पर परस्पर बहुत विवाद हुआ। उससे ऐसा लगा कि बुन्देलखण्ड तथा नागपुर प्रान्तीय परवारो के खान-पान की रूढ़ियो मे अन्तर होने से इस विवाद पर ही अपने स्थापना काल में परवार सभा टूट जायेगी।

परन्तु कुण्डलपुर से पधारे हुए समाज मान्य स्व. ब्रह्मचारी गोकुलप्रसाद जी ने अपनी झोली फैलाकर इस विवाद को भिक्षा के रूप मे माँग लिया, इसलिये यह विवाद समाप्त हो गया। इसके बाद स्व. मान्य सेठ लक्ष्मीचन्द जी बमराना वालो की अध्यक्षता मे परवार सभा की भव्य समारोह पूर्वक स्थापना हुई। अनेक विषयो पर विचार-विमर्श हुआ।

सिहोरा (म.प्र.) की ओर से सन् १९१८ में गजरथ पचकल्याणक की योजना स्थानीय श्री शकरलाल जी द्वारा सभा में रखी गई। उसके सभापति जबलपुर समाज के मुखिया स. सि. गरीबदास जी थे। कोई भी पंचायत हो, उनकी अध्यक्षता में होती थी। उनकी सलाह से ही सिहोरा वालों ने गजरथ के समय परवार सभा का द्वितीय अधिवेशन बुलाया और परवार सभा को दस हजार रुपये देना स्वीकार किया था। इस अधिवेशन के बाद और कहाँ-कहाँ परवार सभा के अधिवेशन हुए इसका क्रमशः पूरा विवरण नही मिलता।

मान्य पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री की जानकारी के अनुसार सन् १९२४ में सागर में इस सभा का अधिवेशन हुआ था। उसके अध्यक्ष श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी सिवनी हुए थे।

उस सभा मे यह विचार रखा गया था कि आठ सॉको के स्थान पर चार सॉको मे विवाह होने लगे। क्योकि कुछ भाई वर्षो से चार सॉको मे विवाह करने लगे थे, इसलिये परवार जाति मे आठ सॉको वाले और चार सॉको वाले— ये दो भेद हो चुके थे। विषय निर्वाचनी ने चार सॉको मे विवाह होना स्वीकार कर इस प्रस्ताव को पास कर दिया।

परन्तु जनरल सभा मे उस प्रस्ताव पर चर्चा चल ही रही थी कि एक चौसखा भाई ने खड़े होकर कहा कि— "चार सॉके तो तुम भी मिलाते हो, बॉकी चार सॉके तो तुम्हारी चोरी की है।" यह सुनकर जनता भड़क गई। इससे प्रस्ताव पास न हो सका तथा शेष कार्यवाही येन-केन प्रकारेण समाप्त हुई। एक अधिवेशन पपौरा मे भी हुआ था। अध्यक्ष सम्भवत अमृतलाल जी वकील मालथौन थे। बाद मे पपौरा मे एक अधिवेशन और हुआ। परवार सभा का एक अधिवेशन अकलतरा मे श्री पन्नालाल जी टड़ैया ललितपुर वालो की अध्यक्षता मे हुआ। एक अधिवेशन सोनागिर मे श्रीमत सेठ मोहनलाल जी खुरई की अध्यक्षता मे हुआ था। एक अधिवेशन ललितपुर में गजरथ के समय हुआ। शेष अधिवेशन कहॉ हुए इसकी जानकारी नही मिल सकी। इस मध्य के अनेक अधिवेशनो मे प देवकीनन्दन जी सभापति रहे। वे सभा के सरक्षक थे। इसके बाद सन् १९३७ मे १३वॉ अधिवेशन स्व मान्य पं देवकीनन्दन जी सिद्धान्तशास्त्री की अध्यक्षता मे सिवनी (म. प्र.) मे सम्पन्न हुआ।

परवार सभा का १४वॉ अधिवेशन जबलपुर के गोलबाजार स्थित जैन छात्रावास के प्रागण मे विशाल पण्डाल बनाकर सम्पन्न हुआ। जिसके अध्यक्ष स्व. प. देवकीनन्दन जी चुने गए थे।

इस अधिवेशन मे देवगढ़ मे श्रीमान् सिंघई गनपतलाल जी गुरहा खुरई द्वारा पंचकल्याणक के साथ चलाये जाने वाले गजरथ के विरोध और समर्थन मे प्रबुद्ध वर्गों के मध्य भीषण मतभेद था।

देवगढ़ गजरथ के साथ पंचकल्याणक के समर्थन में ललितपुर प्रान्तीय जैन जनता थी तथा उसके साथ गजरथ मात्र के विरोध में नागपुर, अमरावती

प्रान्तीय जैन जनता थी। बड़ी संख्या में दोनो ओर के महारथी वहाँ उपस्थित हुए थे। सभापति के शुभागमन के पूर्व ही दोनों पक्ष अखाड़े में आ डटे थे। ऐसा लगता था कि परस्पर का यह मतभेद युद्ध का रूप धारण कर सकता है।

किन्तु परवार समाज के अद्वितीय कुशलनेता स्व. मान्य पं. देवकीनन्दन जी सि.शा. सबके श्रद्धाभाजन थे। यही शुभ चिह्न था, जिससे यह विवाद अन्त में सौहार्द मे बदल गया। स्व.मान्य पं.जी की प्रतीक्षा पूरा समाज बड़ी उत्सुकता से कर रहा था। अन्त में उनका शुभागमन हुआ। उत्साहपूर्वक उनका स्वागत किया गया। रात्रि मे परवार सभा के खुले अधिवेशन मे दोनों पक्षों की दलीले सुनी गई। विरोधी पक्ष इस काल में गजरथ को व्यर्थ व्यय मानता था। उसका कहना था कि इस द्रव्य का सदुपयोग समाज हित में होना चाहिये।

बीना में समाज के हित मे एक संस्था बनी थी। उसका प्रमुख मैं और श्री प.बंशीधर जी व्या. आदि थे। उनके साथ में नागपुर प्रान्त की जनता थी।

दूसरी ओर स्व. स. सिं. श्री गनपतलाल जी गुरहा की ओर से ललितपुर के स्व. सर्राफ भगवानदास जी तथा उस प्रान्त की जनता थी।

रात्रि में परवार सभा का खुला अधिवेशन हुआ। अध्यक्ष स्व.मान्य पं.देवकीनन्दन जी में एक विशेषता थी कि वे विरोधियों की भी बात सुनते थे, उनका आदर करते थे, उनकी ओर से समाज को भी यह शिक्षा मिली हुई थी कि विरोधियों का आदर करने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये। वे भी समाज के हितैषी हैं, उनका अनादर करने से समाज की प्रगति रुक जायेगी और समाज बिखर कर टुकड़ों मे बँट जायेगा। पूरा समाज उस दोष का भागी होगा।

मेरे प्रति अध्यक्ष का विशेष प्रेम था। इसलिये वे ललितपुर से मेरे कुटुम्ब के रज्जूलाल जी बरया को ले आये थे। वे मेरी मौसी के लड़के थे और मुझसे अवस्था में बहुत बड़े थे। सभा में जहाँ मैं बैठा था, वहीं उनको बैठा दिया गया।

अन्त मे सभा मे इस प्रस्ताव पर चर्चा चली । मैं भी कुछ बोलने के लिये खड़ा होने का उपक्रम करने लगा कि बरया जी ने मेरे कुरते का खूँट पकड़ लिया, इससे मै बोलने के लिये खड़ा नही हो सका । मुझसे कहने लगे कि— "अपने पिता जी से पूछ आये हो कि हम उस गजरथ का विरोध कर रहे हैं, जिसमे आपको 'सिंघई' पद से अलंकृत किया गया था । तुम्हें यह शोभा देता है क्या ?"

मै हक्का-बक्का रह गया । अन्त में मेरी भी सम्मति मिलने पर उभय पक्ष द्वारा प. जी को इस विवाद को निपटाने के लिये लिखित फैसला करने का अधिकार दे दिया गया । पं. जी ने दोनो पक्षो के वक्तव्यो के उद्धरण देकर एक फैसला दिया जो 'परवार बन्धु' के विशेषांक के रूप मे प्रकाशित हुआ है । देवगढ़ का पचकल्याणक गजरथ शालीनता से चला । सरसेठ हुकुमचन्द जी भी उसमे पधारे थे । अ. भा. दि. जैन महासभा का अधिवेशन भी उसमें सम्पन्न हुआ था ।

दो अधिवेशनों की हमे खबर है । एक बारचौन में और दूसरा कुरवाई मे हुआ था । बारचौन के अधिवेशन मे पचकल्याणक गजरथ के विषय मे यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया था कि गजरथ के समय समाज को जो पंक्ति भोजन दो बार या तीन बार दिया जाता था वह बन्द किया जाता है । उसका फल यह है कि बाहर से गजरथ मे आने वाले अतिथियों की भोजन व्यवस्था अब गजरथ चलाने वाले के द्वारा नही की जाती है ।

पहिले गजरथ चलाने वाले के द्वारा गजरथ में आने वाले अतिथियों की भोजन की व्यवस्था होती थी । गजरथ चलाने वाला व्यक्ति डेरे-डेरे जाकर आमन्त्रण देता था कि दिन के ३ बजे से लेकर सामूहिक पंक्ति भोजन की व्यवस्था है, उसमें आप सबको सम्मिलित होना है । इसके सिवाय गजरथ चलाने वाले की ओर से घास, लकड़ी, मिट्टी के घड़े, पाल तथा तम्बू खड़ा करने के लिये खूटियाँ और रस्सी देने की व्यवस्था भी रहती थी । अब वह सब व्यवस्था बन्द है । केवल ठहरने के स्थान, पानी तथा रोशनी की व्यवस्था होती है ।

कुरवाई के अधिवेशन के समय बिनैकावालों को मन्दिर में दर्शन करने का नियम बनाया गया था। जिनका आचार अच्छा दिखाई देता था, उन्हें पूजन करने की व्यवस्था भी परवार सभा ने स्वीकार कर ली थी। पूरे समाज का संगठन न बिगड़े इस व्यवस्था को ध्यान में अवश्य रखा गया था, इसलिये इस नियम को प्रत्येक गाँव पर छोड़ दिया गया था। वह अपने गाँव की परिस्थिति को देखकर इस नियम को लागू करने के लिये स्वतन्त्र था।

२०वाँ अधिवेशन खुरई (सागर) में स. सिं. धन्यकुमार जी कटनी वालों की अध्यक्षता में ९, १०, ११, दिसम्बर सन् १९५३ में हुआ था।

मुख्य प्रस्ताव :

उस सभा में ये प्रस्ताव पास हुए थे—

(१) प्रबन्धकारिणी का कोरम १५ सदस्यों का माना जाय।

(२) मुख्य प्रस्तावो को कार्यान्वित कराने के लिये संयोजक बनाये जाएँ और वे उस नगर के उत्साही युवकों का सहयोग लेकर सभा में पास हुए प्रस्तावों का प्रचार करें और उन्हे कार्यान्वित करावें।

(३) परवार डायरेक्टरी बहुत पहले मुद्रित हुई थी, उसका पुनः संशोधन कराया जाय।

(४) पपौरा अधिवेशन में बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश के एक ही केन्द्रीय संगठन को स्थापित करने और जातीय सभाओं को उसमें समाहित करने का प्रस्ताव पास किया गया था तथा इसे कार्यान्वित करने के लिये रामटेक में नैमित्तिक अधिवेशन भी हुआ था। उस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिये एक उपसमिति भी बनाई गई थी। इस उपसमिति को यह दायित्व सौंपा गया था कि यह उपसमिति इस प्रदेश की समस्त उपजातियों के संगठनो व कार्यकर्ताओं से परामर्श करके इस प्रस्ताव के अनुकूल भूमिका तैयार करे।

(५) विवाह-सगाई के विकृत रूप को सुधारने के लिये निम्न उपाय किये गये —

(क) दोनों पक्षों द्वारा ठहराव की निन्दनीय प्रथा को बन्द किया जाय।

(ख) कन्या पक्ष के लोगो को सगाई के समय अपने घर बुलाकर तथा अधिक खर्च कराकर जो सकटपूर्ण स्थिति पैदा की जाती है, उसे यह सभा बन्द करती है ।

(ग) सगाई को पक्का करने के लिये वर पक्ष के भाई कन्या के घर जाये तथा अपनी शक्ति के अनुसार कन्या को जेवर-आभूषण से सुसज्जित कर सगाई पक्की करें ।

(घ) वर पक्ष के जो सज्जन कन्या के घर जाये उनकी विदाई एक रुपये से लेकर पॉच रुपये तक से की जाय । इससे अधिक नही ।

नोट : इस प्रस्ताव पर दो घण्टे तक बहस चली । अन्त मे इसे स्थगित कर रात्रि में इस पर विचार किया गया । रात्रि मे यह सर्वसम्मति से पास हुआ ।

(६) ललितपुर पचायत ने श्री जिन मन्दिरो की आय का ८० प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने का निर्णय लिया है, उसकी प्रशंसा करते हुए सभा समाज से यह अनुरोध करती है कि जिन गाँवों या नगरों के मन्दिरो में वहाँ के मन्दिरों का आवश्यक खर्च होने के बाद यदि आय बचती है तो उसे धर्म-शिक्षा और ग्रन्थ-प्रकाशन आदि उपयोगी कार्यों पर खर्च करे ।

(७) जबलपुर पंचायत ने स. सिं. बेनीप्रसाद जी तथा धनपतलाल मूलचन्द जी को शिक्षाकार्य मे विशेष दान प्रदान करने के लिये क्रमशः जो सेठ व सिंघई पदवी प्रदान की है, उसे यह सभा मान्य करती है ।

(८) इसी प्रकार खुरई में श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार जी तथा स. सिं. गनपतलाल भैयालाल जी गुरहा ने श्री पार्श्वनाथ दि. जैन गुरुकुल को क्रमशः एक लाख और पचहत्तर हजार रुपये का दान दिया है । अतः उन्हें 'दानवीर' पदवी से यह सभा सम्मानित करती है ।

प्रस्ताव पास होने के बाद समाज ने दोनों का टीका किया ।

(९) विवाह और सगाई के अवसर पर रात्रि में किसी प्रकार का भोजन नही होना चाहिये ।

इस प्रकार परवार सभा के २० अधिवेशन हुए।

रामटेक के नैमित्तिक अधिवेशन के समय समस्त उपजातियों का एकता सम्मेलन भी हुआ। परवार सभा की ओर से विज्ञप्ति छपवाकर स्थान-स्थान पर भेजी गई। **वीर सन्देश** नामक एक स्वतन्त्र पत्र भी निकलवाकर प्रचारित किया गया, परन्तु एकता को सफलता नहीं मिली।

इस सभा के प्रधानमन्त्री १. बाबू कन्छेदीलाल जी वकील जबलपुर, २. बाबू कस्तूरचन्द जी वकील, जबलपुर, ३. सिंघई कुंवरसेन जी सिवनी, ४. श्रीमन्त सेठ बिरधीचन्द्र जी सिवनी, ५. सिं. खेमचन्द जी जबेरा, ६. पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री कटनी और ७. स. सिंघई नेमीचन्द दादा जबलपुर हुए। मान्य प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री सन् १९७५ तक प्रधानमन्त्री रहे। वे कुरवाई अधिवेशन में सन् १९४७ में प्रधानमन्त्री पद पर आसीन हुए थे। इस प्रकार लगभग तीस वर्षों तक उन्होने प्रधानमन्त्री का पद सम्हाला। बाद में उनके त्यागपत्र दे देने पर स. सिं. नेमीचन्द जी जबलपुर प्रधानमन्त्री चुने गये। खुरई अधिवेशन के बाद ३०-३५ वर्षों तक सभा का कोई अधिवेशन नही हुआ था। केवल बरगी पंचकल्याणक के समय परवार सभा का अधिवेशन करने का निमन्त्रण मिला था। अध्यक्ष का चुनाव भी हुआ था। पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री अध्यक्ष पद पर चुने गये थे। बाद मे कुछ पारस्परिक मतभेद के कारण अधिवेशन न हो सका। समाज के कर्णधारों ने स्वयं परवार सभा के प्रस्तावों की अवहेलना की। अतः समाज की दृष्टि में सभा की कोई प्रतिष्ठा नही रही और उसका अस्तित्व भी नगण्य हो गया।

अन्य उपजातियों की सभाएँ है या नहीं, पता नही। पर परवार सभा अब भी मन्त्री, सभापति और प्रबन्धकारिणी के आधार पर जीवित है। उसकी रजिस्ट्री सन् १९५३-५४ में कराई गई थी। इसलिये उसका कोष सुरक्षित है। इससे छात्रवृत्ति, असहाय सहायता आदि दी जाती है। इस समय परवार सभा का रुपया लगभग पचास हजार नगद बैंकों में जमा है। उसकी एक तलैया और जमीन है तथा जवाहरगंज, जबलपुर में एक भवन है। मकान की अच्छी कीमत आज मिल सकती है।

'परवार बन्धु' का उद्‌गम

भा. दि. जैन परवार सभा की स्थापना रामटेक में सन् १९१७ के आसपास हुई थी। '**परवार बन्धु**' मासिक पत्र दि. जैन परवार सभा के मुखपत्र के रूप में सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ। सोनागिरजी में परवार सभा का अधिवेशन सन् १९२९ में हुआ और उसमें इसके प्रकाशन की आवश्यकता समझी गई। इसका नाम संस्करण पं. तुलसीराम जी काव्यतीर्थ द्वारा किया गया था। दो वर्ष तक इसके सम्पादक माननीय पं. तुलसीराम जी रहे। इसके बाद प. दरबारीलाल जी न्यायतीर्थ इसके सम्पादक रहे। तत्पश्चात् क्रमशः बाबू कन्छेदीलाल जी वकील, बाबू कस्तूरचन्द जी वकील और बाबू पंचमलाल जी रिटायर तहसीलदार इसके सम्पादक रहे। इसका प्रकाशन जबलपुर से होता था। बाबू छोटेलाल जी एक सज्जन थे, जो 'छोटेलाल जी मास्टर' के नाम से प्रसिद्ध थे। ये 'बन्धु' के प्रकाशक रहे। सन् १९३० तक 'बन्धु' का प्रकाशन होता रहा। 'बन्धु' ने इस काल मे अच्छी प्रगति की। पश्चात् सामाजिक वातावरण को विक्षुब्ध करने वाले कारणो के उत्पन्न हो जाने के कारण 'बन्धु' की प्रगति रुक गई और वह वर्ष ६ अंक २ के बाद बन्द हो गया। दूसरी बार पुनः फरवरी, सन् १९३८ मे बारचोन परवार सभा के अधिवेशन में प्रस्ताव २-३ के द्वारा '**परवार बन्धु**' के पुनः प्रकाशन का निश्चय किया गया। सिवनी के प. सुमेरूचन्द्र जी दिवाकर को सम्पादक बनाया गया। प्रस्ताव पास होने के दो माह बाद आपने अपनी अस्वीकृति दी। इससे प्रकाशन न हो सका।

परवार सभा के प्रस्तावों और उद्देश्यों के प्रचार के लिए पत्र का प्रकाशन आवश्यक समझकर २९-१२-३८ के जबलपुर के परवार सभा के अधिवेशन में प्र. न. ८ के द्वारा उसके प्रकाशन का निर्णय लिया गया और प्रतिभाशाली विद्वान् प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री तथा उदीयमान नवयुवक स. सिं. धन्य-कुमार जी 'कुमार' कटनी— दोनों उसके सम्पादक चुने गये। तदनुसार दोनों सम्पादको के संपादकत्व में फरवरी १९३९ में इसका प्रथम अङ्क बड़ी सजधज के साथ प्रकाशित हुआ। सन् १९३९ में त्रिपुरी (जबलपुर) में स्व. श्री सुभाषचन्द्र जी बोस की अध्यक्षता में 'काँग्रेस' का प्रभावशाली अधिवेशन हुआ। 'बन्धु'

का राष्ट्रीय अंक मई, १९३९ को प्रकाशित हुआ, जो श्रीमान् सुभाषचन्द्र जी बोस, अध्यक्ष त्रिपुरी काँग्रेस को भेट दिया गया। माननीय अध्यक्ष महोदय ने अपनी शुभ सम्मति भी दी, जो जुलाई १९३९ के 'बन्धु' में प्रकाशित हुई।

त्रिपुरी काँग्रेस के अध्यक्ष, देश के गौरव श्री सुभाषचन्द्र जी बोस का 'परवार बन्धु' के लिए शुभ सन्देश

'परवार बन्धु' पढ़ा। पसन्द आया। यह खुशी की बात है कि यह देश के नवयुवकों को स्वाधीनता के संग्राम मे आगे बढ़ने के लिये प्रयत्नशील है और फारवर्ड ब्लाक का समर्थक है।

मेरी शुभकामनाएँ उसके साथ हैं।

जबलपुर ७-६-१९३९ (ह.) **सुभाषचन्द्र बोस**

बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी, राष्ट्रपति भारत सरकार ने भी अपनी शुभकामनाएँ प्रस्तुत कीं।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी जैन भारतीय साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक की सम्मति

'परवार बन्धु' देखा, अच्छा लगा। परवार सभा का यह मुखपत्र है। परवार समाज की उन्नति इसमें है कि वह व्यापक समाज के लिये समर्पित हो। मैं मानता हूँ कि **'परवार बन्धु'** परवार भाइयो में वही भावना प्रतिबिम्बित करेगा, मुझे उस भावना का सेवक गिने।

(ह.) **जैनेन्द्रकुमार**

'परवार बन्धु' यद्यपि जातीय पत्र था, परन्तु उसका सार्वजनिक और साहित्यिक रूप भी था।इससे परवार सभा के अधिवेशनो, प्रबन्ध कारिणी की बैठकों की रिपोर्ट तथा सभा सम्बन्धी सूचनाएँ, सभा के प्रस्ताव और उनका प्रचार आदि उद्देश्य की पूर्ति तो होती ही थी, परन्तु व्यक्ति के लिए आवश्यक धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, साहित्यिक लेखों तथा प्रेरणाप्रद

कविताओ का भी प्रकाशन होता था। समाज के श्री दशरथलाल जी, दद्दूलाल जी, रि. हे. मा. खूबचन्द जी पुष्कल, श्री कविवर भगवत् जैन, श्री श्यामाकान्त पाठक, श्री सुमेरुचन्द कौशल वकील (मंत्री, परवार सभा) श्री सुमेरूचन्द्र जी दिवाकर वकील सिवनी आदि के लेख तो प्रकाशित होते ही थे, साथ ही जैनेतर सम्प्रदाय के भी सुप्रसिद्ध लेखको व कवियों के लेख व कविताएँ प्रकाशित होती थी।

सन् १९४४ तक कुल ६ वर्ष '**परवार बन्धु**' चला। सातवें वर्ष के दो अको के बाद मत्री परवार सभा की आज्ञा से इसे बन्द कर देना पड़ा। उसके बन्द होने मे एक कारण परवार सभा की प्रगति रुक जाना भी है। परवार सभा के प्रमुख कार्यकर्त्ता, सचालक तथा अपना मूल्यवान सहयोग देने वाले सज्जनो ने परवार सभा के प्रस्तावो की अवहेलना की, जिसका प्रभाव समाज पर अच्छा नही हुआ, फलत· सभा और पत्र की साख घट गई और खुरई अधिवेशन के बाद सन् १९५३ से उसके अधिवेशन नही हुए। प्रबन्धकारिणी कमेटी की यदाकदाचित् बैठके होती हैं और कुछ कार्य चलते है। 'बन्धु' का प्रकाशन तो अब बन्द हो गया, परन्तु परवार सभा चालू है। उसकी ओर से छात्रवृत्तियॉं, असहायो और विधवाओ की सहायता आदि कार्य भी चालू है।

सभा के सुयोग्य सभापति स. सिं. धन्यकुमार जी कटनी तथा जबलपुर के सुप्रसिद्ध धनी समाजसेवी स. सि. श्री नेमीचन्द जी (मत्री, परवार सभा) आज भी उसे जीवित रखे है। परवार सभा ने इन वर्षो में समाज की सेवा की और उसे समुन्नत बनाया। परवार सभा और '**परवार बन्धु**' पत्र का यह सक्षिप्त इतिहास है।

परवार सभा के एक प्रस्तावानुसार बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश की सामूहिक सभा की स्थापना के सत्प्रयत्न के लिये परवार सभा के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने एक पाक्षिक पत्र **वीर संदेश** स्वयं निकालकर एक साल प्रकाशित किया, परन्तु उसमें भी सफलता नही मिली।

■

पञ्चम खण्ड : पूज्य मुनि-त्यागीवृन्द

(क) मुनि-आर्यिका एवं क्षुल्लक परिचय

(ख) त्यागी-व्रती परिचय

न्यायाचार्य पूज्य श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

पूज्य १०५ क्षु गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज बुन्देलखण्ड प्रान्त के सर्वमान्य प्रमुख त्यागी एव विद्वान् थे। परवार जैन समाज पर उनका अपूर्व उपकार है। अतः इस अवसर पर उनका पुण्यस्मरण करना हमारा प्राथमिक कर्तव्य है।

—प्रकाशक

आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज

जन्मतिथि - शरद पूर्णिमा स २००३ बालक विद्याधर

जन्म स्थान- सदलगा (बेलगाव)

पितृ नाम - मल्लपा जी (मुनि श्री मल्लिसागर जी)

मातृ नाम - श्रीमती जी (आर्यिका समय मती जी)

भ्राता तीन समयसागर योगसागर

बहिन दो-दोनो ब्रम्हचारिणी

जाति - चतुर्थ गोत्र -अष्टगे

मुनिदीक्षा - असाढसुदी ५ स २०२५ अजमेर मे

आचार्य पद- नसीराबाद अगहन वदी २ सवत २०२९

भाषाओ का ज्ञान-हिन्दी, कन्नड, सस्कृत, प्राकृत, अग्रेजी मराठी, अपभ्रश, बगला, आठ भाषाएँ।

(क) मुनि-आर्यिका एवं क्षुल्लक परिचय :

आचार्यश्री १०८ विद्यासागर जी महाराज की गुरु-परम्परा एवं संघस्थ मुनि-त्यागीवृन्द

१. आचार्यश्री १०८ चारित्रचक्रवर्ती शांतिसागर जी महाराज

२. आचार्यश्री १०८ श्री वीरसागर जी महाराज

३. आचार्यश्री १०८ श्री शिवसागर जी महाराज

४. आचार्यश्री १०८ बालब्रह्मचारी श्री ज्ञानसागर जी महाराज

५. आचार्यश्री १०८ बालब्रह्मचारी विद्यासागर जी महाराज

१. मुनिश्री १०८ समयसागरजी
२. मुनिश्री १०८ योगसागरजी
३. मुनिश्री १०८ नियमसागरजी
४. मुनिश्री १०८ चेतनसागरजी
५. मुनिश्री १०८ क्षमासागरजी
६. मुनिश्री १०८ गुप्तिसागरजी
७. मुनिश्री १०८ संयमसागरजी (समाधिस्थ)
८. मुनिश्री १०८ वैराग्यसागरजी (समाधिस्थ)
९. मुनिश्री १०८ सुधासागरजी
१०. मुनिश्री १०८ समतासागरजी
११. मुनिश्री १०८ स्वभावसागरजी
१२. मुनिश्री १०८ समाधिसागरजी
१३. मुनिश्री १०८ सरलसागरजी
१४. मुनिश्री १०८ प्रभावसागरजी
१५. मुनिश्री १०८ आर्जवसागरजी
१६. मुनिश्री १०८ मार्दवसागरजी
१७. मुनिश्री १०८ पवित्रसागरजी
१८. मुनिश्री १०८ उत्तमसागरजी
१९. मुनिश्री १०८ चिन्मयसागरजी
२०. मुनिश्री १०८ पावनसागरजी
२१. मुनिश्री १०८ सुखसागरजी

■

१. ऐलक श्री १०५ निशंकसागरजी
२. ऐलक श्री १०५ दयासागरजी
३. ऐलक श्री १०५ अभयसागरजी
४. ऐलक श्री १०५ सम्यक्त्वसागरजी

५. ऐलक श्री १०५ मंगलसागरजी
६. ऐलक श्री १०५ वात्सल्यसागरजी
७. ऐलक श्री १०५ निश्चयसागरजी
८. ऐलक श्री १०५ उदारसागरजी
९. ऐलक श्री १०५ निर्भयसागरजी

१. आर्यिका श्री १०५ गुरुमतिजी
२. आर्यिका श्री १०५ दृढ़मतिजी
३. आर्यिका श्री १०५ मृदुमतिजी
४. आर्यिका श्री १०५ ऋजुमतिजी
५. आर्यिका श्री १०५ तपोमतिजी
६. आर्यिका श्री १०५ सत्यमतिजी
७. आर्यिका श्री १०५ गुणमतिजी
८. आर्यिका श्री १०५ जिनमतिजी
९. आर्यिका श्री १०५ निर्णयमतिजी
१०. आर्यिका श्री १०५ उज्ज्वलमतिजी
११. आर्यिका श्री १०५ पावनमतिजी
१२. आर्यिका श्री १०५ प्रशान्तमतिजी
१३. आर्यिका श्री १०५ पूर्णमत्तिजी
१४. आर्यिका श्री १०५ अनन्तमतिजी
१५. आर्यिका श्री १०५ विमलमतिजी
१६. आर्यिका श्री १०५ शुभ्रमतिजी
१७. आर्यिका श्री १०५ कुशलमतिजी
१८. आर्यिका श्री १०५ निर्मलमतिजी
१९. आर्यिका श्री १०५ साधुमतिजी, रायपुर
२०. आर्यिका श्री १०५ शुक्लमतिजी
२१. आर्यिका श्री १०५ साधनामतिजी, रायपुर
२२. आर्यिका श्री १०५ विलक्षणमतिजी
२३. आर्यिका श्री १०५ धारणामतिजी
२४. आर्यिका श्री १०५ प्रभावनामतिजी
२५. आर्यिका श्री १०५ भावनामतिजी
२६. आर्यिका १०५ श्री चिन्तनमतिजी
२७. आर्यिका १०५ श्री वैराग्यमतिजी

■

१. क्षुल्लकश्री १०५ चारित्रसागरजी
२. क्षुल्लकश्री १०५ ध्यानसागरजी
३. क्षुल्लकश्री १०५ प्रसन्नसागरजी
४. क्षुल्लकश्री १०५ नयसागरजी
५. क्षुल्लकश्री १०५ गम्भीरसागरजी
६. क्षुल्लकश्री १०५ धैर्यसागरजी

७. क्षुल्लकश्री १०५ निसर्गसागरजी
८. क्षुल्लकश्री १०५ चन्द्रसागरजी
९. क्षुल्लकश्री १०५ सिद्धान्तसागरजी (समाधिस्थ)

विशेष : इस सूची के अन्तर्गत उल्लिखित अनेक मुनि और त्यागीवृन्द परवार जैन समाज के है ।

मुनिश्री १०८ अरहसागरजी

(जन्म स्थान : टीकमगढ़, म. प्र.)

बाल्यकाल से ही विषय-वासनाओं से आप विरक्त थे, आपने विवाह नही किया, बालब्रह्मचारी रहे । आपका अध्ययन तो सामान्य है, परन्तु सत्संगति से आपमे विवेक जागा । आपने जीवनभर के लिए नमक, तेल, दही का सर्वथा त्याग कर रखा है । आपने पन्ना, टूंडला, मेरठ, ईसरी, बाराबंकी, बड़वानी, कोल्हापुर, सोलापुर, ईडर, सुजानगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये हैं । आप आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी के महाराज के संघ में सबसे पुराने दीक्षित मुनि हैं ।

मुनिश्री १०८ मधुसागरजी

आप आचार्य श्री १०८ विमलसागर जी महाराज के संघस्थ मुनि हैं ।

मुनिश्री १०८ चिदानन्दसागरजी

आप आचार्यश्री १०८ विमलसागर जी महाराज के संघस्थ मुनि हैं ।

मुनिश्री १०८ बोधिसागरजी

(जन्मस्थान : मलखेड़ा, हप्पा, रायसेन, म. प्र.)

आपकी वृत्ति त्यागोन्मुखी थी ।

मुनिश्री १०८ शीतलसागरजी

(जन्मस्थान : वीरपुर, भोपाल, म. प्र.)

विदुषी आर्यिका श्री १०५ विमलमतीजी

(जन्म : वि. सं. १९६२, मुँगावली, शाहगढ़, म. प्र.)

आर्यिका श्री १०५ सुशीलमतीजी

आत्महितकारिणी आर्यिका श्री १०५ सिद्धमतीजी

(जन्म : वि. सं. १९९०, भोपाल, म. प्र.)

क्षुल्लक श्री १०५ गुणभद्रजी

(जन्मस्थान : खिरटौन, टीकमगढ़, म. प्र.)

क्षुल्लक श्री १०५ पूर्णसागरजी

(जन्म : वि. सं. १९५५, रायगढ़, दमोह, म. प्र.)

आप अपने कर्तव्य पालन मे पूर्ण निष्ठावान और मध्ययुगीन पुरानी सामाजिक परम्परा के समर्थक थे। आपने दिल्ली में एक केन्द्रीय महासमिति की स्थापना की थी और उसके द्वारा अन्य संस्थाओं की सहायता करते रहते थे।

क्षुल्लक श्री १०५ सुमतिसागरजी

(जन्म : वि. सं. १९६२, सिरौंज, म. प्र.)

आप तत्वज्ञान के विशिष्ट अभ्यासी थे।

(ख) त्यागी-व्रती परिचय :

स्व. मान्य ब्र. गोकुलप्रसादजी

जबलपुर मण्डलान्तर्गत सिहोरा तहसील में 'मझौली' नामक ग्राम है। स्व. मान्य ब्र. गोकुलप्रसाद जी अपनी गृहस्थावस्था में 'इन्दराना' जो उनके

पूर्वजों की निवास भूमि थी, से चलकर 'मझौली' में बस गये थे। वहाँ ग्रामीण ढंग का व्यवसाय-कृषि कार्य करते थे। एक दो गाँव की जमींदारी भी उनके पास थी।

'मझौली' में एक सज्जन रहते थे। उनके साथ उनकी अनबन थी। इस कारण मुकदमे-मामले भी चलते थे। कुछ समय बाद उन्हें मुकदमा लड़ने का व्यसन हो गया। इसलिये ये उसी में बरबाद हो गये थे।

बाद में इस गाँव को छोड़कर सिवनी मण्डलान्तर्गत पिण्डरई ग्राम में सिवनी निवासी सेठ कपूरचन्द टेकचन्द की दुकान पर मुनीमी करने लगे।

परिस्थिति परिवर्तन से उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। पिण्डरई में पं. पल्टूराम जी पुजारी थे। उनके सहवास से स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़ गई और अच्छा ज्ञान अर्जित कर लिया।

वि. सं. १९६६ में सिवनी के श्रीमन्त सेठ पूरनसाह जी के द्वारा स्वयं की ओर से सम्मेद शिखरजी पर निर्मापित दि. जैन विशाल मन्दिर की बृहत् पंचकल्याण प्रतिष्ठा व गजरथ महोत्सव का आयोजन हुआ था। श्रीमन्त सेठ सा. ने अपनी ओर से उन्हें (मान्य श्री गोकुलप्रसादजी को) सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्र पर प्रतिष्ठा के प्रबन्ध के लिए भेज दिया। वहाँ वे दो माह रहे, किन्तु वहाँ के दूषित जल के कारण वे अपनी सहधर्मिणी को खो बैठे। इन सब परिस्थितियों के कारण प्राप्त ज्ञान के बल से वे गृहत्याग कर ब्रह्मचारी हो गये।

अन्त में उन्होंने कुण्डलपुर सिद्धक्षेत्र पर मूल नायक भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति (बड़े बाबा) के सान्निध्य में सप्तम प्रतिमा के व्रत स्वीकार कर लिये और घर का भार अपने भतीजे को सौंप दिया।

उनके एक मात्र सुपुत्र पं. जगमोहनलालजी शास्त्री हैं, जिन्हें अपने मौसेरे भाई स. सिं. कन्हैयालाल गिरधारीलालजी कटनी को सौंप दिया। उन्होंने भी पं. जी को कुछ दिनों तक कटनी में रखकर मुरैना में गुरुवर्य स्व. पं.

गोपालदासजी बरैया के पास सिद्धान्त का अध्ययन कराया। यह समय सन् १९२० के आसपास का होगा।

एक जलयात्रा महोत्सव मे ब्र. गोकुलप्रसादजी ने त्यागी-ब्रह्मचारियो का समाज में अनादर भाव देखा और अनुभव किया कि चारित्र का अनादर समाज को रसातल मे ले जाने का मार्ग है। उस समय समाज में कोई त्यागियों का आश्रम नही था, अतः त्यागी स्वयं यत्र-तत्र विहार करते थे तथा समाज से आने-जाने का खर्च भी लेते थे। यही कारण था कि त्यागियों की अर्थवृत्ति अनादर का कारण बनी हुई थी।

इस परिस्थिति को समझकर ब्रह्मचारी जी ने विचार किया कि त्यागियो की अपनी धर्मसाधना के लिए एक उदासीनाश्रम अवश्य होना चाहिये, जहाँ वे अर्थवृत्ति छोड़कर तथा निश्चिन्त होकर त्याग-तपस्या की साधना करें। फलतः उन्होंने कुण्डपुर सिद्धक्षेत्र पर महावीर उदासीनाश्रम की स्थापना की। समाज ने भी उसमें सहयोग दिया और दस हजार रुपयों में उदासीनाश्रम का संचालन होने लगा।

उसकी अभिवृद्धि के लिए ब्रह्मचारीजी इन्दौर में होने वाले महोत्सव में गये तथा वहाँ होने वाली सभा में खड़े होकर कुछ बोलना चाहते थे कि सर सेठ हुकुमचन्द जी ने उन्हें इसलिये रोका कि ये भी अन्य त्यागियों के समान खर्च के लिये कुछ माँगने के लिये खड़े हो गये हैं। यह देखकर सेठजी के पास रहने वाले ब्र. दरयावसिंह जी सोधिया ने सेठ जी से कहा कि आप इनसे परिचित नहीं हैं। ये बहुत योग्य संयमी पुरुष हैं। इनकी बात अवश्य सुनी जानी चाहिये।

अन्त में सेठजी ने स्वयं ब्रह्मचारीजी से बोलने का आग्रह किया। योग्य अवसर नहीं चूकना चाहिये, यह सोचकर ब्रह्मचारी जी ने खड़े होकर वर्तमान युग में त्याग की महत्ता तथा समाज में त्यागियों के लिए एक आश्रम की आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

ब्रह्मचारीजी की यह बात सबको अच्छी लगी तथा ग्यारह-ग्यारह हजार रुपये सर सेठ हुकुमचन्दजी, सेठ कल्याणजी और सेठ कस्तूरचन्दजी ने देना स्वीकार किये तथा इन्दौर में ही त्यागियों के लिये उदासीनाश्रम-स्थापना की ब्रह्मचारी जी से प्रार्थना की।

ब्रह्मचारीजी ने कहा कि आप लोग ही इन्दौर में आश्रम की स्थापना करे। मैं कुण्डलपुरजी के आश्रम की स्थापना का आश्वासन देकर समाज से दस हजार रुपये का दान ले चुका हूँ।

यह सुनकर सेठजी मन टटोलते हुए बोले कि हमारे यहाँ आश्रम स्थापित करने से आपको क्या मिला। आपका यहाँ आना व्यर्थ हुआ।

यह सुनकर ब्रह्मचारी जी ने कहा कि —"हमें दूना लाभ हुआ। एक आश्रम स्थापित करना चाहते थे सो दो का लाभ हुआ"। सेठजी इस उत्तर से बहुत अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने प्रार्थना की कि पहले यहाँ कुछ दिन रहकर आप इस आश्रम को संचालित कर दें, बाद में कुण्डलपुर जायें।

ब्रह्मचारीजी ने इसे स्वीकार कर लिया। इससे इन्दौर में दि. जैन उदासीनाश्रम की स्थापना हो गई। इन्दौर में स्थापित हुए उदासीनाश्रम का चार माह संचालन कर समागत ब्रह्मचारियों में से योग्यतम ब्रह्मचारी श्री अगरचन्दजी व पन्नालालजी गोधा को आश्रम के संचालन का भार देकर वहाँ से कुण्डलपुर आ गये और वहाँ भी उदासीनाश्रम की स्थापना कर उसका विधिपूर्वक संचालन किया। आश्रम के नियमों में उन्होंने इनको मुख्यरूप से स्थान दिया।

१. ब्रह्मचारीगण यहाँ रहें। बुलाने पर समाज में जाएँ। वहाँ इन बातों का प्रचार करें— अभक्ष्य और मिथ्यावाद त्याग करावें, जल छानने की क्रिया बतावें, रात्रि-भोजन का त्याग करावें, प्रति दिन जिनदर्शन को कहें, यथासम्भव पूजन की प्रतिज्ञा करावें, बालकों को धर्म-शिक्षा मिले, इसकी यथासम्भव व्यवस्था करावें।

२. तीन दिन के भोजन की सामग्री लेकर समाज में जायें तथा इस लायक बरतन भी साथ में लेकर चलें।

३. अपना सामान लेकर चलने के लिये दूसरों को न कहें।

४. चन्दा न माँगें तथा भेट भी न लें।

५. भोजन का सादर निमन्त्रण मिलने पर भोजन को जाएँ, अन्यथा अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करें। सामान समाप्त होने पर वहाँ आश्रम के खर्च से सामान तैयार करा ले।

इससे बुन्देलखण्ड को बहुत लाभ हुआ। आज इस प्रदेश मे जो खान-पान की शुद्धि और सदाचार दिखाई देता है वह उनकी देन है।

इस कार्य के लिये उन्हे एक योगदान और मिला। वह इस प्रकार कि मान्य स्व. पं. गणेशप्रसाद जी (बड़े वर्णीजी) शिक्षा पूर्णकर सागर आ गये थे। वर्णी जी की त्यागवृत्ति और प्रतिभा को देखकर ब्रह्मचारी ज़ी ने सोचा कि ऐसे विद्वान् त्यागी हो तो समाज मे धर्म का प्रसार अच्छा हो सकता है। इसलिये उनसे अनुरोध किया जाये।

इस निमित वे कुण्डलपुर से सागर को जा ही रहे थे कि मार्ग में दमोह की धर्मशाला में अचानक बड़े वर्णी जी से भेट हो गई। परस्पर के वार्तालाप से जाना कि बड़े वर्णी जी स्वयं उनसे व्रतो की दीक्षा लेने के लिये सागर से कुण्डलपुर के लिये रवाना हुए हैं।

यह संयोग की बात है कि दो महात्माओं के मन में एक साथ एक से विचार उदित हुए। दोनो कुण्डलपुर आ गये और बड़े बाबा (मूल नायक) के समक्ष ब्रह्मचारी जी ने बड़े वर्णी जी को सप्तमप्रतिमा के व्रतों की दीक्षा दी। इससे वे सचमुच में 'बड़े वर्णी जी' बन गये। इसके पहले वे पण्डित जी थे।

परस्पर यह महत्त्वपूर्ण योग हुआ और समाज में धर्म का प्रचार साथ-साथ चलता रहा। बड़गाँव की एक घटना है। वहाँ के ५० घर तीन पीढ़ी से समाज से बहिष्कृत चले आ रहे थे। दोष यह था कि तीन पीढ़ी पूर्व के बुजुर्ग ने समाज की आज्ञा की अवहेलना की थी। पूज्य बड़े वर्णी जी के सहयोग से ब्रह्मचारीजी ने उनका उद्धार किया। इस घटना का उल्लेख बड़े वर्णी जी ने **मेरी जीवन गाथा** में भी किया है।

उस समय गाँव में मन्दिर न था, इसलिये उन दोनों के अनुरोध से उस समुदाय के मूल पुरुष श्री रघुनाथप्रसाद नारायणप्रसाद जी ने मन्दिर बनवाना तथा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाना स्वीकार किया और गाँव में पाठशाला खोलने के लिये दस हजार रुपये देना स्वीकार किये ।

इस प्रकार इन दोनों ने धर्मप्रचार, समाजोद्धार तथा सदाचार के कार्यों को निरन्तर चालू रखा ।

सन् १९२३ के मध्य राजगढ़ नामक एक ग्राम में पूज्य ब्रह्मचारीजी सहसा बीमार हो गये । उनके सुपुत्र उस समय मुरैना और बनारस से पढ़कर आ गये थे, वे उन्हें जबलपुर ले गये । वहाँ दो दिन उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर समाधि ले ली । तीसरे दिन ज्येष्ठ शुक्ला ८ वि. सन् १९२३ को वे स्वर्गवासी हुए ।

यह है पूज्य ब्रह्मचारी गोकुलप्रसाद जी की जीवनी । उन्होंने अपने जीवन काल में जो इन्दौर और कुण्डलगिरि क्षेत्र पर दो आश्रम स्थापित किये थे, वे अद्यावधि सुचारु रूप से चल रहे हैं ।

स्व. ब्र. जी ने अपने जीवन में एक और विशिष्ट कार्य किया है, उसका उल्लेख करनां भी आवश्यक है ।

शताब्दी की ऐतिहासिक घटना :

सन् १९१७ के आसपास की यह घटना है । कटनी से करीब ४० मील दूर सतना मार्ग पर मैहर नाम का हिन्दू तीर्थ है । मैहर एक स्वतन्त्र स्टेट रही है । यहाँ पहाड़ी पर एक शारदा देवी का मन्दिर है, जिस पर प्रतिवर्ष देवी के सामने सात-आठ हजार बकरों का बलिदान होता था । इसे बन्द कराने की दृष्टि से ब्रह्मचारी जी वहाँ के राजा से मिले और यह कहा कि हिन्दू धर्म की दृष्टि से भी बलिदान की प्रथा गलत है । महाराजा मैहर का कहना था कि हिन्दू धर्म के सुप्रसिद्ध विद्वान् यदि इसे गलत मानते हों तो इसे बन्द किया जा सकता है । ब्र. जी ने हिन्दुस्तान के सुप्रसिद्ध हिन्दू विद्वानों के मत संग्रह करने के

लिए भ्रमण किया और करीब दो सौ विद्वानो के मत संग्रह किये। जिनमे उनकी सम्मति का उल्लेख था कि बलिदान प्रथा हिन्दू धर्म सम्मत नही है और वे सब प्रमाण महाराज मैहर के समक्ष उपस्थित किये। महाराज ने बलिदान बन्द करने का आदेश दिया। इस पर से वहाँ के पण्डों/ब्राह्मणो ने इतराज किया। राजा ने अपने सभाकक्ष मे उन पण्डों को बुलवाया। ब्रह्मचारी जी भी वहाँ उपस्थित हुए। मन्दिर के पण्डों ने एक कल्पित सर्प बनवाकर उसे इस ढग से छोड़ा कि सामने के पण्डों की लाइन मे सर्प पहुँच जाये। सामने के पण्डों ने उसे छिपा लिया और महाराजा सा. से कहा कि देवी ने सर्प के रूप मे यह सूचना दी है कि बलिदान प्रथा बन्द करोगे तो राज्य पर विपत्ति आयेगी। इस घटना से महाराज सा. कुछ विचलित हुए। ब्र. जी को आन्तरिक विश्वास था कि यह सब कल्पित है, इसलिये उन्होने महाराजा सा. से निवेदन किया कि सभाकक्ष के सभी दरवाजे बन्द करा दिये जायें, जिससे कोई बाहर आ-जा न सके। ऐसा ही किया गया और पण्डो की तलाशी ली गई तो कल्पित सर्प मिल गया। इस पर महाराजा साहब पण्डो पर बहुत कुपित हुये और उन्होंने बलिदान प्रथा बन्द करने का आदेश कड़ाई के साथ प्रसारित किया। यह बलिदान आज भी पिछले ७५ सालो से बन्द है। यह ब्र. जी के जीवन की एक विशेष उपलब्धि है।

ब्र. पं. दरयावलाल सोधिया, गढ़ाकोटा

आप ब्र. गोकुलप्रसाद जी के युग के एक उदासीन त्यागी विद्वान् थे। इन्दौर आश्रम की स्थापना के पूर्व आप श्रीमन्त सर सेठ हुकुमचन्दजी के पास धर्म व शिक्षा देने व स्वाध्यायादि कराने हेतु उनके पास रहते थे। इनका समय संवत् १९७०-७५ के लगभग का है। सोधिया जी निर्भीक और आगम के अच्छे ज्ञाता थे। आपने हिन्दी में प्रथमबार श्रावकों की चर्चा आदि के लिये विस्तृत रूप में **श्रावक धर्म संग्रह** नाम का ग्रन्थ भी लिखा था। आप विक्रम की बीसवीं सदी के एक प्रमुख विद्वान् व त्यागी थे।

ब्र. छोटेलालजी

(जन्म : १८७४ ई. नरयावली, सागर, म. प्र.)

आप रोचक वक्ता और समाजसेवी थे। उदासीनाश्रम इन्दौर और ईसरी के अधिष्ठाता रहे तथा व्रती संघ के मंत्री पद का कार्य भी इन्होंने किया था। वर्णीजी से इनका अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनमें विशेष श्रद्धा थी।

जैनदर्शन के उत्कृष्ट विद्वान् स्व. डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन आपके सुपुत्र थे।

ब्र. छोटेलाल वर्णी

(जन्म : १८७४ ई, नरसिंहपुर, म. प्र.)

धर्माध्यापक के पद पर कार्य करते हुए आपने देश और समाज के हित मे खादी प्रचार, राष्ट्रीय सेवको की सेवा, जैन समाज की बिखरी शक्ति और समाज का संघटन, चैत्यालयो व मन्दिरो की स्थापना जैसे अनेक कार्य किये है।

ब्र. पंडित सरदारमल जैन 'सच्चिदानन्द'

(जन्म : सं. १९६५, सिरौंज, विदिशा, म. प्र.)

आप एक समाजसेवी, साहित्यकार तथा साधक व्यक्ति थे।

आप सिरौंजकी विविध संस्थाओं के संचालक, अध्यक्ष, मंत्री एवं सदस्य रहे तथा १९४० में मेम्बर लेजिस्लेटिव कौंसिल टोंक स्टेट, १९४२ में म्युनिसिपल बोर्ड सिरौंज के वाइस चेयरमैन तथा कोटा डिवीजन साल्ट मर्चेन्ट एसो. के डायरेक्टर रहे। इसके अलावा आप प्रान्तीय परवार सभा के उपाध्यक्ष तथा विभिन्न जैन परिषदों के सदस्य भी रहे हैं। आपने ही महावीर जयन्ती की आम छुट्टी करवाई तथा बाल-वृद्ध-विवाह निषेध बिल पास करवाया। म्युनिसिपल बोर्ड से महावीर जयन्ती के दिन जीव हत्या बन्द करवाई तथा जैन समाज मे वेश्या-नृत्य की कुप्रथा बन्द कराई और कुदेवादि

पूजा रूप मिथ्यात्व को छुड़ाया। स्टेट स्कूलो मे छात्रों को नैतिक शिक्षा के रूप मे जैनधर्म की शिक्षा अनिवार्य करवाई।

ब्र. लक्ष्मीचन्द्र जी वर्णी

ये स्वभाव के निर्भीक, निर्लोभी, सेवाभावी और कर्तव्यपरायण थे। यों तो ये श्री १०८ आ. सूर्यसागर महाराज की सेवा में अनवरत लगे रहते थे, परन्तु उनके समाधिमरण के समय इन्होने जिस निष्ठा से उनकी सेवा की है, उसका दूसरा उदाहरण इस काल मे मिलना दुर्लभ है।

ये प्राय- यत्र तत्र भ्रमण करते हुए धर्मप्रचार मे लगे रहते थे। इनकी भोजन-व्यवस्था आडम्बर-शून्य और मनोवृत्ति सेवापरायण थी, इसलिये जहाँ भी ये जाते थे, वहाँ की जनता इन्हे छोड़ना नही चाहती थी। सक्षेप मे ऐसा सेवाभावी, निरहकारी और त्यागी होना इस काल मे दुर्लभ है।

ब्र. लखमीचन्द जी, ईसरी

(जन्म . संवत् १९७१, जिला- नरसिंहपुर)

आप जिनेन्द्र भक्तिरस पगे पदो को बड़ी ही भावातिरेक शैली मे गाते थे और उनके भावार्थो पर घण्टो मनन किया करते थे। उसका परिणाम यह हुआ कि आपके हृदयस्थल पर विरक्ति के अकुर अकुरित होने लगे और गृह त्यागकर आत्मस्वभाव की ओर उन्मुख हो गये। आप अधिकतर पार्श्वनाथ उदासीनाश्रम, ईसरी मे रहे। वही पर अध्ययन-मनन-चिन्तन कर तत्त्वाभ्यास करते रहे।

स्व. दीपचन्द्र जी वर्णी

(जन्म : माघ शुक्ला ५, वि. सं. १९३६, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, म. प्र.)

ये स्वभाव से बड़े निर्भीक और कर्तव्यनिष्ठ थे। लेखक और वक्ता भी उत्कृष्ट कोटि के थे। सागर विद्यालय व दूसरी संस्थाओ की साज-सम्हाल

स्व. दीपचन्द्रजी वर्णी

करना और समाज की सेवा करते रहना यही इनकी दिन-चर्या थी। संक्षेप में ऐसा निष्ठावान्, समाजसेवी और त्यागी होना दुर्लभ है। फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा, वि. सं. १९९४ को समा-धिपूर्वक इन्होने इह-लीला समाप्त की थी। पूज्य वर्णी जी मे इनकी विशेष भक्ति होने से इनका अधिकतर समय उन्ही के सान्निध्य मे व्यातीत हुआ। आपके छोटे भाई ब्र. छोटेलाल जी उनके ही पथानुगामी है, जो इस समय अहमदाबाद मे है।

ब्र. चिरंजीलाल जी

(जन्म : वि. सं. १९५६, विदिशा, म. प्र.)

आप आचार्य जयसागर जी के संघस्थ ब्रह्मचारी है। आपका अधि-कांश समय भजन, पूजन और शास्त्र-स्वाध्याय मे व्यतीत होता है।

ब्र. पंडित चुन्नीलाल काव्यतीर्थ

(जन्म . १८७७ ई., सिरगन, ललितपुर, उ. प्र.)

आपने ५३ वर्षो तक विभिन्न जैन विद्यालयो मे सेवा की है एव बड़नगर मे स्थित १५० व्यक्तियो को जैनधर्म से विमुख होने से बचाया है ।

ब्र. नाथूराम जी

(जन्म · वि. सं. १९६९, दरगुवाँ, म. प्र.)

आप स्वाध्यायी विद्वान् थे । आपने आगम का गहन अध्ययन किया था ।

ब्र. धरमदास जी जैन बजाज, टीकमगढ़

आपका अध्ययन कम था, किन्तु आप अनुभवशील और कुशाग्रबुद्धि थे ।

टीकमगढ़ स्टेट के राजा सा से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था, अत दरबारी भी रहे है ।

ब्र. धरमदासजी जैन बजाज, टीकमगढ़

टीकमगढ़ स्टेट मे बगावत के समय आपने सेनानी बनकर काम किया था । जिससे आपको राज्य का कोषाध्यक्ष नियुक्त किया गया था। स्टेट के समय आप नगरपालिका मेम्बर भी रह चुके है । छोटी उम्र से ही धर्म के प्रति रुचि थी । अतः पूजन एव शास्त्र-स्वाध्याय आदि नियम से करते थे । अन्त में आपने ब्रह्मचर्य व्रत धारण

किया एवं प्रतिमाओ के पालने का नियम ले लिया और धार्मिक जीवन व्यतीत करते रहे।

ब्र. कस्तूरचन्द्र जी नायक

(जन्म : संवत् १९५३)

ब्र कस्तूरचन्द्र जी नायक

आपके पिताजी का नाम सिघई किशोरसिह नायक था। आप बाल्य-काल से ही निष्ठावान् एव बुद्धिमान थे। स्वर्गीय श्री पुसऊलाल जी पंडित जैन समाज मे प्रसिद्ध थे। उनके पास इनकी व्याकरण व धार्मिक शिक्षा हुई थी। आपके जीवन मे अनेक मार्मिक घटनाएँ घटी, किन्तु नायक जी अपनी धार्मिक प्रवृत्ति मे लीन रहे और सभी उपसर्गों को सहजतापूर्वक सहते रहे। नायक जी के ५ पुत्र एवं १ पुत्री है, जो सभी धार्मिक है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुमतिबाई धार्मिक प्रवृत्ति की थी। दोनो ने पूज्य आचार्य श्री शातिसागर जी महाराज के संघ में जाकर साधुओ को अनेको बार आहारदान दिया। नायक जी समाज के प्रतिष्ठित एवं बहुमान्य विद्वान् थे।

पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी का जब सन् १९४५ मे जबलपुर मे चातुर्मास हुआ तब नायक जी एवं उनकी पत्नी ने वर्णीजी से सप्तम प्रतिमा की दीक्षा ले ली थी। नायक जी प्रतिदिन लार्डगंज जैन मन्दिर जी मे शास्त्र प्रवचन करते थे। आप तत्त्वचर्चा में प्रश्नों का सरलतापूर्वक समाधान करते थे। आपने बालकों को धर्मशिक्षा देने हेतु कक्षाएँ भी चलाई है।

जबलपुर मे सन् १९४५ मे ही पूज्य वर्णीजी ने जैन गुरुकुल की स्थापना की, उसमे सर्वप्रथम नायक जी ने अपने चौथे पुत्र निर्मल को प्रवेश दिलाया था। सप्तम प्रतिमा ग्रहण करने के बाद आप अपना सम्पूर्ण समय जैनधर्म की सेवा मे लगाने लगे। वर्णी जी की प्रेरणास्वरूप आपने सर्वप्रथम '**अध्यात्म कुंजी**' एव '**सुख की खोज**' नामक दो पुस्तको की रचना की। तदुपरान्त सात साल के अटूट प्रयास से '**सरल जैन रामायण**' लिखी, जो चार काण्डो मे विभक्त है। यह काव्य रूप मे है, जिसको गायन-वादन के साथ पढ़ा जा सकता है। इसके छपवाने मे स. सिं. रतनचन्द्रजी (फर्म. स. सि. धनपतलाल मूलचन्दजी) ने पूर्ण व्यय किया था।

कुछ लेखन आपका और भी है, किन्तु वह अप्रचारित है। नायक जी के पास दृष्टान्तो का बृहत् सग्रह था। उन दृष्टान्तो का बीच-बीच मे उल्लेख करने से उनका व्याख्यान बड़ा रोचक होता था। आपने दिल्ली, खुरई, सहारनपुर, सागर, ललितपुर आदि मे चार्तुमास किया। इस तरह अपने जीवन को सार्थक बनाते हुये आपने समाधिपूर्वक सन् १९५७ मे महाप्रयाण किया।

ब्र. लक्ष्मीचन्द जी, जबलपुर

ब्र. लक्ष्मीचन्द जी, जबलपुर

आप मूलतः मण्डला के निवासी है। आपने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण कर ली है। तीर्थक्षेत्र पिसनहारी मढ़िया जी मे आपने लगभग पच्चीस वर्ष पूर्व वर्णी व्रती आश्रम की स्थापना की थी। आजकल आपके सुपुत्र श्री अनन्तकुमार जैन जबलपुर में साड़ियो का थोक व्यापार करते हुये 'लक्ष्मी भण्डार' एवं 'नवनीत ब्रदर्स' प्रतिष्ठानो का सफल संचालन कर रहे हैं तथा समाजसेवा मे सलग्न हैं।

ब्र. पं. भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री, बाँदरी (सागर)

आदरणीय पंडितजी पुरानी पीढ़ी के विद्वान् हैं। आपने सागर, जबलपुर और ललितपुर आदि मे सम्पन्न **षट्खण्डागम** वाचनाओ मे सक्रिय भाग लिया है। देशभक्त एव स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी हैं, अनेक स्थलो पर स्वयं जाकर मुनिजनो को रुचि पूर्वक स्वाध्याय कराया है। धवला (षट्खण्डागम) के ११ वे एव १२ वे भाग का सारांश लिखा है तथा उसी के ९ वे एव १० वे भागों का साराश लिख रहे है। इनके स्वाध्याय से मूल ग्रन्थ को पढ़ने एव समझने मे सरलता होगी। आप सप्तम प्रतिमाधारी है। अनेक वर्षो तक जबलपुर उदासीन आश्रम मे अधिष्ठाता पद पर रहे हैं। न्याय की पुस्तिका **आलाप पद्धति** का भी हिन्दी अनुवाद किया है। इस वृद्धावस्था मे भी आपकी रुचि स्वाध्याय, पठन-पाठन एव समाजसेवा मे है।

ब्र. अमीरचन्द्र बड़कुर, करेली

आप त्यागी, दानी और साधक पुरुष थे। आपका जन्म ९० वर्ष पूर्व करेली (म. प्र.) मे हुआ था। ५० वर्ष की उम्र मे आपने पूज्य वर्णी गणेशप्रसाद जी से ब्रह्मचर्य तथा तीसरी प्रतिमा के व्रत लिये थे और उनके साथ अन्त तक रहे। उनके स्वर्गवास के बाद इन्दौर व मड़िया जी जबलपुर एव द्रोणगिरि के आश्रमों मे रहकर अपनी साधना करते रहे। अपने जीवन मे अपने कुटुम्बियो को प्रेरित करके आपने एक ट्रस्ट बनवा दिया था। जिसके दान से गुलाबचन्द बड़कुर धर्मार्थ औषधालय एव वीतराग विज्ञान पाठशाला— दोनो स्थायीरूप से करेली मे चल रहे हैं। आप सरल और धर्मपालन में दृढ़ थे। जबलपुर मढियाजी आश्रम में चार वर्ष पूर्व आपका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया है। आपका परिवार भी दानी व धार्मिक है।

ब्र. नत्थूलाल जी चौधरी, बरगी (जबलपुर)

आपने चालीस वर्ष पूर्व वर्णीजी से ब्रह्मचर्य एवं दो प्रतिमाओं के व्रत लिये हैं। आप शिखरजी इन्दौर तथा मढ़िया जी आश्रम जबलपुर

मे अधिक रहे। आप सरल व धर्मनिष्ठ विद्वान् त्यागी थे। पाँच-छह वर्ष पूर्व आपका समाधिपूर्वक बरगी में स्वर्गवास हो गया है।

ब्र. अमृतलाल जी, नागौद

आप सातवी प्रतिमाधारी थे। जीवन मे अधिक समय तक मढ़िया जी आश्रम मे रहे। आप व्रतपालन मे दृढ़ थे। आपका पाँच-छह वर्ष पूर्व अपने ग्राम नागौद मे समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया है।

ब्र. रामलाल जी, जबलपुर

आपने पूज्य वर्णीजी से ५० वर्ष पूर्व पाँचवी प्रतिमा के व्रत लिये थे। आपका पूरा जीवन मढ़िया जी आश्रम मे बीता। आपका ८९ वर्ष की आयु मे अपने घर पर हनुमानताल जबलपुर मे तीन वर्ष पहले स्वर्गवास हो गया है।

ब्र. बाबूलाल जी बेटिया, जबलपुर

आप अभी ९० वर्ष के है। ५० वर्ष पूर्व आपने पूज्य वर्णी जी से ईसरी में ब्रह्मचर्य व सातवी प्रतिमा के व्रत लिये थे। आप पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी एव पूज्य सहजानन्द जी वर्णी आदि के साथ वर्षो रहे है। आप प्रायः द्रोणगिरि व मढ़िया आश्रम जबलपुर मे रहते है।

ब्र. दीपचन्द्र जी, इन्दौर

आप ललितपुर के पास के एक ग्राम के रहने वाले है। आप तीन प्रतिमाओ के व्रत लेकर स्थायी रूप से उदासीन आश्रम मे रह रहे हैं। आप प्रतिष्ठाचार्य एवं प्रवचनकार भी हैं। साथ ही अनेक वर्षों से इन्दौर आश्रम के अधिष्ठाता हैं। आपने कई धार्मिक पुस्तकों का संग्रह कर प्रकाशित करवाया है।

ब्र. परसराम जी, इन्दौर

आप पुरानी पीढ़ी के त्यागी, विद्वान् एवं प्रतिष्ठाचार्य हैं। आप सातवी प्रतिमाधारी है। आप सरसेठ हुकुमचन्द जी की गोष्ठी के एक सदस्य रहे है। इन्दौर आश्रम की स्थापना के कुछ वर्षों बाद से आप स्थायी रूप से वही रहते है। आप की प्रेरणा से इन्दौर मे उदासीन श्राविकाश्रम बड़े पैमाने पर चल रहा है, जहाँ लगभग पचास ब्रह्मचारिणी बहिने रहकर धर्मलाभ व पठन-पाठन करती है।

आपकी विशिष्ट धार्मिक लगन व अध्यवसाय से इन्दौर के तुकोगंज मे श्राविकाश्रम के प्रांगण मे बड़े पैमाने पर एक समवसरण मन्दिर का निर्माण हुआ है। इसका श्रेय आप व ब्र. मानोबाई को है। यह समवसरण मन्दिर अपनी निर्माण कला और रचना की दृष्टि से भारत वर्ष की जैन सस्कृति की अद्वितीय सस्था है। इसके निर्माण मे लगभग ७०-८० लाख रुपये लग चुके है और अभी भी चित्रो की विशेष रचनाओ का कार्य चल रहा है। श्राविकाश्रम के संचालन का कार्य ब्र. परसराम जी के आदेश से ब्र. प रतनलाल जी सेवाभाव से कर रहे है।

ब्र. सुखलाल जी, इन्दौर

आप खनियाधाना के निवासी हैं। लगभग ५ वर्ष से आप ब्रह्मचर्य व्रत लेकर इन्दौर उदासीन आश्रम मे स्थायी रूप से रहते है। आप अच्छे विद्वान् और प्रतिष्ठाचार्य भी है। आप की आयु ८५ वर्ष के लगभग है।

स्व. ब्र. खेमचन्द्र जी, इन्दौर

आपका जन्म लागौन (ललितपुर) में हुआ था। आपने ब्रह्मचर्य के व्रत लेकर पूरा जीवन इन्दौर आश्रम में व्यतीत किया है। आपका दो-तीन वर्ष पूर्व स्वर्गवास हो गया है।

ब्र. मिश्रीलाल जी, इन्दौर

आप विदिशा के निवासी थे। आप तत्वज्ञानी, विद्वान् व त्यागी थे। आप तथा आप की पत्नी दोनों ब्रह्मचर्य व्रत लेकर इन्दौर आश्रम मे ही रहते थे। आप उदासीन आश्रम मे तथा आपकी पत्नी उदासीन श्राविकाश्रम मे रहती थी। गत तीन वर्ष पूर्व आपका स्वर्गवास हो गया है।

ब्र. भँवरलाल जी, इन्दौर

आप गुना के निवासी थे। आप सातवी प्रतिमा के व्रत लेकर करीब २० वर्ष इन्दौर आश्रम मे रहे हैं। आप इन्दौर नगर के विभिन्न जिनालयों मे प्रतिदिन प्रवचन करने जाते थे। आपके सहयोग से पिसनहारी मढिया जी जबलपुर मे वर्णी व्रती आश्रम की पुन. स्थापना होकर विशाल स्वाध्याय भवन का उद्‌घाटन व निर्माण हुआ। आप स्वयं दस वर्षो तक कार्य करते रहे है तथा आश्रम की उन्नति मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

ब्र. गरीबदास जी सिहोरावाले, मढ़िया जी, जबलपुर

आप तीसरी प्रतिमा के व्रत लेकर करीब २० वर्षो से मढ़िया जी आश्रम मे रहकर धर्मध्यान कर रहे है। आपकी आयु ८५ वर्ष की है। आप सरल प्रकृति के त्यागी हैं।

ब्र. वैद्य कुन्दनलाल जी सतनावाले

आपने इन्दौर विद्यालय मे शास्त्री कक्षा तक अध्ययन करके कानपुर मे श्री वैद्य कन्हैयालाल जी की छत्रच्छाया मे आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा पास की। अनन्तर कई वर्षों तक सतना के जैन औषधालय मे प्रधान चिकित्सक पद पर कार्य किया। वहॉ से निवृत्त होकर पू. आचार्य

विद्यासागर जी से ब्रह्मचर्य व्रत लेकर जीवन के अन्तिम समय तक मढ़िया जी आश्रम जबलपुर मे रहे और तीन वर्ष पूर्व आपका आश्रम मे ही स्वर्गवास हो गया है।

ब्र. श्यामलाल जी, बालाघाट

आप स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी हैं। आपने बालाघाट व जबलपुर आदि स्थानो पर रहकर वर्षों देशसेवा की है व वर्षों जिले के कॉंग्रेसाध्यक्ष रहे हैं। आप की आयु अस्सी वर्ष की है।

स्व. ब्र. कस्तूरीबाई जैन, जबलपुर

आप कटनी के सुप्रसिद्ध रईस स. सिं. कन्हैयालालजी के अनुज गिरधारीलालजी की सुपुत्री थी। आपका विवाह जबलपुर के एक सम्पन्न घराने मे हुआ था। कुछ वर्षों के बाद इनके पति स्वर्गगामी हुए और वे विधवा हो गईं। वि. सं. १९८५ में आचार्य शान्तिसागर जी महाराज का कटनी मे ससघ चातुर्मारा था। उस समय उन्होंने कटनी मे रहकर समस्त साधुसघ की आहारादि चर्या मे प्रमुख भूमिका निभाई थी। आचार्यश्री के समक्ष उन्होने सप्तम प्रतिमा के व्रत भी ग्रहण किये और अपना जीवन आदर्शमय बनाया।

तत्पश्चात् वे अपने घर जबलपुर में रहने लगी। परिवार विशाल था और असंयमी जनों के बीच में उनके संयमी जीवन का स्थान की संकीर्णता के कारण निर्वाह न हो सका। अतः उनके पारिवारिक जनों ने उनके निवास की अलग व्यवस्था कर दी थी, जहाँ वे अपना संयमी जीवन व्यतीत करते हुए नगर मे आनेवाले त्यागी, मुनि, व्रती, आर्यिकाओं आदि की आहारदान द्वारा सेवा करती थी।

कालान्तर में उन्होने, जो उनके पास स्वर्णादिक जेवर था, उसे बेच दिया और उसका सदुपयोग निम्न भाँति किया—

१. कटनी मे अपने पितृगृह के जिन मदिर के ऊपर एक विशाल सरस्वती भवन का निर्माण कराया ।

२. जबलपुर मे जैन बोर्डिग के अहाते मे छात्रो के तथा आसपास के निवासियो के धर्माराधन के लिए एक विशाल जैन मदिर बनवाया और यथासमय उसकी जिनबिम्ब पचकल्याणक प्रतिष्ठा और वेदी-प्रतिष्ठा कराई । यह प्रतिष्ठा एक आदर्श के रूप मे समाज द्वारा सराही गई । भगवान् आदिनाथ की ३ फुट की मूल प्रतिमा के अतिरिक्त और भी अनेक प्रतिमाएँ स्थापित कराई ।

३. समस्त सिद्धक्षेत्रो और तीर्थक्षेत्रो की वन्दना की । अन्तिम समय मे उन्होने अपनी समाधि के लिए स्वयं को दृढतापूर्वक तैयार किया और पड़ोस मे रहने वाली एक सुनारिन महिला को बुलाकर उससे अरहंत-सिद्ध शब्द सुनती रही । उस महिला ने आग्रह किया कि आपके परिवार के लोगो को मैं बुलाये देती हूँ, उन्होने उत्तर दिया कि मेरा अन्तिम समय नजदीक है । मैने परिवार का मोह भी छोड़ दिया है, अतः किसी को बुलाने की आवश्यकता नही है ।

वे विदुषी थीं, उन्हे आत्मज्ञान था और अपनी बढ़ी हुई वैराग्य भावना के उद्वेग मे अपनी पहिनी हुई साड़ी भी उतारकर फेक दी और स्वय णमोकार मन्त्र का जाप करते हुए जीवन लीला समाप्त की ।

कतिपय अन्य ब्रह्मचारी

उपर्युक्त के अतिरिक्त ब्र. जयचन्द जी मड़ावरा, ब्र. कल्याणदास जी बहोरीबन्द, ब्र. भगवानदास जी लहरी कुण्डलपुर, ब्र. भरोसेलाल जी सिगपुर, ब्र. भगवानदास जी राघोगढ़, ब्र. परसराम जी, ब्र. बालचन्द जी अभाना, ब्र. राजकुमार जी शास्त्री, ब्र. मुन्नालाल जी गौना, ब्र. गजाधरलाल जी, ब्र. अमरचन्द जी अभाना, ब्र. कपूरचन्द जी, ब्र. शोभालाल जी, ब्र. नन्हेलाल जी, ब्र. जीवनलाल जी, ब्र. मुलामचन्द जी, ब्र. सुमनकुमार जी, ब्र. राजेशकुमार जी, ब्र. राजेन्द्रकुमार जी एवं ब्र. विनोदकुमार जी के नाम भी उल्लेखनीय हैं ।

■

षष्ठ खण्ड : सरस्वती साधक

(क) विशिष्ट विद्वान्

(ख) अन्य विद्वान्

शताब्दी पुरुष

व्याख्यानवाचस्पति पं. देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री

(क) विशिष्ट विद्वान् :

व्याख्यानवाचस्पति पं. प्रवर देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री

जैन समाज मे चमकते हीरे के समान गुरु गोपालदास जी हो गये हैं। उनके अन्यतम शिष्य व्या वा प देवकीनन्दन जी सि. शा थे। उनका बचपन का जीवन उपद्रवी स्वभाव का था। वे स्व. नायक हजारीलाल जी बरुआ-सागर के सुपुत्र थे। उनके बाल-जीवन को देखकर उनके पिताजी किसी से कुछ नही कहते थे। मन मे दुःखी रहते थे कि यह कैसे सुधरेगा?
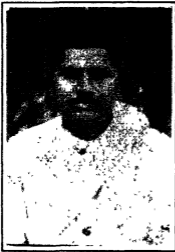
प. देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री

प. जी स्वय सुनाते रहे कि एक बार वे घी से भरे पूरे कनस्तर को लेकर झाँसी बेचने के लिये जा रहे थे। बरसात के दिन थे। बेतवा नदी मे पूर आया हुआ था। नदी पार होना जरूरी था। वे साहस करके नदी मे कूद पड़े और किसी प्रकार नदी से पार हो गये। उनका ऐसा साहसी जीवन था। इसी बीच स्व. मान्य सर्राफ मूलचन्द जी के निमित्त से पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी वहाँ आ गये।

किसी प्रकार वर्णी जी की दृष्टि प. देवकीनन्दन जी के ऊपर पड़ गई। इसलिये उन्होंने पं. जी को बनारस ले जाने का निर्णय कर लिया। समाज स्व. प. देवकीनन्दन जी के खुरापाती जीवन को अच्छी तरह जानती थी। इसलिये समाज ने पं. देवकीनन्दन जी को बनारस ले जाने के लिये बहुत रोका, परन्तु उसका वर्णी जी पर कुछ भी असर नही हुआ। वे समाज के लोगों से बोले- "यह अनमोल हीरा है- हीरा। एक दिन यह समाज का मार्गदर्शक नेता

बनेगा। उसे आप लोग बनारस ले जाने के लिये न रोके। मै इसे बनारस ले जाकर अवश्य पढ़ाऊँगा।"

प. जी के पिताजी से वर्णीजी बोले- "इसे हमे दे दीजिये। यह बनारस की पाठशाला मे रहकर पढ़ेगा और अपने बाल स्वभाव को भूल जायेगा। यह समाज का नेता बनेगा। आप चिन्ता न करे, इसे हम पढ़ायेगे।"

अन्त मे वर्णी जी महाराज प देवकीनन्दन जी को बनारस ले जाने मे सफल हो गये और उन्हे विद्यालय मे प्रविष्ट करा दिया। पं. जी की शिक्षा बनारस मे होने के साथ मोरेना मे भी हुई।

अन्त मे वे वही अध्यापन-कार्य करने लगे। जब मोरेना विद्यालय मे वे पढाते थे तब मोरेना विद्यालय के अधिष्ठाता स्व प. धन्नालाल जी थे। एक बार वे बम्बई जा रहे थे। उसी समय मान्य प देवकीनन्दन जी छुट्टी मे बरुआसागर जा रहे थे। रेल मे किसी विषय पर चर्चा चल रही थी। उस समय दोनो का आपस मे मतभेद था। अन्त मे चिढ़कर प. धन्नालाल जी प जी से बोले- "तूँ मुँह बहुत खोलने लगा है।" प जी ने देर न करते हुए उत्तर दिया कि कोई नाक दबाने लगता है तो साँस लेने के लिये मुँह खोलना ही पड़ता है। ऐसे थे पण्डित जी हाजिर जवाबी।

वे अक्सर दशलक्षण पर्व पर दिल्ली बुलाये जाते थे। एक बार दशलक्षण पर्व के अन्त मे कोई हाईकोर्ट का जज भी उनकी सभा मे आया करता था। जब जज विदा होने लगा, तब जज ने प जी से निवेदन किया कि "आप पाँच मिनट मे जैनधर्म के सारभूत सिद्धान्त को अपने व्याख्यान द्वारा हमे बता दे, कोर्ट का समय हो रहा है, इसलिये हमे जल्दी है।"

यह सुनकर प. जी खड़े हुए और पाँच मिनट के भीतर ही पं. जी ने अपना व्याख्यान समाप्त कर जज साहब को जैनधर्म का सारभूत सिद्धान्त बतला दिया। जज प्रसन्न हुआ और बोला ये समाज के व्यख्यानवाचस्पति है। इनकी जितनी प्रशसा की जाय थोड़ी है। तभी से प. जी 'व्याख्यान-वाचस्पति' बन गये।

इस प्रकार मोरेना मे रहते हुए सन् १९१८ का दिन आ गया। कारजा मे उसी समय श्री महावीर दि. जैन ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना हो गई थी। उसे स्थापित हुए ४-५ माह व्यतीत हो गये थे। आज के मुनिवर स्व. समन्तभद्र जी महाराज उस समय के देवचन्द्र जी ब्रह्मचारी थे। उन्होने ही चँवरे खानदान व कारजा की पूरी जैन समाज का सहयोग पाकर इस आश्रम की स्थापना की थी।

किन्तु आश्रम की स्थापना तो हो गई। परन्तु धर्मशिक्षा की कमी खटकती रही। वैसे ब्रह्मचारी जी स्वय धर्म की शिक्षा देते थे, पर स्थायी अध्यापक की कमी खटकती रही।

उस समय मोरेना की ख्याति समाज मे फैल चुकी थी। कारंजा के सचालक मण्डल को भी इसकी जानकारी मिल गई थी। इसलिये यह तय हुआ कि सचालक मण्डल के कतिपय भाई मोरेना जाये और योग्य विद्वान् को आदर सहित ले आवे।

जिस समय कारजा गुरुकुल का संचालक मण्डल मोरेना स्टेशन पर गाड़ी से उतरा, मान्य पण्डित जी किसी कार्यवश स्टेशन पर उपस्थित थे। उन्होंने कारजा से आये अतिथियो का स्वागत किया। पण्डित जी को यह नही मालूम था कि यह सचालक मण्डल हमे ही लेने आया है। पण्डित जी ने स्वयं उनके ठहरने आदि की व्यवस्था की। पण्डित जी को यह मालूम पड़ने पर कि संचालक मण्डल उन्हे लेने आया है तो वे अधिकारियो की सम्मति मिलने पर कारजा जाने के लिये तैयार हो गये।

जिस समय सचालन मण्डल के साथ कारजा जाने लगे, मै स्वय (प. फूलचन्द्र सिद्धान्ताचार्य) उपस्थित था। मैंने देखा कि विद्यार्थी रो रहे हैं, अध्यापक मण्डल भी हैरानी का अनुभव कर रहा है। यह देखकर पण्डित जी का मन पिघल गया, परन्तु संचालक मण्डल उन्हें छोड़ने के लिये तैयार नही हुआ और पण्डित जी को अपने परिवार के साथ कारंजा के लिये रवाना होना ही पड़ा।

वे अपने जीवन मे अध्यापक तो थे ही । कारजा मे वे गुरुकुल के छात्रो को इस विधि से पढ़ाते थे कि छात्र स्वय उस घण्टे की प्रतीक्षा करते रहते थे कि कब वह घण्टा आयेगा जब हम लोग पण्डित जी की कक्षा मे उपस्थित हो पायेगे । उनके पढ़ाने का तरीका भी विलक्षण था । छात्र प्रसन्नतापूर्वक पढ़ें, इसलिये वे बीच-बीच मे चुटकुले कहते हुए पढ़ाते थे ।इस प्रकार वे छात्रो को वही पाठ याद करा देते थे ।

साथ ही छात्रो के सुख-दु ख की वे स्वय खबर रखते थे । वे ऐसे नुसखे जानते थे कि जिनका सेवन करने से छात्र नीरोग रहे आवे । समय-समय पर उनका प्रयोग भी करते रहते थे ।

किसी कारण से गुरुकुल के प्रति समाज के कुछ भाइयो मे नाराजगी दिखाई देती थी । परन्तु पण्डित जी के प्रसन्न स्वभाव के कारण वह नाराजगी दबी रहती थी । गुरुकुल के सचालक मण्डल को इससे परेशानी मे नही पड़ना पड़ता था ।

इससे पूरा बुन्देलखण्ड कारजा गुरुकुल को अपना मानता था और समय-समय पर पण्डित जी को आमन्त्रित कर तथा दान देकर गुरुकुल की पुष्टि मे सहयोग करता रहता था । पण्डित जी के परामर्श से समाज ने खुरई मे गुरुकुल की स्थापना की तथा कारजा गुरुकुल के प्रभाव को स्वीकार किया ।

इस प्रकार कारजा मे गुरुकुल की सेवा करते हुए पण्डित जी के कई वर्ष निकल गये । मै सन् १९३९-४० मे नातेपुते से निवृत्त होकर बीना-इटावा आ गया था । श्री **षट्खण्डागम** धवला के सम्पादन एव अनुवाद के लिये श्री प. हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री अमरावती पहुँच चुके थे । प. जी के परामर्श से मेरी **षट्खण्डागम** के कार्यालय मे नियुक्ति कर ली गई । मै वहाँ जितने दिन रह सका उतने दिन महीना दो महीना मे कारंजा आता रहा और जो काम दोनो विद्वानो के सहयोग से सम्पन्न होता था, उसे ले जाकर प. जी को सुनाता था । प. जी सुनकर जहाँ जो संशोधन बतलाते थे उसके अनुसार वही सुधार कर दिया जाता था । इस प्रकार पं. जी का **षट्खण्डागम** धवला के संशोधन-सम्पादन मे बड़ा हाथ रहा है ।

कुछ समय बाद पं. जी बाल-बच्चो को शिक्षा दिलाने के लिये चिन्तित रहने लगे। इस कारण वे बीमार पड़ गये। उनका इलाज स्व. सिं. पन्नालाल जी के घर पर अमरावती मे हुआ। स्व. सिघई जी ने इसे अहोभाग्य माना।

इस प्रकार कारंजा मे दिन व्यतीत हो ही रहे थे कि श्रीमन्त सर सेठ हुकुमचन्द जी इन्दौर की ओर से पं. जी को इन्दौर बुलाया गया और इस प्रकार उन्हे विवश होकर कारजा छोड़कर इन्दौर जाना पड़ा।

इन्दौर मे रहते हुए उनके बाल-बच्चो ने कालेज की शिक्षा प्राप्त की। उनमे से कोई डाक्टर बना, कोई प्रोफेसर बना और अन्यों ने सरकारी सर्विस आदि स्वीकार कर ली। कालेज की उच्चशिक्षा सबने ली। पं. जी ने उन्हे धर्म और समाज की सेवा मे नही लगाया और बच्चे स्वय नही लगे। लौकिक वैभव तो सबने प्राप्त किया, पर वे आध्यात्मिक वैभव से वचित रह गये।

प. जी इन्दौर मे तुकोगज के भीतर इन्द्रभवन के एक ओर जो दुमंजिला इमारत है उसके एक ओर रहते थे तथा दूसरी ओर स्व. मान्य पं. खूबचन्द जी रहते थे। वही प जी का स्वर्गवास हुआ। उससे बुन्देलखण्ड की पूरी समाज को धक्का लगा। दसवे दिन पूरे समाज के मुखिया लोग वहाँ गये थे। उन्होने उनके कुटुम्ब को सम्हालने की जो व्यवस्था की उसकी पूरी जिम्मेवारी मान्य प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री ने स्वयं आगे आकर उत्तम प्रकार से सम्हाली। मै भी उस दिन उपस्थित था। परन्तु जो चिड़िया उड़नी थी वह तो उड़ गई।

वे अपने जीवन मे **सागारधर्मामृत** और **पंचाध्यायी**[१] के विशेषज्ञ थे। उनकी टीकाएँ करके उन्होने धर्म की अपूर्व सेवा की है। वे जीवन भर परवार सभा के संरक्षक रहे। यदि यह कहे कि वे पूरे समाज के अनभिषिक्त राजा थे तो कोई अत्युक्ति नही होगी। विद्वानो मे वे सिरमौर थे ही। बनारस के वर्णी संस्थान की स्थापना मे उनका सदा काल सहयोग रहा है। इसलिये संस्थान की तत्कालीन कार्यकारिणी समिति ने उनके नाम पर स्थायी शोध छात्रवृत्ति

---

१. पं. देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री द्वारा अनूदित एव पं. फूलचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित होकर पञ्चाध्यायी के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान, नरिया, वाराणसी द्वारा हुआ है।

देने का निर्णय लिया था, जो चालू है । उनकी सेवाओ की गणना इस प्रकार की जा सकती है—-

१. मोरेना विद्यालय मे धर्म एवं न्याय के अध्यापक

२ कारजा गुरुकुल की अभिवृद्धि मे सहयोग ।

३. श्री गणेश वर्णी दि जैन ग्रंथमाला, वाराणसी की स्थापना मे सहयोग ।

४ बिनैकावारो के लिये श्री जिनमन्दिर की खुलासी ।

५ बुन्देलखण्ड मे गजरथो के चलने मे दोनो पक्षो के लेखो का सकलन करते हुए गजरथ के चलने के पक्ष मे अन्तिम फैसला ।

६ पूरे समाज तथा परवार सभा के सरक्षक ।

७ समाज के विवादपूर्ण झगड़ो को सुलझाने की कला के ज्ञाता और प्रयोक्ता ।

८. स्थितिपालक और सुधारक, इस प्रकार दोनों पक्षो के द्वारा आदरणीय ।

उनके ये कुछ काम है, जिनका यहाँ उल्लेख किया है । वैसे उनके जीवन के काम अगणित हैं । वे अब नही है, परन्तु उनका मार्गदर्शन हम सबको प्राप्त है ।

पं. घनश्यामदास न्यायतीर्थ

(जन्म : १८८८ ई., महरौनी, झाँसी, उ. प्र.)

आपका जन्म महरौनी (झाँसी) मे वि. स. १९४५ के लगभग हुआ था । आपने स्थानीय मिडिल स्कूल से हिन्दी मिडिल परीक्षा पास की । उन दिनो बमराना वाले सेठो के कपड़े की दुकान उनकी जमीदारी के ग्राम सादूमल में थी और उस पर पंडितजी के काका श्री खुमान बजाज मुनीम थे । आप मिडिल की परीक्षा देकर सादूमल की दुकान पर काम सीखने के लिये रहने लगे । उस समय आपकी अवस्था २० वर्ष की थी और विवाह हो चुका था । भाग्य से पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज का वहाँ आगमन हुआ । उस समय वे बड़े

पंडितजी कहलाते थे। उन्होंने आपसें पूछा— भैया, पढ़ना क्यो छोड़ दिया ? उत्तर मिला— हमारे यहाँ आगे की पढ़ाई का स्कूल नहीं है। वर्णीजी ने कहा— हमारे साथ सागर चलो और सस्कृत पढ़ो। यह सुनकर वे अपने काका की ओर देखने लगे। क्योकि आपके पिताजी का स्वर्गवास तो आपके बचपन मे ही हो गया था और घर का सारा भार आप पर ही था। काका भी कुछ उत्तर देने से सकुचाये। उसी समय दुकान के मालिक स्व. सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी भी बमराना से वर्णीजी को लिवाने के लिए आ गये। वर्णी ने उनसे कहा— यह आगे सस्कृत पढ़ना चाहता है, यदि घरके लोंगो के जीवन-निर्वाह की व्यवस्था हो जाय। उदारमना सेठजी ने तुरन्त कहा— जब तक ये पढ़ना चाहे, इनकी पढ़ाई का और घर वालो के निर्वाह का पूरा खर्चा मै दूँगा। आप इन्हे अपने साथ सागर लिवा जाइये। बस, फिर क्या था, आपको वर्णीजी ने सागर विद्यालय में भर्ती कर दिया, जो अब श्री गणेश दि. जैन सस्कृत महाविद्यालय के नाम से चालू है।

पुन· आप काशी चले गये और वहाँ से न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण कर गोम्मटसारादि सिद्धात ग्रन्थो के अध्ययनार्थ जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेना चले आये। वहाँ पर आपने सिद्धात ग्रन्थो का अध्ययन किया। आपकी स्मरण शक्ति इतनी तेज थी कि आपने गुरुजी (पं गोपालदासजी) से गो. जीवकांड और कर्मकाड एक ही वर्ष मे पढ़ लिये। आपको दोनो ग्रन्थो की पौने दो हजार गाथाएँ कण्ठस्थ थी। उस समय आपके साथियो मे स्व. पं. देवकीनन्दनजी, स्व. पं. पन्नालालजी सोनी आदि प्रमुख थे।

आप सन् १९१५ मे धर्माध्यापक बनाकर काशी बुला लिये गये। लगभग एक वर्ष के बाद ही इन्दौर मे सर सेठ हुकुमचन्दजी ने विद्यालय की स्थापना की और उसके प्रधानाध्यापक होकर वे इन्दौर चले गये। लगभग दो वर्ष कार्य करने के पश्चात् वे किसी कारण वश अपने घर चले आये। तब सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी बमराना ने सादूमल मे पाठशांला खोलने का अपना भाव प्रकट किया। चूंकि मगसिर मे पाठशाला के लिए छात्र मिलना सम्भव नही था, अतः पंडितजी को उन्होंने अपने पास ही रखा और उनसे सिद्धांत ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहे। बाद में सादूमल पाठशाला की स्थापना हुई और पण्डित जी उसके प्रधानाध्यापक बने। पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, पं. हीरालालजी सिद्धांत-

शास्त्री आदि मे जो कुछ योग्यता थी, वह पडितजी की कृपा का ही सुफल था। तत्पश्चात् खुरई के श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी के आग्रह पर आप खुरई मे सायकाल शास्त्र प्रवचन करने लगे और आजीविका हेतु व्यापार भी। सन् १९२४ के अन्त मे वही पण्डित जी का स्वर्गवास हो गया। आपके द्वारा अनूदित कृतियो के नाम है— **पाण्डव पुराण, परीक्षामुख, नाममाला, प्रभंजन चरित** और **पद्मपुराण**।

स्व. पं. नाथूराम प्रेमी, बम्बई

(जन्म १८८२ ई., निधन · ३० जनवरी १९६०)

प नाथूरामजी प्रेमी के पूर्वज मालवा प्रदेश मे नर्मदा कछार की ओर के थे। वहाँ स चलकर कुछ बुन्देलखण्ड की ओर चले आये और कुछ गढ़ाप्रान्त (त्रिपुरी) की ओर चले गये। कुछ समय बाद वहाँ से चलकर सागर जिले मे देवरी नामक ग्राम मे रहने लगे। प्रेमी जी का जन्म इसी ग्राम मे वि स १९३८ मे हुआ था। उन दिनो का उद्योग धधा खेती-बाडी और साहूकारी था।

प्रेमी जी कुशाग्र बुद्धि के थे। पहले इन्होने टीचर्स ट्रेनिग परीक्षा पास की। इस किशोर अवस्था मे इन्हे कविता करने का शौक था। अत ये प्रेमी उपनाम से कविता जगत् मे प्रसिद्ध हुये।

कालान्तर मे इनका परिचय विद्वत् समाज मे बढ़ता गया और बम्बई के सेठ माणिकचन्द्र जी पाना-चदजी झवेरी से विशेष सम्पर्क होने पर इन्होने बम्बई को अपना कार्य क्षेत्र बनाया।

प नाथूरामजी प्रेमी

बम्बई में सबसे पहिले इन्होंने जैन ग्रन्थ रत्नाकर नामक प्रकाशन संस्था की स्थापना की। इस संस्था द्वारा अनेक प्राचीन एवं अनुपलब्ध जैन ग्रन्थों का प्रकाशन किया। स्व. सेठ माणिकचन्द्र जी पानाचंद जी बम्बई के ये मुख्य सलाहकार थे और सेठजी को धार्मिक कार्यों के लिए उत्साहित करते रहते थे। सेठ माणिकचन्द्र जी के दिवंगत हो जाने के बाद प्रेमी जी ने उनके स्मरण स्वरूप 'माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला' की स्थापना की और अप्रकाशित छोटे-बड़े जैन ग्रन्थों को अनेक खण्डो मे प्रकाशित किया। आज भी यह ग्रन्थमाला भारतीय ज्ञानपीठ के संरक्षण में है।

इन्ही दिनो में प्रेमी जी ने बम्बई में हिन्दी साहित्य के सुलेखकों के महनीय और शोध पूर्ण लेखों के प्रकाशन के लिए 'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय' की स्थापना की। उसमे भी उच्च कोटि का हिन्दी साहित्य तथा इतिहास और शोधपूर्ण सामग्री को प्रकाशित कराकर सर्वसाधारण को उपलब्ध कराई।

'जैन हितैषी' नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया। उसमें उच्चकोटि की सामग्री रहती थी और वह हिन्दी जगत् के पत्र **सरस्वती** एवं **विशाल भारत** आदि के समकक्ष गिना जाता था। प्रेमी जी प्रारम्भ से ही इस मासिक पत्र के सम्पादक रहे है और इसके माध्यम से इनका भारत के अच्छे-अच्छे लेखको, नेताओ और विद्वानों से घनिष्ठ परिचय हुआ। ये स्वभाव से सरल और विचारों में उदार व्यक्ति थे। प्रगतिशील सुधारक प्रवृत्ति के प्रेमी जी का सम्पर्क न केवल दि. जैन विद्वानों के साथ था, अपितु श्वेताम्बर विद्वान् व यति भी इनके विचारों से प्रभावित थे। संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में उनका पाण्डित्य था। डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. प्रज्ञाचक्षु पं. सुखलालजी संघवी, ए. एन. उपाध्ये आदि से इनके गहरे सम्बन्ध थे। ये जैन विद्वानों को संस्कृत/प्राकृत के प्राचीन जैन ग्रन्थों के सम्पादन/संशोधन के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे और उनके प्रकाशन की योजना बना देते थे।

ऐतिहासिक शोध में इनकी गहरी दिलचस्पी थी और किसी भी इतिहासवेत्ता से सम्पर्क बना लेना तथा उसका लाभ लेना इनका सहज गुण था। प्रेमी

जी ने अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति की थी, जिसका लाभ सम्पूर्ण दिगम्बर-श्वेताम्बर समाज को तथा हिन्दी जगत् को समान रूप से प्राप्त हुआ है।

भारतीय विद्वत् समाज की उपस्थिति मे जैन-अजैन जनता द्वारा बृहत् स्तर पर अभिनन्दन समारोह आयोजित कर उन्हे अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित किया गया था।

श्री यशोधर मोदी
(पौत्र प नाथूरामजी प्रेमी)

इनके अभिनदन के आयोजन का स्वागत भारतीय दर्शन के चोटी के विद्वान् सर्वपल्ली सर डॉ. राधाकृष्णन (जो भारत के राष्ट्रपति रहे हैं), श्री पुरुषोत्तम दास टडन, काका कालेलकर और डॉ ए. एन. उपाध्ये आदि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वानो ने भी किया था।

इनके एक मात्र सुपुत्र श्री हेमचन्द्र जैन थे। ये भी अपने पिता के पदचिह्नो का अनुसरण कर साहित्य जगत् मे बढ़ते गये, किन्तु असमय मे ही इनकी मृत्यु हो गई। प्रेमी जी की पत्नी का स्वर्गवास तो पहले ही हो चुका था, किन्तु पुत्र के वियोग के बाद उनकी पुत्रवधू— चम्पाबाई और दो पौत्रो— विद्याधर और यशोधर का परिवार इनके सामने रहा। सम्प्रति प्रेमी जी के पौत्र-प्रपौत्र आदि बम्बई मे रहते है।

स्व. डॉ. हीरालाल जैन

(जन्म . सन् १८९९, गांगई, नरसिंहपुर, म. प्र.)

आपके पिता श्री बालचन्द्रजी ग्राम के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। डॉ. हीरालाल जी इलाहाबाद से एम. ए. करने के बाद सस्कृत मे शोधवृत्ति पाकर

प्राचीन जैन साहित्य के शोध की ओर अग्रसर हुये। अमरावती के किग एडवर्ड कालेज मे प्रोफेसर नियुक्त होने के बाद इन्होने प्राचीन जैन ग्रन्थो के उद्धार का बीड़ा उठाया। **पाहुड दोहा, सावयधम्म दोहा, करकंड चरिउ एवं णायकुमारचरिउ** प्रभृति अपभ्रश ग्रन्थो के सम्पादन-प्रकाशन पर नागपुर विश्वविद्यालय द्वारा इन्हे डी लिट्. की उपाधि से विभूषित किया गया। **षट्खण्डागम** और उसकी धवला-टीका का सम्पादन इनके अध्यवसाय की चरम उपलब्धि थी। हिन्दी अनुवाद सहित यह ग्रन्थ १६ भागो मे इनकी देख-रेख मे ही प्रकाशित किया गया।

डॉ हीरालाल जैन

शासकीय शिक्षा विभाग से पूर्ण अवकाश ग्रहण करने पर बिहार सरकार के आग्रह को स्वीकार कर इन्होने वैशाली मे जैन शोध सस्थान स्थापित और विकसित किया। इस अवधि मे लिखी रचना **भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान** इतनी लोकप्रिय हुई कि उसका विभिन्न भाषाओ मे अनुवाद किया गया। जबलपुर विश्वविद्यालय के विशेष अनुरोध पर आपने वैशाली से जबलपुर आकर विश्वविद्यालय के सस्कृत विभाग को संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रश के उच्चस्तरीय शोध का केन्द्र बनाया। स्वतः भी **सुगन्ध दशमी कथा, सुदंसण चरिउ, मयण पराजय, कहकोसु** तथा **जसहरचरिउ** नामक प्राचीन ग्रन्थो का सम्पादन किया। साथ ही **तत्त्वसमुच्चय** के प्रणयन के अतिरिक्त लगभग १५० शोधपत्रो का लेखन कर उन्हे प्रकाशित कराया। आप अपने जीवन मे अनेक ग्रन्थमालाओ के सम्पादक मण्डल के प्रमुख रहे है।

आप सन् १९६४ मे जबलपुर मे अपना गृह निर्माण कर जबलपुरवासी हो गये थे। आप सन् १९६९ मे जबलपुर विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त हुए और सन् १९७३ मे आपका निधन हो गया।

जैनधर्म और सरस्वती को उन्होंने अपना अन्तिम पुष्प **जिनवाणी** के **रूप में प्रस्तुत** किया। उनका यह संकलन उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ।

स्व. पं. तुलसीरामजी काव्यतीर्थ

ये ललितपुर के निवासी थे। संस्कृत भाषा पर इनका अच्छा अधिकार था। ये सस्कृत में कविता लिखते थे। जैन कालेज, बड़ौत मे कई वर्षो तक अध्यापक रहे है। समाजसेवा के क्षेत्र मे लब्धप्रतिष्ठ थे। प. देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्री के सहयोगी थे। परवार डायरेक्टरी के सम्पादक रहे है।

स्व. पं. ठाकुरदासजी शास्त्री

(जन्मस्थान : झांसी, उ. प्र.)

वर्णीजी ने अपनी जीवनगाथा में भी आपका यथोचित उल्लेख किया है। अपनी उत्कृष्ट विद्वत्ता और आदर्श साहित्यिक अभिरुचि के कारण आपसे महाराजा वीरसिंह जू देव, पत्रकार बनारसीदासजी, यशपाल जी जैन आदि भी प्रभावित थे। पण्डितजी एक प्राणवान् संस्था थे। दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा व वीर विद्यालय पपौरा की आपने अठारह वर्षों तक मन्त्री के रूप में सेवा की। स्व. राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जी भी आपकी प्रेरणा से पपौरा पधारे थे। महाराजा वीरसिंह जू देव द्वारा संस्थापित साहित्य परिषद् के आप एक प्रमुख साहित्यकार थे। आपका हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी व गणित पर असाधारण अधिकार था।

एक बहुत बड़ी मात्रा मे आपको श्लोक कण्ठस्थ थे। जैनधर्म और दर्शन के तो आप मर्मज्ञ ही थे। राजकीय सेवा कार्य करते हुए आपका आचार-विचार सदा आगम के अनुकूल रहा। भयंकर बीमारियों और कठोरतम कठिनाइयों मे भी आपने चारित्र और संयम की पूर्ण रक्षा ही नही की, बल्कि अन्य जनो को भी प्रेरणा दी थी।

स्व. पं. जीवन्धर शास्त्री न्यायतीर्थ, इन्दौर

(जन्म : शाहगढ़, सागर)

आप जैनदर्शन के वरिष्ठ विद्वानो में से थे। नव्य न्याय और प्राचीन न्याय मे आपकी अच्छी गति थी। इन्दौर महाविद्यालय मे आप अनेक वर्षों तक प्रधानाध्यापक के पद पर रहे हैं। आपके द्वारा पढ़ाये हुए सैकड़ो विद्वान् समाज-सेवा मे संलग्न हैं। आप अपने गम्भीर ज्ञान के कारण विद्वत्समाज मे समादृत थे। धर्मोपदेश, शिक्षण पद्धति और साहित्य रचना द्वारा आपने समाज और धर्म की जो सेवा की है, वह सदैव स्मरणीय रहेगी। आप सरल, सहृदय और भद्र परिणामी महापुरुष थे।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रजनबाई श्रेष्ठ विदुषी नारीरत्न है।

स्व. डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

(जन्म : १९११ ई. खुरई, निधन : १९५९ ई.)

जैन दर्शन के लेखक तथा **न्यायकुमुदचन्द्र** आदि जैनन्याय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के सम्पादक व भावोद्घाटक-अनुवादकर्ता डॉ. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य जैन न्याय तथा जैनदर्शन के सभी पक्षों के विश्लेषक तथा विशदीकरण करने वाले प्रौढ़ पण्डित तथा प्राच्यविद्या के गौरवपूर्ण शोध-स्नातक थे। आप हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में बौद्धदर्शन के प्राध्यापक व सम्मान प्राप्त विद्वान् थे।

स्व. पं. फूलचन्द्र सिद्धान्ताचार्य
(जन्म : ११ अप्रैल १९०१, सिलावन, निधन : ३१ अगस्त, १९९१)

पूज्य पडितजी ने आर्थिक रूप से कठिन परिस्थितियो मे जीवन की विषमताओ को झेलते हुए जैनदर्शन रूपी आत्मज्ञान की चरम ऊँचाइयो को प्राप्त किया। उनके द्वारा की गयी जैनदर्शन एव साहित्य की सेवा का दूसरा उदाहरण मिलना दुर्लभ है। इनके समकालीन स्व प. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री एव पं फूलचन्द्र जी शास्त्री ये तीनो रत्नत्रयी के नाम से विख्यात रहे है। स्व. पं कैलाशचन्द्र जी ने लिखा है कि "हम तो उन्ही के अनुवादो को पढ़कर सिद्धान्त ग्रन्थों के ज्ञाता बने है।" प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के शब्दो मे "उम्र मे तो वे हमसे चार माह बड़े है, परन्तु ज्ञान मे तो सैकड़ो वर्ष बड़े है।"

स्व पं. जी का सामाजिक एव राजनीतिक जीवन अनेक आंदोलनो से जुड़ा रहा, जिनमे कई की शुरूआत तो उन्होने स्वय की। स्वाधीनता से पहले वे भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। वे बीना, सागर, सोलापुर तथा अमरावती जिला कॉग्रेस के पदाधिकारी रहे। भारत छोड़ो आन्दोलन मे भाग लिया और १९४१ मे जेल गये। विदेशी वस्त्रो के परित्याग आन्दोलन मे भी हिस्सा लिया और आजीवन खादी पहनी। स्वतन्त्रता मिलने के बाद उन्होने राजनीतिक जीवन छोड़ दिया एव पूर्ण रूप से साहित्य साधना मे लगे रहे।

सामाजिक आन्दोलनों के द्वारा जैन समाज मे व्याप्त अनेक कुरीतियो तथा विषमताओ का उन्होने विरोध किया। इनमें प्रमुख है दस्साओ को मदिर प्रवेश का अधिकार दिलाना, गजरथो मे धर्म के नाम पर किये जा रहे अनावश्यक खर्च का विरोध तथा उनके स्थान पर ज्ञानरथ चलाये जाने का समर्थन। २६ जनवरी १९५० से हरिजन मंदिर प्रवेश बिल लागू हुआ, जिसका व्यापक विरोध हुआ। स्व. पं. जी ने अपनी लेखनी के द्वारा इस बिल का जोरदार समर्थन किया और यह याद दिलाया कि जैन संस्कृति वर्ण व्यवस्था को स्वीकार ही नही करती है।

अपने जीवन काल मे स्व. पं. जी ने अनेक संस्थाओ की स्थापना की तथा उनके उन्नयन मे लगे रहे। अतः उनका तथा उनकी साहित्य सेवा का संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत है। जैन दर्शन के तीन सिद्धान्त ग्रन्थ प्रमुख हैं— **षट्खण्डागम, कसायपाहुड तथा महाबन्ध**। ये ग्रन्थ सैकड़ो वर्षों से ताड़पत्रो पर प्राकृत भाषा मे लिपिबद्ध करके मंदिरो मे बन्द रखे थे। इनको हिन्दी में उपलब्ध कराने का मुख्य श्रेय प. जी को ही है। इन ग्रन्थों का उनके समान अधिकारी विद्वान् अन्य कोई नही हुआ।

स्वभाव से पं. जी अत्यन्त सरल तथा सादगी की प्रतिमूर्ति थे। उनको अपने किये कार्यों का अहंकार नही रहा। अत्यन्त उदार प्रवृत्ति के पं. जी किसी की भी सहायता करने को तत्पर हो जाते थे। अनेकानेक छात्रो को उन्होने सहायता दी या दिलवायी और उनका जीवन बनाया। स्वाभिमानी इतने कि किसी भी दबाव के आगे झुके नही। सन् १९५० से तो उन्होंने स्वतन्त्र रहने का निर्णय लिया और साहित्य साधना मे ही अपने को अर्पित कर दिया।

प्रमुख सम्मान व पुरस्कार

१. सन् १९६२ मे जैन सिद्धान्त भवन, आराकी हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में बिहार के तत्कालीन राज्यपाल डा. अनन्त शयनम् अयंगार द्वारा 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधि प्रदान की गयी।

२. सन् १९७४ मे भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव पर वीर निर्वाण भारती द्वारा तत्कालीन उपराष्ट्रपति डा. बी. डी. जत्ती के कर कमलो से 'सिद्धान्तरत्न' की उपाधि प्रदान की गयी।

३. सन् १९८७ मे अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासंघ द्वारा श्री महावीर जी में चाँदी का प्रशस्ति पत्र भेंट किया गया।

४. प्रथम राष्ट्रीय प्राकृत सम्मेलन, बैंगलोर १९९० के अवसर पर प्राकृत ज्ञान भारती पुरस्कार प्रदान किया गया।

५. अखिल भारतवर्षीय मुमुक्षु समाज द्वारा जयपुर पंचकल्याण प्रतिष्ठा १९९० के अवसर पर एक लाख रु की राशि से सम्मान किया गया।

६. सन् १९८५ मे आचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के सान्निध्य में आयोजित एक समारोह मे एक बृहत् अभिनन्दन ग्रन्थ भेट कर सम्मान किया गया।

संस्थापित संस्थाएँ

१ अन्यतम सस्थापक तथा कार्यकारी प्रथम संयुक्तमत्री, अखिल भारतवर्षीय दि जैन विद्वत् परिषद्, १९४४

२ सस्थापक सदस्य एव मत्री श्री सन्मति जैन निकेतन, नरिया, वाराणसी, १९४६

३. सस्थापक स. मत्री एव ग्रन्थमाला सपादक, श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९४४

४. सस्थापक एव सदस्य, श्री गणेश वर्णी दि जैन इटर कालेज, ललितपुर, उ प्र, १९४६

५. अध्यक्ष, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद्, द्रोणगिरि, १९५५

६ सस्थापक, श्री गणेश वर्णी दि जैन (शोध) सस्थान, वाराणसी, १९७१

संपादित पत्रिकाएँ

१. शान्ति सिन्धु: आचार्य शान्तिसागर सरस्वती भवन, नातेपुते, सोलापुर, सन् १९३५-३७

२ **ज्ञानोदय** · भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९४९-५२

मौलिक कृतियाँ

१. **जैन धर्म और वर्ण व्यवस्था** : भारतवर्षीय दि. जैन परिषद्, पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, १९४५.

२. **विश्वशान्ति और अपरिग्रहवाद** : श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९४९

३. **जैनतत्त्वमीमांसा** : अशोक प्रकाशन मदिर, वाराणसी, १९६०, पृ. ३१५, सशोधित तथा परिवर्द्धित संस्करण, पृष्ठ ४२२, अशोक प्रकाशन मदिर, वाराणसी, १९७८

४. **वर्ण, जाति और धर्म** : भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९६३, द्वितीय सस्करण, १९८९, पृ. ४५५

५. **जैन तत्त्व समीक्षा का समाधान** : पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर, १९८७, पृ. २१४

६. **अकिंचित्कर** : एक अनुशीलन—अशोक प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी, १९९०, पृ. ११०

७. **जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा**, पुस्तक १ : प. टोडरमल ग्रन्थमाला, जयपुर, १९६७, पृ. ३७५

८. **जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चा**, पुस्तक २ : पं. टोडरमल ग्रन्थमाला, जयपुर, १९६७, पृ. ४७१

९. **परवार जैन समाज का इतिहास** : श्री भा व दि जैन परवार सभा, जबलपुर

संपादित-अनूदित एवं व्याख्यायित ग्रन्थ

१०. **प्रमेयरत्नमाला** : चौखम्बा सस्कृत सीरिज, बनारस, सन् १९२८

११. **आलाप पद्धति** : श्री सकल दि. जैन पंचान, नातेपुते (सोलापुर), सन् १९३४

१२. **षट्खण्डागम (धवला)** भाग १-१६ : जैनदर्शन के सिद्धात ग्रन्थ, आकार २० x ३० से.मी., लगभग ८००० पृष्ठ, प्राचीन ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियो के आधार पर पहली बार प्रकाशित, सहसंपादन तथा ६ भागों का अनुवाद, जैन साहित्योद्धारक फंड, विदिशा तथा जैन संस्कृति

सरक्षक संघ, सोलापुर द्वारा प्रकाशित, सन् १९३९-५९ तथा १९७३-१९९०, अन्य भागो के सशोधित सस्करण भी प्रकाशित ।

१३. **महाबंध**, भाग २-७ : जैनदर्शन के सिद्धान्त ग्रन्थ, आकार २०x३० से.मी. लगभग ३००० पृष्ठ ताड़पत्रीय पाडुलिपियो के आधार पर पहली बार प्रकाशित, सम्पादन तथा अनुवाद, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, सन् १९४४-१९७०.

१४. **कषायपाहुड (जयधवला)** भाग १-१६ जैनदर्शन के सिद्धान्त ग्रन्थ, आकार २०x३० से मी., लगभग ८००० पृष्ठ, प्राचीन ताड़पत्रीय पाण्डु-लिपियो के आधार पर पहली बार प्रकाशित, मूल प्राकृत से अनुवाद तथा सम्पादन, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सघ, मथुरा द्वारा प्रकाशित, सन् १९४१-८२, अनेक भागो के सशोधित सस्करण भी प्रकाशित ।

१५. **सप्ततिका प्रकरण** : हिन्दी अनुवाद सहित, आत्मानन्द जैन प्रचारक पुस्तकालय, आगरा, १९४८ ।

१६. **तत्त्वार्थसूत्र** · सम्पादन और हिन्दी विवेचन, पृ. ४००, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९५८ । नया सशोधित सस्करण, श्री गणेश वर्णी दि. जैन सस्थान, नरिया, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, १९९१ ।

१७. **सर्वार्थसिद्धि** : आकार २० x ३० से मी, पृ. ५००, विस्तृत प्रस्तावना, हिन्दी अनुवाद और टिप्पण के साथ, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित, १९६० ।

१८. **पञ्चाध्यायी** : आकार २० x ३० से. मी., पृ. ५००, विस्तृत प्रस्तावना के साथ सम्पादन, श्री गणेश प्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६० एवं १९८६ ।

१९ **ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि** : पृ. ५५०, सहसम्पादन तथा अनुवाद, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९६० ।

२०. **समयसार कलश** : पृ. ४५०, भावार्थ सहित, श्री दि. जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़, १९६४ ।

२१. **श्री कानजी स्वामी अभिनन्दन-ग्रन्थ** : सम्पादन : हिन्दी विभाग, पृ. ६४४, दि. जैन मुमुक्षु मंडल, बंबई, १९६४।

२२. **सम्यग्ज्ञान दीपिका** : सम्पादन व अनुवाद, दि. जैन मुमुक्षु मंडल, भावनगर, १९७०।

२३. **लब्धिसार-क्षपणासार** : श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, आगरा, १९८०।

२४. **ज्ञानसमुच्चयसार** : विस्तृत प्रस्तावना के साथ, सागर, १९७४।

२५. **आत्मानुशासन** : पडित टोडरमल की टीका एवं प्रस्तावना के साथ, श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान, नरिया, वाराणसी, १९८३।

स्व. पं. हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री, साढूमल

आपका जन्म ग्राम साढूमल (ललितपुर) में सं. १९६१ की श्रावणी अमावस्या के दिन हुआ था। विशारद और न्यायमध्यमा स्थानीय शाला से उत्तीर्ण की। न्यायतीर्थ परीक्षा हु. दि. जैन विद्यालय इन्दौर से सन् १९२३ मे उत्तीर्ण की और सिद्धान्तशास्त्री परीक्षा सन् १९२४ में शिक्षा मन्दिर, जबलपुर से स्व. प. बंशीधरजी सिद्धान्तशास्त्री के चरण-सान्निध्य में उत्तीर्ण की।

तत्पश्चात् श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, श्री भा. व. दि. जैन महाविद्यालय ब्यावर आदि मे १२ वर्ष तक अध्यापन कार्य किया।

आपने **षट्खण्डागम** के छह भागों का सम्पादन-अनुवाद सयुक्त रूप से किया है। **कसायपाहुडसुत्त, प्राकृत पंचसंग्रह, प्रमेयरत्नमाला, वसुनन्दिश्रावकाचार, जिनसहस्रनाम, जैन धर्मामृत, कर्मप्रकृति** आदि १६ ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद स्वतन्त्र रूप से किया है, जो कि जैन साहित्योद्धारक फंड अमरावती, वीरशासन सघ कलकत्ता, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, चौखम्बा संस्कृत सीरिज वाराणसी आदि से प्रकाशित हुए हैं। **श्रावकाचार-संग्रह, परमागमसार, पुरुषार्थानुशासन** आदि ग्रन्थों का भी आपने परिश्रम पूर्वक सम्पादन एवं अनुवाद किया है।

आपने लगभग २०० शोध-खोज पूर्ण सैद्धान्तिक लेख लिखे है, जो अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर आदि जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित है।

पं. जगन्मोहनलाल शास्त्री, कटनी
(जन्म: १९०१ ई., शहडोल)

प.जगन्मोहनलाल शास्त्री

आप जैन सिद्धान्त तथा अध्यात्म के गहन व सूक्ष्म चिन्तक, ओजस्वी प्रवचनकार, सफल अध्यापक एव सामाजिक कार्यों मे असाधारण व्यक्तित्व के परिचायक, विभिन्न गुणो से विभूषित '**वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि**' उक्ति को चरितार्थ करने वाले, चलती-फिरती धार्मिक संस्था के मूर्तिमान् रूप, अनेक विशेषताओ को सहज समेटे हुए वरिष्ठ श्रेणी के विद्वान् है।

आप भारवर्षीय दिगम्बर जैन सघ, चौरासी, मथुरा के अनेक वर्षो तक प्रधानमत्री एवं उसके मुखपत्र **जैन सन्देश** के सम्पादक रहे है। आप भारवर्षीय दि. जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष रह चुके है। आपने जैन शिक्षा संस्था कटनी के प्राचार्य के रूप मे अपनी सेवाएँ दी है तथा आज भी उक्त सस्था के अधिष्ठाता है।

आपके द्वारा अनूदित '**श्रावकधर्म-प्रदीप**' और अमृतचन्द्राचार्य के कलशों को आधार बनाकर लिखा गया '**अध्यात्म अमृतकलश**' उच्चकोटि के ग्रन्थ है।

अप्रैल, सन् १९९० में भारत की सम्पूर्ण जैन समाज की ओर से सतना मे आपका सार्वजनिक अभिनन्दन करके साधुवाद ग्रन्थ भेट किया गया था ।सम्प्रति श्रद्धेय पण्डितजी को इक्यावन हजार रुपये के आचार्य कुन्दकुन्द पुरस्कार देने की घोषणा की गई है, जो १४ जून ९२ को लोकसभाध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल के करकमलो द्वारा दिल्ली मे दिया जा रहा है । आपसे समाज को अनेक आशाएँ है ।

पंडित सुमेरुचन्द्र दिवाकर , सिवनी

(जन्म : १९०५ ई. सिवनी)

आप अ. भा. दि. जैन परवार सभा के जन्मदाता श्री कुंवरसेन के सुपुत्र हैं । आपने **जैन शासन, चारित्र चक्रवर्ती, तीर्थङ्कर, आध्यात्मिक ज्योति, महाश्रमण महावीर, अध्यात्मवाद की मर्यादा, सैद्धान्तिक चर्चा, तात्त्विक चिन्तन, निर्वाणभूमि सम्मेद शिखर, चम्पापुरी, विश्वतीर्थ श्रमणबेलगोला,** Religion and Peace, Glimpses of Jainism, Tirthankar Mahavir : Life and Philosophy. आदि स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की है तथा **कसायपाहुड** और **महाबन्ध** आदि ग्रन्थो का सम्पादन-अनुवाद किया है । अनेक वर्षो तक जैनगजट के सम्पादक रहे है । जैनधर्म के प्रचार हेतु जापान गये । शाकाहार सघ की स्थापना की । अतः जबलपुर में आपका सार्वजनिक अभिनन्दन हुआ था । आदरणीय पण्डित जी की साहित्यिक एवं सामाजिक सेवाएँ स्मरणीय रहेगी ।

पं. मूलचन्दजी शास्त्री

(जन्म : वि. सं. १९६०, मालथौन, सागर, म. प्र.)

आप संस्कृत कविता लिखने मे चतुर थे । आपने अनेक ग्रन्थो का अनुवाद किया है । **वचनदूतम्** और **वर्द्धमान चम्पूकाव्य** इनकी विशेष प्रतिभा के परिचायक है । आपकी विद्वत्ता का लाभ दिगम्बर एवं श्वेताम्बर साधु-साध्वियो ने समान रूप से लिया है । जीवन के अन्तिम क्षणों में पण्डित जी दि. जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी (राज.) मे शास्त्र प्रवचन आदि का कार्य करते रहे हैं ।

स्व. बैरिस्टर जमनाप्रसाद जी कलरैया, सबजज

ये पिठौरिया (सागर) के निवासी थे। इनके पिता का नाम परमानन्द कलरैया था। इनका जन्म सन् १९०१ मे हुआ था। पिताजी ने कई वर्षो दीवान बहादुर सेठ बल्लभदास जी (जबलपुर) के यहाँ कार्य किया था। तत्पश्चात् खुरई मे श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी के यहाँ मुनीमी करने लगे। जमनाप्रसाद जी ने सन् १९२३ मे एम. ए., एल. एल. बी. उत्तीर्ण किया और सन् १९३१ मे इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टरी पास की। कुछ दिन वकालत करने के बाद इनका चुनाव सबजज के पद पर हो गया। इसी पद पर रहते हुये ये रिटायर हुये। स्व. जमनाप्रसाद जी मिलनसार, सरल प्रकृति के भद्रपुरुष थे तथा समाज सुधारक विचारधारा के थे। पुराने विचारों के विद्वानो के साथ सामाजिक क्षेत्र मे टक्कर होती रहती थी। फिर भी वे अपने विरोधी विचार वाले व्यक्तियो के साथ सदा स्नेहपूर्ण व्यवहार करते रहे। इसमे कभी कमी नही आई। वे धर्म एव समाजसेवा के प्रति आस्थावान् थे। जब वे कटनी में सबजज थे तब उन्होने कटनी मे रहने तक रात्रिभोजन का त्याग कर दिया था। क्योकि उनके कारण अनेक नवयुवक भी रात्रिभोजन करने लगे थे। वे नही चाहते थे कि उनके कारण समाज के युवको मे रात्रिभोजन का प्रचार हो।

समाज सुधार के क्षेत्र मे वे जब भी अवसर पाते थे छुट्टी लेकर के जाते थे। कई स्थानो पर लोगो से सघर्ष हुआ और पुलिस की चपेट में भी कई बार आये, किन्तु समाज सुधार का कार्य नही छोड़ा। भारतवर्षीय दि. जैन परिषद् के इटारसी अधिवेशन मे ये अध्यक्ष चुने गये और सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द जी भेलसा वालो को **षट्खण्डागम** को प्रकाशित करने की ओर आकर्षित करने और उनके द्वारा दान की घोषणा कराने मे उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। ये (स्व.) डॉ. हीरालाल जैन, कस्तूरचन्द जी वकील और बाबू कन्छेदीलाल जी वकील जबलपुर के साथी थे। कालेज में अध्ययन करने वाले जैन युवकों को हमेशा समाज 'सुधार के लिये उत्साहित करते रहते थे।

श्री कलरैया जी का परिवार :

आपके चार पुत्र एवं चार पुत्रियों है, जिनमें प्रथम पुत्र स्व. श्री नरेन्द्रकुमार जी जैन भारतीय जलसेना मे आफीसर थे । मेजर जनरल श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन, भारतीय थलसेना, दिल्ली में उच्च पदस्थ हैं। विंग कमाण्डर श्री संतोषकुमार जैन, भारतीय वायुसेना, नागपुर में सेवारत हैं । श्री रविकुमार जैन, लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी, जलगॉव, महाराष्ट्र में कार्यरत हैं ।

प्रथम पुत्री श्रीमती राजकुमारी जैन, रिटायर्ड प्रिंसिपल, सागर, (धर्मपत्नी स्व. प्रोफेसर श्री रतनकुमार जी जैन, सागर) हैं ।

द्वितीय पुत्री श्रीमती चन्द्रारानी जैन, दिल्ली, (धर्मपत्नी स्व. डॉ. भागचन्द्र जी जैन, जो बिड़ला समूह में उच्च पद पर कार्यरत थे) हैं ।

तृतीय पुत्री श्रीमती सुधारानी जैन, (धर्मपत्नी श्रीमन्त सेठ डालचन्द जी जैन, पूर्व सासद, सागर, म.प्र.) है, जो समाज के विभिन्न क्षेत्रो मे सक्रिय सहयोग करने वाली कार्यकर्त्री हैं ।

चतुर्थ पुत्री स्व. मेजर डा. ज्योतिरानी जैन, (धर्मपत्नी प्रोफेसर श्री सरोज कुमार जैन, इन्दौर) भारतीय थलसेना मे कार्यरत थी ।

पं. पन्नालालजी धर्मालंकार, शिखरजी

आपका जन्मस्थान मालथौन (जिला-सागर) है । आपकी शिक्षा सागर व स्याद्वाद विद्यालय काशी मे हुई । आप ऊँचे-पूरे गौर वर्ण के प्रभावक विद्वान् थे । अनेक स्थानों पर सामाजिक सेवाएँ करने के बाद आपने सम्मेद शिखर जी में तेरापंथी कोठी के मैनेजर पद को अलंकृत किया । वहाँ के नन्दीश्वर द्वीप की विशाल रचना आपकी सूझबूझ एवं निर्देशन में हुई है । तेरापंथी कोठी को सुन्दर रूप देने में आपका विशेष योगदान रहा है ।

आप अनेक वर्षों तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग (कला संकाय) में जैनदर्शन के प्राध्यापक रहे हैं । इन्हें लोग पोप सा. के नाम से जानते थे ।

स्व. पं. दयाचन्द सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ

आप मूलतः बाँदरी (सागर) के निवासी थे। आपकी शिक्षा सागर एवं काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय मे हुई। स्वाध्याय की प्रवृत्ति के कारण आपका सैद्धान्तिक ज्ञान गम्भीर था। आपने श्री गणेश वर्णी दि. जैन महाविद्यालय सागर को ४२ वर्षो तक अपनी सेवाएँ दी है। उक्त महाविद्यालय के प्राचार्य पद से निवृत्त होकर भी आपने स्वाध्याय की परम्परा चालू रखी और अन्त मे समाधिपूर्वक शरीर त्याग किया।

आपका सम्पूर्ण जीवन शिक्षा एव समाज के लिये समर्पित रहा है। आपकी सरलता और विद्वत्ता बेजोड़ थी।

पं. शोभाचन्द्र जी भारिल्ल
(जन्म : १९०४ ई., खैराना, सागर)

आप ग्यारह वर्ष की उम्र मे अध्ययनार्थ मथुरा गुरुकुल चले गये थे। वहाँ अनेक वर्षो तक अध्ययन करने के उपरान्त अन्य भारतीय धर्म-दर्शनो का विशेष एव तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु राजस्थान के बीकानेर नगर मे स्थित प्रसिद्ध एव विशाल ग्रन्थागार 'सेठिन जैन लायब्रेरी' मे रहे। आपकी विद्वत्ता एव प्रतिभा को देखकर श्री जैन गुरुकुल ब्यावर (राज.) ने प्रधानाचार्य पद के लिए आपको आमन्त्रित किया और ३० वर्षों तक उक्त संस्था की अनवरत सेवा की। साथ ही ब्यावर की एक संस्था 'जैन सिद्धान्तशाला' मे सैकड़ो जैन साधु-साध्वियों को जैन-आगमों और दर्शन का अध्यापन कार्य करते रहे। आपने दिल्ली विश्वधर्म सम्मेलनकी संचालन समिति के मन्त्री पद का उत्तरादायित्वपूर्ण कार्य भी बड़ी निष्ठा से किया।

इस सारी अवधि में आपने सैकड़ो धर्मग्रन्थों का लेखन, सम्पादन एवं सशोधन किया है। 'श्री मरुधर केशरी' जैसे विशाल उच्चकोटि के

अभिनन्दन ग्रन्थों का सम्पादन आपकी विद्वत्तापूर्ण कलम से ही हुआ। आपकी प्राञ्जल भाषा, सुलझे विचार और तर्क गूढ़ता ने जैन साहित्य को बड़ा समृद्ध किया है।

इसके साथ ही आपने '**वीर**', '**जैन-शिक्षण सन्देश**', '**सुधर्मा**' '**जैन जीवन**' आदि पत्रो का कुशल सम्पादन किया है।

आप श्रमणी विद्यापीठ बम्बई के प्रधानाचार्य भी रहे हैं, जो जेन आगम - शास्त्रो के उच्चतम अध्ययन का प्रधान केन्द्र है। प्राचीन जैन साहित्य एव अपभ्रश आदि मे शोध करने वाले अनेक जिज्ञासु छात्र भी आपसे निरन्तर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहे हैं। आपने अपनी प्रखर प्रतिभा, गहन चिन्तन और विशिष्ट लेखन द्वारा जैन साहित्य की श्री वृद्धि की है।

प्रो. डॉ. राजकुमार साहित्याचार्य, आगरा

(जन्म : १५ अक्टूबर, १९१७ ई., गुँदरापुर, झाँसी)

आपने साहित्याचार्य (ग. सं. कालेज, बनारस), न्यायकाव्यतीर्थ (कलकत्ता) और एम. ए. (आगरा विश्वविद्यालय) की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर वीर दि. जैन विद्यालय पपौरा, दि. जैन कालेज बड़ौत तथा आगरा कालेज मे संस्कृत विभागाध्यक्ष के रूप मे अपनी सेवाएँ दी हैं।

आपके द्वारा सम्पादित ग्रन्थों मे **मदन पराजय, प्रशमरतिप्रकरण, बृहत्कथाकोष** (अनुवाद), **पार्श्वाभ्युदय** (गद्य-पद्यानुवाद), **जसहरचरिउ** आदि प्रमुख हैं।

प्रो. राजकुमारजी की प्रारंभिक शिक्षा अपने मामा श्री वृन्दावनलाल जी प्रधानाध्यापक के संरक्षकत्व में हुई। बाद में वीर विद्यालय पपौरा तथा स्याद्वाद महाविद्यालय काशी में मुख्यतः संस्कृत का ही अध्ययन किया।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी मे दो वर्ष तक कतिपय सस्कृत-हिन्दी ग्रन्थों के सम्पादन मे योग दिया।

आपको बचपन से ही जीवन के कठोरतम सघर्षो से जूझना पड़ा। इनमे उनकी बहुत शक्ति क्षीण हुई और साहित्य-सृजन मे बाधा भी आई; परन्तु उत्साह उद्दीप्त ही रहा। परिणामस्वरूप आपने शोधकार्य कर पी-एच. डी. की उपाधि अर्जित की और अन्य साहित्य सृजन मे भी सफलता प्राप्त की।

डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन, उज्जैन

(जन्म : २५ जन. १९२२, नरियावली, निधन : १७ अक्टूबर १९८९)

डॉ हरीन्द्रभूषण जैन

आपके पिताजी का नाम ब्र छोटेलाल जी था। आप जैनधर्म-दर्शन एव सस्कृत-प्राकृत साहित्य के विशिष्ट विद्वान् थे। आपने सागर विश्वविद्यालय से एम ए (सस्कृत) पी-एच. डी (प्राकृत) किया और प्रारम्भ मे सागर वि वि मे सस्कृत के प्राध्यापक रहे। पुन विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन के सस्कृत-पालि-प्राकृत विभाग मे प्राध्यापक एव रीडर पद पर रहे है। सेवा निवृत्त होने के पश्चात् आप कुछ वर्षों तक अनेकान्त शोधपीठ बाहुबली (कोल्हापुर, महाराष्ट्र) के निदेशक भी रहे है।

जैन अंगशास्त्रों के अनुसार मानव व्यक्तित्व का विकास और **भारतीय संस्कृति और श्रमण परम्परा** ये दो इनकी बहुचर्चित कृतियॉ है। आपके जैनधर्म-दर्शन एव सस्कृति तथा संस्कृत-प्राकृत साहित्य से सम्बद्ध लगभग ७० शोधपत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए हैं।

आपको राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे भाग लेने के कारण साढ़े चार माह का कठोर कारावास हुआ था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बम काण्ड में भाग लेने के कारण आप तीन वर्षों तक भूमिगत रहे। सन् १९७३ मे मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री ने स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी के रूप मे प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया।

सन् १९७७ मे मैथिली विश्वविद्यापीठ दरभंगा ने आपको महामहोपाध्याय की मानद उपाधि से सम्मानित किया था। सन् १९७८ मे आप पूना मे सम्पन्न आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स के प्राकृत एव जैन विद्या विभाग के अध्यक्ष थे। आप अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के मत्री एव बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद् के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके है। उज्जैन की अखिल भारतीय कालिदास परिषद् आदि अनेक सस्थाओ के भी पदाधिकारी रहे है।

आपके दो सुपुत्र है— प्रदीप मोदी (नई दिल्ली) और प्रवीण मोदी (गाजियाबाद)।

प्रोफेसर लक्ष्मीचन्द्र जैन, जबलपुर
(जन्म : १ जुलाई, १९२६, सागर, म. प्र.)

पिता : मास्टर दमरूलाल जैन

संवाद पता : ५५४ सर्राफा, पुरानी बजाजी, जबलपुर।

शिक्षा : एम. एस-सी. (प्रयुक्त गणित) सागर विश्वविद्यालय, १९४९ एव डी. एच. बी. स्टेट व कौंसिल आफ होम्यो. एण्ड बायो. १९७१।

पद : (१) इण्डियन नेशनल साइस अकादमी के रिसर्च एसोसिएट।

(२) मानद निदेशक, आचार्य श्री विद्यासागर शोध संस्थान, जबलपुर।

(३) विजिटिग फेलो, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर।

प्रो लक्ष्मीचन्द्र जैन

शोध-कार्य : प्राय ७५ शोध-पत्र जैन गणित विज्ञान पर तथा ५ पुस्तके जैनगणित विज्ञान पर । प्राय २५ शोधपत्र (जापान आदि मे प्रकाशित) आइस्टाइन के क्षेत्र सिद्धान्त एकीकरण पर ।

शासकीय सेवा . मध्यप्रदेश शासन के कालेज विभाग मे सन् १९५१ से व्याख्याता, सहायक प्राध्यापक, प्राध्यापक एव स्नातकोत्तर प्राचार्य पद पर कार्य करते हुए सन् १९८४ मे सेवानिवृत्त ।

भाषा ज्ञान देशी एव विदेशी भाषाएँ तथा सस्कृत, प्राकृत समझने की योग्यता ।

शोधपत्र प्रस्तुति अनेक सगोष्ठियो एव अतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनारो मे जैन गणित एव आइस्टाइन के एक सूत्री सिद्धान्त पर ।

सत्यभक्त पं. दरबारीलालजी न्यायतीर्थ

ये काशी और मुरैना जैन विध्यालय के स्नातक है । सन् १९२१ और १९२२ मे ८ माह तक काशी के स्याद्वाद विद्यालय मे धर्माध्यापक रहे है । तत्पश्चात् सिवनी और इन्दौर के विद्यालयो मे भी धर्माध्यापक रहे है । अन्तर्जातीय विवाह को जैनागम सम्मत मानने व लेखों द्वारा प्रचार करने के कारण इन्हे सामाजिक क्षेत्र छोडकर अन्य एक स्वतन्त्र सघ बनाना पडा, जिसका नाम है सत्यसमाज । वर्धा के श्री जमनालाल जी बजाज ने आपको आश्रय दिया और आज भी वे अपने द्वारा स्थापित 'सत्य समाज' का प्रचार-प्रसार कर रहे है ।

प्रो. खुशालचन्द्रजी गोरावाला, वाराणसी
(जन्म : १९१७, मड़ावरा, ललितपुर, उ. प्र.)

एक प्रखर व्यक्तित्व जो सभी क्षेत्रो मे क्रान्तिकारी रहा, स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी, सत्याग्रह के समय उत्तर प्रदेश कॉग्रेस के सघटन मत्री तथा मत्री रहे। १९४१ मे हैलरशाही से जूझते हुए नजरबन्द रहे। १९४२ मे जेल से छूटते ही विद्रोही गतिविधियो मे सलग्न रहे। तभी से विभिन्न राजनीतिक दिशाओ में सक्रिय रहे है।

सन् १९५२ मे स्व रफी अहमद किदवई के साथ कॉग्रेस छोड़कर 'किसान-मजदूर-प्रजादल' मे सम्मिलित हुए। किन्तु प्रथम आम चुनाव की पराजय के बाद जब यह दल समाजवादी दल मे मिलकर 'प्रजा समाजवादी दल' बना तो नेताओ की मिलन प्रक्रिया से सहमत न होने के कारण गोरावालाजी ने राजनैतिक सन्यास ले लिया और किसी भी राजनैतिक दल मे प्रवेश नही किया। तब से स्वाध्याय, सम्पादन आदि कार्यो मे सलग्न है।

आपने **वरांगचरित, विद्यापीठ रजतजयन्ती ग्रन्थ, वर्णी-अभिनन्दन ग्रंथ, द्विसन्धान महाकाव्य** आदि अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो तथा पत्रिकाओ का सम्पादन किया और गुमनाम भी लिखते रहे है।

पं. हीरालाल जैन 'कौशल', दिल्ली

आपका जन्म ११ मई, सन् १९१४ को ललितपुर, उत्तर प्रदेश मे एक प्रतिष्ठित जैन कुल मे हुआ। आपने स्कूल की शिक्षा के पश्चात् शास्त्री और न्यायतीर्थ की परीक्षाएँ सम्मान पूर्वक उत्तीर्ण की।

आप ३८ वर्षो तक हीरालाल जैन उ मा विद्यालय, सदर बाजार, दिल्ली मे उच्च कक्षाओ को हिन्दी व धार्मिक शिक्षा देते रहे है।

उर्दू पत्र **जैन प्रचारक** को हिन्दी मे कराके उसका १० वर्षो तक सम्पादन किया और अनेक महत्त्वपूर्ण विशेषाक निकाले। आपने कई ग्रन्थो का

सम्पादन किया है। कई ग्रन्थो की विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ लिखी है। आपके लेख और कविताएँ विभिन्न पत्रो मे प्रकाशित होती रहती है।

आप अनेक संस्थाओ के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, पदाधिकारी तथा कार्यकारिणी के सदस्य है। आपको समाज की ओर से सन् १९४० मे '**विद्याभूषण**' की तथा बाद में '**वाणीभूषण**' की उपाधियो से सम्मानित किया गया।

१९७२ मे शिक्षक दिवस पर विज्ञान भवन नई दिल्ली मे आपकी विशिष्ट सेवाओ के लिये केन्द्रीय शिक्षा मंत्री माननीय नूरुल हसन साहब ने आपको 'राजकीय पुरस्कार' से सम्मानित किया था।

आप जैन सिद्धान्त तथा अन्य धर्मो के अच्छे ज्ञाता, सुलेखक, विचारक एवं कर्मठ समाजसेवी है।

पं. भगवानदास जैन शास्त्री, रायपुर

(जन्म : सन् १९०४)

आप मूलत साढूमल के निवासी है। आपकी शिक्षा बनारस मे सम्पन्न हुई। आपने न्याय-काव्यतीर्थ तक शिक्षा ग्रहण की। आप सन् १९३६ तक डी. एन. जैन बोर्डिग हाउस, जबलपुर मे प्रभारी के पद पर कार्यरत रहे। पश्चात् आपका कार्यक्षेत्र रायपुर हो गया। आप जैनधर्मशास्त्रो के कुशल व्याख्याता तथा अनुभवी व्याख्याकार है। आपने अनेक दिगम्बर एव श्वेताम्बर जैन साधु-साध्वियो को उच्चकोटि के धर्मशास्त्रो का गहन अध्ययन कराया है। एतदर्थ समय-समय पर रायपुर, दुर्ग, भिलाई, राजनॉदगॉव, डोगरगॉव, डोंगरगढ़, भोपाल, ललितपुर आदि की जैन समाजों ने आपका आत्मीय स्वागत एव अभिनन्दन भी किया है। श्री दिगम्बर जैन समाज, ललितपुर ने आपको **धर्मालंकार** की उपाधि से विभूषित किया। आपने रायपुर में पूज्य मुनिश्री १०८ श्री देवनन्दी जी महाराज को **राजवार्तिक** का स्वाध्याय कराया है। ८८ वर्ष की उम्र मे भी आपकी सेवाये समाज के लिये महत्त्वपूर्ण और अमूल्य हैं।

डॉ. देवकुमार जैन, रायपुर

आप प भगवानदास जी के सुपुत्र है। शासकीय छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर मे सहायक हिन्दी प्राध्यापक के पद पर कार्यरत है। आपने जोइन्दु की भाषा विषय पर शोधकार्य किया है। आपके कुशल निर्देशन मे अनेक छात्र शोधकार्य कर रहे है तथा दो छात्रो ने शोध-उपाधि भी प्राप्त की है।

आप एक प्रमुख समाज सेवी तथा रायपुर सभागीय सस्कृत परिषद रायपुर (रजि) के महामत्री, बालनाट्य केन्द्र (रजि) के अध्यक्ष एव मध्यप्रदेश अहिसा प्रचार सघ, रायपुर के मानद सचिव भी है।

पं. अमृतलाल शास्त्री, वाराणसी

(जन्म . १९१९ ई. बमराना, झांसी, उ. प्र.)

आप स्वभाव से मृदुल तथा विनम्र, ज्ञान मे विशद तथा स्फीत, साहित्य, दर्शन, व्याकरण आदि विविध विषयो के प्रौढ़ पण्डित, लेखक तथा **चन्द्रप्रभचरित, तत्त्वसंसिद्धि** आदि ग्रन्थो के सफल अनुवादक है। सन् १९५७ से १९७७ तक सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी मे जैन दर्शन विभाग मे प्राध्यापक एव अध्यक्ष रहे है। सम्प्रति जैन विश्वभारती, लाड़नू (राजस्थान) मे जैनदर्शन के प्राध्यापक है।

प्रो. उदयचन्द्र जैन, सर्वदर्शनाचार्य, वाराणसी

(जन्म : १ अक्टूबर १९२३, पिपरौदा, खनियाधाना, शिवपुरी, म. प्र.)

आदरणीय पण्डित जी जैन और बौद्धदर्शन के विशिष्ट विद्वान् है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री वीर दि. जैन विद्यालय पपौरा मे हुई। पुनः श्री स्याद्वाद महाविद्यालय से सर्वदर्शनाचार्य एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र मे एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। बाद मे आपने बौद्धदर्शनाचार्य,

जैनदर्शनाचार्य एव न्यायतीर्थ की परीक्षाएँ उच्चश्रेणी मे उत्तीर्ण कर तीन स्वर्णपदक प्राप्त किये। आपने सन् १९५० में मध्यप्रदेश सरकार के शिक्षा विभाग मे तर्कशास्त्र एव दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक के रूप मे धार, महू और विदिशा के शासकीय महाविद्यालयो मे अपनी सेवाएँ दी है। सन् १९६० मे अपने गुरुवर्य सिद्धान्ताचार्य प कैलाशचन्द्र जी शास्त्री की सात्त्विक प्रेरणा से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्यविद्या धर्मविज्ञान सकाय मे बौद्धदर्शन के प्राध्यापक पद पर प्रतिष्ठित होकर वाराणसी को अपनी कार्यक्षेत्र बनाया। सन् १९७९ मे आप जैन बौद्धदर्शन के रीडर पद पर नियुक्त हुये और बाद मे दर्शनविभागाध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ समर्पित कर आपने सन् १९८३ मे विश्वविद्यालय सेवाओ से अवकाश प्राप्त किया।

आपने बौद्धदर्शन का अध्ययन स्व प्रो महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य से किया था। बाद मे न्यायाचार्य जी द्वारा सम्पादित तत्त्वार्थवृत्ति के सम्पादन मे सहयोग दिया और उसका हिन्दी सार भी लिखा। आचार्य समन्तभद्रकृत **आप्तमीमांसा** की **अष्टशती** और **अष्टसहस्री** टीकाओं को आधार बनाकर आपने तत्त्वदीपिका नामक टीका लिखी है, जिसमे जैन न्यायशास्त्र के हार्द को स्पष्ट करते हुए समस्त भारतीय दर्शनो पर विचार किया है। इस टीका से विद्वज्जनो मे **कष्टसहस्री** के रूप मे विख्यात **अष्टसहस्री** का सहज बोध हो जाता है। आपकी यह कृति अ भा दि जैन शास्त्रि परिषद् द्वारा पुरस्कृत है। **अनेकान्त एवं स्याद्वाद** नामक पुस्तक मे आपने जैनदर्शन के प्रमुख सिद्धान्तो का विवेचन किया है। सिद्धान्ताचार्य प हीरालाल जी शास्त्री साढूमल द्वारा अनूदित प्रमेयरत्नमाला की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी लिखी है। इसके अतिरिक्त विविध पत्र-पत्रिकाओ मे आपके लेख प्रकाशित होते रहते है।

आप सन् १९६५ से १९७६ तक अ भा दि जैन विद्वत्परिषद् के सयुक्तमत्री रहे है। इसी प्रकार श्री गणेश वर्णी दि जैन सस्थान (वाराणसी) के पूर्व मे सयुक्तमत्री रहे है तथा वर्तमान मे उपाध्यक्ष है। नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा एव प्राकृत शोध सस्थान, वैशाली की महापरिषदो के भी आप अनेक वर्षो तक सदस्य रहे है।

प्रो. डॉ. राजाराम जैन, आरा

बुन्देलखण्ड की विभूति डॉ राजाराम जी का जन्म सन् १९२९ मे हुआ था। आपने सन् १९५४ मे हिन्दू विश्वविद्यालय काशी मे एम ए तथा आचार्य की परीक्षा पास कर तत्कालीन सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ राजबली पाण्डेय तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के सान्निध्य मे शोध एव सम्पादन कार्य का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

प्रो डॉ राजाराम जैन

सन् १९५६ मे डॉ हीरालाल जी जैन तथा डॉ ए एन उपाध्ये की प्रेरणा से अपभ्रश, प्राकृत, सस्कृत एव प्राचीन हिन्दी की ३३ दुर्लभ पाण्डुलिपियो के सम्पादन, अनुवाद एव समीक्षा के कार्य मे सलग्न होकर सफलता प्राप्त की है।

आपने सन् १९७६ मे आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेस (कर्नाटक विश्वविद्यालय) के प्राकृत विभाग की अध्यक्षता की। डॉ जैन अनेक उच्च शोध सस्थाना से सबद्ध है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन कर चुके है और वर्तमान मे भी कार्यरत है। उनके निर्देशन मे पी-एच डी एव डी लिट् उपाधियो के लिये १४ छात्र व छात्राएँ शोधकार्य मे रत है। वे अनेक सुप्रसिद्ध सस्थाओ से पुरस्कार व सम्मान प्राप्त कर चुके है।

श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन शोध सस्थान एव ग्रन्थमाला के मानद मत्री रह चुके है। महाकवि रइधू के उपलब्ध अप्रकाशित ग्रथो का **रइधू ग्रन्थावली** के रूप मे सम्पादन कर रहे है। डॉ जैन सरल स्वभावी, मिष्टभाषी और कठोर परिश्रम करने वाले व्यक्ति है। आपकी धर्मपत्नी डॉ विद्यावती जैन

है तथा दो पुत्र है। प्रथम पुत्र आई ए एस पदाधिकारी है तथा दूसरा पुत्र मिलिटरी मे सेकेड लेफ्टिनेन्ट है। दो पुत्रियाँ है— एक कम्प्यूटर इजीनियर तथा दूसरी दिल्ली विश्वविद्यालय मे भौतिकशास्त्र की लेक्चरर है।

(ख) अन्य विद्वान्

अकलतरा ·

पं. कन्हैयालाल शास्त्री, अकलतरा

आपने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद कई वर्ष शिक्षण कार्य किया और बाद मे व्यापारिक क्षेत्र मे अपनी पैठ बनाई। इस समय आप गृह त्यागकर उदासीन आश्रम ईसरी मे रहकर धर्मसाधन कर रहे है।

अगास .

स्व. पं. गुणभद्र शास्त्री, अगास

आप मूलत मऊरानीपुर (झाँसी) के निवासी थे। बाद मे आपका परिवार छिदवाड़ा मे आकर बस गया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हस्तिनापुर गुरुकुल मे सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् इन्दौर और काशी के विद्यालयो मे भी अध्ययन किया। कविता लेखन मे आपकी विशेष रुचि थी। आपने तीस वर्षो तक श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात) मे अध्यापन कार्य किया है। साथ ही **जैन भारती, प्रद्युम्न चरित** तथा **साध्वी** आदि काव्यो की रचना की है।

अजनास :

पं. राजकुमार शास्त्री

(जन्म : सं. १९५५, अजनास, इन्दौर, म. प्र.)

आप मालवाक्षेत्र के प्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य थे।

अजमेर :

श्री मनोहरलाल जैन, एम. ए., अजमेर
(जन्म : अगहन शुक्ला १, संवत् १९७१, दमोह)

आप मूलत दमोह (म. प्र.) के निवासी है। इन्दौर से अग्रेजी मे एम. ए. करने के बाद आपने प्रारम्भ मे कलकत्ता के जैन विद्यालय मे कार्य किया। पुन अजमेर के टीकमचन्द जैन हाई स्कूल मे प्राचार्य रहे और वही से अवकाश ग्रहण किया।

आप अपनी स्वाध्यायी प्रकृति के कारण अध्यात्म की ओर उन्मुख हुए। अवकाश ग्रहण करने के बाद जैन श्वेताम्बर तेरापथ के आचार्य तुलसी द्वारा स्थापित जैन विश्व भारती लाडनू मे आपने प्रशासक पद पर रहते हुए साधु-साध्वियो को अग्रेजी का अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। दिगम्बरत्व के प्रति कट्टर दृष्टिकोण होने के कारण आप वहाँ के साधु-साध्वियो को प्रणाम नही करते थे, अतः उनकी यह प्रवृत्ति चर्चा का विषय बनी और थोडे ही समय बाद आप वहाँ से सेवा निवृत्त हो गये।

आपने अनेक पुस्तको का अग्रेजी अनुवाद किया है। सम्प्रति आप अपने ज्येष्ठ सुपुत्र डॉ प्रवीणकुमार जैन के साथ भीलवाड़ा मे रहते हुए मुमुक्षु मण्डल के लोगो को स्वाध्याय कराने मे सलग्न है।

अमलाई :

डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, अमलाई
(जन्म : १० जनवरी १९३८, चन्देरी, गुना)

आप प. चुन्नीलालजी शास्त्री के सुपुत्र है। आपने इन्दौर से बी. काम. सागर से एल. एल. बी एवं एम. ए. (अर्थशास्त्र) और रीवाँ से डॉक्टरेट और बाद में एम. ए. (समाजशास्त्र) आदि की उपाधियाँ अर्जित की है। आप अपनी बहु आयामी सामाजिक सेवाओ के लिये अ. भा. दि. भगवान् महावीर के पच्चीससौवे निर्वाणोत्सव महासमिति दिल्ली द्वारा स्वर्णपदक से सम्मानित हो

चुके है । अखिल भारतीय स्तर की अनेक समितिया एव सस्थाओ से सम्बद्ध डॉ बसल जी के आध्यात्मिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एव समाज सुधार सम्बन्धी शताधिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके है । आप सन् १९५८ म ओरियण्ट पेपर मिल्स की वन केन्द्र की सेवाओ मे सम्मिलित होकर अब तक अनेक पदो पर प्रोन्नत हुये हैं और सम्प्रति ओरियण्ट पेपर मिल्स अमलाई (शहडोल) मे कार्मिक प्रबन्धक के पद पर कार्यरत है ।

अशोकनगर

सिं. गेंदालाल एडवोकेट, अशोकनगर

सि गेंदालाल एडवोकेट

चन्देरी मे जन्मे सि गेंदालालजी एडवोकेट अब अशोकनगर मे रहते है और अच्छे साहित्यकार है तथा अनेक उपन्यासो के रचयिता, प्रथमानुयोग के विविध कथा-प्रसगो को आधुनिक परिवेश म कलात्मक ढग से सजाने मे निष्णात विद्वान् है । विविध पत्र-पत्रिकाओ मे इनकी कहानियां प्रकाशित होती रहती है । इनके सामने आते ही ऐसा लगता है कि प्रथमानुयोगी सामने आ गया है । हिन्दी और अग्रेजी मे समान रूप से लेखनी चलाते है । आपने १६ जैन पुराणो के आधार पर २२ उपन्यास लिखे है । कुछ पौराणिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके है । उनमे **सुन्दरम्, गुणों के ग्राहक, बाहुबली, कथनी और करनी** आदि प्रमुख है । आपकी गीतिकाओ और नाटिकाओ का प्रसारण आकाशवाणी पर होता रहता है । आप हाई कोर्ट के सुप्रसिद्ध वकील है ।

स्व. सिंघई चम्पालाल 'पुरन्दर'

(जन्म तिथि . ६ फरवरी १९१९; स्वर्गवास १६ सितम्बर १९७२)

आपका जन्म चन्देरी (गुना म प्र) मे हुआ था। आपने हिन्दी और इतिहास मे स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की थी। बाल्यावस्था से ही समाज-सेवा, राजनीति और साहित्य रचना के विविध क्षेत्रो मे इनकी प्रतिभा का लाभ समाज को प्राप्त होने लगा था। आप सन् १९३५ से लेकर जीवन के अन्त तक कुछ न कुछ लिखते रहे है। कवि और कहानीकार के रूप मे आपकी प्रसिद्धि थी। चन्देरी मे आपके द्वारा प्रारम्भ पद्मकीर्ति महा-विद्यालय आज भी चल रहा है।

स्व सिघई चम्पालालजी

आप विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन की पी-एच डी. उपाधि हेतु भट्टारक परम्परा पर अपना शोध-प्रबन्ध तैयार कर रहे थे कि अचानक आपका स्वर्गवास हो गया।

श्री सिघई गेदालाल जी आपके अनुज है।

आरा :

श्रीमती डॉ. विद्यावती जैन, आरा

आप डॉ. राजाराम जी की धर्मपत्नी है। आपने उच्च श्रेणी मे एम ए (हिन्दी), एम. ए. (प्राकृत, लब्ध स्वर्णपदक) और साहित्यरत्न की परीक्षाएँ पास

कर सन् १९८१ में पी-एच डी की उपाधि प्राप्त की है। आप मगध वि वि के अन्तर्गत महिला महाविद्यालय आरा मे प्राध्यापिका है। अब तक आपके तीन ग्रन्थ व तीन शोध निबन्ध प्रकाशित हो चुके है तथा तीन शोध छात्राएँ पी-एच डी की उपाधि के लिये शोधकार्य मे रत है। तीन अप्रकाशित ग्रथो का आप सम्पादन कर रही है।

श्रीमती डॉ विद्यावती जैन

इटारसी

स्व. पं. सुन्दरलाल आयुर्वेदाचार्य, इटारसी

ये बुन्देलखण्ड के निवासी थे। कानपुर मे हकीम कन्हैयालाल जी के सान्निध्य मे रहकर आयुर्वेद का पठन-पाठन कर ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त किया था। इटारसी नगर परिषद् के औषधालयो मे लगभग ५० वर्षो तक प्रधान वैद्य रहे है। इनके छोटे भाई प आनन्दकुमार शास्त्री थे। दोनो भाई सुन्दर, सुगठित बदन और हंसमुख थे।

इन्दौर

डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर

आपका जन्म बाँदरी (जिला-सागर) मे हुआ था। सागर और बनारस विद्यालय मे रहकर आपने साहित्याचार्य और एम ए की परीक्षा उत्तीर्ण की।

आप अपभ्रश भाषा के अच्छे विद्वान् थे । अप्रभ्रश भाषा के अनेक ग्रथो का आपने विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया है ।

पं. नाथूराम डोंगरीय, न्यायतीर्थ

(जन्म पौष कृष्णा अष्टमी, संवत् १९६७, मुँगावली)

आप मूलत मुँगावली (गुना, म प्र.) के निवासी है ।

आपने जैन शिक्षा सस्था कटनी मे प्रवेश कर अपना उच्च शिक्षण प्रारम्भ किया । आप कटनी सस्था के सर्वप्रथम स्नातक न्यायतीर्थ है । आपने इन्दौर मे रहकर अपने अध्यवसाय से इन्दौर समाज मे अपना विशिष्ट स्थान बनाया है । छात्रावस्था से ही कविता लिखने मे आपकी रुचि थी । सर्वप्रथम **रक्षाबन्धन** कथा की पद्यमय रचना की, जो लोक प्रसिद्ध हुई । आपने अब तक अनेक ग्रन्थो का पद्यानुवाद किया है, जिनमे **समयसार, नियमसार, पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय, श्रावकाचार** एव **भक्तामर स्तोत्र** प्रमुख है ।

उदयपुर

स्व. पं. गुलजारीलाल शास्त्री, उदयपुर

इनका जन्म केसली (सागर) मे हुआ था । करीब ८० वर्ष की उम्र मे दिवगत हुये । अपने जीवनकाल मे उदयपुर मे शिक्षण कार्य करते रहे है ।

कटनी :

स्व. पं. फूलचन्द्र शास्त्री, कटनी

तिवरी (जिला-जबलपुर) निवासी उक्त प जी मुरैना विद्यालय मे अध्ययन करने के पश्चात् कटनी मे कपड़े का व्यापार करते थे । आप जैन शिक्षा सस्था, कटनी के आजीवन मत्री एव ट्रस्टी रहे है ।

पं. कुन्दनलाल जैन, कटनी

प कुन्दनलाल जैन, कटनी

आप प्रारम्भ मे शिक्षक रहे है। कुछ न्र्षो तक कटनी जैन पाठशाला के प्राधानाध्यापक पद पर कार्य किया है। आपकी सगीत मे विशेष रुचि थी। आप समाजसेवा मे तत्पर एव धार्मिक रुचि सम्पन्न व्यक्ति थे। आपने अपने अध्यवसाय से कटनी मे चूने के व्यापार को अच्छी गति दी थी।

वैद्य केशरीमल आयुर्वेदाचार्य

वैद्य केशरीमल आयुर्वेदाचार्य

आप मूलत मुँगावली के निवासी है। आपने जैन शिक्षा सस्था कटनी द्वारा सचालित परमानन्द कोमलचन्द जैन आयुर्वेद महाविद्यालय को प्राचार्य के रूप मे लगभग तीस वर्षो तक अपनी सेवाएँ दी है। साथ ही स सि कन्हैयालाल गिरधारीलाल जैन धर्मार्थ औषधालय (कटनी) के प्रधान चिकित्सक के रूप मे कार्य किया है। आपके अनेक विद्यार्थी आयुर्वेद चिकित्सा के क्षेत्र मे विभिन्न स्थानो पर शासकीय सेवा मे सलग्न है तथा स्वतन्त्र

प्रेक्टिस भी कर रहे है। आप हकीम कुन्दनलाल जी (मुँगावली) के अनुज है।

जैन शिक्षा संस्था कटनी के कतिपय विद्वान्

इस सस्था को अपनी सेवाएँ देने वाले विद्वानो मे स्व. पं. रामरतन शास्त्री न्यायतीर्थ (दमोह), प कन्हैयालाल काव्यतीर्थ (कटनी) और प. जमुनाप्रसाद शास्त्री (कटनी) के नाम उल्लेखनीय है। प. पदमचन्द शास्त्री (शाहपुर) इसी सस्था के स्नातक है और सम्प्रति प्रधानाचार्य के रूप मे अपनी सेवाएँ दे रहे है। इस सस्था ने समाज एवं देश को अन्य और अनेक आयुर्वेद चिकित्सक एव जैनदर्शन के ठोस विद्वान् दिये है, जो समाज सेवा मे सलग्न है। उनका परिचय अन्यत्र आ चुका है।

यहाँ की विदुषी कवयित्री सुन्दरबाई जैन (स सि धन्यकुमार जैन की बहिन) का नाम भी उल्लेखनीय है।

करेली·

पं. ज्ञानचन्द बड़कुर, करेली

आप अध्यात्म के अच्छे विद्वान् व प्रवक्ता है। आप शुद्धाम्नायी तेरापन्थी व चारित्रवान् पंडित है।

श्री कपूरचन्द केशलीवाले, करेली

आप अध्यात्म के ज्ञाता व चारित्रवान् विद्वान् है। समय-समय पर आप भारत के प्रमुख नगरो मे सेवाभाव से प्रवचन करने जाते रहते है।

कलकत्ता :

राजवैद्य पं. बाबूलाल जी, कलकत्ता

आप मूलतः नरसिहपुर के रहने वाले थे। कुछ समय शहडोल (म. प्र) मे भी रहे है। कालान्तर मे कलकत्ता को अपना निवास स्थान बनाया। कलकत्ता मे ही इनकी विद्याओ और सेवाओ का विकास हुआ। ये उदारवृत्ति के व्यक्ति थे। कलकत्ता मे इनका विशाल आयुर्वेदिक औषधालय था। प प्रेमचन्द जी काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य (कटनी) आपके दामाद थे। प प्रेमचन्द जी कटनी विद्यालय के स्नातक थे तथा तारादेही के रहने वाले थे। पास मे न कोई सम्पत्ति थी और न कोई मकान, फिर भी प बालूलाल जी ने बालक प्रेमचन्द की योग्यता पर मुग्ध होकर अपनी सुयोग्य कन्या का विवाह जैन धर्मशाला कटनी से दोनो ओर का खर्च उठाकर किया था। यह उनका एक महान् आदर्श कार्य था।

पं. कमलकुमार गोइल्ल, कलकत्ता

इनका जन्म सवत् १९६४ मे बक्स्वाहा (जिला— सागर) मे हुआ था। आपने सागर विद्यालय से धर्मशास्त्री एव व्याकरणतीर्थ की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की तथा वही अध्यापक हो गये। आजकल आप कलकत्ता मे सामाजिक क्षेत्र मे अपनी सेवाएँ दे रहे है। आप निष्णात विद्वान् है।

पं. पन्नालालजी न्यायकाव्यतीर्थ, कलकत्ता

आपका जन्म खनियाधाना (जिला— शिवपुरी) मे हुआ था तथा शिक्षा स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे हुई। कुछ समय आपने जैन सघ मथुरा की ओर से प्रचारकीय कार्य किया है। इस समय आप जैन विद्यालय मे अध्यापक है। आपकी उम्र करीब ६० वर्ष है।

कामठी ·

डॉ. रतन पहाड़ी, कामठी
(जन्म . १५ अक्टूबर, त्योंदा, विदिशा, म. प्र.)

डॉ रतन पहाडी

आपकी शिक्षा सारनाथ एव वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय मे हुई । सन् १९४२ के स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे भाग लेने के कारण आपको छह माह की जेल हुई थी तथा चार माह विचाराधीन कैदी के रूप मे रखा गया था । बाद मे आपने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा) मे प्रचारमत्री का कार्य किया । गाँधी जी के सेवाग्राम पवनार मे सम्बन्धित होने से आचार्य विनोबा भावे की गतिविधियो मे सक्रिय योगदान दिया ।

आप उच्चकोटि के साहित्यकार और सहदय कवि है । अब तक आपके पाँच कविता सग्रह प्रकाशित हो चुके है । आपने सिने जगत् मे चार वर्षों तक गीत लेखन का कार्य किया है । 'घर ससार' फिल्म के सुप्रसिद्ध गीत — 'बाबुल की दुआएँ लेती जा- - -' के लेखक आप ही हे । चीनी आक्रमण के समय देशभक्ति परक गीत — 'पहिनो नही गहना- - -' पर आपको प्रथम राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था । आपकी कविताएँ धर्मयुग आदि पत्र-पत्रिकाओ मे छपती रही है । आप वर्धा से प्रकाशित 'जैन जगत्' के सम्पादक भी रहे है ।

नागपुर विश्वविद्यालय के पोरवाल कालेज मे २४ वर्षो तक हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप मे सेवाएँ देने के पश्चात् सन् १९८७ मे अवकाश प्राप्त किया । पुन. आरोग्य मन्दिर गोरखपुर से एन डी (डाक्टर ऑफ नेचरोपैथी) का कोर्स करके सन् १९८८ मे एक्यूप्रेशर हेतु जापान गये और अब प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति समर्पित है ।

सम्पर्क सूत्र · डॉ. रतन 'पहाड़ी' प्राकृतिक चिकित्सक, ८३, मालरोड, कामठी, नागपुर (महाराष्ट्र) ।

खजुराहो :

पं. अमरचन्द्र शास्त्री, खजुराहो

आप बाजना (छतरपुर) के मूल निवासी हैं । आप स्व. प. दुलीचन्द जी प्रतिष्ठाचार्य, जो कि तेरापन्थ शुद्धाम्नाय के प्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य थे, के सुपुत्र तथा अध्यात्म प्रेमी एव प्रतिष्ठित विद्वान् है । सम्प्रति खजुराहो क्षेत्र पर अपनी विशिष्ट सेवाएँ दे रहे है ।

खिमलासा .

कवि करुण जी, खिमलासा

आप विद्वान् कवि और समाजसेवी है । आपकी कविताएँ जैन पत्रो मे निकलती रही है ।

गंजबासौदा :

पं. पल्टूराम शास्त्री, गंजबासौदा

(जन्म · संवत् १९५०, जाखलौन; निधन . वि. सं. २०४३)

आपकी शिक्षा-दीक्षा जैन विद्यालय ललितपुर, गोपाल दि. जैन विद्यालय मुरैना एव श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी मे हुई है। आपने मुरैना, सिवनी, खुरई, बड़नगर,

पं. पल्टूराम शास्त्री

देहली आदि स्थानो पर अध्यापन कार्य किया है। आपका जीवन सात्त्विक था। आप श्रीमान् प जगन्मोहनलालजी शास्त्री के समधी थे।

गोटेगाँव :

पं. लोकमणि शास्त्री, वैद्यभूषण, गोटेगाँव

प लोकमणि शास्त्री

प जी का जन्म हिनौतिया मे सवत् १९४६ मे हुआ था। इनके पिताजी का नाम आशाराम सुलहा था। शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होने अनेक स्थानो मे कार्य किया। श्री कोनी जी क्षेत्र के जीर्णोद्धार कराने मे योगदान दिया है। इन्होने सत्याग्रह मे तीन बार जेल यात्रा की। ये जैनदर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् माने जाते है। इनके सहपाठी विद्वानो मे प तुलसीराम जी, प देवकीनन्दन जी और प सिद्धामल जी प्रमुख है। ये स्वाभिमानी और स्वतन्त्र वक्ता है।

गौरझामर .

स्व. पं. गिरधारीलाल शास्त्री, गौरझामर

आप गौरझामर के रहने वाले तथा अत्यन्त सदाचारी और बुद्धिमान् थे। केसरिया जी मे दिगम्बर पेढ़ी मे मेनेजर थे। एक बार श्वेताम्बरो ने दिगम्बर मन्दिर पर ध्वजारोहण की योजना बनाई तो उन्होने रोका और उस

पर काफी विवाद हुआ। उन्होने घोषणा की कि मेरे जीवित रहते हुये मन्दिर पर झण्डा नही चढ़ा सकते तो श्वेताम्बरो ने इनकी हत्या कर दी। धर्म के लिये उन्होने अपना बलिदान कर दिया।

पं. छोटेलालजी न्यायतीर्थ

आप होनहार और प्रबुद्ध विद्वान् थे, परन्तु दुर्भाग्य से लघुवय मे ही आपका स्वर्गवास हो गया।

चन्देरी :

पं. चुन्नीलाल शास्त्री, चन्देरी

आप चन्देरी के निवासी तथा प्राच्य परम्परा के व्युत्पन्न विद्वान् है। डॉ राजेन्द्रकुमार बसल अमलाई आपके सुपुत्र है।

छपारा ·

पं. सत्यन्धरकुमार आयुर्वेदाचार्य

ये आयुर्वेद के अच्छे विद्वान् थे। समाजसेवी एव धर्मप्रचारक थे। इनका कार्यक्षेत्र छपारा (सिवनी) था।

पं. बाबूलाल न्यायतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य

आप प्रारम्भ से ही छपारा (सिवनी) में रह रहे है तथा वहाँ के औषधालय मे प्रारम्भ से ही कार्य करते रहे है।

जबलपुर :

पं. गुलाबचन्द्र जैनदर्शनाचार्य, जबलपुर

(जन्म : बरौदिया कला, सागर)

आप स्याद्वाद विद्यालय काशी के स्नातक है। आपने वर्णी जी द्वारा जबलपुर मे स्थापित पाठशाला को सन् १९६० मे पुनः प्रारम्भ किया और दस वर्षो तक उसके मन्त्री रहे। इसी प्रकार और भी अन्य अनेक सामाजिक और सास्कृतिक सस्थाओ से सम्बद्ध रहे है। कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्ता है। सन् १९५५ से ग्रन्थ-लेखन एवं उनके प्रकाशन मे लगे हुये हैं। आपको विविध विषयों का अच्छा ज्ञान है। आपको अनेक पुस्तके मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग द्वारा विविध पाठ्यक्रमो मे निर्धारित है। **संस्कृत मंजरी, व्याकरण वल्लरी, सामाजिक अध्ययन, हिन्दी प्रवाह, अर्थशास्त्र की विवेचना, नागरिकशास्त्र की रूपरेखा, भूगोल, नीति शिक्षा और राष्ट्रीय प्रान्तीय एकता की कहानी** आदि आपकी उल्लेखनीय पुस्तके है। सम्प्रति आप जबलपुर मे ग्रन्थ-लेखन एव प्रकाशन मे संलग्न है।

प्रो. प्रफुल्लकुमार मोदी

आप सागर विश्वविद्यालय के कुलपति रह चुके है। आपने जैन ज्योतिष सम्बन्धी ग्रन्थ '**करलक्खण**' का सम्पादन एव हिन्दी अनुवाद किया है। आप सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रो. डॉ हीरालाल जैन जबलपुर के सुपुत्र है।

स्व. श्रीमती रूपवती 'किरण'

श्री रूपवती जी नागपुर निवासी श्री लक्ष्मीचन्द्रजी की सुपुत्री थी। आपका जन्म सन् १९२५ मे हुआ था। आपको बचपन से ही कविता करने का स्वतः अभ्यास था। सन् १९४० मे आपका विवाह जबलपुर के प्रतिष्ठित घराने मे श्री कोमलचन्द्र जी के साथ हुआ। आपने अपने जीवन मे शताधिक

रचनाएँ लिखीं हैं। आप आध्यात्मिक विचारधारा की थी। दस-बारह जैन पत्रों में आपकी रचनाएँ छपती रही। सार्वजनिक सभाओं में सदा भाग लेती थी। अनेक संस्थाओं की सदस्या थी। समाज ने अपको स्वर्णपदक से सम्मानित किया था। सन् १९७९ में दिवंगत हो गईं। आप सरल और स्नेहमयी प्रकृति की थी। आपकी छाप आज भी महिला समाज पर है।

पं. ज्ञानचन्द्र शास्त्री, जबलपुर

ये मूलतः गढ़ाकोटा (सागर) के निवासी है। वर्तमान में जबलपुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया है। जवाहरगंज (जबलपुर) के मंदिर में आपका प्रतिदिन प्रभावक प्रवचन होता है।

जयपुर :

पं. रतनचन्द्र भारिल्ल, जयपुर

(जन्म : १९३२ ई., बरौदास्वामी, झाँसी, उ. प्र.)

आध्यात्मिक कार्य-कलापो मे संलग्न एक व्यक्तित्व, '**जैन पथप्रदर्शक**' पाक्षिक पत्र के सम्पादक तथा टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के प्राचार्य एवं कई धार्मिक पुस्तको के लेखक व प्रवचनकार।

डॉ. हुकमचन्द्र भारिल्ल

(जन्म : १९३७ ई., बरौदा स्वामी, झाँसी)

आप आध्यात्मिक गतिविधियों मे सतत प्रवर्तमान, '**वीतराग विज्ञान**' के सम्पादक, जैन जगत् के सर्वाधिक चर्चित हस्ताक्षर, लगभग तीस धार्मिक पुस्तको के लेखक, श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के निदेशक, देश-देशान्तरों मे अध्यात्म के सफल प्रचारक एवं प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् है।

श्री अखिल बंसल, जयपुर

मूलतः चन्देरी के निवासी श्री बंसल जी समन्वय वाणी के यशस्वी सम्पादक एवं शुद्धाम्नाय के पोषक युवा विद्वान् हैं।

श्री श्रीयांसकुमार सिंघई

आप जैनदर्शन के युवा विद्वान् हैं। संस्कृत भाषा में आपकी अच्छी गति है। सम्प्रति आप केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ जयपुर में जैनदर्शन के प्रवक्ता हैं।

जरुआखेड़ा :

पं. बाबूलाल नायक, जरुआखेड़ा

आप खुरई के निवासी हैं। आपने कटनी विद्यालय में विशारद तक शिक्षा प्राप्तकर राजस्थान के विभिन्न नगरों में अध्यापन कार्य किया है। आप प्रतिष्ठाचार्य भी हैं।

जैसीनगर :

पं. बाबूलाल शास्त्री, जैसीनगर

आपने सागर विद्यालय में शास्त्री तक अध्ययन किया है। पुनः समाज में शिक्षा के प्रसार हेतु पाठशाला चालूकर धर्म एवं समाज की सेवा की हैं।

टीकमगढ़ :

स्व. पं. खुन्नीलाल जी (पं. ज्ञानानंद जी)

(जन्म : १९०० ई. टीकमगढ़, म. प्र.)

आप एक सुसंस्कृत तथा आगमनिष्ठ विद्वान् थे।

पं. विमलकुमार जैन सोंरया

(जन्म : १९४० ई., मड़ावरा, ललितपुर, उ. प्र.)

आप एक ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठाचार्य, **वीतराग वाणी** मासिक पत्रिका के सम्पादक तथा **विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ** के सम्पादक है ।

डालमियानगर

पं. अमरचन्द्र शास्त्री, डालमियानगर

आप स्याद्वाद विद्यालय काशी के स्नातक है । आपने डालमियानगर मे अनेक वर्षो तक पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप मे कार्य किया है । सम्प्रति आप सेवा निवृत्त है ।

श्री ज्ञानचन्द्र 'आलोक'

आप मूलत जिजयावन के निवासी है । आपने अपनी सेवाएँ साहू जी के औद्योगिक सस्थानो म दी है । सामान्यत डालमियानगर आपका प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा है ।

तेंदूखेड़ा .

श्री कमलकुमार शास्त्री, तेंदूखेड़ा

आप खमरिया-अजितपुर (दमोह) के निवासी २४ वर्षीय युवा विद्वान् है । आपने एम ए, एव शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की है । सम्प्रति आप तेदूखेड़ा (दमोह) की शासकीय मा शाला मे कार्यरत है । आप जैन बालक-बालिकाओ को धार्मिक शिक्षा देते है तथा सामाजिक कार्यो मे सहयोग देते रहते है ।

दमोह :

पं. अमृतलाल जैन शास्त्री, दमोह

(जन्म विक्रम संवत् १९८३, टीला बुजुर्ग, सागर)

श्रीमान् प अमृतलाल जी शास्त्री की प्रारम्भिक शिक्षा मोराजी सागर मे सम्पन्न हुई। वही पर आपने विधि- विधान की शिक्षा भी प्राप्त की। आप श्रीमज्जिनेन्द्र पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा एव गजरथ समारोह, श्री सिद्धचक्र-महा-मडल-विधान, इन्द्रध्वज-विधान, वेदी-प्रतिष्ठा आदि सम्पूर्ण विधि-विधान कराने मे सक्षम है।

प अमृतलाल जैन शास्त्री

आपने श्री नेमिसागर दिगम्बर जैन पाठशाला हीरापुर मे २ वर्षो तक और श्री पुष्पदन्त दि जैन सस्कृत विद्यालय शाहपुर मे लगभग १२ वर्षो तक अध्यापन कार्य किया है।

श्री वर्णी दि जैन पाठशाला दमोह मे ७ वर्षो तक प्राचार्य पद पर रहे है। आपने श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी मे २ वर्षो तक प्रचारक का काम भी किया है। आपकी सच्चे देव-शास्त्र-गुरु मे श्रद्धा है। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर मे सन् १९७६, १९७७ और सन् १९८९ मे १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने ससघ चातुर्मास किया था, उन तीनो चातुर्मासो के अन्त मे कार्तिक की अष्टाह्निका पर्व मे तीन बार श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान बडे आयोजनो के साथ सम्पन्न हुए। उन विधानो मे मुख्य प्रतिष्ठाचार्य की भूमिका आपने ही निभाई थी। आपने सागर, दमोह, श्री सिद्धक्षेत्र कुडलपुर जी, बीना बारहा जी, सिवनी, शाहपुर, शहपुरा, महरौली-दिल्ली, सीहोर, इन्दौर, गोसलपुर, फरीदाबाद, बीना, मनेन्द्रगढ़, छिदवाडा आदि

५०-६० नगरो मे होने वाले पचकल्याणक प्रतिष्ठा एव गजरथ महोत्सवों मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

आपके चार पुत्रो मे से प्रथम श्री सुरेशचन्दजी एवं द्वितीय श्री वीरेन्द्र-कुमार जी शिक्षक है। ये दोनो भाई सुन्दर माँड़ना बनाकर प्रतिष्ठा-विधान आदि का काम भी करते है।

दिल्ली·

पं. प्रकाश हितैषी शास्त्री, दिल्ली

(जन्म . भीष्मनगर, सागर)

आपकी शिक्षा बीना एव सागर म हुई है। पुन जैन पाठशाला दरगुवाँ (छतरपुर), बम्हौरी और सिद्धक्षेत्र रेसदीगिरि म अध्यापन कार्य किया। इसी क्रम मे मथुरा और जैन अनाथालय बड़नगर मे प्राधानाध्यापक रहे।

सन् १९४७ से ५० तक पूज्य वर्णीजी और प जगन्मोहनलाल शास्त्री के आग्रह/आदेश के कारण जैन गुरुकुल मढ़िया जी (जबलपुर) मे रहे और समाज के कटु अनुभवों से शिक्षा लेकर स्वतन्त्र व्यवसाय का उपक्रम किया।

सन् १९५४ मे छोटे वर्णीजी के जबलपुर चातुर्मास के समय **'सन्मति सन्देश'** के प्रकाशन की योजना बनी और आप उसके सम्पादक नियुक्त किये गये। सन् १९५९ मे **सन्मति सन्देश** का दो सौ पृष्ठो का रामचरित विशेषाक निकाला गया, जिसमे राम और सीता को जैन बतलाते हुये लिखा था कि राम ने अन्त मे शिवरमणी (मोक्ष) का वरण किया। एक विद्वेषी ब्राह्मण विद्वान् ने शिवरमणी का अर्थ शिव (महादेव) की रमणी (पार्वती) मे विवाह किया, ऐसा अर्थ लगाकर जनसघ के दैनिक पत्र मे उत्तेजना पूर्ण समाचार प्रकाशित करा दिया, जिससे लोग भड़क उठे। दूसरे दिन जबलपुर शहर मे कुछ विद्वेषियो द्वारा उपद्रव किया गया और एक जैन मन्दिर को क्षति पहुँचाई तथा एक-दो दुकाने लूट ली। विवाद को शान्त करने की दृष्टि से जिलाधिकारी ने पण्डितजी को व्यक्तिगत बुलाकर पत्र की सराहना की, किन्तु विवाद शान्त करने हेतु पत्र जब्त कर लिया। उपद्रवियो द्वारा आपकी दुकान भी लूट ली

गई। समाज ने आपकी सहायता की। फिर जबलपुर जैन समाज **सन्मति सन्देश** को प्रकाशित करने के लिये तैयार नही हुई। बाद मे दिल्ली के कुछ सज्जन दिल्ली से **सन्मति सन्देश** को प्रकाशित करने के लिये तैयार हो गये तब से **सन्मति सन्देश** का नियमित प्रकाशन दिल्ली से हो रहा है, जिसकी प्रसार सख्या वर्तमान मे लगभग इक्कीस हजार है।

पण्डित जी ने पहिली प्रतिमा वर्णी से ग्रहण की थी। उसके बाद सन् १९५९ मे आध्यात्मिक सन्त श्री कानजी स्वामी से ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया और तब से व्रती जीवन व्यतीत कर रहे है। आपकी प्रवचन शैली बड़ी प्रभावक है। आपकी धर्मपत्नी भी विदुषी है, जो गार्हस्थिक कार्यो के साथ ही पण्डित जी को सम्पादन कार्यो मे सक्रिय सहयोग देती है।

श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

आप भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली के सफल निदेशक एव लोकोदय ग्रन्थमाला के सम्पादक है। आप अनेक सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध है। भारतीय ज्ञानपीठ के सचालन एव उसकी प्रगति मे आपका महनीय योगदान है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कुन्था जैन द्वारा लिखित '**वर्धमान रूपायन**' एव '**महाप्राण बाहुबली**' बहुचर्चित कृतियाँ है। '**परिणय गीतिका**' एवं '**शैशवांकन**' की सह सम्पादिका श्रीमती जैन ने अनेक रेडियो वार्ताओ और मच रूपको के प्रस्तुतीकरण मे भी अच्छी ख्याति अर्जित की है।

डॉ. गुलाबचन्द्र जैन, दिल्ली

(जन्म · ५ अक्टूबर १९३८, बरौदिया कलां, सागर)

आपकी शिक्षा श्री गणेश वर्णी जैन सस्कृत महाविद्यालय सागर एव सागर विश्वविद्यालय मे सम्पन्न हुई है। सन् १९६३ मे एम ए (सस्कृत) प्रथम श्रेणी मे सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर आपने आधुनिक सस्कृत रूपक साहित्य

बीसवीं शताब्दी विषय पर शोधकार्य किया है । राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली में दर्शनाचार्य की परीक्षा भी उत्तीर्ण की है ।

दो वर्षों तक हाईस्कूल में प्राचार्य रहने के बाद आप भारतीय ज्ञानपीठ में सन् १९७३ से प्रकाशन अधिकारी के रूप में सेवारत हैं । अब तक आपने अनेक प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी एवं अंग्रेजी ग्रन्थों का संपादन-कार्य तथा लोकोदय-ग्रन्थमाला के अन्तर्गत विभिन्न भारतीय भाषाओं की कृतियों के हिन्दी रूपान्तरों के संशोधन-संपादन आदि का कार्य किया है, कर रहे हैं । रेडियो आदि पर वार्ताएं भी प्रसारित हो चुकी हैं । आप एक उत्साही कार्यकर्ता हैं ।

डॉ. सत्यप्रकाश जैन, दिल्ली

(जन्म ८ सितम्बर १९५१, दिल्ली)

आपने **'हिन्दी जैन कथा साहित्य में कथानक रूढियों और कथाभिप्राय'** विषय पर शोध कार्य करके डाक्टरेक्ट उपाधि प्राप्त की है । सम्प्रति आप **'हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण काव्य परम्परा'** पर डी लिट् कर रहे हैं तथा अ भा दि जैन विद्वत्परिषद् के उपमंत्री के रूप में समाज को अपनी सेवाएं दे रहे हैं ।

श्री संदीप जैन, दिल्ली

आप ललितपुर निवासी २८ वर्षीय होनहार युवा विद्वान् हैं । देहली संस्कृत विद्यापीठ में कार्यरत हैं । आपके अनेक शोधपत्र प्रकाशित हो चुके हैं । आप आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न हैं : योगीन्द्रदेव के ग्रन्थों पर शोधकार्य कर रहे हैं । आपने योगीन्द्र देव विरचित **'अमृता शीति'** नामक ग्रन्थ पर विद्वत्तापूर्ण टीका लिखी है, जिसका विद्वज्जगत् में स्वागत हुआ है ।

नरसिंहपुर

बाबू पन्नालाल चौधरी, नरसिंहपुर

ये नरसिंहपुर के रहने वाले थे । इन्होंने मुरैना और बनारस जैन विद्यालय के छात्रावासों में सुपरिन्टेन्डेन्ट का कार्य किया है । इनके दो पुत्र हैं ।

एक आयुर्वेदाचार्य है और दूसरे प शिखरचन्दजी न्यायतीर्थ है । इनकी सेवाएँ समाज को प्राप्त है ।

नागपुर

सिं. नेमिचन्द्र इंजीनियर, नागपुर

आप रेलवे विभाग मे इजीनियर रहे है । अवकाश प्राप्ति के बाद से आप **षट्खण्डागम** आदि की वाचनाओ मे सक्रिय भाग लेते है । आप जैन सिद्धान्त ग्रन्थो का निरन्तर स्वाध्याय करते रहते है ।

पं. ताराचन्द शास्त्री, नागपुर

नागपुर शहर मे बसने वाली जैन समाज का विकास, विद्यालय का सचालन और ग्रन्थो का स्वाध्याय तथा समाजसेवा इनके जीवन के प्रमुख कार्य है । बहुत सरल, निरभिमानी तथा प्रशसा और प्रख्याति से दूर रहने वाले विद्वान् है ।

नागोद

श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश', नागौद
(जन्म · १९ मई १९२७, नागौद)

आप सागर विद्यालय मे अध्ययन करते समय ही अच्छे कवि बन गये थे । जैन पत्र-पत्रिकाओ मे आपकी धार्मिक एव सामाजिक कविताएँ निरन्तर छपती रही है । आप सुधेश जैन, नागौद के नाम से प्रसिद्ध थे । आपका अल्पायु मे ही स्वर्गवास हो गया है ।

नीमच :

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच
(जन्म : १८ फरवरी १९३३, सुजालपुर)

आप मूलत चिरगॉव (झॉसी) उ. प्र के निवासी है ।

डॉ देवेन्द्रकुमार शास्त्री

आपके स्वभाव मे एक अपूर्व अध्यवसाय है, जिससे आपका व्यक्तित्व निखर गया है। आप निसर्गत बहुश्रुताभ्यासी है। आपका विस्तृत अध्ययन विद्वानो के लिए स्पर्धा की वस्तु बना है।

आपने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का सम्पादन किया है। कतिपय स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे है, जिनमे से कुछ पर पुरस्कार भी मिल है। आपकी प्रकाशित कृतियो मे — १ **भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंशकथा-काव्य**, २ **अपभ्रंशभाषा और साहित्यकी शोध प्रवृत्तियाँ**, ३ **भाषाशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा**, ४ **रयणसार (आ. कुन्दकुन्द, सम्पादन)** , ५ **बड्ढमाणचरिउ (नरसेनकृत, सम्पादन)** , **अपभ्रंश काव्य एक प्रतिनिधि सकलन**, ७ **सम्मइसुत्तं** आदि प्रमुख है। **अपभ्रंश कोश** का सम्पादन कार्य चल रहा है। इनके अतिरिक्त **तीर्थङ्कर महावीर, जैनधर्म और भगवान्** महावीर तथा **वीतरागता एक समीचीन दृष्टि** ये आपकी मौलिक कृतियां है। शास्त्री जी द्वारा अन्य सम्पादित कृतियो मे आचार्य कुन्दकुन्द विरचित **बारसअणुवेक्खा**, महानन्दि रचित **आनन्दा**, मुनि रामसिह रचित **पाहुड्दोहा**, महाकवि स्वयम्भूकृत **रिट्ठणेमिचरिउ** (अप्रकाशित), महेश्वरकृत **विश्वप्रकाश** सस्कृत कोश (अप्रकाशित) और **महावीर वाणी** (सकलन) का नाम उल्लेखनीय है।

रयणसार ग्रन्थ के सम्पादन के उपलक्ष्य मे वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति व इन्दौर समाज की ओर से आपका सार्वजनिक सम्मान हुआ है। **अपभ्रश भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तियाँ** पुस्तक पर दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद् द्वारा चाँदमल पाड्या पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

उक्त पुस्तको के अतिरिक्त आपने अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे लगभग २५० निबन्ध भी लिखे है । साथ ही **जैन सन्देश** का सम्पादन किया है । सम्प्रति आप **सन्मति सन्देश** के सम्पादक है । आपने प्रस्तुत इतिहास ग्रन्थ को व्यवस्थित करने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

पनागर

स्व. पं. जमुनाप्रसाद जी, पनागर

प जमुनाप्रसाद जी पनागर मे रहते थे और वहाँ की धार्मिक एव सामाजिक गतिविधियो मे भाग लेते थे । वे समाज मान्य व्यक्ति थे । उन्होने पहले मुरैना, सतना और कटनी विद्यालय मे काम किया है । वे प कुन्दनलाल जी (कटनी) के छोटे भाई थे ।

स्व. पं. बाबूलाल जी, पनागर

ये तेदूखेड़ा के निवासी थे तथा राजकीय विद्यालय मे शिक्षक थे । इसके बाद उन्होने कटनी मे सन् १९०८ मे जैन प्राथमिक शाला स्थापित की थी तथा १९१७ तक उसमे काम करते रहे । उनके कार्यकाल मे सस्कृत विभाग की स्थापना हुई और वे उसमे अध्यापन कार्य भी करते थे । जिस स्थान पर सि हीरालाल कन्हैयालाल जैन छात्रालय भवन का निर्माण हुआ है, उस अमूल्य भूमि को सरकार से प्राप्त कराने मे इन्होने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । श्रीमान् प जगन्मोहनलाल जी शास्त्री की प्रारम्भिक शिक्षा इन्ही के निर्देशन मे हुई है । इनके छोटे भाई प गुलजारीलाल जी जैन शिक्षा सस्था कटनी के अनेक वर्षो तक मत्री रहे है ।

पिण्डरई

पं. अजितकुमार शास्त्री, पिण्डरई (म. प्र.)

आपका जन्मस्थान मालथौन (सागर) है । आपने कई वर्षो तक पिण्डरई पाठशाला मे अध्यापन कार्य किया है । अनन्तर वही अपना निजी औषधालय

चला रहे है। आपने सागर विद्यालय मे शास्त्री तक अध्ययन किया है। आपकी आयु ८० वर्ष के लगभग है।

पिलानी :

डॉ. अशोककुमार जैन

आप मूलत मड़ावरा के निवासी है। सर्वप्रथम आप स्याद्वाद सिद्धान्त महाविद्यालय ललितपुर के दो वर्षो तक प्राचार्य रहे है। तत्पश्चात् विद्या निकेतन बिडला पब्लिक स्कूल, पिलानी मे सस्कृत प्रवक्ता के पद पर कार्यरत है।

आप एक अच्छे प्रवचनकार एव उत्साही युवा विद्वान् है।

बड़वानी

पं. क्षेमंकर शास्त्री, बड़वानी

ये मालथौन के निवासी थे। धर्म के प्रति इनकी गहरी रुचि थी। ये बड़वानी क्षेत्र मे अनेक वर्षो तक कार्यरत रहे है। इन्हे अपने पूर्व जन्म की स्मृति थी।

पं. जीवन्धर शास्त्री

आप मूलत बीना के निवासी है। आप बड़वानी के जैन छात्रावास की व्यवस्था मे सलग्न रहे है।

बामौरकलॉं

पं. भैया शास्त्री, काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य

(जन्म · पौष शुक्ला २ संवत् १९७३, बामौरकलॉं, शिवपुरी)

आपके पिता प पन्नालाल जी अच्छे प्रतिष्ठाचार्य थे। आपकी शिक्षा ललितपुर, साढ़ूमल, इन्दौर, मुरैना, सहारनपुर, पपौरा, ग्वालियर और लाहौर मे

हुई। आपको आयुर्वेद का अच्छा ज्ञान है। प्रारम्भ मे फिरोजपुर मे अध्यापन करने के पश्चात् आप सन् १९४८ मे शासकीय चिकित्सालय मे प्रधान चिकित्सक हो गये।

आपने समाज सगठन, धर्मप्रचार और कुरीतियो के निवारण हेतु सन् १९३९ मे दि जैन विद्यार्थी सघ की माधोगज मे स्थापना की। इसी प्रकार माधोगज, मुहर्रा ग्राम, बामोरकलॉ और खसौरा ग्राम मे जैन पाठशालाओ की स्थापना की। आप दहेज प्रथा के घोर विरोधी है।

बॉदरी

प्रो. श्रीचन्द शास्त्री

आपका जन्म स्थान बॉदरी (जिला-सागर) है। आपका क्षेत्र हिगोली (महाराष्ट्र) था। वहॉ आप गवर्नमेन्ट कालेज मे अग्रेजी के प्राध्यापक थे। आप बालब्रह्मचारी थे।

बिजनौर

डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर

(जन्म : ५ मई १९४६, मड़ावरा)

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मड़ावरा और जैन विद्यालय साढूमल मे हुई। तत्पश्चात् स्याद्वाद महाविद्यालय काशी से जैनदर्शनाचार्य और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी मे एम ए (सस्कृत) किया। पुन· आपने पी-एच. डी और डी लिट् भी किया है। आपको कन्नड़, पालि, प्राकृत और मगोलियन आदि भाषाओ का भी ज्ञान है।

आप सन् १९६९ से जैन कालेज बिजनौर मे सस्कृत के प्राध्यापक है। आपने अनेक ग्रन्थो का सम्पादन, अनुवाद एव स्वतत्र लेखन कार्य किया है।

प्रबन्धकोश कथा और **पार्श्वाभ्युदय** के हिन्दी अनुवाद आपकी विद्वत्ता और लगन के द्योतक है । आप **'पार्श्व ज्योति'** पत्रिका के सम्पादक भी है ।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती डॉ विजयालक्ष्मी जैन नहटौर कालेज मे राजनीतिशास्त्र की व्याख्याता है ।

बीना :

स्व. पं. धर्मदास जी शास्त्री

इनका जन्म सन् १८९६ मे साढूमल (ललितपुर) मे हुआ था । इनकी प्राथमिक शिक्षा महरौनी मे हुई । तत्पश्चात् इन्होने इन्दौर महाविद्यालय से शास्त्री एव न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की । सन् १९४० से १९५६ तक बीना विद्यालय मे प्राचार्य रहे । मध्य मे एक वर्ष परिषद् के सगठन मे भी काम किया । सन् १९५६ मे आपका स्वर्गवास हो गया । स्व प जी अत्यन्त सरल, सेवाभावी एव कुशल विद्वान् थे । आपका परिवार अब भी बीना मे निवास करता है ।

स्व. पं. सुन्दरलाल न्यायतीर्थ

आप न्याय व साहित्य के अच्छे विद्वान् थे । आपने बीना विद्यालय आदि मे प्रधानाध्यापक पद पर रहकर अनेक वर्षो तक कार्य किया है । आपने **यशस्तिलकचम्पू** और **नीतिवाक्यामृत** आदि कई विशिष्ट बडे-बड़े जैन ग्रन्थो का हिन्दी अनुवाद कर जिनवाणी की सेवा की है ।

पं. भैयालाल शास्त्री, बीना

आप पं. फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री के लघुभ्राता हैं । शास्त्री तक साढूमल विद्यालय में पढ़े है । समाज की कई संस्थाओं मे आपने कार्य किया है । सम्प्रति बीना में व्यापार कर रहे है ।

पं. बाबूलाल 'मधुर', बीना

आप आगम और अध्यात्म के अच्छे जानकार हैं ।

पं. भैयालाल भजनसागर

आपने अपने लोकप्रिय भजनों द्वारा दि. जैन संघ, मथुरा के माध्यम से समाज मे जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया है । अब आप स्वर्गस्थ हो गये है ।

पं. अभयकुमार जैन

आप स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के स्नातक है । आपने अनेक विषयों में आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की है । जैनदर्शनाचार्य की परीक्षा मे वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने के कारण विश्वविद्यालय ने आपको एक साथ तीन स्वर्णपदको से सम्मानित किया था । सम्प्रति आप व्याख्याता पद पर कार्यरत हैं ।

पं. निहालचन्द जैन, एम. एस-सी.

आप मूलतः मड़ावरा के निवासी है । कथा साहित्य लेखन मे आपकी रुचि है । सफल वक्ता एवं प्रचनकार है । **'वीतराग वाणी'** के सम्पादक मण्डल में आपका भी नाम है । सम्प्रति आप व्याख्याता पद पर कार्यरत हैं ।

भानगढ़ :

पं. अभयचन्द्र जैनदर्शनाचार्य, भानगढ़

(जन्म : १८७५ ई., भानगढ़, सागर, म. प्र.)

सफल चिकित्सक के रूप में आपने कलकत्ता, इन्दौर, गुना, दमोह, जबलपुर, खण्डवा, हरदा, नागपुर आदि अनेक स्थानों पर चिकित्सा कार्य तथा राजकुमार सिंह आयुर्वेदिक कालेज इन्दौर मे अध्यापन कार्य किया है ।

आपमे धार्मिक प्रवृत्ति तो जन्मजात थी ही, जो बाद मे वृद्धिगत होती गई। आप मन्दिरो मे शास्त्रप्रवचन अनेक वर्षो से करते आ रहे है।

संस्कृत विद्यालय मोरेना तथा सर हुकमचन्द जैन महाविद्यालय इन्दौर में भी आपने अनेक वर्षो तक अध्यापन कार्य किया है। आपके पुत्र एवं पुत्रवधू — दोनो सुशिक्षित और विदेश मे कार्यरत हैं।

भोपाल :

पं. राजमल जैन, भोपाल

(जन्म : ३० जून १९३०, खुरई, सागर, म. प्र.)

पं. राजमल जैन

आपने धार्मिक शिक्षण लेते हुये बी. कॉम की डिग्री प्राप्त की और पुरातत्त्व मे रुचि होने के कारण पुरातत्त्व विभाग भोपाल मे कार्यरत रहे तथा १९८८ मे रिटायर हुए।

आपकी धार्मिक लगन और धर्मतत्त्वज्ञता मे मूलस्रोत पूज्यश्री गणेशप्रसाद जी वर्णी, स्व. श्री सहजानन्द जी वर्णी एवं स्व. श्री जिनेन्द्र वर्णी थे। भोपाल मुमुक्षु मंडल के तत्त्वप्रेमी मुमुक्षुओं के सम्पर्क मे प्रतिदिन शास्त्र सभा मे भाग लेने के कारण भी इनमे विद्वत्ता के अंकुर फूटे।

इस समय आप भोपाल मुमुक्षु मण्डल के अध्यक्ष हैं। आपके मार्गदर्शन मे भोपाल की सभी धार्मिक गतिविधियाँ चलती हैं। सन् १९७५ में पिपलानी (भोपाल) बिम्बप्रतिष्ठा के समय आप सपत्नीक भगवान् के माता-पिता बने।

धार्मिक प्रवृत्ति के कारण भारतवर्ष के अनेकानेक तीर्थो की यात्राएँ भी की। स्थानीय अनेक सस्थाओ के मत्री और ट्रस्टी रहे। आज भी आप स्व श्री डालचन्द कमलश्रीबाई सार्वजनिक न्यास भोपाल के ट्रस्टी है।

इस समय आप दि. जैन विद्वत् समाज मे सुप्रतिष्ठित विद्वान् एव प्रवचनकार के रूप मे जाने जाते है और सभी सामाजिक एव धार्मिक कार्यो मे अपनी सेवाएँ सर्वत्र देते रहते है। आपका उत्साह प्रशसनीय है।

प्राचार्य हीरालाल पाँड़े 'हीरक', भोपाल

(जन्म . १ जनवरी १९२६, बाड़ी, रायसेन, म. प्र.)

प्राचार्य हीरालाल पाँडे 'हीरक'

श्री हीरालालजी पॉड़े वैद्यराज श्री बट्टूलाल पॉडे के तृतीय पुत्र है। आपकी शिक्षा सागर जैन समाज के प्रसिद्ध शिक्षा प्रेमी नररत्न श्रीमान् सेठ मुन्नालाल जी कमरया के विशेष आग्रह एव पूज्य अग्रज ब्रह्मचारी श्री धन्नालाल पॉडे की अनुकम्पा से दि जैन सस्कृत विद्यालय नागपुर, वर्णी दिगम्बर जैन सस्कृत महाविद्यालय सागर, दि. जैन स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, बनारस तथा काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय (वाराणसी) मे हुई। आप हिन्दी, सस्कृत एवं अग्रेजी के अच्छे विद्वान् है।

आप सन् १९३४ से काव्य, गद्यकाव्य, गीत एवं निबन्ध आदि लिखकर उच्चकोटि की साहित्य-सेवा कर रहे है। आप हिन्दी और सस्कृत दोनो भाषाओ मे लिखते है। आपकी **बाहुबली** खण्डकाव्य एव **जयसन्मति** महाकाव्य प्रशसित कृतियॉ है। **'अँजलि'**, **'मुक्ताहार'**, **'बेलाकली'** एव **'नवयुग'** गीत सग्रह है।

आपने **'णमोकार मंत्र माहात्म्य'**, **'बारह भावनाएँ'** तथा **'रानी त्रिशला के सोलह स्वप्न'** पद्यो मे लिखे है ।

आपकी बचपन से समाजसेवा, साहित्यसेवा तथा राष्ट्रसेवा के प्रति रुचि रही है । आप 'भारत छोडो' आन्दोलन के समय क्रान्तिकारियो के केन्द्र स्याद्वाद महाविद्यालय, बनारस के क्रान्तकारियो के साथी रहे है । 'हिन्दी साहित्य साधना समिति', भदैनी, बनारस के सफल अध्यक्ष भी रहे है ।

आपने विदिशा से प्रकाशित **'अध्यात्मवाणी'** ग्रन्थ का सपादन किया है । आपने **आराधनासार** ग्रन्थ का हिन्दी पद्यानुवाद तथा मूल प्राकृत गाथाओ का हिन्दी अनुवाद किया है । सम्प्रति सस्कृत **'इन्द्रध्वज विधान'** का सम्पादन कर रहे है । सहयोगी प्रकाशन, गढा, जबलपुर ने आपको 'काव्यप्रवीण' की उपाधि से अलकृत किया है । **आधुनिक जैन कवि** तथा **चेतना के स्वर** मे आपकी कृतियाँ सग्रहीत है । आपकी रचनाएँ जैन एव जैनेतर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती है ।

पं. हेमचन्द्र जैन इंजीनियर, भोपाल

(जन्म १३ जनवरी, सन् १९४६, नई गढ़िया)

"कुन्द कुन्द छाया", MIG-10/A, सोनागिरी (रायसेन रोड) भोपाल, म प्र, PIN: ४६२-०२१ ।

भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, भोपाल मे उप-प्रबधक, (सामग्री-प्रबन्ध) थर्मल एव न्यूक्लियर विभाग मे कार्यरत श्री हेमचन्द जी आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न विद्वान् है ।

आपने **लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका** और **धर्म के दश लक्षण** पुस्तको का अग्रेजी मे अनुवाद किया है, जो प्रकाशित भी हो चुकी है । **मोक्षमार्ग प्रकाशक** का अग्रेजी अनुवाद कर लिया है, जो शीघ्र प्रकाशित होगा । अभी **प्रश्नोत्तर रत्नमालिका** (राजर्षि अमोघवर्षकृत) का अग्रेजी मे अनुवाद कर रहे है ।

प हेमचन्द्र जैन

सन् १९७० से १९८० तक पिपलानी (भोपाल) स्थित वी वि पाठशाला मे अध्यापन (Honourary) कार्य किया है।

सन् १९८१-८२-८३-८४ मे जैनधर्म पढ़ने के जिज्ञासु विदेशी छात्रो को अग्रेजी भाषा के माध्यम से जैनधर्म के ग्रन्थो का अध्ययन कराया। विदेशी छात्रो के द्वारा जैन-धर्म स्वीकार कर लेने पर उनके नये नाम प श्री जगन्मोहनलालजी शास्त्री (कुण्डलपुर) द्वारा निम्न प्रकार से दिये गये है —

१ जिनसेन जैन (James Kelleher, California, U.S.A.)

२ जयसेन जैन (John Jurich, California, U.S.A.)

३ रविषेण जैन (Harris Frederick, California U.S.A.)

४ कु मीराबेन जैन (Miss Christine Klyce, California, U.S.A.)

ये सभी छात्र विश्वविख्यात ज्योतिषाचार्य स्व एम के गॉधी (फलटण) लन्दन प्रवासी द्वारा जैनधर्म पढने के लिये भारत भेजे गये थे। ये सभी छात्र आज भी पूर्णत शाकाहारी एव जैनदर्शन मे रुचि रखते है।

५ बलभद्र जैन (Bruce Costain, Ontario, Canada) ये जनवरी ९० मे मात्र ४ दिन भोपाल मे प. हेमचन्द्र जी के पास अध्ययन करने के बाद सोलापुर मे मुनि श्री वीरसागर जी के पास कुछ दिन अध्ययन कर कनाडा अपने देश वापिस चले गये।

मक्सीजी

पं. रमेशचन्द्र शास्त्री, मक्सी जी

आप बांसा-पथरिया (दमोह) निवासी २५ वर्षीय नवयुवक है । आपने एम ए, शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की है । सम्प्रति आप मक्सी जी गुरुकुल मे कार्यरत है । समाजसेवी एव कर्तव्यनिष्ठ है ।

मड़ावरा ·

पं. लक्ष्मणदास शास्त्री, मड़ावरा

आपका जन्मस्थान मडावरा है । आप पुरानी पीढी के वयोवृद्ध विद्वान् है । कई सस्थाओ मे रहकर जैन समाज की सेवा की है । आप अभी मडावरा मे अपना निजी व्यवसाय कर रहे है ।

पं. जम्बूप्रसाद शास्त्री, मड़ावरा

आप प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी समाज के सभी धार्मिक समारोहो मे प्रवचन आदि सेवाभाव से करते है । विद्वान् होने के साथ-साथ चारित्रवान् भी है । आपका जन्मस्थान मडावरा (उ प्र) है ।

महरौनी .

विद्याभूषण पं. गोविन्दराय शास्त्री, महरौनी

आप महरौनी जिला झॉसी के निवासी थे । दि. जैन समाज मे आप व्याकरण, न्याय, काव्य आदि के प्रसिद्ध विद्वान् और हिन्दी के माने हुए लेखक थे । काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय मे कई विषयो के अध्ययन-अध्यापन से आपकी विद्वत्ता निखरी हुई थी । इसी कारण आप जैन और अजैन विद्वानो मे समान रूप से सम्मान पाते रहे । साम्प्रदायिक पडित होकर भी असाम्प्रदायिक रहे । धर्मनिष्ठ होकर भी सुधारक बने रहे ।

महाराज टीकमगढ़ और महाराज धार के दरबारो मे आपकी अच्छी प्रतिष्ठा रही। धार राज्य में आपने १२ वर्षो तक धर्म और नीति के व्याख्याता होने के साथ ही सहायक इन्सपेक्टर के पद पर शिक्षा विभाग मे गौरव के साथ काम किया। सन् १९४० मे आपके नेत्र एक ही रात्रि मे चले गये, तबसे आप विश्रामवृत्ति (पेन्शन) लेकर जिनवाणी की सेवा मे अहर्निश लगे रहे।

जैनधर्म की सनातनता, गृहिणी चर्या, बुन्देलखण्ड गौरव, भक्तामर स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद, **यशस्तिलकचम्पू** की बारह भावनाओ का हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद और **आचार सूत्र** आदि आपकी रचनाएँ है।

आपके **कुरल काव्य** की रचना पर देश को बडा गौरव है। इसे शास्त्रीजी ने सस्कृत तथा हिन्दी दोनो मे लिखा है। यह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दो हजार वर्ष का प्राचीन जैन ग्रन्थ मूल तमिल भाषा मे कुन्दकुन्दाचार्य (एलाचार्य) द्वारा विरचित है, जिसका अनुवाद अग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मनी और इटालियन भाषाओ मे हुआ है। यह व्यवहार का समयसार है। विश्व साहित्य की वस्तु है और भारत के साहित्य का कौस्तुभमणि है।

आपके व्याख्यान भी कभी-कभी बड़े मोहक होते रहे। शास्त्री जी साहित्यिक रचना मे प्रतिदिन कुछ न कुछ अवश्य लिखवाते रहे। '**नीति-वाक्यामृत**' की हिन्दी व्याख्या अभी अप्रकाशित है।

साहित्यिक सेवा पर प्रसन्न होकर भारत सरकार आपको एक साहित्यिक वृत्ति भी देती रही। आप बुन्देलखण्ड के गरिमा के प्रतीक महानतम विद्वान् रहे। आपकी यश.कीर्ति आज भी प्रकाशमान है।

मालथौन :

पं. मुन्नालाल शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य, मालथौन

आप शुद्धाम्नाय की पद्धति से प्रतिष्ठा कराते थे।

पचकल्याण प्रतिष्ठाओं मे दान लेकर भगवान के माता-पिता बनाना **धर्मविरुद्ध** मानते थे। आप एक कॉच की पेटी मे मूर्ति की स्थापना करके

घोषणा करते थे कि भगवान् गर्भ मे आ गये है और दूसरे दिन भगवान् को पेटी म बाहर निकालकर उनका जन्म कल्याणक मनाते थे । आपकी गणना प्रमुख प्रतिष्ठाचार्यो मे थी ।

स्व. पं. किशोरीलाल न्यायतीर्थ

आप मूलत मालथौन के निवासी थे । मुरैना और काशी के विद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् प्रारम्भ मे सादूमल और पपौरा विद्यालय इनका कार्यस्थल रहा । आपके लघुभ्राता प कुन्दनलाल जी सप्तम प्रतिमाधारी विद्वान् है, जो कुण्डलपुर और ईसरी उदासीन आश्रम मे सयमी जीवन व्यतीत कर रहे है ।

पं. निर्मलकुमार शास्त्री, मालथौन

आपने सागर विद्यालय मे शास्त्री तक अध्ययन कर करीब २० वर्षो तक मारवाड मे अध्यापन कार्य किया तथा आप कई वर्ष पूर्व दिवगत हो गये है ।

मुजफ्फरनगर .

डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

(जन्म १ अगस्त १९५२, पिपरा, शिवपुरी, म. प्र.)

आपकी शिक्षा बरुआसागर विद्यालय एव काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय मे हुई । आप प्रारम्भ से ही कुशाग्र बुद्धि रहे है । आपको काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी की एम ए (सस्कृत) परीक्षा मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त होने के कारण विश्वविद्यालय ने एक साथ तीन स्वर्णपदको से सम्मानित किया था । आप लगभग दो दर्जन ग्रन्थो के लेखक, अनुवादक एव सम्पादक है । आपके शोध प्रबन्ध **पार्श्वनाथचरित का समीक्षात्मक अध्ययन** पर आपको महावीर पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है । आप अप्रैल १९७९ से एस. डी.

पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, मुजफ्फरनगर (उ प्र,) मे सस्कृत प्रवक्ता के पद पर कार्यरत है तथा अनेक सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध है ।

राघोगढ

वैद्य हुकुमचन्द आयुर्वेदाचार्य, राघोगढ़

आप मूलत दलपतपुर के निवासी है । आपने कटनी से आयुर्वेदाचार्य किया है । आप सेवा के क्षेत्र मे प्रारम्भ से ही राघोगढ़ मे है ।

रीवॉ

यहॉ के प्रसिद्ध पच सिघई रामचन्द्र जी थे तथा उनके सहयोगी सि भगवानदासजी थे। भगवानदास जी के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री पन्नालाल जी सामाजिक एव धार्मिक क्रियाओ मे सक्रिय रहते थे। उनके द्वितीय सुपुत्र स्वरूपचन्द्र जी समृद्ध हैं और रीवॉ मे ही रहते है। तृतीय सुपुत्र हेमचन्द्र जी सतना मे निवास करते है। ये अध्यात्मरसिक है तथा इनका शास्त्रीय ज्ञान अच्छा है ।

यहॉ पडित फूलचन्द जी भी थे जो अच्छे प्रतिष्ठाचार्य थे ।

श्री नन्दलाल जैन

श्री नन्दलाल जैन

ये जैनधर्म और आधुनिक विज्ञान के ज्ञाता है। इन्होंने विद्वानो का सम्मान करने हेतु उल्लेखनीय परिश्रम किया है। आप जैन धर्म के प्रचार हेतु विदेश भी जा चुके है।

लखनऊ :

डॉ. विजयकुमार जैन

आप मूलतः गुनौर (पन्ना) के निवासी है । आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पालि भाषा मे एम ए. कर **संयुत्त निकाय** पर शोधकार्य किया है । बाद मे बौद्धदर्शनाचार्य भी कर लिया । सम्प्रति आप केन्द्रीय सस्कृत विद्यापीठ लखनऊ मे बौद्धदर्शन के प्रवक्ता है ।

कुछ समय तक आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे रिसर्च एसोशिएट रहे है ।

आपकी धर्मपत्नी डॉ राका जैन मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग मे कार्यरत है ।

लखनादौन ·

पं. यतीन्द्रकुमार शास्त्री, लखनादौन

आप मूलत लखनादौन के थे । अच्छे स्वाध्यायी और उत्तम वक्ता थे । आप आयुर्वेदाचार्य थे । आपके सुपुत्र डॉ. सुरेशचन्द्र जैन सामाजिक क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान रखते है ।

डॉ. सुरेशकुमार जैन

आप प यतीन्द्रकुमार जी के योग्य पुत्र है । आप अपने पिता की तरह समाज व धर्मसेवा मे सलग्न है । आप जैन पुरातत्त्व के अन्वेषी विद्वान् है ।

डॉ. शीलचन्द्र जैन, लखनादौन

आप कटनी विद्यालय के स्नातक है । कटनी से आयुर्वेदाचार्य करने के पश्चात् अब आप लखनादौन मे स्वतन्त्र प्रेक्टिस कर रहे है ।

ललितपुर :

पं. हुकुमचन्द्र शास्त्री, ललितपुर

(जन्म · संवत् १९८७)

प हुकुमचन्द्र शास्त्री

आप श्री सालिकराम जी इमलया के सुपुत्र है। आपकी माता श्रीमती रत्नीबाई ने पूज्य क्षु. गणेशप्रसाद जी वर्णी से व्रत ग्रहण किये थे। प हुकुमचन्द जी ने छठवी प्रतिमा के व्रत धारण किये है। इनकी पत्नी श्रीमती मुक्ताबाई ने भी व्रत ग्रहण किये है।

पण्डित जी जैनधर्म, दर्शन, न्याय, सिद्धान्त आदि शास्त्रो के पारगामी विद्वान् है। आपकी व्याख्यान शैली से श्रोतागण मुग्ध हो जाते हैं। इसलिये समाज ने आपको 'व्याख्यानवाचस्पति,' 'विद्याभूषण' आदि उपाधियो से सम्मानित किया है। समाज मे आपकी अच्छी प्रतिष्ठा है।

आपने श्री गणेश सस्कृत महाविद्यालय मोरारजी सागर से शास्त्री न्यायकाव्यतीर्थ एव साहित्याचार्य आदि की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की है।

आपने नागौर (राजस्थान) मे २० वर्षों तक और श्री पार्श्वनाथ दि. जैन गुरुकुल खुरई मे भी कुछ वर्षों तक अध्यापन कार्य कुशलता पूर्वक किया है। आप श्री कृष्णाबाई आश्रम, महावीरजी मे स्थापित इण्टर कालेज और श्री सस्कृत महाविद्यालय मुरैना मे प्राचार्य पद पर कार्य कर चुके है। आप प्रतिष्ठाचार्य भी है। आपके पॉच सुपुत्र है, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र श्री जिनेन्द्रकुमार जी एम. बी. डेयरी ग्वालियर मे है।

पं. मुन्नालाल प्रतिष्ठाचार्य

आप आगम और अध्यात्म के अच्छे विद्वान् और प्रतिष्ठाचार्य है। आपका निवास सिविल लाइन ललितपुर मे है।

लाखनखेड़ा

पं. अभयकुमार जी

(जन्म १९३७ ई., लाखनखेड़ा, सागर, म. प्र.)

एक कर्मठ अध्यापक तथा लेखक।

लाड़नूं

डॉ. पूरनचन्द जैन, लाडनूं

(जन्म २ अगस्त १९५८, पड़रई)

आप एक युवा विद्वान् है। आपने '**महाकवि अर्हद्दास एक परिशीलन**' विषय पर शोधकार्य किया है। सम्प्रति आप ब्राह्मी विद्यापीठ, जैन विश्व भारती इन्स्टीट्यूट (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनू मे संस्कृत प्रवक्ता पद पर कार्यरत है।

वाराणसी

श्री बाबूलाल जैन फागुल्ल, वाराणसी

(जन्म १९२६ ई., मड़ावरा, ललितपुर)

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री वीर दि. जैन विद्यालय पपौरा एव स्याद्वाद महाविद्यालय काशी मे हुई है। दिल्ली से प्रकाशित वीर पत्र मे तीन वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् आपने सन् १९४९ से भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी के व्यवस्थापक पद पर १६ वर्षो तक कार्य किया है। पुनः सन् १९६५ मे

वाराणसी मे ही महावीर प्रेस की स्थापना कर अब तक सहस्रो ग्रन्थो का नयनाभिराम मुद्रण किया है। श्री फागुल्ल जी अपनी मुद्रण-कला के कारण अनेक सस्थाओ से सम्मानित हो चुके है। इस कार्य-कुशलता के लिये देश-विदेश के वरिष्ठ विद्वानो ने भी आपकी प्रशसा की है।

डॉ. कोमलचन्द्र जैन, वाराणसी

(जन्म . २० अगस्त १९३५, बीना, सागर, म. प्र.)

आप बीना विद्यालय एव स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के स्नातक है। आपने विद्यार्थी जीवन मे विश्वविद्यालयीय स्तर पर सस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिताओ मे भाग लेकर अनेक पदक प्राप्त किये है। आपने **बौद्ध एवं जैनागमों में नारी जीवन** विषय पर शोधकार्य किया है। आप प्राकृत एव पालि भाषाओ के विशिष्ट ज्ञाता है। आपके द्वारा लिखित **प्राकृत प्रवेशिका** एव **पालि प्रवेशिका** ग्रन्थ अनेक विश्वविद्यालयो के स्नातक एव स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो मे स्वीकृत है। सम्प्रति आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पालि एव बौद्ध अध्ययन विभाग मे रीडर एव अध्यक्ष पद पर कार्यरत है।

डॉ. सुदर्शनलाल जैन, वाराणसी

(जन्म : अप्रैल १९४४, दमोह, म. प्र.)

आप जैन शिक्षा सस्था कटनी एव स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के स्नातक है। आपने **उत्तराध्ययन का समीक्षात्माक अध्ययन** विषय पर शोधकार्य किया है। आप सस्कृत एव प्राकृत भाषाओं के विशिष्ट ज्ञाता है। आपने अनेक मौलिक ग्रन्थो की रचना, अनुवाद एवं सम्पादन-कार्य किया है। आप विविध सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध है। सम्प्रति आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सस्कृत विभाग मे रीडर पद पर कार्यरत है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मनोरमा जैन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जैन-बौद्ध दर्शन विभाग मे **पंचाध्यायी : एक समीक्षात्मक अध्ययन** विषय पर शोधकार्य कर

रही है। आपके बडे सुपुत्र सदीपकुमार जैन पहले पूना मे कम्पूयटर विभाग मे कार्यरत थे और अब शोध कार्य हेतु अमेरिका गये है।

डॉ. सुरेशचन्द्र जैन, वाराणसी

(जन्म : २ फरवरी, १९४८, कोतमा, शहडोल, म. प्र.)

डॉ सुरेशचन्द्र जैन, वाराणसी

आपने प्रारम्भ मे बडौत एव रमाला मे अर्थशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य किया है। तत्पश्चात्, उत्तर-प्रान्तीय दि जैन गुरुकुल के प्राचार्य रहे है। सम्प्रति आप श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी मे दर्शन विभागाध्यक्ष के रूप मे कार्यरत है। अ. भा. दि जैन विद्वत्परिषद् एव श्री गणेश वर्णी दि जैन सस्थान (वाराणसी) के उपमत्री के रूप मे आप समाज को अपनी सेवाएँ दे रहे है। आप वक्तृत्व-कला मे प्रवीण है।

डॉ. फूलचन्द्र प्रेमी, वाराणसी

(जन्म : ७ जुलाई १९४८, दलपतपुर, सागर, म. प्र.)

आप जैन शिक्षा संस्था कटनी एवं स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के स्नातक है। आपने मूलाचार पर शोधकार्य किया है। प्रारम्भ मे आप जैन विश्व भारती लाडनूं के अन्तर्गत ब्राह्मी विद्यापीठ मे जैनदर्शन के प्रवक्ता रहे है। सन् १९७९ से आप सम्पूर्णनन्द सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी के जैनदर्शन विभाग मे प्रवक्ता एव अध्यक्ष हैं तथा विविध पुरस्कारो से पुरस्कृत हैं।

मूर्तिकला के क्षेत्र मे आपकी विशेष रुचि है । आप अनेक सामाजिक सस्थाओ से सम्बद्ध है ।

डॉ. कमलेशकुमार जैन, वाराणसी,
(जन्म भाद्रपद कृष्णा पञ्चमी, संवत् २००७)

डॉ कमलेशकुमार जैन

आप मूलत· कुलुवा (दमोह) के निवासी तथा कटनी और स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के स्नातक है । आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए (सस्कृत) करने के बाद **जैनाचार्यों का अलंकार शास्त्र में योगदान** विषय पर शोध कार्य किया है । तत्पश्चात् पालि और प्राकृत—इन दो विषयो मे एम. ए तथा जैनदर्शनाचार्य की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की है । आचार्य परीक्षा में सर्वाधिक अक प्राप्त होने के कारण सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय ने आपको स्वर्णपदक से सम्मानित किया है ।

आपने जैन विश्व भारती लाडनूँ (राजस्थान) मे पाँच वर्षो तक जैन एव बौद्धदर्शन के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध विद्वान् प्रो डॉ नथमल टाटिया के सान्निध्य मे शोधाधिकारी के पद पर कार्य किया है तथा वहाँ से प्रकाशित जैनविद्या की शोध त्रैमासिकी **तुलसीप्रज्ञा** के सहसम्पादक रहे है ।

स्याद्वाद महाविद्यालय काशी में लगभग एक वर्ष तक दर्शन विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य करने के पश्चात् आप फरवरी सन् १९८४ से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे जैनदर्शन के प्रवक्ता है । आपने **योगसार** का सम्पादन एव

हिन्दी अनुवाद किया है तथा सिद्धान्ताचार्य प कैलाशचन्द्र शास्त्री द्वारा लिखित **जैन न्याय**, भाग २ का सम्पादन किया है।

आपने श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन सस्थान नरिया, वाराणसी को पहले सयुक्तमत्री और बाद मे मत्री के रूप मे अपनी मानद सेवाएं दी है/दे रहे है। आप बिहार सरकार द्वारा सचालित प्राकृत, जैनशास्त्र एव अहिसा शोध सस्थान वैशाली की अधिष्ठात्री परिषद् के सदस्य भी है।

आप कुशल वक्ता एव साहित्यिक रुचि सम्पन्न विद्वान् है। आपने प्रस्तुत ग्रन्थ को आकर्षक एव व्यवस्थित बनाने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

डॉ. कमलेश जैन, वाराणसी

(जन्म २५ जुलाई १९६०, ककड़ारी, ललितपुर, उ. प्र.)

आपने जैन **पारिभाषिक शब्दों का विश्लेषणात्मक अध्ययन** विषय पर शोध किया है। सम्प्रति आप सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी मे यू. जी सी रिसर्च एसोशिएट के रूप मे कार्यरत है।

डॉ. हेमन्तकुमार जैन, वाराणसी

(जन्म ५ अगस्त १९६१, गौना)

आपने **भट्टाकलक कृत लघीयस्त्रय एक दार्शनिक विवेचन** विषय पर शोध कार्य किया है और वाराणसी मे निजी व्यवसाय मे सलग्न है।

डॉ. विनोदकुमार जैन, वाराणसी

(जन्म . १ फरवरी १९६३, कुलुवा)

आप मूलत कुलुवा (दमोह) के निवासी है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी मे एम ए करके आपने '**बौद्ध परम्परा के सन्दर्भ में सिद्धार्थ**

महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन' विषय पर शोध कार्य किया है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती अर्पणा जैन हिन्दी मे एम. ए. करने के पश्चात् शोध कार्य मे सलग्न है।

विदिशा

श्री नन्दकिशोर वकील, विदिशा

ये एक कर्मठ समाजसेवी एव अध्यात्मप्रेमी प्रमुख व्यक्ति थे। श्रीमन्त सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द जी द्वारा स्थापित दि. जैन मन्दिर, कालेज, कन्या-शाला, धर्मशाला आदि अनेक धार्मिक एव सामाजिक सस्थाओ की स्थापना मे प्रेरक, सहायक, सचालक और ट्रस्टी रहे है। विदिशा की जैन समाज मे इनका प्रमुख स्थान है। इनके सुपुत्र राजकुमार जी भी अच्छे वकील थे, जो अभी-अभी दिवगत हुये है।

वैशाली

स्व. डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी

(जन्म : २ अक्टूबर १९१७, सिलौड़ी)

आप मूलत· सिलौडी (जबलपुर) के निवासी थे। आपके पिता अपने प्रान्त के सुप्रसिद्ध श्रावक थे। डॉ चौधरी जी का एक पैर बचपन मे ही खराब हो गया था। आप लगन के पक्के थे। इसलिये आपने जैन शिक्षा सस्था कटनी से न्यायतीर्थ एव व्याकरणतीर्थ की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की और स्याद्वाद महाविद्यालय काशी मे रहकर पाश्चात्य शिक्षा मे प्रवीणता प्राप्त की। छात्रा-वस्था मे आपने स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लेकर देश की स्वतन्त्रता मे अपना योगदान दिया है।

आपने अनेक ग्रन्थो का सम्पादन, अनुवाद एव स्वतन्त्र लेखन कार्य किया है। **'पॉलिटिकल हिस्ट्री आप नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज'** एव **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास,** भाग ६ आपकी बहुचर्चित कृतियाँ है।

आप बिहार सरकार के अनेक शोध सस्थानो मे कार्य करते हुये अन्त मे प्राकृत शोध सस्थान वैशाली (बिहार) के निदेशक रहे है । सम्प्रति आपके सुपुत्र वैशाली, वाराणसी और दिल्ली मे सेवारत है ।

डॉ. लालचन्द जैन, वैशाली

डॉ लालचन्द जैन

आपने तीन विषयो मे एम ए एव दो विषयो मे आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की है। जैनदर्शन मे शोधकार्य कर पी-एच डी की उपाधि अर्जित की है । प्राकृत जैन-शास्त्र को एम ए परीक्षा मे सर्वाधिक अक प्राप्त करने के कारण बिहार विश्वविद्यालय (मुजफ्फरपुर) ने आपको स्वर्णपदक से सम्मानित किया है । आप जैनदर्शन के साथ ही प्राकृत भाषा के विशिष्ट विद्वान् है । अभी तक आपके लगभग पचास शोधपत्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके है ।

जैनदर्शन में आत्मतत्त्व विचार एव **भारतीय दर्शन में सर्वज्ञता** आपकी प्रकाशित कृतियॉं है । प्राकृत भाषा मे निबद्ध **कंसवहो** का हिन्दी अनुवाद और **भारतीय दर्शन में अद्वैतवाद** अभी प्रकाशनाधीन है । आप सन् १९७४ से प्राकृत जैनशास्त्र एव अहिसा शोध सस्थान, वैशाली मे व्याख्याता पद पर कार्यरत है । आप दो वर्षो से अधिक समय तक उक्त शोध सस्थान के कार्यकारी निदेशक भी रह चुके है तथा अनेक सामाजिक सस्थाओ के सम्मान्य पदाधिकारी है ।

शहडोल :

डॉ. कन्छेदीलाल जैन

(जन्म : १९३१ ई., बिलानी, पथरिया, म. प्र.)

शासकीय सेवाओ मे रत होकर भी सामाजिक क्षेत्र मे **जैन सन्देश** का सफल सम्पादन तथा चिन्तन प्रस्तुत कर अपनी सेवाएँ समर्पित करते रहे है। आप मध्यप्रदेश के शिक्षा विभाग मे संस्कृत प्रोफेसर पद पर कार्यरत थे। ५ जुलाई १९८९ को रायपुर मे आपका दु:खद निधन हो गया।

शाहपुर :

पं. श्रुतसागर जैन न्यायकाव्यतीर्थ

(जन्म : १५ दिसम्बर १९०८ ई., शाहपुर, सागर, म. प्र.)

पं. श्रुतसागर जैन न्यायकाव्यतीर्थ
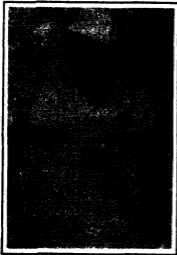
आप स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के स्नातक है। आपने विभिन्न जैन सस्थाओ मे संस्कृत एव जैनदर्शन का अध्यापन कार्य किया है। अपनी सरल एव विवेचनात्मक शैली के कारण आप धर्मप्रभावना में अग्रणी हैं। आपने सन् १९६५ तक शाहपुर विद्यलय मे प्रधानाध्यापक के रूप मे कार्य करने के पश्चात् सन् १९७३ तक जैन शिक्षा संस्था कटनी को अपनी सेवाएँ दी है। आप निरन्तर स्वाध्याय में अपना समय बिताते है तथा समय-समय पर साधुओ को जैनधर्म-दर्शन के प्राचीन ग्रन्थो का अध्ययन करने/कराने मे सहयोग देते है। पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी ने आपकी विद्वत्ता

देखकर आपके बचपन के नाम तुलसीराम को बदलकर प. श्रुतसागर नाम रख दिया था। सम्प्रति आपके सुपुत्र श्री ईश्वरचन्द्र जैन भारत हेबी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड भोपाल मे इजीनियर के पद पर कार्यरत है।

पं. अमरचन्द्र शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य, शाहपुर
(जन्म सवत् १९८०, शाहपुर, मगरौन)

शाहपुर निवासी श्रीमान् ब्र प भगवानदास जी भायजी के पॉच विद्वान् सुपुत्रो मे श्रीमान् प अमरचद जी प्रतिष्ठाचार्य चौथे पुत्र है। इनके सुपुत्र श्री देवेन्द्रकुमार जी स्टेशनरी एव रेडीमेड का व्यवसाय करते है। प जी के पिता श्री भायजी सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धालु थे। उन्होने श्री १०५ गणेशप्रसाद जी वर्णी की आज्ञा का पालन करते हुए अपने तीन पुत्रो को उच्च शिक्षा दिलाने हेतु मो-राजी (सागर) मे पढ़ने भेज दिया। दो पुत्रो को घर पर ही शिक्षा देकर योग्य बना दिया और सगीत में भी निपुण कर दिया था।

प अमरचन्द्र शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य

श्री भायजी सगीत के उद्भट विद्वान् थे। सगीत मे इनकी प्रसिद्धि सुनकर इन्दौर के सरसेठ हुकुमचन्द्र जी सा ने सिद्धचक्र विधान के समय बुलवाया और सगीत का आनन्द लिया। आप णमोकार महामत्र को २५० स्वर-लहरियो मे गाते थे, अतः उनको सुनकर इन्दौर जैन समाज की ओर से सेठ सा. ने इनको 'सगीतरत्न' की पदवी से अलकृत किया था।

प अमरचन्द्र जी सभी प्रकार के मॉड़ने बनाने मे कुशल है। शाहपुर का जैन मन्दिर, मानस्तम्भ और धर्मशाला इनकी देखरेख मे बने है। आप

सेवादल एव समाज के अध्यक्ष तथा शिशु मन्दिर के मंत्री हैं। आप अच्छे प्रतिष्ठाचार्य एव प्रवचनकर्ता भी है। ज्योतिष का आपको अच्छा ज्ञान है। दमोह, शाहपुर, दिल्ली, सिवनी, शहपुरा, प्रतापगढ़, बीना, मनेन्द्रगढ़ आदि अनेको स्थानो पर आपने श्रीमज्जिनेन्द्र पञ्चकल्याणक एव गजरथ महोत्सवो मे मुख्य प्रतिष्ठाचार्य की भूमिका निभाई है। अत· भारतवर्ष के मुख्य प्रतिष्ठाचार्यो मे आपकी गणना की जाती है। स्व. प. माणिकचन्द्र न्यायकाव्यतीर्थ (सागर) प श्रुतसागर शास्त्री न्यायकाव्यतीर्थ और प. दयाचन्द्र साहित्याचार्य आपके ज्येष्ठ भ्राता है और स्व प धर्मचन्द्र शास्त्री आपके अनुज है।

सगौनी :

पं. प्रकाशचन्द्र शास्त्री, सगौनी

आप सगौनी (दमोह) के निवासी २६ वर्षीय युवा विद्वान् है। आपने एम काम तथा शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की है। सम्प्रति आप शासकीय श्रम-विभाग (सागर) मे कार्यरत है। स्वाध्याय-प्रवचनो मे रुचि है।

सतना .

स्व. पं. केवलचन्द जैन

आप परवार सभा के अधिवेशनो मे सदा भाग लेते थे तथा उदारमना व्यक्ति थे। आप आदरणीय प. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री के साथ बनारस मे अध्ययन कर व्यापार में लगे, किन्तु जीवनपर्यन्त उदासीन एव परम तात्त्विक विवेचन मे सलग्न रहे। इनकी भगिनी श्रीमती सुन्दरबाई जी अच्छी विदुषी थी। प्रवचन करती थी और सतना महिला समाज पर उनका धर्मशासन था।

स्व. पं. कस्तूरचन्द जैन

आप शिखरजी के पास कोडरमा मे अनेक वर्षो तक रहे है। विद्वान् के नाते आप सतना जैन समाज द्वारा आदरपूर्वक बुलाये गये थे। अतः आपने

अनेक वर्षो तक सतना जैन समाज का मार्गदर्शन किया है। आप ईसरी (बिहार) मे भी अध्यापक रहे है। आपकी गणना पुरानी पीढी के सेवाभावी एव धर्मनिष्ठ विद्वानो मे की जाती है।

सनावद .

श्री मूलचन्द जी शास्त्री

ये मुख्य रूप से स्याद्वाद दि जैन महाविद्यालय मे पढे है। बाद मे जॅवरीबाग इन्दौर के विद्यालय मे भी पढे है। आपने सनावद के दि जैन हाई स्कूल मे धर्माध्यापक पद पर कार्य किया है। प जी प्रतिदिन पूजन व शास्त्र-स्वाध्याय करते है। ये अच्छे लेखक है। आपने बुधजन सतसई पर शोधकार्य किया है।

सलेहा

डॉ. अरुणकुमार जैन, सलेहा

(जन्म · १५ अगस्त १९५९, सलेहा, पन्ना, म. प्र.)

आपने '**आचार्य हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन एक समीक्षात्मक अध्ययन**' विषय पर शोधकार्य किया है। प्रारम्भ मे आपने ब्राह्मी विद्यापीठ, जैन विश्व भारती लाडनूं (राज) मे सस्कृत प्रवक्ता के रूप मे कार्य किया है। सम्प्रति आप जॉजगीर, बिलासपुर (म प्र.) मे अध्यापन कार्य कर रहे है।

सलैया ·

डॉ. धर्मचन्द्र जैन, सलैया

(जन्म : १ मई १९५६, सलैया, दमोह, म. प्र.)

आपने '**जैन संस्कृत साहित्य में भक्ति की अवधारणा**' विषय पर शोधकार्य किया है और सम्प्रति शासकीय महाविद्यालय, छतरपुर (म. प्र) मे सस्कृत प्रवक्ता के पद पर कार्यरत है।

सागर :

श्री सत्तर्क सुधा तरंगिणी दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय के सहयोगी, पदाधिकारी एवं विद्वान्

मोराजी मे इस महाविद्यालय की स्थापना से सागर नगर की प्रसिद्धि हुई है। जैनधर्म, दर्शन, न्याय एव साहित्य आदि के पारगत विद्वान् तैयार हुए है। यह विद्यालय विद्वानो की खान कहा जाता है। अनेक विद्वान्, जिनमे से अब कुछ नही है तथा कुछ विविध स्थानो मे कार्यरत है एवं जैनधर्म तथा सस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रहे है, प्राय. इसी विद्यालय के है।

इस युग के जैनधर्म के मूलस्रोत एवं गणेश विद्यालय मोराजी के मूल सस्थापक **श्री १०५ क्षु. गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज** पहिले 'बड़े पडित जी' के नाम से विख्यात थे। उन्होने बनारस आदि विविध स्थानो मे जाकर जैनधर्म, दर्शन एवं न्याय आदि का अध्ययन करके न्यायाचार्य उपाधि प्राप्त की तथा मोराजी (सागर) मे प्रथम प्रवेश करने वाले छात्रो को रुचिपूर्वक कुशल रीति से पढ़ाया था।

मोराजी भवन के निर्माणकर्ता **श्रीमान् रज्जीलाल जी कमरया** एवं **श्रीमान् सुक्केलाल पन्नालाल जी कमरया**— इन युगल दानियो को मोराजी भवन के निर्माण मे महान् योगदान देने के कारण एक विशाल महोत्सव मे सकल दिगम्बर जैन समाज द्वारा 'दानवीर' की उपाधि से अलकृत किया गया था। श्री चन्द्रप्रभ दि. जैन चैत्यालय एवं जैन रसोईशाला भवन के निर्माण मे भी आप महानुभावो का सहयोग रहा है।

श्री सुक्केलाल पन्नालाल जी कमरया ने मोराजी के सामने एक धर्मशाला का निर्माण कराया एवं मोराजी भवन को स्वयं अपनी देखरेख मे इतना मजबूत बनवाया कि अभी तक पुताई के सिवाय कोई मरम्मत की जरुरत नही पड़ती है। आपने गोपालगज के दि. जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। ढाकनलाल के मन्दिर मे भी एक वेदी का निर्माण कराया। दयालु प्रकृति के होने के कारण गरीब छात्रो को कमीज, कोट, पायजामा, ओढ़ने के लिये मोटे

चादर आदि वितरण करने एव मकर सक्रान्ति के दिन मोराजी भवन मे से गरीबो को हजारो रुपयो के कपडे दान करने मे आपकी विशेष रुचि थी। आपके भतीजे **श्री मुन्नालाल कमरया** भी अपने जीवनकाल मे कपड़े वितरित करते रहे है।

सेठ लक्ष्मणदास जी कमरया भी अच्छे दानी पुरुष थे, उनके नाम से आज भी एक ट्रस्ट चल रहा है। ट्रस्ट का नाम है— सेठ लक्ष्मणदास कमरया ट्रस्ट। इस ट्रस्ट से वर्तमान मे भी गरीबो को प्रतिदिन मोराजी भवन से रोटियाँ दान मे दी जाती है। असहायो को कपड़ा दान मे दिया जाता है। मोराजी के मन्दिर एव ढाकनलाल मन्दिर — इन दोनो मन्दिरो को पूजा का खर्च इसी ट्रस्ट से दिया जाता है।

श्री नत्थूलाल जी रसोइया ने स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस मे रसोई बनाने का काम करते हुए ६००/— रुपया एकत्रित किये थे। अपने जीवन के अन्तिम समय इस गरीब भाई ने उपर्युक्त राशि मोराजी के विद्यालय को दान मे दे दी थी।

श्री बालाप्रसादजी सर्राफ मोराजी सागर के १० वर्षो तक मत्री पद पर रहे। उन्होने अपनी सूझबूझ से कुएँ के स्थान व चारो तरफ सुन्दर भवन का निर्माण करवाया। नीचे हाल मे पूज्यपाद वर्णीजी महाराज का स्टेच्यू, ऊपर भगवान् बाहुबली की विशाल प्रतिमा एव तीसरी मजिल पर भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा विराजमान करायी है। वर्षा ऋतु मे भी इस भवन के नीचे हजारो श्रोतागण बैठकर शास्त्र श्रवण करते है।

श्री छोटेलाल जी निबुआवालों ने ऊपर भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा विराजमान करवायी थी।

सिं. भैयालाल जी मुंशी, जो बड़े निष्पृही थे, ने ३ वर्षो तक मत्री पद पर रहकर काम सम्हाला।

श्री धरमचन्द्र जी सोधिया ने लगभग १२ वर्षो तक मंत्री पद पर रहकर बहुत अच्छा काम सम्हाला।

श्री सागरचन्द्र जी दिवाकर वकील ने भी मोराजी सागर का कार्य बडी दिलचस्पी से किया है।

श्री पूर्णचन्द्रजी बजाज सर्राफ (सागर) ने ३० वर्षो तक मत्री पद पर रहकर विद्यालय की सेवा की है।

पूज्य वर्णी जी के पट्ट शिष्य **श्रीमान् पं. दयाचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री** मोराजी के ही विद्यार्थी थे। वे अपने पुरुषार्थ से उद्भट विद्वान् बनकर मोराजी सागर मे जीवनपर्यन्त प्राचार्य पद पर आरूढ़ रहे। श्री वर्णी जी महाराज के परमभक्त थे। आप प्रशममूर्ति, मधुराकृति, प्रतिभा-सम्पन्न, विमलतरमति, परम-दयालु, छात्रवत्सल, मृदुस्वभावी, मधुरभाषी, स्याद्वादवाचस्पति, सिद्धान्तमहो-दधि आदि विविध उपाधियो से विभूषित थे। आपके कार्यकाल मे संस्था ने उत्तरोत्तर प्रगति की है।

व्याख्यानदाता, वाणीभूषण, प्रतिष्ठाचार्य **पं. मुन्नालाल जी समगौरया** सागर मोराजी मे जीवनपर्यन्त प्रचारक पद पर रहकर कार्य करते रहे और सस्था को लाखो रुपये का दान दिलवाया है। आप कुशल वक्ता थे।

श्रीमान् पं. माणिकचन्द्र जी न्यायकाव्यतीर्थ मूलत शाहपुर के निवासी थे। वे मोराजी मे अध्ययन कर विद्वान् बने और वही धर्माध्यापक बनकर जीवनपर्यन्त कार्य करते रहे। आप पुस्तकालय को भी सम्हालते थे। छात्रो को विषय की उपस्थिति कराने मे आपका अच्छा योगदान रहा है। आपको जैनदर्शनाचार्य की परीक्षा मे सर्वोच्च स्थान प्राप्त होने के कारण सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया था।

श्रीमान् पं. दयाचन्द्र जी शास्त्री साहित्याचार्य मूलत शाहपुर के निवासी है। आप वर्तमान मे प्राचार्य पद पर कार्य कर रहे है। ये प. माणिकचन्द्र जी के छोटे भाई है।

श्रीमान् पं. मोतीलाल जी शास्त्री साहित्याचार्य एम. ए. मूलत: सिहोरा के निवासी है। सम्प्रति आप मोराजी मे उपप्राचार्य पद पर कार्यरत है। आप प्रारम्भ मे बीना विद्यालय के प्राचार्य थे। कुछ समय तक आप स्याद्वाद महाविद्यालय काशी के प्राचार्य भी रह चुके है।

पं. ज्ञानचन्द्र शास्त्री मूलतः गढ़ाकोटा के निवासी हैं। आप मोराजी के विद्यार्थी है। आप कुछ समय तक वहाँ पर सुपरिन्टेन्डेन्ट पद पर रहे है। वर्तमान मे आप जबलपुर मे कपड़ा के व्यापारी है।

पं. **श्री कपूरचन्द जी दलाल** मोराजी, सागर के सुपरिन्टेन्डेट रहे है।

सागर जिला में परवार समाज के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी :

१ श्री चितामन जी जैन
२. श्री सुमतचन्द्र जी खूबचन्द्रजी सोधिया
३. श्री सरूपचन्द्र, मुन्नीलाल रामपुरा, सागर
४ श्री पुरुषोत्तम बिहारीलाल जी
५ श्री ज्ञानचन्द्र जी चकराघाट
६ श्री ज्ञानचन्द्र जी बड़कुल
७ श्री कचनलाल जी
८. श्री हेमचन्द्र नाथूराम जी
९. श्री ताराचन्द्र, पलोटनगज
१० श्री पूरनचन्द्र पदमकुमार सर्राफ
११. श्री मुन्नालाल, जैसीनगर
१२. श्री पूरनचन्द्र अलया, पलोटनगज
१३. श्री फूलचन्द्र बल्द कुन्दनलाल, रामपुरा
१४. श्री मुंशी सुन्दरलाल सुक्केलाल
१५ श्री भोलाराम
१६. श्री गुलझारीलाल सुन्दरलाल, टड़ा
१७. श्री मुलामचन्द
१८. श्री दुलीचन्द्र रणजीतलाल, देवरी
१९. श्री कुन्दनलाल दयाचन्द्र, बण्डा
२०. श्री खूबचन्द देवरिया मगलप्रसाद, शाहगढ़
२१. श्री सुन्दरलाल सर्वदलाल, इटावा- बीना
२२ श्री पन्नालाल गनपत लाल, बामोरा
२३. श्री कैलाशचन्द मूलचन्द, खुरई
२४. श्री धन्नालाल मन्नूलाल
२५. श्री धन्नालाल मोतीलाल बजाज
२६. श्री बालचन्द, खुरई
२७. श्री पंचमलाल मानकलाल, खुरई

२८. श्री बाबूलाल खुन्नीलाल, खुरई
२९. श्री बालचन्द फूलचन्द, खुरई
३०. श्री कपूरचन्द दरबारीलाल
३१. श्री कपूरचन्द पिता हीरालाल
३२. श्री दरबारीलाल कपूरचन्द नन्हेलाल
३३. श्री कुन्दनलाल मिट्ठूलाल
३४. श्री खेमचन्द कोमलचन्द
३५. श्री गुलजारीलाल दरयावप्रसाद
३६. श्री भोलानाथ दयाचन्द
३७. श्री भोलानाथ रामरतन
३८. श्री मिट्ठूलाल नन्हेलाल
३९. श्री मिठया उदयचन्द मूलचन्द, सागर
४० श्री फूलचन्द पिठौरियावाले, सागर
४१. श्री फूलचन्द सोधिया, सागर
४२ श्री धर्मचन्द सोधिया, सागर
४३. श्री कोमलचन्द भायजी, सागर

पं. ध्यानदासजी शास्त्री

आप एम. ए. साहित्यरत्न एवं धर्मशास्त्री है। सागर के कटरा मन्दिर मे नियमित प्रवचन करते है। सेवाभावी व्युत्पन्न विद्वान् है।

सिवनी :

स्व. पं. कुन्दनलाल न्यायतीर्थ

आप मूलतः मालथौन (सागर) के निवासी थे। इन्दौर विद्यालय में उच्च शिक्षा ग्रहणकर समाजसेवा के क्षेत्र मे उतरे। आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण कर आयुर्वेद चिकित्सा-कार्य भी करते थे। आपका मुख्य कार्य व्यापार था। आप अच्छे व्युत्पन्न, साहसी और स्वाभिमानी विद्वान् थे। आपका अन्तिम जीवन सिवनी की धार्मिक समाज के बीच व्यतीत हुआ। प्राचीन विद्वानों मे इनका बहुत सम्मान था।

सिहोरा :

कवि खूबचन्द्र पुष्कल, सिहोरा

आप सागर विद्यालय के स्नातक है और भावपूर्ण कविताएँ लिखते है ।

सीकर :

डॉ. सन्तोषकुमार जैन, सीकर
(जन्म : १ फरवरी १९५९, पिपरा)

आप मूलत पिपरा (शिवपुरी) के निवासी है । आपने '**भवप्रपञ्चा कथा . एक परिशीलन**' विषय पर शोध कार्य किया है । प्रवचनपटु और उत्साही विद्वान् है । सम्प्रति दि जैन सीनियर हायर सेकेण्डरी स्कूल सीकर (राज) मे शिक्षक है ।

हटा :

डॉ. शिखरचन्द जैन, हटा (दमोह)
(जन्म तिथि : २२ जनवरी १९३०)

आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ए. बी. एम. एस. परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् सन् १९५६ से चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया था और आज भी हटा नगर मे निजी कमल चिकित्सालय चला रहे है ।

आप विगत ३० वर्षो से विभिन्न सामाजिक सस्थाओ के महत्त्वपूर्ण पदो पर कार्यरत रहकर सामाजिक उत्थान एव धर्म-प्रचार-प्रसार मे सहयोग कर रहे है ।

श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर के सन् १९६९ से १९७४ तक मंत्री एव १९७५ से १९८० तक अध्यक्ष पद पर कार्य कर चुके

डॉ शिखरचन्द जैन

है। इसी प्रकार अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासमिति (मध्याञ्चल) के महामंत्री, श्री पारसनाथजी बड़कुल मन्दिर, हटा के १९६५ से १९८८ तक अध्यक्ष, नेशनल इंटीग्रेटेड मेडिकल एसोशियेशन दमोह के अध्यक्ष, जिला सहकारी थोक उपभोक्ता समिति दमोह के उपाध्यक्ष, बैडमिन्टन क्लब हटा के मत्री एव शाला विकास समिति, महारानी लक्ष्मीबाई कन्या विद्यालय हटा के अध्यक्ष आदि विविध पदो पर रहकर सामाजिक सेवा कर चुके है/कर रहे है। आपने ३६ बार गजरथ एव पञ्चकल्याणक महोत्सवो मे पदाधिकारी रहकर विविध प्रकार से सहयोग किया है।

आपके तीन पुत्र— राजकुमार, चन्द्रकुमार एव हेमन्तकुमार तथा तीन पुत्रियाँ है, जो धार्मिक रुचि सम्पन्न है।

हाटपिपिल्या :

ब्र. पं. राजकुमार शास्त्री, हाटपिपिल्या

आप मूलतः हाटपिपिल्या (इन्दौर) के निवासी थे। मोरेना विद्यालय मे शास्त्री तक अध्ययन किया। आप सरल, विनयशील और निरभिमानी व्यक्ति थे। विद्या के फलस्वरूप चारित्र के क्षेत्र मे इन्होने सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये थे और इसके बाद इन्दौर के उदासीन आश्रम के अधिष्ठाता रहे। पूर्व मे स्वर्गीय पंडित पन्नालाल जी गोधा अधिष्ठाता थे। अतः उनके पास रहकर शुद्ध तेरापंथ के अनुसार प्रतिष्ठा कार्य का अनुभव प्राप्त किया तथा विक्रम

सं. १९८६ से १९९२ तक ७ वर्षों मे १७ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठाएँ, अनेक सिद्धचक्र विधान, वेदी प्रतिष्ठाएँ, कलशारोहण आदि कार्य मालवा व बुन्देलखण्ड मे शुद्धाम्नाय के अनुसार सम्पन्न कराये। अन्त मे आप उदासीन वृत्ति से मुँगावली (जिला—गुना) में रहे हैं।

■

सप्तम खण्ड : समाजसेवी

(क) विशिष्ट समाजसेवी
(ख) अन्य समाजसेवी

(क) विशिष्ट समाजसेवी :

सिं. बंशीलाल पन्नालाल जैन रईस

अमरावती के इस परिवार मे अनेक ऐसे महापुरुष हो गये है, जिन्होने परवार अन्वय की श्रीवृद्धि मे अपना अपूर्व योगदान दिया है। उनमे मान्य सि. पन्नालाल जी अन्यतम महापुरुष है। उन्हें सतत यह चिन्ता सताती रही कि इस अन्वय के सदस्य अपने पूर्व वैभव को कैसे प्राप्त करे। उन्होने इसके लिये **परवार डायरेक्टरी** का निर्माण कराकर स्वय प्रकाशित किया। किसी से उसमे आर्थिक सहायता की इच्छा भी नही की।

परवार डायरेक्टरी के प्रारम्भ मे उनका वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, वह हृदयगम करने लायक है।

वक्तव्य के प्रारम्भ मे वे यह सूचना देने से भी नही चूके कि — **नास्ति नास्ति स हि कश्चिदुपायः सर्वजनपरितोषकरो यः**। इसके आगे वे अपनी लोकहितकारी भावना व्यक्त करते हुए लिखते हैं—

माननीय सज्जनो ! मेरी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि हमारी परिवार जैन जाति के एक ऐसे इतिहास का निर्माण हो जिसमे हमारी जाति का प्राचीन काल से अब तक का अविच्छिन्न और सागोपाग वर्णन हो, पर मेरा दुर्भाग्य कि मेरी यह अभिलाषा फलवती नही हुई। इस इतिहास निर्माण के लिये मैंने प्रयत्न किया, पर्याप्त पारितोषिक प्रदान करने की घोषणा की, पर सब निष्फल हुआ।

किसी-किसी सज्जन ने मुझे समय पर इस बात का आश्वासन दिया कि मै इसे तैयार करूँगा और मेरे पास इसकी सामग्री भी है, पर अन्त मे वे आश्वासन भी विफल रहे।

परवार डायरेक्टरी का प्रकाशन श्री वीर निर्वाण संवत् २४५०, वि. स. १९८१ और ईसवी सन् १९२४ को हुआ था। उसके अनुसार परवार अन्वय का क्रमाङ्क चौथा था। उसकी जनसख्या उस समय ४८०७४ थी। इस अन्वय के कुटुम्ब दक्षिण प्रदेश को छोड़कर पूरे भारतवर्ष में निवास करते है।

परवार डायरेक्टरी मे लिखा है कि — देवगढ़ क्षेत्र पर भ. शान्तिनाथ के जिनालय का निर्माण सि. जुगराज जी ने कराया था। वे परवार अन्वय के महापुरुष थे। उस मन्दिर मे एक लेख है जिसका सार यह है कि इस मन्दिर का नाम शान्तिनाथ चैत्यालय है तथा यह वि. स १३९३ शाके १२५८ का बना हुआ है। बनवाने वाले आहारदानदानेश्वर श्री सिघई लक्ष्मण के वशज श्रीमान् सिघई जुगराज है। प्रतिष्ठाकारक पण्डित नयनसिंह है और कारीगर राज पेनसासा है। इस शिलालेख मे इस शान्तिनाथ चैत्यालय के निर्माता श्री सिघई लक्ष्मण के वशज सिघई जुगराज का अन्वय-वश अष्टशाखा लिखा है। ये आठ शाखाएँ और कुछ नही परवार जाति मे प्रचलित अष्टकाएँ ही है। ये आठ साँके सिवा परवार जाति के और किसी जाति मे प्रचलित नही है। इस शिलालेख से यह तो सिद्ध होता ही है कि इस अन्वय मे साँको का व्यवहार था तथा पाँच सौ वर्ष पहले परवार जाति का अस्तित्व था। साथ-साथ इस बात का भी पता लगता है कि अबसे पाँच सौ वर्ष पहले हमारी जाति मे आठ ही साँको का व्यवहार था। मैने (सि. पन्नालालजी ने) परवार जाति के एक समझदार व्यक्ति द्वारा यहाँ तक सुना है कि एक समय हमारी परवार जाति मे सोलह साँको का व्यवहार होता था। नही कहा जा सकता कि यह बात कहाँ तक ठीक है। परवार जाति के नेता तथा विद्वानो को इन साँको के इतिहास की भी गवेषणा करनी चाहिये। अब तक किसी भी लेख मे सोलह साँकों का उल्लेख नही मिला है।

परवार डायरेक्टरी मे व्यक्त किये गये ये स्व सि पन्नालाल जी के उद्‌गार है। इस अन्वय मे उत्पन्न होने के कारण वे अपने को कृतकृत्य मानते थे। ऐसा इस लेख से पता लगता है।

उस समय (परवार डायरेक्टरी के निर्माण के समय) परवार अन्वय की सख्या ४८०७४ थी। इस सख्या को प्रान्तबार देखा जाय तो उस समय मध्यप्रदेश मे २८२०५, सयुत्तप्रान्त मे ९५५१, राजपूताना और मालवा मे १००६५ जनसख्या थी। शेष ४१८ व्यक्ति अन्य प्रान्तो मे पाये जाते थे।

यहाँ राजपूताना से मतलब उन देशी राज्यो से रहा है जो बुन्देलखण्ड के आस-पास में पाये जाते है। जैसे— ग्वालियर, टीकमगढ़, पन्ना, बिजावर, छतरपुर, भोपाल, और टोंक इत्यादि।

श्री सिंघई वंशीलाल जी

जन्म सं० १९१२] [मृत्यु सं० १९६३

श्री सिंघई पन्नालाल जी जैन

[जन्म सन् १८८५ ई०]

स्व. सि. पन्नालाल जी (जन्म · सन् १८८५) का जीवन अनेक प्रकार से सुख और दु.ख से भरा हुआ था । वे मूल मे अमरावती के रहने वाले थे । उनके पिताश्री का नाम सि बंशीलाल जी (जन्म सवत् १९१३, मृत्यु : सवत् १९६३) था । वे अपने पीछे दो पुत्रो को छोड़ गये है । उनकी धर्मपत्नी उनकी सदाकाल सेवा करती रहती थी । पुत्रो के नाम श्री सि फतैचन्द जी और सि. विजयकुमार जी है । वे अनेक बार परवार सभा के सभापति पद को विभूषित कर चुके थे ।

स्व. मान्य सि पन्नालाल जी अन्त मे कुछ दिन हमारे यहाँ बनारस आकर रहे थे । उस समय वे बीमार हो गये थे । हमसे उनकी जो सेवा बनी करते रहे । वे हमारे साथ कलकत्ता भी गये थे । वे हमसे बिना कहे कलकत्ता से तीर्थो की वन्दना के लिये चले आये थे । हम स्टेशन पर भटकते रहे, पर उनका पता नही चला कि वे कहाँ चले गये है ।

अन्त मे पता चला कि वे आरा नगर की अस्पताल मे बीमार हो जाने के कारण भर्ती कर लिये गये थे और २-४ दिन मे ही स्वर्गवासी हो गये थे । यह जानकर हमे बहुत दु ख हुआ ।

सिवनी का श्रीमन्त घराना

श्रीमन्त सेठ गोपालसाह जी के पिता का नाम पूनासाह था, जो नागपुर के प्रतिष्ठित नागरिक और भौसला दरबार के प्रमुख सदस्य तथा परवार समाज के प्रमुख थे । जब नागपुर का राज्य अंग्रेजी राज्य मे मिलाया गया तभी आप नागपुर से सिवनी आ गये । गोपालसाह उन्ही के दत्तक पुत्र थे ।

श्रीमन्त सेठ गोपालसाहजी

उस समय कारंजा (महाराष्ट्र) मे श्री वीरसेन भट्टारक जी पट्ट पर थे । वे न्याय और सिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता थे । इनके पास अध्ययन कर गोपाल-

रायबहादुर श्रीमन्त सेठ पूरनसाह जी

साह भी अध्यात्म के वेत्ता हुए। इन्होंने आचार्य कुन्दकुन्द के प्रमुख ग्रन्थ **समयसार** पर आत्मख्याति संस्कृत टीका का तथा जयचन्द जी छावडाकृत हिन्दी अनुवाद के आधार पर **समयसार** की एक संक्षिप्त हिन्दी टीका लिखी थी, जो उनके दत्तक पुत्र पूरनसाह ने 'बालबोध आत्मख्याति भाषा टीका' के नाम से वीर नि संवत् २४४२ में प्रकाशित की थी। इस टीका का अब पुन प्रकाशन हो रहा है। इन्होंने एक भजनमाला भी बनाई थी, जिसमें ११८ भजन तथा कुछ तीर्थक्षेत्रों की पूजाएं है। इसका प्रकाशन उनके पौत्र श्रीमन्त सेठ बिरधीचन्द जी ने वीर नि स २४७५ में **भजनमाला** के नाम से किया है।

श्रीमन्त सेठ बिरधीचन्द जी

वर्तमान मे श्रीमन्त सेठ बिरधीचन्द जी के पुत्र श्रीमन्त सेठ प्रीतमचन्द जी व कमलकुमार जी है।

इस परिवार के द्वारा वि स १९०६ मे जबलपुर तथा वि स १९३३, १९५१, १९५८ मे तीन मन्दिर सिवनी तथा १९६६ मे एक मन्दिर तरापथी आम्नाय के अनुसार श्री सम्मेदशिखर जी पर गजरथ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्वक बिम्बप्रतिष्ठाएँ हुई थी। सम्मेद शिखर मे तीर्थ स्थान होने और प्रथम गजरथ पूर्वक पञ्चकल्याणक महोत्सव होने के

कारण समाज के लगभग तीन लाख व्यक्ति उपस्थित थे। उस समय बुन्देलखण्ड म प्रचलित गजरथ महोत्सव के नियम के अनुसार तीन दिन तक सम्पूर्ण जनसमुदाय को पक्का भोजन कराया गया था।

इन धार्मिक सस्थाओ के अलावा वि स १९८७ में श्री गिरनार जी मे वेदी स्थापना एव प्रतिष्ठा कराई। इसी प्रकार छिदवाडा मे १९८९ मे मंदिर मे फर्श एव जयपुरी वेदी जडवाई। इसके अतिरिक्त स्व. नेमचन्द जी की स्मृति मे एक धर्मशाला तथा द्वितीय पुत्र शिखरचन्द जी की स्मृति मे जैन विद्यालय एव छात्रालय और गुन्नीबाई जी (धर्मपत्नी सेठ पूरनसाह) की स्मृति मे महिलाश्रम की स्थापना की।

इस प्रकार परवार समाज के इस सुप्रसिद्ध घराने ने अपनी इन ५-६ पीढ़ियो मे धर्म एव समाज के जो अनेक कार्य किये है, उनका सक्षेप मे विवरण दिया गया है। इन सब सस्थानो की सुरक्षा तथा सचालन के लिए सन् १९३७ मे श्रीमन्त सेठ गोपालसाह पूरनसाह दि जैन पारमार्थिक ट्रष्ट की सिवनी में स्थापना कर लाखो रुपयो की अचल सम्पत्ति तथा दो लाख रुपये नगद प्रदान किये थे।

स्व. सिंघई कुँवरसेन जैन, सिवनी

परवार समाज मे वर्तमान युग मे सभवतः इस परिवार का धार्मिक, सामाजिक एव शैक्षणिक क्षेत्र मे सबसे बडा योगदान है।

स्व. सिंघई कुँवरसेन सिवनी और उनका परिवार

ये अपने समय के जैन समाज के सुप्रतिष्ठित नेता थे। इनके फर्म का नाम सि जुगराजसाव कुँवरसेन था। ये परवार सभा के बीसो वर्ष मत्री रहे है। ये बहुत अच्छे

स्वाध्यायी विद्वान् थे। इनके मत्रित्वकाल मे परवार सभा के कार्यों मे अभिवृद्धि हुई है। इनके द्वारा निर्मापित जिन मन्दिर सिवनी के जैन मन्दिरो मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इनके सुपुत्र प सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ बी ए , एल एल बी है। इनके एक अन्य सुपुत्र डॉ. सुशीलकुमार दिवाकर जबलपुर के कामर्स कालेज मे प्रिन्सिपल थ। श्री अभिनन्दनकुमार दिवाकर सिवनी मे वकील है। सि कुँवरसेन जी के पौत्र श्री ऋषभ दिवाकर इस समय म प्र शासन मे डी आई जी के पद पर कार्यरत है। आपके अन्य सुपुत्र भी धर्मनिष्ठ है।

सि कुँवरसेन जी दृढसकल्पी थे। वे जिस कार्य को हाथ मे लेते थे, उसे पूरा करके छोड़ते थे।

स्व. श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी रायबहादुर

(जन्म सन् १८६३, निधन ४ सितम्बर १९२६)

श्रीमन्त सेठ सा खुरई की सम्पूर्ण समाज मे प्रसिद्ध तो थे ही, आदर की दृष्टि से भी देखे जाते थे। यह कहने मे कोई अत्युक्ति नही होगी कि आप जनता के अघोषित नेता थे। ये डिस्ट्रिक कौसिल और खुरई म्युनिसिपल कमेटी के समय-समय पर अध्यक्ष और २५-३० वर्षो तक सभासद रहे है। इतना ही नही स्थानीय पंचायतों तथा मध्यप्रदेश के कई जिलो की जैनाजैन पचायतो के प्रभावशाली निर्णायक भी रहे है। आप सबकी सुनकर जो निर्णय देते थे, वे सर्वमान्य होते थे।

रायबहादुर श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी, खुरई

हमारे पिता जी हमे सुनाते रहे कि ललितपुर आदि की जैन समाज सम्बन्धी पचायत का खुरई चौतरा

था। अक्सर जो समस्याएँ पैदा हो जाती थी, वे खुरई मे आकर श्रीमन्त सेठ सा की राय से सुलझा ली जाती थी। इस पचायत मे ललितपुर सम्भाग के प्राय. प्रमुख सदस्य तो सम्मिलित होते ही थे, सागर सम्भाग के सदस्य भी सम्मिलित होते थे। पचायत मे जो निर्णय होता था, उसका अक्षरश. पालन किया जाता था।

दिल्ली दरबार में श्रीमन्त सेठ साहब

भारत की राजधानी दिल्ली मे सन् १९१२ मे एक दरबार दिसम्बर की १२ ता को भरा गया था। जार्ज पंचम को राजतिलक होने वाला था। उस दरबार मे भारतवर्ष के सब राजा, जमीदार और सेठ-साहूकार आये थे। दिल्ली दरबार खचाखच भरा हुआ था। ऊपर से यह सूचना प्रसारित की गई कि सब लोग आसन्दियो (कुर्सियो) को दो फुट पीछे हटा ले।

उस समय एक दुबले-पतले व्यक्ति की ये आवाज सुनाई पड़ी कि "हम यहाँ भारत सम्राट् के दरबार मे मत्रणा हेतु आमन्त्रित किये गये है, दूसरे काम के लिये नही" यह आवाज सेठ सा की थी। इसे सुनते ही सरकार की ओर से उन्हे 'रायबहादुर' पद से विभूषित किया गया। इस आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर दरबार मे आये हुए सब राजे-महाराजे आदि चकित हो गये।

रतोंना में खुलने वाले कसाईखाना का विरोध :

दूसरी घटना सन् १९२० की है। श्रीमन्त सेठ सा हृदय से कोमल तो थे ही। जैनधर्म के अनुसार उन्होने अहिसा का पाठ भी पढ़ा था। जब उन्हे यह मालूम पड़ा कि खुरई के पास रतोना ग्राम मे बम्बई के कसाईखाना के समान यहाँ भी कसाईखाना खुलने वाला है और उसमे मूक प्राणियो का प्रतिदिन वध होगा तो उन्होने अपने प्रभाव का उपयोग कर उसे बन्द कराने की मन में प्रतिज्ञा कर ली।

वैसे भारतवर्ष उस समये गरीब देश माना जाता था और खासकर बुन्देलखण्ड मे गरीबी की पराकाष्ठा थी। साधारण गरीब आदमी को क्या

पता कि हमारे इस काम का क्या नतीजा निकलेगा। गरीब आदमी को तो पैसा मिलना चाहिये। गाय, भैस, बैल का क्या होगा, वह कटे या मरे, उससे उसे कुछ मतलब नही। यही कारण है कि उसकी इस वृत्ति का फल है कि कसाई उससे लाभ उठाते रहते है। श्रीमन्त सेठ सा तो ऐसे नही थे, उनकी रग-रग मे जैनधर्म की शिक्षा भरी हुई थी। वे बोले — भैया ! हम और आप जिन गाय-भैसो का दूध पीते है तथा जिसे अपने बच्चो को पिलाते है, जिनके बछड़ो से हम अन्न पैदा करते है, उन्ही लाखो-करोड़ो गायो, भैसो, बैलो की हत्या का महापाप क्या हम अपने सिर पर लेगे ? वे गॉव के और आसपास के आये हुए आदमियो से पूछते थे कि क्या हमारे जीते जी रतोना ग्राम मे कसाईखाना खुलेगा ?

समाज से आवाज आई -- 'यह नही होगा, हम कटेगे - मरेगे, पर कसाईखाना नही खुलने देगे।' अन्त मे सरकार को झुकना पड़ा और रतोना ग्राम में कसाईखाना खोलना स्थगित करना पडा।

वि. सं. १९५६-५७ का दुर्भिक्ष

वि सवत् १९५६-५७ मे दुर्भिक्ष की पराकाष्ठा थी। उस समय दुर्भिक्ष ने पूरे समाज की कमर तोड दी थी। ऐसे समय मे श्रीमन्त सेठ सा आगे आये और उन्होने अन्न भण्डार खोल दिये, जिससे खुरई ही नही आसपास की जनता लूट-पाट को भूलकर श्रीमन्त सेठ सा का गुणगान करने लगी थी।

धर्म के प्रति आस्था

श्रीमन्त सेठ सा. ८४ गॉवो के मालगुजार थे। कभी-कभी उन गॉवो मे जाते रहते थे, किन्तु वर्ष मे तीनो अष्टाह्निका, दशलक्षण पर्व, अष्टमी और चतुर्दशी का ख्याल रखते थे। उन दिनो पूजा-पाठ और शास्त्रसभा मे नियम से सम्मिलित रहते थे। धर्मकार्य के अतिरिक्त अन्य दूसरे कार्यो को गौण कर देते थे।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ·

वि स १९४९ की शुभ बेला मे सेठ सा ने पञ्चकल्याणक गजरथ महोत्सव बहुत ही शालीनता से सम्पन्न कराया था । डेरे-डेरे जाकर कुशलता के समाचार पूछना और कमी को दूर करना यह उनका मुख्य काम था । क्योकि स्वय तो पूजापाठ मे उलझे रहते थे । इसमे आये हुए प्रत्येक कुटुम्ब को दिन मे एक बार भोजन कराने की उनकी तरफ से व्यवस्था थी । और जो कमी रहती उसकी पूर्ति करना यह प्रतिदिन का काम था । वह व्यवस्था अब देखने को नही मिलती । अभी गुजरात मे वह व्यवस्था चालू है । चन्दे से ही सही, पर पुरानी व्यवस्था बदस्तूर चालू है । बुन्देलखण्ड ने उसे भुला दिया है । इससे हम पिछड़ते जा रहे है ।

अन्य सामाजिक कार्य

(क) तीर्थराज गिरनार क्षेत्र की स्वय तो यात्रा की ही, अपने साथ १५० यात्रियो को भी गिरनार क्षेत्र की यात्रा को ले गये । पूरा खर्चा उन्होने ही वहन किया ।

(ख) भारतवर्षीय दि जैन महासभा के वे अनेक वर्षो तक लगातार महामन्त्री रहे और उसका कार्यालय खुरई मे रहा । वह रूप अब नही रहा, उसमे अनेक बन्धन लगा दिये गये है, जिससे उसे पूरे जैनियो की प्रतिनिधि सभा कहना समझ के बाहर है ।

(ग) श्रीमन्त सेठ सा लगातार अ भा व तीर्थक्षेत्र कमेटी के सदस्य रहे ।

(घ) अपने समय मे सरकार की ओर से ये ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी रहे ।

(ड) म्युनिसिपल बोर्ड खुरई के अध्यक्ष तथा जैन और अजैन समाज के सर्वमान्य नेता थे ।

(च) वयोवृद्ध विद्वान् स्व. प हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री के सम्पर्क मे वे आये और दशलक्षण पर्व मे शास्त्रसभा मे प्रतिदिन उपस्थित रहकर उनसे धर्म का लाभ लिया । वैसे उस समय के जितने भी विद्वान् है, वे उनके आमन्त्रण पर खुरई अवश्य पधारे ।

(छ) वे सादा रहन-सहन के अत्यन्त पक्षपाती तो थे ही, उनका स्वयं भी सादा रहन-सहन था ।

(ज) वे कुशाग्र बुद्धि थे । शास्त्र सभा मे पुरानी परम्परा पसन्द करते थे । वे शास्त्रो के मुद्रण के अत्यन्त विरोधी थे । उनके द्वारा वि स १९६५ के शुभ दिन स्वर्णाक्षरो मे लिखवाये गये **तत्त्वार्थसूत्र, भक्तामर** और रइधू कविकृत **दशलक्षण धर्म जयमाल** अर्थ सहित उस मन्दिर मे अब भी विराजमान है ।

(झ) वे विधवा विवाह के तो अत्यन्त विरोधी थे । पर उनका विचार था कि विधवाएँ विधर्मियो के घर जाएँ इसके स्थान मे वे बिनैकाओ से सम्बन्ध बनाकर जैनी बनी रहे तो अच्छा है । समाज को समय के अनुसार व्यवस्था मे सहयोग करना चाहिये । ये सीतादेवी और राजुलदेवी के दिन नही है ।

जीवन परिचय

मूल मे सिघई नन्दलाल जी की पत्नी ने सिघई मथुरादास के साले के पुत्र बेलगवाँ निवासी श्री मोहनलाल जी को गोद लिया । गोद के समय इनका नाम मोहनलाल जी रखा गया । उसमे फेर-बदल नही किया गया । ये ही इस पीढी के अधिकारी हुए ।

ज्ञात पूर्वजो मे सिघई श्री मनोहरलाल जी से यह परम्परा चली । इनके तीन पुत्रो मे से छोटे पुत्र सि पतोलेलाल जी के पुत्रो मे से चौथे पुत्र किशनदास जी और उनके अपने तीन पुत्रो मे छोटे पुत्र सेठ सि. नन्दलाल जी के पश्चात् इस गद्दी के मालिक सेठ मथुरादास जी हुए। इनके देहावसान के पश्चात् सि. नन्दलाल जी की पत्नी ने सि मथुरादास जी के साले के पुत्र केलगवाँ निवासी श्री मोहनलाल जी को गोद लेकर इस गद्दी का मालिक बनाया । रायबहादुर श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी के देहावसान के पश्चात् उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सेठानी सोनाबाई ने सन् १९२९ मे अपने ज्येष्ठ भ्राता सिघई खुशालचन्द जी (जबलपुर) के द्वितीय पुत्र श्री फूलचन्द जी को गोद लिया। दत्तक विधि श्रीमान् प नरसिहदास जी कौन्देय ने कराई तदनुसार फूलचन्द का नाम बदल कर ऋषभकुमार घोषित किया । कृषिपण्डित श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार जी ने

भी अपनी धर्मपत्नी श्रीमती इन्द्रानी बहू के परामर्शानुसार सन् १९६८ मे अपने लघुभ्राता सि. पदमचन्द जी के सुपुत्र श्री धर्मेन्द्रकुमार जी को दत्तक पुत्र स्वीकार किया, जो वर्तमान समय मे इस गद्दी के उत्तराधिकारी है।

श्रीमन्त सेठ कृषिपंडित ऋषभकुमार जैन, खुरई

कृषिपडित
श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार जैन, खुरई

आपके पूर्वज श्रेष्ठिवर्य नन्दलाल जी सन् १७९८ में उत्तरप्रदेश के दैलवारा गॉव से आकर खुरई में बसे और यहॉ साहूकारी, कृषि कार्य तथा व्यापारिक कुशलता से सम्पत्ति अर्जित की। कालान्तर मे उन्होने अपनी जमीदारी बढ़ाई, जो म. प्र. और उत्तरप्रान्त मे फैली थी। इन्होने खुरई मे अपने निवास के पास एक नवीन विशाल जिनालय बनवाया और सन् १८३४ मे गजरथ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराया। समाज ने उन्हे सिघई पदवी से विभूषित किया। सन् १८३९ मे दूसरी बार गजरथ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराई और सन् १८६२ मे अपने जीवन की सान्ध्य बेला मे बड़े समारोह के साथ तीसरी बार पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराकर सेठ पदवी प्राप्त की। सन्१८६३ मे उनका स्वर्गवास ९५ वर्ष की आयु मे हो गया।

उनका उत्तराधिकार सेठ मथुरादास जी को प्राप्त हुआ, परन्तु वे अपने उत्तराधिकार को सम्हालने के सातवे वर्ष मे तीर्थयात्रा को गए और मैनपुरी मे उनका देहावसान हो गया। उनकी पत्नी ने अपने भाई के पुत्र मोहनलाल जी

को गोद ले लिया। मोहनलाल जी उस समय केवल सात वर्ष के थे। इसलिए सरकार ने उस सम्पति को कोर्ट आफ बोर्ड के नियत्रण मे दे दिया। बोर्ड ने मोहनलाल जी की अठारह वर्ष की आयु पूर्ण होने पर उन्हे आधिपत्य सौंप दिया।

सेठ घराने की ओर से जो विशाल मदिर बनवाया गया था, उसमे भगवान् पार्श्वनाथ की एक विशाल मूर्ति भी स्थापित की गई थी और उस निमित्त से सेठ मोहनलाल जी गजरथ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराना चाहते थे। इसी चर्चा के दौरान खुरई जैन समाज ने भी अपनी ओर से तथा उसी समय श्री कालूराम गनपतलाल गुरहा और श्री मोहनलाल जी राय सा रोंडा ने भी अपनी-अपनी ओर से गजरथ चलाने की भावना प्रगट की, अत चार गजरथ एक साथ सन् १८९३ मे विशाल स्तर पर अभूतपूर्व समारोह के साथ सम्पन्न हुए। सठ घराने की ओर से यह चौथी बार गजरथ प्रतिष्ठा थी, अत समाज ने इन्हे 'श्रीमन्त सेठ' की उपाधि से अलङ्कृत किया। अन्य दोनो प्रतिष्ठाकारकों को सिघई पदवी से विभूषित किया गया। श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी का सन् १९२६ म स्वर्गवास हो गया। तब उनकी पत्नी सेठानी सुखरानी बहू ने अपने भाई श्री सि खुशालचन्द जी जबलपुर वालो के पुत्र फूलचन्द जी को सन् १९२९ मे दत्तक पुत्र के रूप मे स्वीकार किया और इनका नाम ऋषभकुमार रखा गया। यह गोदनामा बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ।

सन् १९४५ मे ऋषभकुमारजी ने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपका विवाह भोपाल के श्री राजमलजी की सुपुत्री पुष्पाकुमारी के साथ १९४१ मे सम्पन्न हुआ। उस समय नबाब भोपाल अमीदुल्ला खॉ सा. ने वर-कन्या को अपना आर्शीवाद दिया तथा कीमती वस्त्रो से सिरोपाव किया।

सन् १९४६ मे कुरवाई स्टेट मे परवार समाज का अधिवेशन था, उसके अध्यक्ष पद पर श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार जी प्रतिष्ठित थे। उस समय कुरवाई स्टेट के नबाब ने इनका सम्मान किया था।

सन् १९५५ मे आपको भारत सरकार ने 'कृषिपडित' की उपाधि से सम्मानित किया तथा एक टेक्टर और सनद प्रदान की ।

सन् १९५७ मे ये कॉंग्रेस पार्टी से मध्यप्रदेश विधान सभा के विधायक (M. L. A) चुने गये । ये सागर विश्वविद्यालय के कोर्ट के निर्वाचित सदस्य रहे और कई वर्षो तक राज्यपाल द्वारा नामजद सदस्य रहे । सन् १९७५ से सन् १९८० तक खुरई नगरपालिका के अध्यक्ष रहे । आपने खुरई नगर के विकास मे समय-समय पर अपना आर्थिक योगदान दिया है ।

सन् १९८० मे अफ्रीका (नौगेबी) के जैन मन्दिर के पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मे भी आप सम्मिलित हुए थे तथा १९८४ मे इग्लैण्ड, अमेरिका आदि की विदेश यात्रा की है ।

खुरई गुरुकुल

सन् १९४४ मे श्री १०५ क्षु समन्तभद्रजी और श्री १०५ गणेश प्रसाद जी वर्णी तथा श्रीमान् प देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री कारजा द्वारा धार्मिक प्रेरणा पाकर शैक्षणिक विकास के हेतु पार्श्वनाथ दि जैन गुरुकुल की स्थापना हुई । इसके लिए श्रीमत सेठ ऋषभकुमारजी ने दस एकड भूमि प्रदान की तथा विशाल गुरुकुल भवन का अपनी ओर से निर्माण कराया और एक नवीन जैन मदिर की भी स्थापना की । इस गुरुकुल के छात्रावास का निर्माण सि गनपतलाल जी गुरहा की ओर से हुआ । इन्होने देवगढ़ तीर्थक्षेत्र मे एक जिन मदिर बनवाया और गजरथ पचकल्याणक प्रतिष्ठा भी बड़े समारोह पूर्वक करायी थी । श्री धन्नालाल जी सेठी, स्व सि श्रीनन्दनलालजी बीना तथा खुरई के अनेक श्रीमन्तो ने लाखो रुपयो का आर्थिक सहयोग देकर वर्तमान स्वरूप मे गुरुकुल को प्रतिष्ठित किया है । इसमे लगभग एक हजार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे है । सोनाबाई श्राविकाश्रम की स्थापना एवं संचालन तथा मंदिर जी की व्यवस्था के लिए छह मकान दान मे देकर उसका ट्रस्ट रजिस्टर्ड करा दिया है । देश के अन्य स्थानो, तीर्थों, मन्दिरो मे भी लाखो रुपयो का दान श्रीमन्त सेठ सा. ने दिया है ।

श्रीमन्त सेठ धर्मेन्द्रकुमारजी :

श्रीमन्त सेठ धर्मेन्द्र...

सन् १९६८ मे श्रीमंत सेठ ऋषभकुमारजी ने अपने छोटे भाई स्व सि पदमचन्द्रजी के द्वितीय पुत्र चि मजीवकुमार को गोद लिया और उनका नाम धर्मेन्द्रकुमार रखा। पुण्य प्रभाव से धर्मेन्द्रकुमारजी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है। श्रीमन्त सेठ धर्मेन्द्रकुमारजी अपने परम्परागत कृषिकार्य से हटकर आधुनिक उद्योगो की स्थापना मे प्रयत्नशील है। धार्मिक, उदार प्रवृत्ति के इस बालक मे समाज को बड़ी आशाएँ है।

भगवान् पार्श्वनाथ की सातिशय प्रतिमा

सन् १८९१ ई मे इस मूर्ति का जयपुर का एक मूर्तिकार बैलगाड़ी मे ले जा रहा था। खुरई आने पर स्व श्रीमन्त सेठ नन्दलाल जी की पत्नी तथा खुरई की समाज इस मनोज्ञ शुभ्रपाषाण की विशालकाय पद्मासन प्रतिमा के प्रति अति आकर्षित हुई। श्रीमन्त सेठ सा. मोहनलालजी ने मुँहमाँगे ग्यारह सौ कलदार मे प्रतिमा की निछावर की और मूर्तिकार को सिरोपाव किया।

बड़े बाबा की मूर्ति की प्रतिष्ठा श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी द्वारा गजरथ पञ्चकल्याणक पूर्वक करने का निश्चय जान सि. मोहनलालजी रौंड़ा तथा श्री कालूराम गनपतलाल गुरहा और खुरई जैन समाज ने भी पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा की इच्छा प्रकट की। तदनुसार गजरथ पूर्वक चार पञ्चकल्याणक महोत्सव एक साथ खुरई नगर मे हुए। यह समारोह इतिहास प्रसिद्ध माना
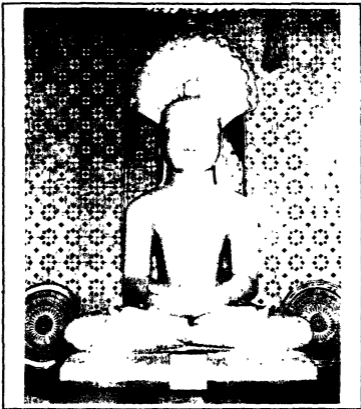
भगवान् पार्श्वनाथ (बड़े बाबा) की सातिशय मूर्ति

जाता है। इस तरह बड़े बाबा की मूर्ति प्रतिष्ठित हुई, जिसकी प्रतिष्ठापना के एक सौ वर्ष पूरे हो गये है।

श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्दजी, विदिशा

स्व. श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द जी का जन्म २ जुलाई सन् १८९२ को हुआ था। जब वे पॉच वर्ष के ही थे कि उन्हे उनके मौसा सेठ सिताबराय जी ने दत्तक पुत्र के रूप मे गोद ले लिया था। सेठ सिताबराय जी प्रकृति से उदार

श्रीमन्त मेठ लक्ष्मीचन्दजी, विदिशा

और दानशील थे। वही गुण श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द जी ने भी अपना लिये थे। इनके जीवन के कार्य अगणित है।

उन्हे श्रीमन्त की उपाधि इटारसी के दि जैन परिषद् के अधिवेशन मे दी गई थी। उस समय उन्होंने डॉ. हीरालाल जी तथा बैरिस्टर जमनाप्रसाद जी के प्रस्ताव व प जगन्मोहनलाल शास्त्री कटनी के समर्थन पर रु ११०००/- के दान की घोषणा की थी और कहा था कि **षट्खण्डागम** धवला के सम्पादन-अनुवाद के साथ प्रकाशन में यह राशि खर्च की जाय। यह देख वहाँ उपस्थित समाज ने उन्हे 'श्रीमन्त' उपाधि से विभूषित किया था। पश्चात् षट्खण्डागम का खण्डश प्रकाशन उनकी ओर से होता रहा। तत्पश्चात् वह सब जैन सस्कृति सरक्षक सघ, शोलापुर को सौप दिया। उनका जीवन अत्यन्त सादा और सरल था। स्वय विदिशा में उनके द्वारा दिये गये दान से सचालित मस्थाओ के लिये उन्होंने सन् १९३५ मे एक ट्रस्ट की स्थापना की थी। उसका नाम है 'श्रीमन्त दानवीर सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द जैन पारमार्थिक सस्थाओ का ट्रस्ट बोर्ड'। उसके अन्तर्गत उनके द्वारा स्थापित जिन सस्थाओ का सचालन होता है, वे इस प्रकार है—

(क) जैन मन्दिर, धर्मशाला और सिद्धान्त-ग्रन्थ प्रकाशन।

(ख) शिक्षा सस्थाएँ और छात्रवृत्ति कोष आदि।

(ग) चिकित्सा सस्थाएँ।

(घ) पुरातत्त्व, कला और पुस्तकालय आदि।

(क) इस विभाग के अन्तर्गत धार्मिक सस्थाओ मे श्री जैन मन्दिर और धर्मशाला है, साथ ही **षट्खण्डागम** का अनुवाद-सम्पादन होकर १६ भागो मे प्रकाशित हुआ है। अब वह दूसरी बार जीवराज ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो रहा है। उसका सम्पादन और सशोधन मुख्य रूप से प. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ने किया है।

(ख) इस विभाग के अन्तर्गत डिग्री कालेज, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, श्री शीतलनाथ जैन माध्यमिक विद्यालय, उच्चतर माध्यमिक कन्या विद्यालय, बडजात्या शिशु मन्दिर और मातेश्वरी शक्करबाई छात्रवृत्ति कोष— ये सस्थाएँ चालू है।

(ग) इस विभाग के अन्तर्गत आयुर्वेदिक पद्धति से शुद्ध औषधियो का निर्माण कराकर रोगियो को औषधियाँ दी जाती है।

(घ) इस विभाग के अन्तर्गत पुस्तकालय एव पत्र कक्ष, त्रिशला छात्रावास, श्री महावीर पुरातत्त्व सग्रहालय एव वर्धमान सगीत महाविद्यालय है।

यह श्रीमन्त सेठ जी के सम्यक् अध्यवसाय, मानव प्रेम, उदारचरित और उदात्त आत्मा का फल है, जो इनके द्वारा धर्मोपयोगी और लोकहित मे ये काम हो सके।

उन्हे मध्यभारत के तत्कालीन मुख्यमत्री बाबू तख्तमल जी वकील और श्री रामसहाय जी का सहयोग मिला हुआ था। ये दोनो सेठ जी के परामर्शदाता और सहयोगी थे। बाबू नन्दकिशोर जी एडवोकेट ट्रस्ट के सुयोग्य मन्त्री थे।

श्रीमन्त सेठ जी के सुयोग्य सुपुत्र श्री राजेन्द्रकुमार जी है। वे उनके द्वारा स्थापित संस्थाओ को यथासम्भव योग्य रीति से चला रहे है।

आज श्रीमन्त सेठ सा. तो हमारे सामने नही हैं, परन्तु उनका यश सदा जीवित रहेगा।

कुछ वर्ष पूर्व एक माह तक स्वाध्याय की परम्परा चालू थी। उसमे भाग लेने का मुझे अवसर मिला था। एक बार रात्रि सभा मे मैंने कहा था कि आप लोग तो अपने हित मे स्वाध्याय के लिये हम लोगो को बुला लेते हो। आपके इन बच्चो ने क्या अपराध किया है जो आप लोग इनके जीवन मे धार्मिकता का सचार करने की ओर कोई ध्यान नही देते। क्या इन्हे धर्म की आवश्यकता नही है जो इनके प्रति आप लोग उपेक्षा रखते है। यह सुनकर समाज ने विचार किया कि इन बच्चो के लिये एक पाठशाला की स्थापना की जाय और उसमे स्थानीय समाज योगदान करे। तदनन्तर समाज ने चन्दा लिखाना प्रारम्भ किया। उस समय श्रीमन्त सेठ जी मौजूद थे। उन्होने कहा कि हम आधा भार उठावेगे।

कुछ दिनो पूर्व तक पाठशाला चालू थी और उसकी उन्नति होती रही है। आशा है वह यथावत् चालू होगी। इस प्रकार हम देखते है कि विदिशा मे जो भी धार्मिक कार्य होते है, उनमे श्रीमन्त सेठ सा. और उनके परिवार का सदा ही योगदान रहा है और रहता है।

सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी, बमराना

समाज के जिन लोगो को सामाजिक गतिविधियों का कुछ भी परिचय है, वे भली भाँति यह जानते है कि बुन्देलखण्ड प्रान्त मे श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी खुरई, श्रीमन्त सेठ मथुरादास जी टड़ैया ललितपुर और श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी बमराना का समाज मे अत्यधिक बोलवाला था। ये तीनो श्रीमन्त अपने काल मे समाज के सिरमौर थे और समाज के हित मे सोचते-विचारते तथा उसकी गतिविधियों में भाग लेते रहते थे।

इनमें से स्व. श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी के हृदय में धार्मिक शिक्षा के प्रति इतना अगाध प्रेम और आदर था कि उन्होने मिडिल पास स्व. पं.

घनश्यामदास जी को अपने खर्चे से भेजकर संस्कृत और धर्म की उच्च शिक्षा दिलाई तथा शिक्षाकाल मे उनके घर का भार स्वय ही वहन किया ।

स्व प मनोहरलाल जी के बाद स्व मान्य प. घनश्यामदास जी ने इन्दौर महाविद्यालय की प्रधान अध्यापकी का भार वहन किया । किसी कारण से इन्दौर महाविद्यालय के सस्थापक स्व. सरसेठ हुकुमचन्द जी का स्व. पण्डित जी के साथ मतभेद होने पर वे महाविद्यालय छोड़कर अपने ग्राम महरौनी चले आये ।

इसका पता लगने पर स्व. सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी ने सादूमल मे नई पाठशाला खोलकर उन्हे प्रधान अध्यापक बना दिया । साथ ही उन्होने व्याकरण और साहित्य के पढ़ाने के लिये दूसरे अध्यापक की नियुक्ति कर दी । इतना ही नही उन्होने इग्लिश का ज्ञान छात्रो को मिल सके इसके लिये एक अन्य मास्टर भी की नियुक्ति कर दी ।

पाठशाला तो स्थापित हो गई पर विद्यार्थियो की कमी देखकर उन्होने गॉव-गॉव भेजकर छात्रो को इकट्ठा किया । स्व. सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी ललितपुर जाते समय हमारे गॉव सिलावन मे पूजन और भोजन के लिये रुकते थे । हमे भी उनकी प्रेरणा से उनके द्वारा खोली गई पाठशाला मे मध्यमा तक अध्ययन करने का अवसर मिला । भोजन नि शुल्क मिलता था । फल-फूल व शाक उनके बगीचे से आ जाती थी । वे स्वय ही इस बात की खबर रखते थे ।

वे उस समय परवार सभा के प्रथम अध्यक्ष थे । परवार सभा का प्रथम अधिवेशन रामटेक मे हुआ था । उनके सभापतित्व काल मे इस सभा ने कई महत्त्वपूर्ण कार्य किये है । उसका कोष अब भी सुरक्षित है ।

बुन्देलखण्ड मे बेगार प्रथा को समाप्त करने का श्रेय उन्ही सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी को प्राप्त है । पिछले महायुद्ध मे उन्होने भारतीय सरकार को साफ कह दिया कि हम जैन है, हम रगरूट भर्ती करने मे सहयोग नही कर सकते । इस पर सरकार ने बुरा नही माना, प्रत्युत उनकी प्रशंसा की । इस समय भी सादूमल विद्यालय अपना काम सुचारु रूप से चला रहा है, जबकि कई संस्थाएँ एक-एक कर बन्द होती जा रही हैं ।

यह बुन्देलखण्ड की भूमि का प्रताप है कि वहाँ दूसरे प्रान्तो की अपेक्षा धार्मिकता अधिक दिखाई देती है । वहा के भाई व बहिने अब भी अपना सादगी का जीवन व्यतीत करते है ।

मान्य स्व सेठ सा तो अपने काल मे ऐसे महापुरुष हो गये है, जिनका गुणगान करना हमारी शक्ति के बाहर है । वे पूरे बुन्देलखण्ड को एक रूप देखना चाहते थे । इसीलिये उन्होंने सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरि के वार्षिक मेले पर बुन्देलखण्ड मे बसने वाले परवार, गोलापूर्व और गोलालारे— इन तीनो समाजो के विकास के लिये बीडा उठाया था और एक ऐसी प्रान्तीय महासभा का आयोजन किया था जो मिलकर एक मन्त्रणा मे बँध जाये, परन्तु यह समाज का दुर्भाग्य है कि वह योजना सफल न हो सकी ।

वे प्राय माह-दो माह मे पाठशाला मे पढने वाले छात्रों का निमन्त्रण कर उनको भोजन कराते थे । वे प्राय अपनी पत्नी से कहा करते थे कि "तुम एक-दो लडको की सोचती हो कि यदि हमारे लडके होते तो इस खानदान की परम्परा चलती रहती । पर ये कितने लडके है, गिनो और इन्हे योग्य बना दो । यही हमारा खानदान है । ये पढ़ जायेगे तो हमारा और तुम्हारा नाम रोशन करेगे । यदि लड़के हो भी जायेगे तो कैसे निकलेगे, यह सोचा ? अत लड़के न होने की बात को भूल जाओ और इनकी सम्हाल करो । यही हमारा खानदान है ।"

अन्त मे उन्होने स्वय आगे आकर हमे और प. किशोरीलाल जी को मोरेना भेज दिया । श्री प हीरालाल जी ने इन्दौर जाना पसन्द किया तो उन्हे इन्दौर भेज दिया और कह दिया कि विद्वान् बन समाज की सेवा करना, समाजसेवा मे अपने को खपा देना ।

हम मोरेना गये, परन्तु वहाँ का जीवन हमे अच्छा न लगा तो वापिस सादूमल चले आये । उस समय सेठजी ने खटिया पकड़ ली थी । हम उनके सामने प्राय आ जाते थे । एक-दो दिन तो वे चुप रहे, अन्त मे मालूम पड़ने पर उन्होने अपने खर्च से पुन मोरेना भिजवा दिया ।

कहने लगे मरना-जीना तो लगा रहता है, यह ससार की परिपाटी है । हमारे पीछे इनका जीवन क्यो खराब किया जाये ।

वे अपनी जमीदारी का बहु भाग और ललितपुर के तीन मकान साढूमल पाठशाला को ट्रस्ट के द्वारा समर्पित कर सन् १९२० मे इहलीला समाप्त कर स्वर्गवासी हो गये। धन्य है उनका जीवन जो समाज के लिये जिये और समर्पितभाव से सेवा करते हुये देवलोकवासी हुए। ऐसे महापुरुष ही समाज के हित में सोचते है और समाज के हित मे अपना जीवन खपा देते है। वे अपने सुख-दु ख को समाज के हित मे भूल जाते है।

आज वे जीवित नही है पर उनका यशःशरीर जीवित है। उसकी खुशबू से समाज सदा ही अनुप्राणित होता रहेगा।

सवाई सिंघई कन्हैयालाल गिरधारीलाल जैन, कटनी

कटनी (म प्र.) निवासी सवाई सिघई कन्हैयालाल जी आदि पॉच भाई थे। इनमे बड़े भाई स सि कन्हैयालाल जी थे। इनके पूर्वज श्री बहोरनजी सपरिवार अठारहवी सदी मे सतारा (पूना) महाराष्ट्र से म प्र मे आये थे। सागर मे भौसलो (मराठो) का राज्य था, इस कारण जवाहिरात का व्यापार करते हुए ये उसी व्यापार के निमित्त आये थे।
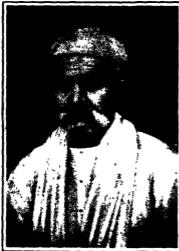
स सि. कन्हैयालालजी जैन

सर्वप्रथम उन्होने दमोह (म. प्र.) को अपना निवास स्थल बनाया। यहाँ १३वी शताब्दी का एक जैन मन्दिर था, जो जीर्ण हो गया था, उसका नवीनीकरण किया और सवत् १८१४ मे उसे पूर्णकर पचमेरु तथा जिनप्रतिमाओ की प्रतिष्ठा की। साथ ही गजरथ पञ्चकल्याणक महोत्सव किया। इस कारण समाज द्वारा उन्हे सिघई पदवी प्रदान की गई। सवत् १९०० मे हर्रा का जगली

ठेका लिया, इस निमित्त उन्होंने तेवरी ग्राम (जबलपुर) मे निवास किया और यहाँ अपने मूल निवास की पद्धति के अनुसार एक गुजराती जिन- मन्दिर बनवाया। इसके पश्चात् व्यापार निमित्त कटनी मे आकर स्थाई तौर पर बस गये। कपडे का व्यापार किया, उसमे अच्छी सफलता प्राप्त की। यहाँ भी एक शिखर बन्द जिनमन्दिर बनवाया और उसकी गजरथ पचकल्याणक प्रतिष्ठा वि सवत् १९४५ मे की। इस उपलक्ष्य मे समाज द्वारा उन्हे सवाई सिघई की पदवी दी गई। यह जिनमन्दिर मूल नामक चन्द्रप्रभु भगवान् के नाम पर है और उनके उत्तराधिकारी स सि धन्यकुमार जी, अभयकुमार जी और जयकुमार जी उसका सरक्षण करते है।

श्री चन्द्रप्रभ दि जैन मंदिर, कटनी

स सि. कन्हैयालाल जी के अन्य चार लघुभ्राताओ मे स सि गिरधारीलाल जी, रतनचन्द जी, दरबारीलाल जी और परमानन्द जी थे, जो क्रमशः दिवगत हो गये। इनमे श्री रतनचन्द्र जी के स. सि अभयकुमार जी और स. सि

जयकुमार जी— ये दो सुपुत्र है तथा श्री दरबारीलाल जी के सुपुत्र स सि धन्यकुमार जी थे, जो ज्येष्ठ थे । शेष तीनो के उत्तराधिकारी पुत्र नही है ।

इस परिवार द्वारा जैनधर्म की शिक्षा के लिये भी दान राशि निकाली गई । उन्हे यह प्रेरणा श्रीमान् प जगन्मोहनलालजी शास्त्री के पिता श्री ब्रह्मचारी गोकुलप्रसाद जी, जो सि जी के मौसेरे भाई थे, से तथा पूज्य श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी से समय-समय पर प्राप्त हुई । स्वय ही सभी भाई परस्पर अत्यन्त सौहार्द से रहते थे तथा उदार प्रवृत्ति के थे । वर्तमान मे उत्तराधिकारी भाई भी अपने परिवार के अनुगामी, उदारशील व धर्मनिष्ठ है ।

इनके दान स्वरूप तीन ट्रस्ट सस्थापित है—

१ स सि कन्हैयालाल रतनचन्द्र जैन शिक्षा ट्रस्ट

२ स सि धन्यकुमार अभयकुमार जैन शिक्षा ट्रस्ट

३ स सि कन्हैयालाल गिरधारीलाल जैन धर्मार्थ औषधालय ट्रस्ट ।

दोनो शिक्षा ट्रस्टो की सम्पत्ति नगदी ढाई लाख बैको मे जमा है, जिसके ब्याज का उपयोग कटनी जैन छात्रालय तथा धार्मिक शिक्षा देने वाली जयपुर, सागर, कारजा, बाहुबली, मोरेना, काशी आदि जैन सस्थाओ को सहायता के रूप मे प्रतिवर्ष किया जाता है । स सि कन्हैयालाल जी के द्वितीय भाई स सि गिरधारीलाल जी थे, जो सबसे पहिले ही दिवगत हो गये थे । उनकी एकमात्र कन्या कस्तूरीबाई थी, जो जबलपुर ब्याही थी । कालान्तर मे वे विधवा हो गयी । उन्होने आचार्य शान्तिसागर जी से व्रत लेकर व्रती जीवन बिताया और अपनी ओर से जैन छात्रालय जबलपुर के अहाते मे छात्रो के धार्मिक सस्कारो हेतु एक विशाल जिनमन्दिर बनवाकर पचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई और अन्त मे अपनी सम्पत्ति उसी मन्दिर को दान कर समाधिपूर्वक मरण किया ।[१]

स सि कन्हैयालाल गिरधारीलाल जैन धर्मार्थ औषधालय ट्रस्ट भी सचालित है, इसमे कृषि भूमि है, जो करीब पॉच लाख की कीमत की है । भूमि लगभग १६० एकड़ है ।

इनके यहॉ से जीवन भर गरीबो को प्रतिदिन अन्नदान होता रहा ।

---

१. ब्र. कस्तरीबाई का विस्तत परिचय पष्ठ २३३ पर द्रष्टव्य है ।

स सि. कन्हैयालाल जी की पॉच कन्याएँ है, उत्तराधिकारी पुत्र का अभाव है । इन्होने अपने हिस्से की जमा सम्पत्ति जो आज बीस लाख की है, का वसीयतनामा कर दिया । जिसका उद्देश्य अपने परिवार के जो भी सन्तान-दरसन्तान तथा अन्य कुटुम्बी भाई व उनकी सन्ताने, कन्याओ और उनकी सन्ताने तथा अन्य गरीब जैन परिवार के लोग आर्थिक रूप से कमजोर हो जाये तो उनकी आजीविका, बच्चो की शिक्षा तथा इलाज मे सर्वप्रथम खर्च करना है, जो किया जाता है । साथ ही उनके द्वारा स्थापित जैन मन्दिरो, औषधालय आदि सस्थाओ तथा अन्य सस्थाओ मे व्यय करना भी इस ट्रस्ट का उद्देश्य है । इन उद्देश्यो का पालन उनकी सम्पत्ति के आधार पर परिवार के सदस्यों के साथ ही अन्य सदस्य भी करते है ।

इनके छोटे भाई परमानन्द कोमलचन्द जी की ओर से जैन शिक्षा सस्था के अन्तर्गत श्री परमानन्द कोमलचन्द जैन आयुर्वेद विद्यालय भी चलता है, जिसमे सस्कृत विभाग के छात्रो को आयुर्वेद के शिक्षण की भी व्यवस्था है ।

इसके अलावा राष्ट्रीय आन्दोलन मे प्लेग, हैजा, महामारी, लाल बुखार आदि महाबीमारियॉं जब विभिन्न प्रान्तो मे फैली, तब उनसे पीड़ितो की सेवा मे भी उक्त सिघई जी ने केवल मन से ही नही, किन्तु तन व धन से भी घर-घर जा-जाकर उनकी सहायता की थी ।

इनकी सेवाओ से प्रभावित नगर की जनता ने इन्हे नगरपालिका का सदस्य तथा उपाध्यक्ष भी चुना था । उत्तराधिकारी स सि धन्यकुमार जी सार्वजनिक जैन सस्थाओ से भी जुड़े रहे । नगरपालिका के अनेक वर्षों तक उपाध्यक्ष थे, अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महासमिति के मध्यप्रदेश के अध्यक्ष थे, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा, श्री गणेश वर्णी दि. जैन सस्थान (वाराणसी) एव दिगम्बर जैन सघ मथुरा के अनेक वर्षो तक अध्यक्ष रहे । महावीर ट्रस्ट के उपाध्यक्ष तथा अनेक सस्थाओ के आजीवन सदस्य तथा ट्रस्टी रहे है ।

इन सभी भाइयों के सुपुत्र भी अपने काम-धन्धे के अतिरिक्त उक्त दान के ट्रस्टो की साज-सम्हाल करते है । उक्त सस्थाओं को मुक्त हस्त से दान भी दिया है ।

सुप्रसिद्ध धर्मनिष्ठ दानी परिवार की धार्मिक एव सामाजिक सेवाओ से परवार जाति की प्रतिष्ठा बढ़ी है तथा जैनेतर समाज को भी लाभ मिला है और मिल रहा है । साथ ही अखिल दिगम्बर जैन समाज इनकी सेवाओ से गौरवान्वित है ।

स.सिं. धन्यकुमार जैन, कटनी

आपके पिताजी पॉच भाई थे, जिनका परिचय 'स सि कन्हैयालाल गिरधारीलाल जैन, कटनी' शीर्षक के अन्तर्गत दिया जा चुका है। उन पॉचो भाइयो मे चौथे भाई दरबारीलाल जी थे, जो स सि धन्यकुमार जी के पिताजी थे । वे थोक कपड़े के व्यापारी थे । कटनी मे उनकी दुकान स सि कन्हैयालाल गिरधारीलाल के नाम से प्रख्यात थी । श्री दरबारीलालजी एक कुशल निष्णात व्यापारी थे। परिवार की आर्थिक उन्नति मे उनका बड़ा योगदान था । स. सि. धन्यकुमार जी की बहिन सुन्दरबाई थी, जो कवयित्री थी । वे सामाजिक, साहित्यिक और राष्ट्रीय कविताओ को सहज और सरल रूप मे लिखने मे निपुण थी । उनकी लिखी हुई एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है, जिसका नाम **पीयूष कलश** है ।

स सि धन्यकुमार जैन, कटनी

सिं धन्यकुमार जी की प्रारम्भिक शिक्षा जैन शिक्षा सस्था कटनी के माध्यम से हुई । प्राथमिक शिक्षा के सिवाय सस्कृत मे व्याकरण प्रथमा, जैनन्याय प्रथमा तथा धर्म मे विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की । साथ ही प्राइवेट रूप से अग्रेजी भाषा मे दक्षता प्राप्त की और परीक्षाएँ दी । अपने पिता और उनके समस्त भाइयो के दिवगत होने के बाद सम्पूर्ण कुटुम्ब का कार्यभार इनके ऊपर पर आ गया, जिसका इन्होने बहुत साहस के साथ निर्वाह किया । इनके दो चचेरे भाई है, जिनका नाम श्री अभयकुमार जी और जयकुमार जी है । जयकुमार जी अनेक वर्षो से कटनी जैन पचायत के अध्यक्ष है तथा अपनी धार्मिक योग्यता के कारण मन्दिर मे रात्रि मे नियमित प्रवचन भी करते है । दोनो भाई अपनी कुल परम्परा के अनुसार जिनेन्द्र-पूजन, दर्शन और स्वाध्याय तथा त्यागी-व्रतियो की सेवा और समाज के कार्यो मे तथा सामाजिक सस्थाओ की समुन्नति मे अपना योगदान करते है ।

सि धन्यकुमार जी करीब २५ वर्षो तक जैन शिक्षा सस्था के अध्यक्ष रहे तथा आजीवन अनेक ट्रस्टो के मैनेजिग ट्रस्टी रहे है ।

इनकी धर्म व समाजसेवा की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियो का उल्लेख इस प्रकार है—

१. अपने व परिवार के द्वारा निर्मित जिन मन्दिरो की सेवा-सम्हाल और व्यवस्था मे योगदान ।

२ अपने पूर्वजो द्वारा स्थापित स. सि कन्हैयालाल गिरधारीलाल दि. जैन धर्मार्थ औषधालय का सचालन ।

३ अखिल भारतवर्षीय दि जैन परवार सभा के गत ३० वर्षो से जीवन पर्यन्त अध्यक्ष रहे है ।

४ सन् १९३९ से १९४४ तक परवार सभा के मासिक मुखपत्र **परवार बन्धु** का सम्पादन ।

५ सन् १९३९ मे **परवार बन्धु** का एक राष्ट्रीय विशेषांक निकाला, जिसकी सराहना अपनी सम्मति द्वारा महात्मा गांधी तथा श्री सुभाषचन्द्र बोस द्वारा की गई ।

६. प्रस्तुत परवार जैन समाज के इतिहास के लिखाने मे प्रेरणा और बहुमूल्य योगदान दिया।

७. आपके परिवार के द्वारा धर्मार्थ ट्रस्ट चालू है, जिनके संचालन मे आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन सभी ट्रस्टो की सम्पत्ति लगभग तीस-पैतीस लाख रुपये की है।

८. अभी हाल मे ही आपने अपने पारिवारिक ट्रस्ट की ओर से पॉच लाख रुपयो का दान कटनी के अस्पताल के लिये दिया था। साथ ही जैन धर्मशाला के निर्माण मे एक लाख रुपये ट्रस्ट की ओर से और इकतीस हजार रुपये स्वय की ओर से दिये थे।

९ भारतवर्षीय दि जैन मध्याञ्चल महासमिति के अनेक वर्षो तक अध्यक्ष रहे है।

१० आप स्थानीय नगरपालिका के आठ वर्षो तक सदस्य और चार वर्षो तक उपाध्यक्ष रहे है। आपके कार्यकाल मे नगरपालिका की समस्त शिक्षा सस्थाओ का कार्यभार आपके ऊपर था। अतः आपने कन्याओ के लिये हाईस्कूल तथा गर्ल्स,कालेज की स्थापना तथा कक्षाओ मे नैतिक शिक्षा का प्रयोग प्रारम्भ किया। आपने नगर की मूल आवश्यकता जलप्रदाय योजना को भी कार्यान्वित किया।

११. आप भारतवर्षीय दि. जैन सघ मथुरा के पॉच वर्षो तक अध्यक्ष और जीवन पर्यन्त सदस्य रहे है। इसी प्रकार श्री गणेश वर्णी दि. जैन शोध संस्थान, वाराणसी के भी पूर्व मे अनेक वर्षो तक अध्यक्ष और सदस्य रहे है तथा वर्तमान में उसके अध्यक्ष थे और सचालन मे पूरा योगदान देते रहे है।

१२. सामाजिक और साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओ मे आपके लेख निकलते रहे हैं। आप भाषण कला मे भी निपुण थे।

आपने अपने जीवनकाल मे धर्म व समाज की अपूर्व सेवा की है जो चिरस्मरणीय रहेगी।

सिं. नाथूराम बब्बा, बीना

बीना-इटावा मे बब्बा सि. नाथूराम जी बड़े दानी पुरुष हो गये है। इन्हे गॉव के सब भाई-बहिने 'बब्बा' नाम से पुकारते थे। इन्होने गजरथ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराई थी। बीना-इटावा मे जो पाठशाला चालू है, उसे इन्होने दुरदुरी गॉव की जमीदारी लगा दी थी। उस कारण बीना पाठशाला को कभी भी चन्दा के लिये उपदेशक नही रखना पड़ा। पाठशाला के लिये उनका स्वय और स्व मान्य सिघई परमानन्द जी का पूरा सहयोग मिला हुआ था। उन दोनो ने कुछ मकान व दुकाने पाठशाला के लिये दान स्वरूप दे दी थी, जो अब पाठशाला के अधिकार मे है।

पहिले हमने स्वय बीना पाठशाला मे अध्यापन का कार्यभार सम्हाला है। मैने देखा कि जो बाहर से त्यागी पण्डित आते थे वे नियम से सिघई परमानन्द जी के अतिथि हो जाते थे। उनके मार्ग-व्यय आदि की व्यवस्था वे स्वय किया करते थे। सिघई बब्बा नाथूराम जी के कोई सन्तान नही थी, इसलिये उन्होने एक लडके को गोद लिया था। लड़के का जन्म का नाम गोरेलाल था। इसका जन्म सन् १९०१ मे हुआ था। गोद के समय नाम श्रीनन्दनलाल रखा गया। गोद का दस्तूर सन् १९१० मे हुआ था।

सिंघई श्रीनन्दनलाल जैन ·

गोद मे आये सिघई श्रीनन्दनलाल जी धार्मिक प्रकृति के महानुभाव थे। इन्होने भी अपनी पत्नी का वियोग होने पर उनके नाम से सन् १९५१ मे २५००० =०० रुपयो से छात्रवृत्ति कोष की स्थापना की थी।

बब्बा नाथूराम जी ने बीना-इटावा के जैन मन्दिर मे जो वेदी बनवाई थी, उसमे उन्होने फर्श लगवाया और चित्रो से वेदी को सुसज्जित किया तथा उसे नया रूप दिया।

सि श्रीनन्दनलाल जैन

सन् १९५९ मे अपनी मौरुसी जमीन मे से १७५ एकड़ जमीन इसी कोष मे दानस्वरूप दे दी । जो जमीन बेची उससे प्राप्त हुआ रुपया भी इसी कोष मे जमा करा दिया । वह सब रकम बैक मे जमा है । इस कोष की वर्तमान आय रु १५०००/- वार्षिक है । सिघई जी ने अपने नाम से कोई स्थायी काम नही किया । जो किया सब कुटुम्बके नाम से किया । बीना स्टेशन के समीप इन्होने एक चैत्यालय और एक धर्मशाला का निर्माण कराया है । उसका लाभ बीना स्टेशन पर रुकने वाले यात्रियो को मिलता रहता है ।

श्रीमती रुक्मणीबाई,
धर्मपत्नी सिं. श्रीनन्दनलाल जैन

खुरई मे कुछ वर्ष पूर्व एक गुरुकुल की स्थापना हुई थी । गुरुकुल का नाम दि जैन पार्श्वनाथ गुरुकुल है । सिघई जी उसे पहले भी दान दे चुके हैं । बाद मे लाखनखेड़ा की अपनी मौरुसी ८० एकड़ जमीन उक्त गुरुकुल को दान मे दे दी । उससे संस्था को साल भर मे ३०० बोरा गल्ला मिल जाता था । वर्तमान मे संस्था खुद काश्त कराने लगी है । उससे ३०० के स्थान में ४५० बोरा गल्ला संस्था को मिल जाता है । उससे छात्रावास के छात्रो की भोजन-व्यवस्था बहुत अच्छी तरह से चलने लगी है ।

सिघई राजकुमार जैन

श्रीमती चन्दाबाई जैन

गुरुकुल मे एक चैत्यालय है। उसके सामने जो मानस्तम्भ बनाया गया है, उस पर ऊपर चढ़ने के लिये २५००/- रुपयों का दान दिया। गुरुकुल की जो सञ्चालक समिति है उसके अपने जीवन काल तक अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहे। मथुरा सघ के भी दो बार अध्यक्ष चुने गये।

उनका दान बहुत है। तीर्थक्षेत्रो और सस्थाओ को उनकी ओर से जो दान दिया गया उसकी आय ५०,००० रुपये सालाना के आसपास होगी।

वे अब नही है, पर उनके द्वारा दिये गये दान से समाज और धर्म को जो लाभ हुआ वह उनकी कीर्ति को सदा अक्षुण्ण बनाये रखेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

सिंघई राजेशकुमार जैन

सिंघई राजकुमार जैन :

उनके एक पुत्र श्री राजकुमार जी थे और दो पुत्रियाँ है, जो सागर और जबलपुर ब्याही गई है। पुत्र राजकुमार का तो अब देहावसान हो गया है। उनके जो दो पुत्र है वे ही घर की पूरी सम्हाल करते है। उन दोनो पुत्रो की माता स सि धन्यकुमार जी की सुपुत्री है, जो मातृत्व का निर्वाह करती हुई सुपुत्रो के कार्य सञ्चालन मे सहयोग करती रहती है।

जबलपुर समाज के गौरव

स. सिं. गरीबदास जैन

जबलपुर मध्यप्रदेश का सुप्रसिद्ध नगर है। यहाँ लगभग १५०० घर जैन समाज के है। अपने काल मे पूरे समाज के नेता स सि गरीबदास जी सुप्रसिद्ध महापुरुष हो गये है। उनकी फर्म उनके काल मे 'मोहनलाल पचौ-लीलाल' के नाम से प्रसिद्ध थी। स सि गरीबदास जी वृद्धावस्था मे भी प्रभावशाली तेजस्वी पुरुष थे।
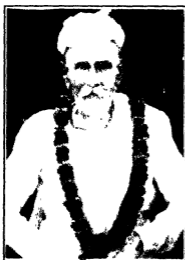
स सि गरीबदास जैन

समस्त जैन समाज मे एकता और सदाचारस्वरूप सुसस्कृति कायम रखने का इनमे सबसे बडा गुण था। जहाँ प्रदेश के छोटे-छोटे ग्रामो व नगरो मे समाज की दो बडे, तीन बडे पाई जाती है, वहाँ इतने बडे नगर मे इतनी बडी जैन समाज को साथ लेकर चलना तथा उसकी समस्याओ को सुलझाना, यह विशेषता उनमे थी।

बालक-बालिकाओं के विवाह मे गरीब-अमीर का भेद न दिखाई दे, इस हेतु सबके यहाँ स्वयं समाज के १००-५० सज्जनो को लेकर पहुँचते थे। ये जेवनार के समय केवल पानी-सुपारी लेकर कन्यापक्ष और वरपक्ष वालो के सभी रीति-रिवाज सरलता से सुलझाकर निपटा देते थे।

उनके समय मे नगर मे करीब तीन लाख जनसख्या थी। इस समय पन्द्रह लाख जनसख्या होगी। उस समय भी अनेक जातियो का वह निवास केन्द्र था। सभी समाजो की अपनी-अपनी पचायते थी। तथापि सभी समाजे स. सि. गरीबदास जी को अपने यहाँ बुलाती थी और उनके पहुँचने पर अपना गौरव मानती थी।

उस नगर के कॉंग्रेसी नेता और हिन्दी भाषा के पक्षधर सेठ गोविन्ददास जी एक प्रसिद्ध पुरुष हो गये है। उनके परिवार के विभक्त होते समय जायदाद के बँटवारे के लिये स सि. गरीबदास जी ही काम आये। उनकी राय से ही इतने बड़े घराने का बँटवारा हो सका। उनके रिश्तेदार बहुत थे, पर बँटवारे के समय उनको नही बुलाया गया। स. सि गरीबदास जी के जिम्मे बँटवारे का काम सुपुर्द किया गया। उन्होने भी ऐसे विवेक से बँटवारा किया जिससे परिवार के सब भाई-बहिन प्रसन्न हुए। सबको लगा कि हमारे साथ न्याय किया गया है।

जबलपुर नगर मे अनेक विशाल जैन मन्दिर है। उनकी पूरी देख-रेख अपने-अपने मन्दिर के अधिकारी समाज से मिलकर करते है। कभी कोई समस्या उत्पन्न हो जाती तो स. सि. गरीबदासजी की राय से ही वह समस्या सुलझा ली जाती थी। आस-पास के ग्रामो के जिन-मन्दिरो की सम्हाल मे भी पचायत के साथ वे सदा ध्यान देते रहते थे। छात्रालयो की स्थापना मे भी वे योगदान देते रहते थे। जबलपुर की जैन समाज अपने इस अनूठे नेता की सेवाओ को कभी भी विस्मृत नही कर सकती।

सेठ भागचन्दजी, डोंगरगढ़

छत्तीसगढ़ क्षेत्र के अन्तर्गत डोगरगढ़ के सुप्रसिद्ध रईस सेठ भागचन्द जी सा. अत्यन्त उदार, सरल और धार्मिक व्यक्ति थे। विद्वानो के प्रति उनका अटूट
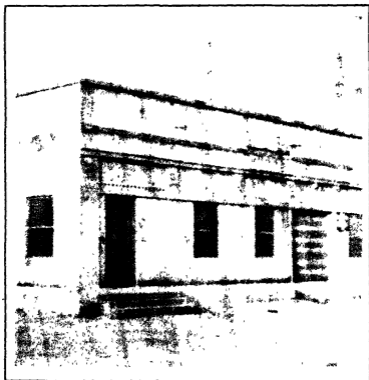
श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान भवन, नरिया, वाराणसी

वात्सल्य था। वे दिगम्बर जैन संघ मथुरा के तीन बार अध्यक्ष चुने गये। **जयधवला** के प्रकाशन मे ग्यारह हजार रुपये प्रदान कर उन्होने माँ जिनवाणी की सेवा का एक कीर्तिमान स्थापित किया। डोगरगढ़ की राजकीय सस्थाओ के लिये वे हमेशा आर्थिक सहयोग देते रहे। माननीय सेठ सा के दिवगत हो जाने पर उनकी धर्मनिष्ठा पत्नी श्रीमती सिघैन नर्मदाबाई जी ने सेठ सा की स्मृति मे नरिया, वाराणसी मे लाखो रुपये खर्च करके श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन सस्थान भवन का निर्माण कराया। श्रीमती सेठानी सा. के हृदय मे विद्वानो के प्रति अत्यन्त आदरभाव था। वे वात्सल्यभावों से ओतप्रोत थी।

सेठ जी के दत्तकपुत्र श्री प्रकाशचन्द्र जी सिंघई राजनाँदगाँव व डोंगरगढ़ मे स्थित धार्मिक एव सामाजिक संस्थाओ की देखरेख करते है।

सिं. शिखरचन्दजी, अमरपाटन

स सि शिखरचन्दजी, अमरपाटन

बुन्देलखण्ड प्रान्त मे सिंघई जी के नाम से ये सर्वत्र प्रसिद्ध थे। ये धर्मनिष्ठ, उत्साही, समभावी एव उदार थे। स्वराज आन्दोलन के समय इन्होने सत्याग्रहियो की बहुत सेवा और मदद की। उदारता उनकी इस प्रकार की थी कि उनके पास से कोई खाली हाथ वापिस नही आता था। पुरानी बस्ती मे देवी का एक प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर की मरम्मत के लिए उसके प्रबन्धको ने इनसे अपील की तो उन्होने इस शर्त पर सहायता देना मजूर कर लिया कि पशु-बलिदान बन्द कर दिया जाये और उस दिन से वहाँ बलिदान प्रथा बन्द हो गई।

बालक-बालिकाओ की शिक्षा के लिए भवन बनवाकर दिया और स्वामी अभयानन्द जी के अनुरोध पर ब्राह्मणो की सस्कृत पाठशाला के लिए दो एकड़ जमीन और पॉच सौ रुपये नगद दिये। सभी गरीबो के लिए वे आश्रयदाता रहे। इतना ही नही, पशु-पक्षियो के लिए भी रोज रोटी और दाने की व्यवस्था करते थे।

जिनेन्द्रभक्ति मे सगीत के साथ उनके द्वारा गाये गये भजनो को सुनकर जैन एव जैनेतर भी आकर्षित हो जाते थे। रीवॉ नरेश हमेशा इनका आदर करते थे। १९६२ मे बड़े समारोह के साथ सिद्धचक्र मण्डल विधान किया और उसमे नगर के प्रत्येक व्यक्ति (जैन-अजैन) को भोजन कराया।

सिघई जी तीर्थभक्त थे। सन् १९८३ मे वे सम्मेद शिखर गये, जहाँ आचार्य विद्यासागर जी महाराज विराजमान थे। उन्होंने सिंघई जी को सावधान किया कि आप आत्मकल्याण करो, जीवन का समय अब कम है।

और उस दिन से उनका झुकाव आत्मकल्याण की ओर हुआ। सन् १९८४ मे ७५ वर्ष की आयु मे धर्मध्यान पूर्वक उनका स्वर्गवास हो गया।

सिघई जी के छोटे भाई श्री रतनचन्द्रजी इन्ही की अनुकृति थे। पूजन, स्वाध्याय, तीर्थवन्दना और साधु समागम के लिए वे हमेशा तत्पर रहते थे। दोनो भाइयो मे राम-लक्ष्मण की तरह प्रेमभाव था। सिं. शिखरचन्द जी के स्वर्गवास के ११ दिन बाद इनका भी देहावसान हो गया।

सिं. राजकुमार जैन .

सिं. राजकुमार जैन, अमरपाटन, सतना

इस घराने के उत्तराधिकारी सिं. जयकुमारजी और राजकुमारजी दो है। इनमे से छोटे भाई राजकुमार जी बहुत सेवाभावी, विनोदप्रिय एव स्नेहशील थे। वे सतना सम्भाग मे नेत्रदान एव शाकाहार प्रचार के प्रणेता थे। अल्पायु मे इनका स्वर्गवास हो गया। बड़े भाई जयकुमार जी अपने पूर्वजो के अनुगामी है तथा अनेक सार्वजनिक सस्थाओ से सक्रिय रूप से जुड़े है।

सेठ हरिश्चन्द्र सुमेरचन्द्र जैन, जबलपुर

जबलपुर के सुप्रतिष्ठित नेता स. सिं गरीबदास जी के बाद समाज का नेतृत्व बहुत अंशों मे इन दोनो भाइयो पर था। इनके पिता स. सिं. लक्ष्मीचन्द्र जी वहाँ के एक सुप्रतिष्ठित घराने के थे। नगर के सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठित विद्वान् पुसऊ पंडित जी के पास इन्होंने संस्कृत व्याकरण और सिद्धान्त का अच्छा

स मिं हरिश्चन्द्र जैन, जबलपुर

ज्ञान प्राप्त किया था। इस विद्या-अभिरुचि के कारण इन्होने अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिश्चन्द्र जी को काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय मे सन् १९१९-२० मे भेजा था। स सि हरिश्चन्द्र जी सुशिक्षित तो थे ही, किन्तु स्वाध्यायी विद्वान् अधिक थे। देवपूजा, मुनि-सेवा, विद्वत्-सम्मान करना उनका स्वभाव बन गया था। समाज मे शान्ति और एकता की स्थापना करने तथा समाज की प्रतिष्ठा बनाये रखने मे वे अग्रणी थे।

जबलपुर के दुर्भाग्यपूर्ण जिन-मूर्ति खण्डन की घटना को सम्मान पूर्वक सुलझाने मे उनका ही सबसे बडा योगदान था।

सेठ हरिश्चन्द्र जी के सभापतित्व मे सन् १९४६ मे श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल भवन का शिलान्यास एव निर्माण हुआ। सन् १९५८ मे जबलपुर मे एव बाद मे बरगी मे गजरथ चलाने मे आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। आपके सहयोग से सन् १९७१ मे गुरुकुल भवन के पीछे गुरुकुल के कमरो का निर्माण और श्री वर्णी व्रती आश्रम का निर्माण और स्थापना हुई तथा सन् १९७२ मे श्री वर्णी गुरुकुल की व्यवस्था हेतु पाण्डुकशिला वाली भूमि पर वर्णी बाजार की दुकानो का निर्माण हुआ।

आप श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर हनुमानताल, श्री जैन पुत्रीशाला, श्री डी एन जैन कालेज ट्रस्ट, श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा और श्री दिगम्बर जैन क्षेत्र बहुरीबन्द के ट्रस्टी थे।

प्रात स्मरणीय पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के सदुपदेश से प्रभावित होकर आपने समाज के लिये अपना एक मकान श्री महावीर व्यायामशाला

को दान मे दिया था। दान की प्रथा चलती रहे, इसी उद्देश्य से आपने सन् १९७९ मे सेठ हरिश्चन्द्र सुमेरचन्द्र चेरिटेबिल ट्रस्ट एव सन् १९८५ मे सेठ हरिश्चन्द्र श्रीमती महारानी सिघैन चेरिटेबिल ट्रस्ट बनाया। जिनको उनके सुपुत्र स. सिं सन्तोषकुमारजी आज भी चला रहे है।

जैन समाज के अतिरिक्त सेठ हरिश्चन्द्र जी ने अपनी अमूल्य सम्पत्ति मे से हाथीताल कॉलोनी मे सन् १९७९ मे श्री गुरुवाणी प्रचारक सभा को गुरुद्वारा बनवाने के लिये २४, ५०० वर्गफुट एवं श्री सनातन धर्म सभा गोरखपुर को ६७,००० वर्ग फुट जमीन स्कूल, कालेज और अस्पताल वगैरह बनवाने के लिये दान मे दी थी।

आपके पूर्वजो द्वारा छतरपुर मे निर्मित श्री दिगम्बर जैन मन्दिर अछरू-बछरू के नाम से जाना जाता है। इस मन्दिर पर महाराजा क्लब वालो ने अनधिकृत रूप से कब्जा कर अपने अधिकार मे ले लिया है, जिसे प्राप्त करने के लिये करीब २० वर्षो से आप अपने भाई स सि सुमेरचन्द्र जी के साथ प्रयत्नशील रहे। १८ जनवरी १९८६ को सेठ हरिश्चन्द्र जी के दिवगत हो जाने पर सेठ सुमेरचन्द्रजी उनके स्थान पर सभी कार्यो की सम्हाल करते है।

नगरसेठ स्व. गुलाबचन्द जी, दमोह (म.प्र.)

सेठ गुलाबचन्द जी सा. प्रारम्भ से ही उदार प्रकृति के थे। सन् १९३० मे कर्जा बोर्ड शासन द्वारा बनाया गया था, जिसके आप चेयरमैन थे। दमोह जिले की जैन-अजैन गरीब जनता पर दयाकर आपने उस समय १ लाख ९० हजार का कर्जा माफ कर दिया था, जिससे जनता ने बड़ी खुशी मनाई एव सेठ सा. को नगरसेठ की पदवी से विभूषित किया था। उदारचित्त होने के कारण गरीबो के बाल-बच्चों के विवाह-शादी मे सहयोग दिया करते थे। आप मृदुभाषी थे। पर्यूषण पर्व के बाद दमोह की समस्त जैन समाज को भोजन करवाते थे।

नगरसेठ स्व गुलाबचन्द जी, दमोह (म.प्र)

दमोह जिले की राजनीति मे भी उनका बड़ा नाम था। वे कर्मठ कार्यकर्ता थे। उनके पूर्वज भी धार्मिक और उदारचित्त थे। एक पूर्वज सि. काशीराम जी ने पुराना बाजार न. १ दमोह मे दि. जैन मन्दिर बनवाया था, जो आज सेठो के मन्दिर के नाम से जाना जाता है। इसमे अनेक मनोज्ञ प्रतिमाएँ पाँच वेदियो पर विराजमान है।

श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलगिरि कुण्डलपुर मे भी श्री काशीराम गुलाबचन्द्र जी एवं अमरसा गुलाबचन्द्र जी जैन के नाम से दो मन्दिरो का निर्माण कराया एव पञ्चकल्याणक के साथ गजरथ भी चलवाया था। श्री सिद्धक्षेत्र नैनागिर जी मे भी एक जैन मन्दिर बनवाया एवं पञ्चकल्याणक महोत्सव के साथ गजरथ चलवाया था।

सेठ गुलाबचन्द्र जी ने दमोह मे प्रेमशंकर धगट शासकीय चिकित्सालय के लिये ४० एकड़ जमीन दान में दी थी। आप दमोह नगरपालिका के १७ वर्षों तक वाइस चेयरमैन रहे हैं। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर के आजीवन कोषाध्यक्ष भी रहे हैं।

आपके पिता सेठ डालचन्द जी चालीस गाँवों के जागीरदार थे। उनके जब प्रथम पुत्ररत्न सेठ गुलाबचन्द्र जी का जन्म हुआ तो अभाना गॉव की जनता ने सेठ सा. से मॉग की कि सेठ सा.! आपने जैन मन्दिरो का तो खूब निर्माण कराया है, अब पुत्रजन्म की खुशी में श्रीराम मन्दिर का निर्माण होना चाहिये। तब सेठ डालचन्द जी ने जनता की भावनाओ का आदर करते हुये श्रीराम मन्दिर का निर्माण कराया था

और उसकी व्यवस्था हेतु जमीन भी अर्पित की थी। साथ ही एक तालाब का भी निर्माण कराया था।

सेठ गुलाबचन्द्र जी के तीन सुपुत्र हैं, जिनका धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में बड़ा भारी योगदान है तथा वे अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा को बनाये हुए हैं।

ज्येष्ठ पुत्र सेठ धरमचन्द जी अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासमिति देहली के अध्यक्ष, जैन पचायत दमोह के उपाध्यक्ष, ला कालेज की शिक्षा प्रचार समिति के सेक्रेटरी, जैन हाई स्कूल दमोह एवं कमला नेहरू महिला कालेज दमोह के १५ वर्षों तक अध्यक्ष रहे है।

द्वितीय पुत्र सेठ सुमतचन्द जी कुशाग्र बुद्धि हैं। दूसरो की मदद करने मे तत्पर रहते हैं। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों में सहयोग करते हैं।

तृतीय पुत्र सेठ देवेन्द्रकुमार जी २२ वर्ष की उम्र से कृषि उपज मण्डी, थोक उपभोक्ता सहकारी **मण्डी** एव जिला सहकारी बैंक, दमोह मे संचालक पद पर है।

नगरसेठ स्व. लालचन्द जैन, दमोह

आपका जन्म दमोह के सुप्रसिद्ध सेठ घराने मे हुआ था। आप धार्मिक, सामाजिक एव राजनीति के क्षेत्र में निपुण थे। आपका चित्त उदार था, जिससे आपने अपने जीवन में जमीन एव रुपयों का दान देकर जो संस्थाएँ कमजोर थी उनको जीवनदान देकर आगे बढ़ाया। आप अपने सिद्धान्त कें पक्के थे। सन् १९३२ में गवर्नमेन्ट के खिलाफ महात्मा गाँधी ने जब असहयोग आन्दोलन चलाया था, तब उसमे आपका विशेष योगदान था और जेल भी गये थे। आप जिला काँग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। इनके पूर्वजों ने श्री कुण्डलपुर जी, श्री नैनागिर जी एवं दमोह में मन्दिरो का निर्माण कराकर

नगरसेठ लालचन्द जैन, दमोह

नगर सेठ निर्मलकुमारजी, इंजीनियर

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के साथ गजरथ भी चलवाये थे। सेठ लालचन्द जी धार्मिक अनुष्ठानो मे नियम से भाग लेते थे। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर के अध्यक्ष पद पर १५ वर्षो तक रहकर आपने क्षेत्र की सेवा की थी। आपके सहयोग से दमोह जिला मे कई सस्थाएँ चल रही है। श्री महिला ज्ञान मन्दिर के सचालन मे विशेष योगदान दिया है। श्री वर्णी दि. जैन पाठशाला को ६० एकड़ भूमि देकर उसके सचालन मे लाखो रुपयो का दान दिया था। पूज्य श्री वर्णी जी महाराज के दमोह पदार्पण के समय आपने उनके उपदेशो से प्रभावित होकर उस समय एक मुस्त ५० हजार रुपयो का दान दिया था। जैन हाई स्कूल दमोह मे आपका सर्वप्रथम योगदान था। आपकी धर्मपत्नी उदारचित्त एव दानशीला है। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर की २० एकड़ जमीन, जो फतेपुर के बगीचे के नाम से जानी जाती है, को आपने ही दान मे दिया था। उस बगीचे से क्षेत्र को आज भी हजारो रुपयो की वार्षिक आमदनी है।

आपके संतान नही थी, जिससे आपने अपनी बहिन के पुत्र को गोद लिया था, जिनका नाम था श्री निर्मलकुमारजी इजीनियर, पी-एच. डी.। वे भी सरल परिणामी और उदार प्रकृति के थे। उनका अल्पायु मे ही देहावसान हो गया था। उनके तीन पुत्र है— श्री वीरेशकुमार जी, श्री राजेशकुमार जी और श्री कमलेशकुमार जी। डा. नीता नाम की पुत्री भी है। ये सभी सच्चरित्र, धार्मिक और अपने पूर्वजो की भाँति उदारचित्त है। समस्त परिवार ने मिलकर तीन लाख रुपयो का एक फण्ड सेठ लालचन्द निर्मलकुमार मेमोरियल फण्ड के नाम से बनाया है, जिससे गरीबो, विधवाओ एव छात्रो आदि को सहायता दी जाती है।

सिंघई हीरालाल कन्हैयालाल जैन, मिर्जापुर

सिघई हीरालाल जैन, मिर्जापुर

मिर्जापुर मे परवार समाज का यही एक घराना समृद्ध एव प्रतिष्ठित है। सिघई हीरालाल जी जातीय और धार्मिक नियमो को पालने मे कट्टर थे। आपने पच्चीस हजार रुपये धर्मशाला बनवाने के लिये दान किये थे। उनके दिवगत होने पर उनके सुपुत्र सिघई कन्हैयालाल जी ने उस राशि को अपनी ओर से बढ़ाकर कटनी मे एक जैन छात्रालय भवन की सन् १९२७ मे स्थापना की थी, जिसका प्रवेश मुहूर्त श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज तथा उनके सघ के पदार्पण से हुआ था। यह भवन विशाल एव सुन्दर है। सिं. कन्हैयालाल जी के सुपुत्र श्री बंशीलाल जी, रूपचन्द जी, दीपचन्द जी और कोमलचन्द जी ने अपनी परम्परा को कायम रखा है। उनके पुत्रो मे सम्प्रति कोमलचन्द जी जीवित है, जो छात्रालय ट्रस्ट के ट्रस्टी एव अध्यक्ष है।
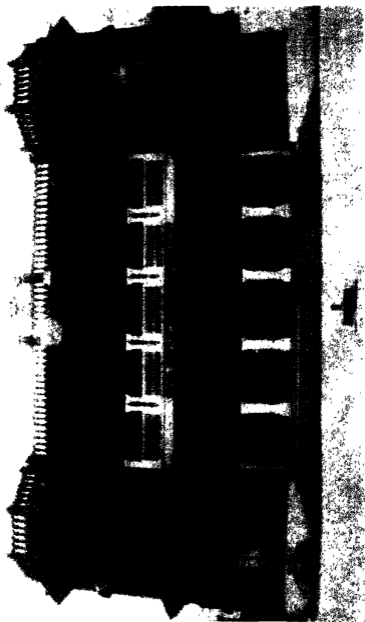
श्री हीरालाल कन्हैयालाल जैन छात्रालय, कटनी

सि. कन्हैयालाल जी के पौत्र-प्रपौत्र आदि इस समय मिर्जापुर, सीधी, जगदलपुर, सतना, रापटगज और लखनऊ आदि स्थानो मे निवास कर रहे है।

समाजभूषण श्रीमन्त सेठ भगवानदास जैन, सागर

समाजभूषण श्रीमन्त सेठ भगवानदास जैन

स्व सेठ भगवानदास जी का जन्म १० अक्टूबर, १८९९ को सागर जिले के एरन ग्राम मे हुआ था। आपके पिता का नाम सेठ पूनमचन्द था। आपके बड़े भाई सेठ मोहनलालजी तथा छोटे भाई शोभालालजी थे।

जीवकोपार्जन हेतु सन् १९३० मे आपने नये प्रतिष्ठान मेसर्स भगवानदास शोभालाल जैन, निर्माता 'बालक बीड़ी' फर्म की स्थापना की। सतत परिश्रम और अध्यवसाय के फलस्वरूप आपके प्रतिष्ठान की गणना प्रमुख उद्योगपति फर्मो में की जाने लगी। आप सागर की अनेक धार्मिक एव सामाजिक सस्थाओ के ट्रस्टी, सरक्षक एव अध्यक्ष थे।

देश के स्वाधीनता संग्राम के समय आपने कॉग्रेस का साथ दिया। असहयोग आन्दोलनो के समय आपने तन-मन-धन से सहयोग दिया। सन् १९४० मे अपने ज्येष्ठ भ्राता स्व. सेठ मोहनलालजी की पुण्य स्मृति मे 'श्री मोहन सार्वजनिक धर्मार्थ औषधालय' की स्थापना की। श्री भगवानदास शोभालाल चैरीटेबिल ट्रस्ट के अन्तर्गत सागर नगर के मध्य एक विशाल धर्मशाला निर्मित की गई है।

अक्टूबर, १९८० मे आपके अनुज स्व. शोभालालजी की पुण्य स्मृति मे मानसिक रोगो के परीक्षण केन्द्र की स्थापना हेतु सागर

विश्वविद्यालय को २ लाख ५० हजार १०१ रुपयो का चैक प्रदान कर अपनी उदारशीलता एव दानशीलता का परिचय दिया। भोपाल गैस दुर्घटना से दु:खित होकर आपने माननीय राजीव गाधी को प्रधानमन्त्री सहायता कोष मे एक लाख रुपये प्रदान किये।

१७ जनवरी, सन् १९८५ को आपने अपने आवासीय स्थल 'बगला' के बाजू मे आपके ही स्वामित्व की भूमि मे अनेक वर्षो से रह रहे २५ हरिजन परिवारो को मुख्यमत्री के नेतृत्व मे पट्टे प्रदान कर परोपकारिता का परिचय दिया। मोराजी सागर मे एक विशाल भवन बनवाया।

श्रीमद् तारण-तरण स्वामी के आप अनन्य भक्त थे। बुन्देलखण्ड की महान विभूति क्षु गणेशप्रसाद जी वर्णी तथा सोनगढ़ के सन्त पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के प्रति आपकी अटूट श्रद्धा थी। स्वामीजी की अमृतवाणी सुनने आप महीनो सोनगढ़ जाकर रहते थे। आपने अनेक धार्मिक स्थानो पर जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण के कार्य कराये।

वर्तमान मे आपके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री डालचन्द जी जैन (पूर्व सासद) अ भा. दिगम्बर जैन परिषद के अध्यक्ष है तथा सामाजिक गतिविधियो मे अपना पूर्ण योगदान देकर अपने पिताजी के अभाव को दूर करने का प्रयत्न कर रहे है।

(ख) अन्य समाजसेवी .

अकलतरा .

सिंघई कपूरचन्द्र जी, अकलतरा

ये अपने प्रान्त के मुखिया माने जाते थे। उदार वृत्ति के पुरुष थे। मथुरा जैन संघ के तीन वर्षो तक सदस्य रहे। एक बार परवार सभा का अधिवेशन आपने अकलतरा मे कराया था, जो अत्यन्त सफल रहा।

अशोकनगर :

यहाँ परवार समाज के लगभग ६०० घर तथा एक विशाल जिनमन्दिर है।

श्री मोतीलाल चौधरी, अशोकनगर

ग्वालियर रियासत मे जन्मे सरल-स्वभावी, कर्तव्यनिष्ठ चौधरी मोतीलाल जी ने अपनी युवावस्था मे ही अशोकनगर (तब पछार) आकर अल्प समय मे मण्डी के प्रथम श्रेणी के व्यापारियो मे अपनी गणना करा ली थी। साधर्मी भाइयो को सहयोग देना आपके स्वभाव का अग बन गया था। आप एक लम्बे समय तक स्थानीय मण्डी कमेटी के चेयरमेन रहे है।

आपका धर्म-प्रेम भी सराहना के योग्य था। बड़ी भक्तिपूर्वक गा-बजाकर पूजन करना आपका नित्य का कार्यक्रम था। जलसे-जुलूसो मे आर्थिक सहयोग और उचित परामर्श देते थे। आप काफी लम्बी अवधि तक श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र थूबोन जी के अध्यक्ष पद पर रहे है। अतिशय क्षेत्र सेरोन जी के भी अध्यक्ष रहे है। सन् १९६४ से अन्तिम समय तक भारतवर्षीय दि. जैन सघ मथुरा की कार्यकारिणी के सदस्य थे। आप 'दाऊ' उपनाम से जाने जाते थे। आपका आतिथ्य सत्कार अद्वितीय था।

दाऊ विद्वानो का आदर करते थे। किसी भी वर्ग का कोई भी व्यक्ति, जो आपके सम्पर्क मे आया, उसके हृदय पर आप के सहज स्वभाव की अमिट छाप अंकित हो जाती थी। ऐसे दानी-मानी दाऊ समाज के गौरव रहे है।

इन्दौर :

यहाँ परवार समाज के लगभग ५००-६०० घर है। इनका अपना एक सगठन है, जिसका नाम — 'श्री दिगम्बर जैन परवार समाज इन्दौर' है। इस सगठन द्वारा मल्हारगज मे श्रीचन्द्रप्रभ चैत्यालय की स्थापना की गई है। इसमे वेदी की स्थापना श्री शिवरतन कठारी एवं श्री कमलकुमार जैन ने की है। श्री कमलकुमार जी ने अपनी समस्त चल-अचल सम्पत्ति भी चैत्यालय को समर्पित
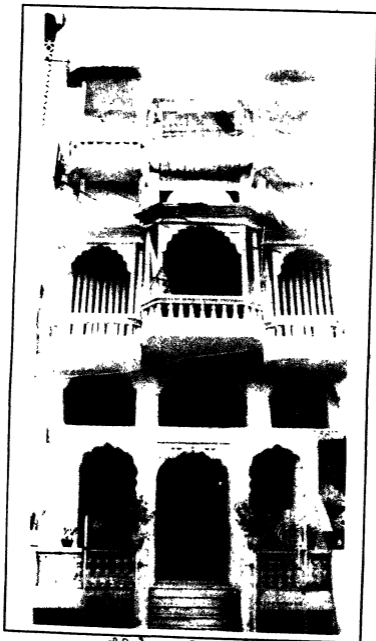
श्री दि. जैन चन्द्रप्रभ जिनालय, इन्दौर

कर दी है। इन्दौर के छत्रपतिनगर में परवार समाज के श्री सोनेलाल जी रमेशचन्द जी देवरी, बाबूलाल सुरेन्द्रकुमार जी, बाबूलाल जी बीना, डॉ. जिनेन्द्रकुमार जी, कैलाशचन्द जी (नेता जी), माणिकचन्द जी नायक एव विमलचन्द जी बॉझल्ल आदि के द्वारा समाज के सहयोग से एक दि. जैन चैत्यालय की स्थापना हो चुकी है एवं धर्मशाला के निर्माण का कार्य चालू है। इस समय मल्हारगंज मे श्री चन्द्रप्रभ स्वयं सेवक मण्डल के नाम से परवार समाज के नवयुवको का संगठन भी सेवाकार्य कर रहा है, जिसके अध्यक्ष डॉ. प्रकाशचन्द्र जी बजरंगगढ़ वाले है।

उज्जैन :

यहाँ परवार समाज के १४२ घर हैं। प्रायः सभी सुशिक्षित हैं। कुल जनसख्या ७६२ है। उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्ति इस प्रकार हैं—

१. स्व. डॉ. हरीन्द्रभूषण जी जैन
२. स्व. श्रीचन्द जी आचार्य — आप समथर स्टेट में दीवान एवं जज रहे है।
३. स्व. पं. मूलचन्दजी शास्त्री — आप पुरानी पीढ़ी के विद्वान् थे। ९० वर्ष की अवस्था मे आपका देहावसान हुआ था।
४. पं. दयाचन्दजी शास्त्री — वर्तमान में आप ऐलक पन्नालालजी सरस्वती भवन उज्जैन में कार्यरत हैं तथा परवार समाज के अध्यक्ष हैं।
५. डॉ. एन.के. नायक, सी. एम. ओ.
६. डॉ. भरत जैन, नेत्र चिकित्सक
७. डॉ सुरेश कोठारी, प्रोफेसर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन।

उमरिया :

स. सिं. मोहनलालजी, उमरिया

आपके पूर्वज बुन्देलखण्ड के निवासी थे। आपको सिंघई पदवी वहाँ मंदिर निर्माण और गजरथ प्रतिष्ठा महोत्सव कराने के कारण प्राप्त हुई थी।

किसी कारण से वे अपना निवास स्थान छोड़कर उमरिया आ गये। यहाँ कोयले की बडी-बड़ी खदाने है। आपके अग्रज सि फूलचन्दजी ने अपने पुरुषार्थ और सद्व्यवहार से सम्पन्नता और प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

सि मोहनलाल जी अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। आपने मुरैना के सिद्धान्त विद्यालय मे शास्त्री कक्षा पर्यन्त शिक्षा ली और अपने व्यापार को सम्भाला। आपने अपने जीवन मे अच्छी लोक-प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। आप जैन शिक्षा सस्था कटनी के अनेक वर्षो तक मन्त्री रहे है। उस समय रीवॉं बुन्देलखण्ड की अच्छी रियासत थी। आपके ज्येष्ठ भ्राता रीवॉं राज्य परिषद् के सम्मानित सदस्य थे। उनके स्वर्गवास के बाद १९३७ मे महाराजा रीवॉं ने श्री मोहनलाल जी को उस राज्य परिषद् का सदस्य निर्वाचित किया था और वे स्वराज्य के पूर्व तक सदस्य बने रहे। आपने उस समय जैन शिक्षा सस्था कटनी को पॉंच हजार रुपयो का दान दिया था तथा तीर्थो पर धर्मशालाएँ और स्वाध्यायशालाएँ बनाने मे भी महत्त्वपूर्ण आर्थिक सहयोग दिया है। सम्प्रति आपका परिवार सुसम्पन्न है। उमरिया मे आपका एक स्वय का चैत्यालय है।

कटनी :

इस नगर मे चार जैन मन्दिर है। प्रथम स सि स्व फत्तीलाल जी द्वारा निर्मित है। स्व. फत्तीलाल जी सिघई इस नगर के प्रमुख पच थे। इन्होने पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा कराई तथा गजरथ चलवाये। ग्रामीण अचलो से समाज के २०-२५ घर यहाँ बसने को आये। आपने अपने बाडे मे उन्हे रहने को स्थान दिया और पूँजी लगाई। स. सि कन्हैयालाल गुलाबचन्द जी भी यहाँ की समाज के एक अच्छे नेता रहे है। वे अनेक सस्थाओ के ट्रस्टी भी थे। इनकी प्रथम धर्मपत्नी श्रीमती राधाबाई ने इसी मन्दिर के ऊपर एक विशाल और सुन्दर वेदी का निर्माण कराकर जिनबिम्ब स्थापित किये है। इस मन्दिर का रजिस्टर्ड ट्रस्ट है और अब यह मन्दिर पचायती मन्दिर के नाम से जाना जाता है। अभी हाल मे इस मन्दिर के ऊपर एक विशाल हाल बनवाया गया है। जिसमे १५ मई से २५ जून १९८९ तक प्रथम बार **षट्खण्डागम** वाचना का आयोजन मुनिश्री क्षमासा-गर जी, मुनिश्री गुप्तिसागर जी एव ऐलक निर्भयसागर जी के सान्निध्य मे

सिद्धान्ताचार्य पण्डितश्री जगन्मोहनलाल जी शास्त्री द्वारा सम्पन्न हुआ । इस वाचना मे ब्र प. भुवनेन्द्रकुमार जी बॉंदरी, प्रो. देवेन्द्रकुमार शास्त्री नीमच, प. गुलाबचन्द पुष्प, सि नेमीचन्द जैन नागपुर प. राजमल जैन भोपाल, डॉ फूलचन्द जैन वाराणसी और डॉ. कमलेशकुमार जैन वाराणसी आदि विद्वान् सम्मिलित हुए थे ।

दूसरा जैन मन्दिर स. सि. कन्हैयालाल गिरधारीलाल तिवरीवालो का कहलाता है । इसका परिचय अन्यत्र दिया गया है ।

तीसरा बिलहरीवालो द्वारा निर्मित कॉंच का जैन मन्दिर कहलाता है । इसके निर्माताओ मे प्रमुख स्व सि टोडरमल कन्हैयालाल जी है । सि टोडरमल जी भद्रप्रकृति के व्यक्ति थे । स्थानीय जैन सस्थाओ के आजीवन ट्रस्टी व सदस्य रहे । आप समाज को आजीवन सेवाएँ देते रहे ।

चतुर्थ जैन मन्दिर श्री हुकमचन्द जी चौधरी द्वारा अपने घर पर चैत्यालय के रूप में निर्मित है । ये चूना के सुप्रसिद्ध व्यवसायी और विद्वान् थे । ये तथा इनके चाचा सेतुलालजी जीवन भर जैन सस्थाओ के सदस्य रहे । यहाँ पर श्री शान्ति निकेतन जैन सस्कृत विद्यालय, जैन छात्रावास, जैन प्राथमिक पाठशाला, सेठ धनराज जैन मिडिल एव हाई स्कूल, महावीर शिशु सस्कार केन्द्र आदि सस्थाएँ सचालित है ।

सिंघई फत्तीलाल जी, कटनी

सि. लखमीचन्द जी और सि. दशरथलाल जी— इन दोनो भाइयो के पिता सिघई फत्तीलाल जी द्वारा कटनी मे बड़ा मन्दिर बनवाया गया था, जो महावीर कीर्तिस्तम्भ के सामने है । सि. फत्तीलाल जी सूत का व्यापार व महाजनी करते थे । बड़े दयालु स्वभाव के थे । आपके चार मकान और एक बाड़ा था, अत· कटनी मे जो भी गरीब भाई व्यापार करने आते थे उन सबको वे अपने बाड़े मे रहने को जगह देते थे और व्यापार के लिये भी पूँजी लगा देते थे । आपने दि. जैन मदिर सवत् १९४३ मे बनवाकर प्रतिष्ठा कराई थी । आपके बड़े सुपुत्र सि. लखमीचन्द जी के एक पुत्र राजेन्द्रकुमार जी जबलपुर मे अपने मामा के साथ
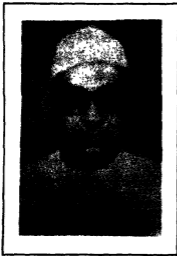
सिंघई लखमीचन्द जी, कटनी

सिं दशरथलाल जी, कटनी

कपड़े का थोक व्यापार करते है। द्वितीय पुत्र स्व. देवेन्द्रकुमार जी के उत्तराधिकारी कटनी मे बिजली का थोक व फुटकर व्यापार करते हैं।

श्री दि. जैन पंचायती बड़ा मंदिर, कटनी

दूसरे सुपुत्र स्व. सिं दशरथलाल जी के छह पुत्र हैं : १. विजयकुमार, २. विमलकुमार, ३. कमलकुमार, ४. पदमकुमार, ५. सुशीलकुमार और ६. सुधीर कुमार। ये छहो भाई अपने अपने व्यापार मे सलग्न है तथा समाजसेवा और धमार्थ कार्यो मे सदा सहयोग देते रहते हैं।

श्री हुकुमचन्द चौधरी, कटनी

इनके पिता का नाम श्री नाथूलाल जी चौधरी था। श्री हुकुमचन्द जी का जन्म सन् १९०३ मे हुआ था और सन् १९८९ मे इनका देहान्त हो गया है। ये मोरेना सिद्धात विद्यालय मे अध्ययन किये हुए विद्वान् थे। इन्होने कटनी के सुप्रसिद्ध चूने के व्यापार मे अच्छी तरक्की की थी।
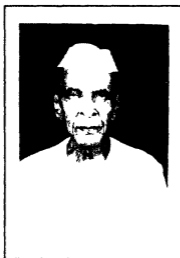
श्री हुकुमचन्द चौधरी, कटनी

इनके चाचा श्री सेतुलाल जी अच्छे धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। कटनी मे आचार्य शातिसागर जी महाराज से दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किये थे। इनका प्रभाव श्री हुकुमचन्द जी के ऊपर था। इनके जीवन के कुछ कार्य उल्लेखनीय है।

कटनी जैन पाठशाला ट्रस्ट तथा अन्य अनेक जैन व जैनेतर ट्रस्टो के ये लगातार २० वर्षो तक अध्यक्ष रहे और अनेक विघ्न-बाधाओ के उपस्थित होने के बाद भी उनका दृढ़ता से सामना करते हुये ट्रस्टो की सुरक्षा की तथा उनके कार्यो का सचालन चतुराई के साथ किया।

आपने अपने बगले पर एक सुन्दर व विशाल चैत्यालय की स्थापना सन् १९४५ मे रामनवमी के दिन की थी और उसके पूजन-प्रक्षाल की व्यवस्था अपने परिवार के सहयोग से स्वय करते रहे।

आपके पुत्र-पौत्रो की संख्या ५०-६० है। एक साथ रसोई बनती रही। इस प्रकार की कुटुम्ब एकता बिरले घरो मे पाई जाती है।

ये स्वतत्रता सग्राम सेनानी थे। जेल यातना भी इन्होने भोगी। जैन-जैनेतर समाज के गरीब-असहाय व्यक्तियो को बिना किसी कीर्ति की अभिलाषा से

गुप्तदान द्वारा सहायता किया करते थे । **समयसार** की ४१४ गाथाएँ इन्हे कठस्थ थी, जिनका पाठ प्रतिदिन किया करते थे और गाथाओं का पाठ करते हुये ही इनका देहान्त हुआ ।

श्री गोकुलचन्द वकील, कटनी

आपने विद्याभ्यास करके सन् १९४४ से ४८ तक सरकारी नौकरी की और सन् १९४९ से कटनी मे वकालत कर रहे है । आप कटनी की अनेक जैन एव सार्वजनिक सस्थाओं के सदस्य है । अनेक वर्षो तक पचायत के मत्री रहे है और कई वर्षो तक जैन शिक्षा सस्था कटनी के नि शुल्क वकील रहे है । आप नगर के प्रतिष्ठित नागरिक है ।

डॉ. कमलकुमार जैन, कटनी

आप पेन्ड्रा निवासी सि खूबचन्द जी के पौत्र एव सि बाबूलालजी के पुत्र है । आपके पूर्वज मऊरानीपुर के थे । आप बाल-चिकित्सा विशेषज्ञ है और इस समय कटनी मे स्वतन्त्र प्रेक्टिस कर रहे है । समाजसेवी एव प्रतिष्ठित व्यक्ति है । नगर की अनेक सस्थाओ से भी जुडे हुए है । आप दानशील व्यक्ति है । आपने करीब पचास हजार रुपये विविध सस्थाओं को दान स्वरूप दिये है । सम्प्रति आप जैन शिक्षा सस्था (कटनी) कमेटी के अध्यक्ष है ।

कलकत्ता

श्री दुलीचन्द पन्नालाल परवार, कलकत्ता

श्री दुलीचन्द पन्नालाल देवरी (सागर) के निवासी थे । कलकत्ता मे इन्होंने जिनवाणी प्रचारक कार्यालय की स्थापना करके प्रेस की स्थापना की । आपने **'परवार हितैषी'** नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया था, जो तीन वर्ष तक चली । ये अपने नाम के आगे 'परवार' अवश्य लिखते थे ।

इनके दिवगत हो जाने पर इनके परिवार के श्री नन्दलाल जी, श्री नृपेन्द्रकुमार जी और श्री सुरेशचन्द्र जी ने जिनवाणी प्रचारक कार्यालय का कार्य सम्हाला और अनेक जैन ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। यह सस्था आज भी चल रही है।

कुलुवा-कुम्हारी (दमोह) .

यहाँ परवार समाज के दस घर है। एक दि. जैन गुजराती मन्दिर है। श्री शिखरचन्द फूलचन्द साव यहाँ के प्रमुख एव प्रतिष्ठित व्यक्ति है। इनकी विदुषी बुआ ब्र सहोद्राबाई जैन ईसरी मे निवास करती थी, जिनका सन् १९७६ मे शिखर जी मे स्वर्गवास हो गया है। यहाँ सिघई पूरनचन्द्र जैन व्रती पुरुष है। इनके पूर्वजो द्वारा निर्मित एक जैन मन्दिर पटेरा मे है। वाराणसी प्रवासी डॉ कमलेशकुमार जैन एव डॉ विनोदकुमार जैन यही के मूल निवासी है।

खुरई ·

तीर्थभक्त स. सिं. श्री जिनेन्द्रकुमार गुरहा एवं उनका परिवार

तीर्थभक्त स. सि. गनपतलाल गुरहा

श्री जिनेन्द्रकुमार जी गुरहा के पितामह तीर्थभक्त स सि स्वर्गीय गनपतलालजी गुरहा ने सन् १९३९ ई. मे अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी मे उग्र विचार वाले गजरथ विरोधियो की चुनौती को स्वीकार करते हुए विशाल पैमाने पर पञ्चकल्याणक गजरथ महोत्सव कराकर अपना नाम जैन समाज मे गौरवान्वित किया था।आपने परवार जैन समाज के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् व्याख्यानवाचस्पति पं. देवकीनन्दन जी सिद्धान्तशास्त्री

कारजा की सत्प्रेरणा से प्रेरित होकर खुरई नगर मे सर्वप्रथम एक मुश्त बीस हजार रुपये का दान देकर श्री पार्श्वनाथ दि जैन गुरुकुल की स्थापना मे अभूतपूर्व सहयोग दिया था।

तीर्थभक्त स सि भैयालाल जी गुरहा,

श्री जिनेन्द्रकुमार जी के पिताजी स्व तीर्थभक्त स सि भैयालालजी गुरहा ने भी अपने पूर्वजो के पदचिह्नो पर चलकर अपने जीवनकाल मे पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल के प्राङ्गण मे पचास हजार रुपये की लागत से एक विशाल छात्रावास का निर्माण कराया तथा उसी सन्दर्भ मे खुरई नगर मे अपने छोटे पुत्र विजयकुमार के नाम से एक विशाल धर्मशाला का निर्माण कराया। यही नही, वरन जैन रात्रिपाठशाला एव पूज्य पिता एव पितामह के नाम पर धर्मार्थ कालूराम गनपतलाल औषधालय का सचालन किया, जो आज भी नगर मे नि स्वार्थभाव से काम कर रहा है। आपने **'जिनेन्द्र गीताञ्जलि'** का प्रकाशन कराकर उसका समस्त जैन समाज मे नि शुल्क वितरण किया। स सि गनपतलाल जी गुरहा के पौत्र एव स सि भैयालालजी गुरहा के ज्येष्ठ पुत्र श्री जिनेन्द्रकुमार जी गुरहा भी

तीर्थभक्त स.सि.जिनेन्द्रकुमार जी गुरहा

अपने पूर्वजो के पदचिह्नो पर चलते हुए स्थानीय जैन एव जैनेतर समाज मे अपनी लोकप्रियता के कारण प्रतिष्ठा को बनाये हुए है। अभी कुछ समय पूर्व आप नगरपालिका के अध्यक्ष पद पर आसीन रहे और अपने अध्यवसाय से नगर की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त किया।

आप नगर के यशस्वी युवा नेता, ओजस्वी वक्ता एव कुशल प्रशासक है।

स्वर्गीय चौधरी मुन्नालाल जैन, खुरई

(जन्म : सन् १९०६ ई.)

आप स्व चौ खेमचन्द जी के सुपुत्र और खुरई मे चरखा छाप बीडी के निर्माता तथा नीरज इजीनियरिंग वर्क्स के सचालक है। स्पष्ट वक्ता, धार्मिक, कुशाग्र बुद्धि, परोपकारी, दानी तथा कुशल व्यापारियो मे इनकी गणना थी और समाज के प्रमुख लोगो मे थे।

स्वर्गीय चौधरी मुन्नालाल जैन

श्रीमती भोगाबाई जैन, खुरई
धर्मपत्नी : चौधरी मुन्नालाल जैन

श्री देवचन्द जैन, खुरई

(जन्म १७ अगस्त, १९२८ ई., बरौदिया)

आप कुशल प्रशासक, उच्च कोटि के व्यापारी, इजीनियरी मस्तिष्क सम्पन्न, दानी, धार्मिक एव तीर्थ स्थलो के जीर्णोद्धारक है। आप श्रेष्ठ कृषि यत्रो के निर्माता (शासन से मान्यता प्राप्त), विजय इजीनियरिग वर्क्स एव सजय इण्डस्ट्रीज के निर्माता भी है। आपकी पत्नी धार्मिक विचारो वाली है। दो सुपुत्र— श्री विजयकुमार जी जैन तथा सजय- कुमार जी जैन मेकेनि- कल इजीनियर है।

श्री देवचन्द जैन

आप स्वय के अध्यवसाय एव पुरुषार्थ मे लोह व्यापार मे अनुपम प्रगति करके आज खुरई नगर के श्रेष्ठ व्यापारियो एव धनाढ्यो मे है।

स्व. शैलेन्द्रकुमार, खुरई

(जन्म : २८ फरवरी, १९६४, खुरई)

आप स्व चौ. भुन्नालाल जी के नाती व चौ पदमचन्द जी के प्रथम पुत्र है। आप कुशाग्र बुद्धि सम्पन्न थे।

श्री शैलेन्द्रकुमार जैन

आपने अपने पिताजी के निर्देशन मे अल्पायु मे ही व्यापारिक कुशलता एव चातुर्य प्राप्त कर लिया था। एक दुर्घटना मे २ जून, सन् १९८२ को आपका दु खद निधन हो गया।

गदयाना ·

श्री अयोध्याप्रसाद सिंघई, गदयाना

आप स्वाध्यायी विद्वान् और दानी पुरुष है। आपने लाखो रुपये का दान दिया है व गदयाना मे पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराई है। आप सरल एव मर्मज्ञ समाज सेवी विद्वान् है।

गुना .

इस नगर मे परवार समाज के ४००-५०० घर है। यहाँ एक प्राचीन मदिर एव धर्मशाला है। अध्यात्म के प्रेमी अनेक स्वाध्यायी पुरुष है। **श्री राखन जी** अच्छे व्यापारी एव श्रेष्ठ स्वाध्यायी व्यक्ति थे।

श्री जमुनाप्रसाद जी वकील भी एक सुशिक्षित धार्मिक नेता है। वे परवार सभा की बैठको मे सदा भाग लेते है। अन्य सामाजिक सगठनो से भी उनका अच्छा सम्पर्क है।

यहाँ **श्री मिश्रीलाल एडवोकेट** एक अच्छे लेखक एव वक्ता है। उनके द्वारा लिखित अनेक ग्रन्थ बहुचर्चित है।

यहाँ से ५ किलोमीटर दूर बजरगगढ़ नामक क्षेत्र है, जहाँ एक विशाल जैन मदिर है, जो पृथ्वीतल से २२-२३ फुट ऊँचाई पर बना है। विदिशा मे पाये जाने वाले एक शिलापट्ट पर महाकीर्ति मुनि की एक मूर्ति उकेरी गई है, जिसमे यह उल्लेख है कि वि. स १२३४ मे इन महाकीर्ति मुनि की उल्लेखनीय समाधि गुना नगर (गुणपुर) मे हुई। चिह्नो से ऐसा प्रतीत होता है कि समाधिस्थल बजरंगगढ़ है, क्योकि वहाँ चरणचिह्न भी है। क्षेत्र अच्छी तरक्की पर है।

गोटेगाँव :

यहाँ अनेक जैन मदिर है तथा जैन समाज के लगभग २५० परिवार है। यहाँ की समाज धार्मिक एव सेवाभावी है।

चिरमिरी .

कोयले की खदानो की वजह से यह स्थान प्रसिद्ध है, यहाँ भी परवार समाज के अनेक घर है, जिनमे ब्रजलाल बारेलाल जी का नाम प्रसिद्ध है। आपने प्रान्त की अनेक शिक्षा सस्थाओ की सदा सहायता की है।

छतरपुर

श्री दशरथ जैन, छतरपुर

(जन्म · छतरपुर, म. प्र.)

आप एक प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्ता, प्रभावशाली लेखक व वक्ता तथा उदार व समर्पित समाजसेवी है। आपने छतरपुर राज्य-प्रजामडल के तत्वावधान मे उत्तरदायी-शासन की प्राप्ति हेतु लड़े गये आन्दोलन मे सक्रिय सहयोग एव भूमिगत रहकर आन्दोलन को सफल बनाने का प्रयत्न किया था। आप लगभग छह वर्षो तक जिला कॉग्रेस कमेटी छतरपुर के मत्री और एक वर्ष के लिए विन्ध्यप्रदेश कॉग्रेस कमेटी के महामत्री तथा म. प्र कॉग्रेस कमेटी के सदस्य भी रहे है।

१९५४ मे उपचुनाव मे विजयी होकर विन्ध्यप्रदेश विधान सभा के सदस्य निर्वाचित, नवम्बर १९५५ मे प शम्भूनाथ शुक्ल के मत्रिमण्डल मे विन्ध्यप्रदेश के गृहमत्री नियुक्त तथा गृह,स्वास्थ्य, जेल, सहकारिता, ग्राम-विकास, पशु-पालन आदि विभागो का कार्य कुशलतापूर्वक सम्पन्न ; नवम्बर १९५६ मे मध्यप्रदेश के पुनर्गठन के उपरान्त पं. रविशंकर शुक्ल के मत्रिमण्डल मे उपमत्री (श्रम, चम्बल तथा पुनर्वास) एव डॉ. कैलाशनाथ काटजू के मत्रिमण्डल मे उपमत्री (लोक निर्माण एवं विद्युत) नियुक्त ; मन्त्रित्वकाल

१९५६-६२,१९७२ मे पुन: मलहरा क्षेत्र से म. प्र. विधान सभा के सदस्य निर्वाचित, सदस्यताकाल १९७२-७७।

आप विगत २२ वर्षो से श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो की प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष है। आपने सन् १९८१ के खजुराहो पञ्चकल्याणक एवं गजरथमहोत्सव हेतु गठित स्वागत-समिति के कार्याध्यक्ष रहकर उक्त कार्यक्रम को प्रभावशाली ढग से क्रियान्वित करने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

साहित्यिक सेवाएँ :

१९५१ से १९५४ तक साप्ताहिक **'विन्ध्याचल'** का सम्पादन, म प्र. स्वतन्त्रता-सग्राम सैनिक सघ के चरण-पादुका अधिवेशन की स्मारिका **'उत्सर्ग'** एव खजुराहो गजरथ-महोत्सव की स्मारिका **'धर्मरथ'** का सम्पादन, **'सोवियत रूस का आर्थिक विकास'**, **'समाज और संस्कृति'**, **'Jain Monuments at Khajuraho'** का लेखन एव प्रकाशन, **'हिमालय से ऊँचे, सागर से गहरे'**, **'भारतीय समाज और संस्कृति'**, **'सत्याग्रह के सिद्धान्त और उसकी व्यवहार-प्रक्रिया'**, **'बुन्देलखण्ड का जलियाँवाला बाग : चरण-पादुका'**, **'प्रथम एवं अन्तिम जैन तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभ एवं महावीर'** आदि पाण्डुलिपियाँ प्रकाशन हेतु तैयार है। आपके समसामयिक विषयो पर अनेक लेख विविध पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है।

श्री महेन्द्रकुमार 'मानव'

आप एक ख्यातिप्राप्त राजनेता, कुशल पत्रकार व साहित्यिक तथा सहृदय समाजसेवी है। सन् १९४२ के स्वतन्त्रता-संग्राम मे छह माह की सख्त कैद हुई थी। १९५१ ई मे छतरपुर नगरपालिका के सदस्य निर्वाचित हुए और सन् १९५२ से १९५६ तक वि. प्र. विधान सभा के सदस्य तथा विन्ध्य प्रदेश के पं. शम्भूनाथ शुक्ल के मत्रिमण्डल मे

वित्त एव समाजसेवा मत्री के पद पर कार्यरत रहे है। सन् १९६७ एव १९७२ मे पुन म प्र विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। म. प्र स्वतन्त्रतासग्राम सैनिक सघ के महामत्री रहे, वर्तमान मे म. प्र आचलिक पत्रकार सघ के अध्यक्ष है। १९५२ से साप्ताहिक **'पंचायतराज'** का सम्पादन किया, जो वर्तमान मे भी भोपाल एव छतरपुर— दोनो स्थानो से नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। श्री मानव जी द्वारा रचित जो पुस्तके प्रकाशित हुई है, उनमे **'मुझे मनुष्य की गन्ध भाती है'** (कविता-सग्रह) तथा आनन्दशकर, बापूभाई ध्रुव की गुजराती पुस्तक **'धर्म-वर्णन'** का हिन्दी अनुवाद प्रमुख है। आपने **'कलातीर्थ खजुराहो'** का सम्पादन किया है। आपके अनेक लेख, यात्रा वर्णन, कहानियाँ आदि विविध पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुकी है।

श्री सुरेन्द्रकुमार जैन

(जन्म · सन् १९२६, छतरपुर)

आपने 'भारत-छोड़ो आन्दोलन' मे भाग लिया था। स्वतन्त्रता-सग्राम-सैनिक के नाते जिला-स्वतन्त्रता-सग्राम सैनिक सघ छतरपुर के सचिव एव म. प्र स्वतन्त्रता-सग्राम-सैनिक सघ भोपाल की कार्यकारिणी के सदस्य है।

आप श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र खजुराहो प्रबन्ध-समिति के लम्बे समय से उपसभापति/मत्री/सदस्य है एव क्षेत्र के विकास मे आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आप श्री शातिनाथ सग्रहालय अहारक्षेत्र (टीकमगढ़) की प्रबन्ध-समिति के भी सदस्य है।

श्री सुरेन्द्रकुमार जी एक अच्छे कवि, लेखक एव पत्रकार है। आपके द्वारा सपादित **'जवाहर-पदावली'** प्रकाशित हो चुकी है। आप **'उत्सर्ग'** (स्मारिका), **'पंचायतराज-सोवेनिर'**, **'सहकारी-समाज'** (पत्र) के सम्पादक रहे है। आपके अनेक लेख पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है।

छिंदवाड़ा :

श्री प्रेमचन्द जी, गोलगंज, छिंदवाड़ा

(जन्म : १५ सितम्बर १९१६, गाड़रवारा)

आप मूलत गाड़रवारा के निवासी है। आपने स्वतन्त्रता सग्राम मे अनेक बार जेल यात्राएँ की है। आप कॉग्रेस के सक्रिय सदस्य रहे तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाकर छिदवाडा मे एकता के लिए सदा सक्रिय प्रयत्न किया है। आप अ. भा महासभा की स्थापना कर उसके प्रथम बार अध्यक्ष बने।

श्री कोमलचन्द गोयल

(जन्म · सन् १९१६)

आप शासकीय सेवा मे सहायक अधीक्षक के पद पर रहे हैं। सेवानिवृत्त होकर आप वर्तमान मे परवार समाज के अध्यक्ष और महासभा के उपाध्यक्ष है।

श्री सुगमचन्द गोयल

(जन्म : २८ अगस्त १९२८)

आपकी सामाजिक और धार्मिक कार्यो में अधिक रुचि है। नगर के प्रमुख व्यवसायियो मे आपकी गणना की जाती है। आप इस समय परवार पंचायत के कोषाध्यक्ष है।

स. सिं. धन्यकुमार जी

(जन्म : २ नवम्बर १९३७)

आपने छिदवाड़ा मे दो जिन मन्दिरो का तथा सरस्वती भवन का निर्माण कराया है। आप धार्मिक रुचि सम्पन्न व्यक्ति है।

स. सि. खेमचन्द्र जी लक्ष्मीचन्द्र जी जैन धार्मिक न्यास के सरक्षक और अध्यक्ष है। इनकी नगर के प्रमुख व्यक्तियो मे गणना होती है। इन्होने इन्दिरा कॉंग्रेस के जिला स्तरीय सगठन मे अनेकानेक पदो पर कार्य किया है तथा वर्तमान मे कोषाध्यक्ष है।

श्री आनन्द किरण जैन

(जन्म १ जुलाई १९४०)

आप स्व. प. क्षेमकर जी न्यायतीर्थ के सुपुत्र है। आप अन्तर्वर्तीय तकनीकी शिक्षण सस्थान मे व्याख्याता है। अपने स्व पिता जी के कार्यो मे आपकी विशेष रुचि है। समाज मे एकता बनी रहे इसके लिये सदा प्रयत्न करते रहते है।

श्री इन्द्रचन्द्र कौशल

आप श्री डालचन्द जी के सुपुत्र है। आप समाजसेवी एव प्रतिष्ठित व्यक्ति है। दि. जैन पाठशाला के मत्री, दि. जैन पचायत के मत्री तथा दि. जैन मुमुक्षु मण्डल के कोषाध्यक्ष के रूप मे आपकी सेवाएँ स्मरणीय है।

श्री इन्द्रचन्द्र कौशल

अन्य समाजसेवियो में शान्तिकुमार जी सर्राफ, फूलचन्दजी कोठारी, केशरीचन्द और मानक चन्द जी का नाम प्रमुख है।

छिदवाड़ा मे एक विदुषी महिला भी हैं, जो अच्छा प्रवचन करती है।

जबलपुर :

जबलपुर परवार समाज के धार्मिक एवं लौकिक कार्य*

जब भी जबलपुर के धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिवेश की प्रगति की चर्चा होगी, स्थानीय परवार समाज के अवदान को ओझल नही किया जा सकेगा। जबलपुर, जिसे राष्ट्रसन्त विनोबा ने बडे विवेकपूर्ण लहजे मे 'सस्कारधानी' कहा था, मे परवार समाज का अपना एक प्राचीन इतिहास है। इतिहास और सस्कार का धनी यह समाज प्रारम्भ से ही जबलपुर के सुख-दुख का साथी रहा है। जबलपुर की हर प्रगति मे इस समाज के कर्मठ हाथ सदा सक्रिय रहे है। भारत की आजादी के लिये यह समाज सदा अग्रणी रहा है व कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतन्त्रता सग्राम मे कर्मठ एव ईमानदार सैनिक की भूमिका निभाई है। जिसके अग्रणी श्री प्रेमचद उस्ताज दमोह, शुभचन्द जी गढ़ावाल और सि. रतनचन्द जो मिलौनीगज आदि थे। उस समय करीब ५० नवयुवको ने जेल की यातनाएँ भोगी है।

धार्मिक एव लौकिक सेवाओ के क्रम मे परवार समाज ने अनेक मदिरो, अस्पतालो, धर्मशालाओ एव कुँओ आदि का निर्माण अपने विशिष्ट श्रम, धन और लगन से पूर्ण किया है, जिनमे से कुछ के नाम इस प्रकार है—

१. हनुमानताल के किनारे जैन बड़ा मंदिर :

किलानुमा बनक का यह विशाल मदिर दर्शनीय है। सन् १६८६ मे निर्मित इसकी दो मजिलो मे कुल २२ वेदियाँ है। उत्तुङ्ग शिखरो के नीचे एक वेदी और गर्भगृह मे चाँदी का काम तथा एक अन्य वेदी में रंगबिरंगी काँच की पच्चीकारी का काम रजत और स्वर्ण आभा को एक साथ बिखेरता है। यह सवाई सिघई श्री भोलानाथ जी द्वारा निर्मित

* लेखक : स. सि. नेमीचन्द जैन, मत्री : श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा।
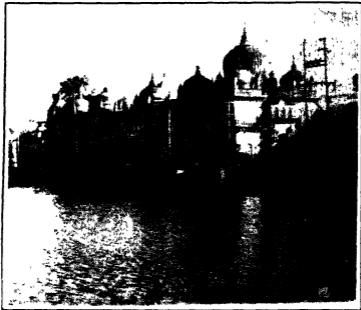
श्री दि जैन बडा मन्दिर, हनुमानताल

है। बड़े मंदिर मे प्रतिदिन सुबह-शाम शास्त्रसभा होती है और रात्रिकालीन धार्मिक पाठशाला भी चलती है। इसी बडे मदिर के अन्तर्गत एक धर्मशाला और एक व्यायामशाला भी वही समीप ही बनाई गई है। मदिर का एक विशाल भवन बड़े फुहारे के समक्ष गोलाकार स्वरूप मे निर्मित है, जिसके तीसरे तल्ले पर श्री महावीर पुस्तकालय और दूसरे मे जैन क्लब है। इस भवन मे कुछ दुकाने भी है।

स. सि. भोलानाथ रतनचन्द जी द्वारा ही सस्कारधानी को तीन ऐसे भवन उपलब्ध कराये गये है, जिनमे आज भी श्रेष्ठ सस्कारो की शिक्षा दी जाती है। उनमे पहला श्री कस्तूरचन्द जैन हितकारिणी विद्यालय, दूसरा स. सि. भोलानाथ रतनचन्द ला कालेज और तीसरा सिघैन सोनाबाई छात्रावास है। ये तीनों भव्य इमारते बनवाकर हितकारिणी सभा को समर्पित कर दी गई हैं। सभा आज भी उक्त विद्यालयो को रुचिपूर्वक चला रही है। सहस्रो छात्रों ने यहाँ से ज्ञान वैभव पाया है और आज
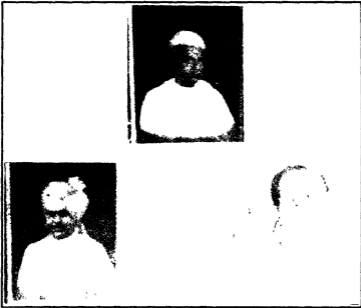
स. सि भोलानाथ रतनचन्द निर्मलचन्द जैन, जबलपुर

श्री कस्तूरचन्द जैन हितकारिणी विद्यालय
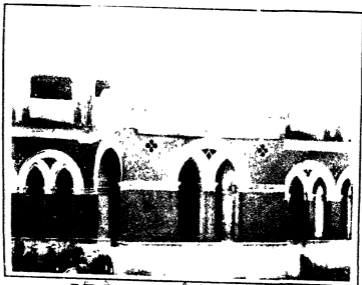
म सि भोलानाथ रतनचन्द जैन हितकारिणी ला कालेज

सिघैन सोनाबाई छात्रावास, हितकारिणी सभा

भी पा रहे हैं। हितकारिणी सभा के अतर्गत १८ विद्यालयों में करीब पच्चीस हजार छात्र-छात्राएँ अध्ययन करते हैं।

२. मिलौनीगंज में ड्योड़िया जी का मंदिर :

उत्तुङ्ग शिखर से सुशोभित यह प्राचीन मंदिर स्व. श्री बंशीधर जी ड्योड़िया की धार्मिक भावनाओं का उद्घोष कर रहा है। इसके गर्भकक्ष मे भित्तियो पर मनोहर काम काढ़ा गया है, जो दर्शनीय है।

३. नन्हें मंदिर :

इस नाम से विख्यात यह मंदिर हनुमानताल वार्ड मे स्थित है। मंदिर से लगे भवन मे एक पुस्तकालय चल रहा है। यहॉं मंदिर मे दोनों समय शास्त्रसभा होती है तथा रात्रिकालीन पाठशाला भी चल रही है।

४. श्री हजारीलाल रूपचन्द जैन ड्योड़िया द्वारा निर्मित मदिर शिखर युक्त है और प्राचीन सुन्दरता का पोषक है।

५. चौ. श्री भैयालाल नेमीचन्द जैन का मंदिर भव्य एवं विशाल है।

६. पुरानी बजाजी में युगल मंदिर दर्शनीय है। इसके निर्माणकर्ता पं. क्षमाधर परमानन्द जी तथा स. सि. गरीबदास गुलजारीलाल जी हैं।

७. इसी वार्ड मे एक और अन्य मंदिर है, जिसका शिखर अभी कुछ वर्ष पूर्व ही कमेटी ने बनवाया है। शिखर मनोज्ञ और दर्शनीय है। शिखर निर्माण मे सम्पूर्ण व्यय केवलचन्द जी कॉंचवालों द्वारा हुआ है। इसी मदिर के तीसरे खंड मे सि. केवलचन्द जी ने नन्दीश्वर द्वीप की छोटे रूप मे मनोज्ञ रचना करवाई है।

८. लार्डगज (जवाहरगंज) मे बड़े फुहारे और कमानिया गेट (पटेल गेट) के मध्य स्थित एक विशाल दो मंजिला मंदिर दर्शनीय है। इसमें दस वेदियाँ है। पॉच ऊँचे शिखरों से मंडित इस मंदिर में प्रतिदिन तीन समय शास्त्रसभा एव रात्रि मे पाठशाला चलती है। १५० वर्ष प्राचीन इस मंदिर का विशाल क्षेत्रफल और उससे लगी एक विशाल चारमंजिली धर्मशाला आधुनिक
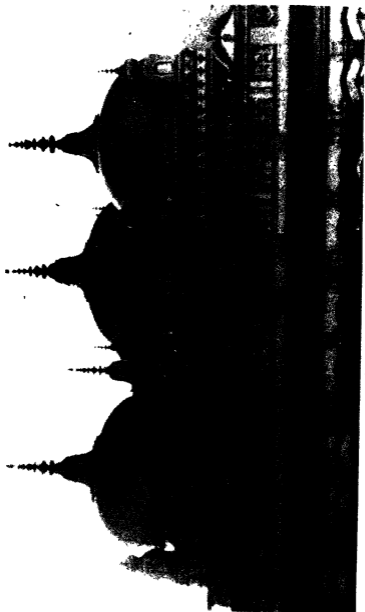
श्री दि. जैन मन्दिर, जवाहरगंज, जबलपुर
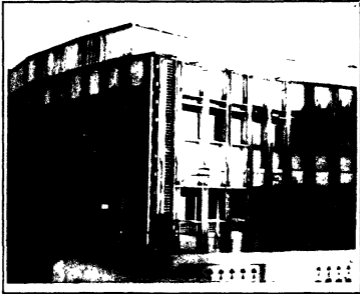
श्री जैन माङ्गलिक भवन एवं धर्मशाला

व्यवस्था से परिपूर्ण है। मंदिर निर्माताओं ने एक व्यायामशाला का निर्माण कर समाज के युवको को प्रदान की है। इस मदिर मे प्रतिदिन सुबह करीब चार-पॉच सौ स्त्री पुरुष द्रव्य से पूजन करते है।

९. गोलबाजार, राइटटाउन मे स्व. स. सि. कस्तूरचन्द जी की धर्मपत्नी और स. सि. धन्यकुमार जी जैन (कटनी) की ज्येष्ठ भगिनी श्रीमती ब्र० कस्तूरीबाई द्वारा निर्मित श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर अपनी नगरीय स्थिति के लिए प्रसिद्ध है। स. सिं. दालचंद नारायणदास द्वारा निर्मित एक हाईस्कूल (सन् १९३९), एक कालेज (सन् १९४९) और एक जैन बोर्डिंग (सन् १९१३) द्रष्टव्य हैं। कुछ दिन पूर्व ही मंदिर के पार्श्व मे एक विशाल कक्ष सत्यार्थ भवन के नाम से ट्रस्ट ने बनवाया है। स. सिं. दालचन्द नारायणदास ने जवाहरगंज जैन मंदिर के ऊपर की मंजिल पर एक सुन्दर वेदी का निर्माण कराया था, जिसमें मारबल स्टोन का कार्य है और एक धर्मशाला भी बनवाई है, जिसके नीचे के हिस्से में श्रीमती काशीबाई जैन
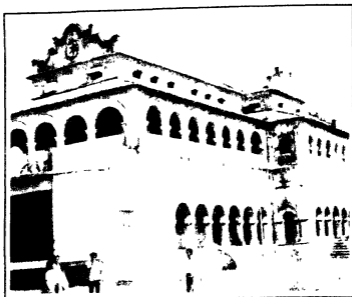
स सि दालचन्द नारायणदास जैन बोर्डिंग हाऊस एव डी एन जैन कालेज

औषधालय का सचालन होता है। इसमे प्रतिदिन करीब २०० रोगी नि शुल्क दवाएँ प्राप्तकर स्वास्थ्य लाभ लेते हैं। यह औषधालय ६० वर्ष से चल रहा है।

१० स सि धनपतलाल मूलचन्द जी जैन ने पूज्य वर्णीजी महाराज के निर्देश पर जवाहरगज मे एक विशाल तीन मजिला भवन तैयार कराकर करीब चालीस वर्ष पूर्व पुत्रीशाला के निमित्त प्रदान किया था, जिसे जैन पुत्रीशाला ट्रस्ट सुचारु रूप से चला रहा है। इसमे लगभग ६०० छात्राएँ विद्या अध्ययन कर रही है। उक्त महानुभाव ने ही लार्डगज जैन मदिर के प्रागण मे एक उत्तुग कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराकर परवार समाज की कीर्ति मे वृद्धि की है। इतना ही नही धनपतलाल मूलचन्द के प्रतिष्ठान के ही स्व. स सि रतनचन्द जी ने सुप्रसिद्ध पिसनहारी मढ़िया के ऊँचे पहाड़ पर प्रवेशद्वार के दाहिनी ओर श्री आदिनाथ भगवान का मदिर बनवाया है। इस मदिर के उपरी भाग पर काँच

स. सिं. मूलचन्द जी जैन

स सि धनपतलाल जी जैन
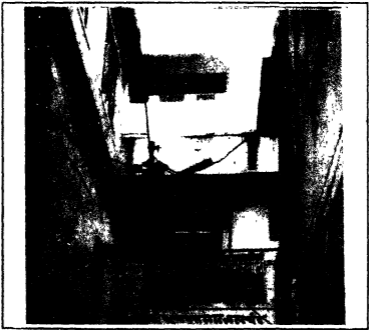
स. सिं. धनपतलाल मूलचन्द जी द्वारा निर्मित जैन कन्या उच्चतर माध्यमिक शाला, जवाहरगंज

की रचना से सज्जित समवसरण मदिर है, जो अति सुन्दर और दर्शनीय है। इसकी सपूर्ण सरचना छोटी जगह मे शास्त्रानुकूल की गई है। इसकी प्रतिष्ठा का समारोह फरवरी सन् १९५८ मे स सि रतनचन्द जी द्वारा गजरथ चलवाकर धूमधाम से सम्पन्न किया गया था तथा पिसनहारी मढ़िया की तलहटी मे नीचे मैदान मे एक धर्मशाला भी बनवाई थी। उक्त दानी सज्जन अपनी दान और धर्मसेवा की परम्परा मे आज भी अग्रणी है। आपने मढ़िया जी के परिसर मे जैन समाज द्वारा करीब ७० लाख की राशि की लागत से बन
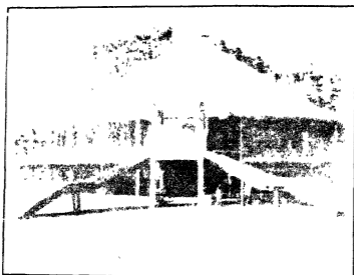
श्री नन्दीश्वर द्वीप मन्दिर, पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर

रहे श्री नन्दीश्वर मदिर के निर्माण कार्य मे करीब एक लाख रुपयो का आर्थिक सहयोग किया है। परवार समाज के ऐसे समाजसेवको और दानदाताओ पर किसे नाज न होगा। नदीश्वर मन्दिर को अत्यन्त सुन्दर एवं भव्य बनाने मे सि बाबूलाल जी नरेशचद जी गढ़ावाल, राजेन्द्रकुमार (सत्येन्द्र स्टोर्स) राजेन्द्र कुमार (R V) और स. सिं नेमीचन्द जी का प्रमुख हाथ रहा है।

११ परवार समाज की एक निर्धन वृद्धा द्वारा ही आज से १०८५ वर्ष पूर्व गढ़ा के पास पहाड़ी पर मंदिर का निर्माण कराया गया था, जिसे
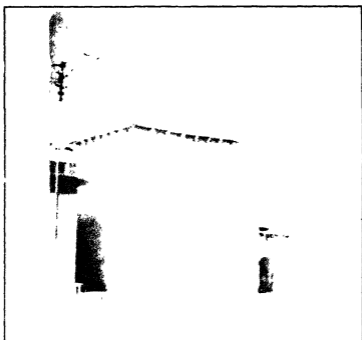
श्री दि जैन मंदिर मढियाजी (पिसनहारी द्वारा निर्मित प्राचीन मंदिर)

श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र पिसनहारी [illegible] का पिसनहारी गेट (मुख्य द्वार)

'पिसनहारी की मढ़िया' कहते है। यह इतिहास और प्राचीनता की दृष्टि से जैन समाज की महत्त्वपूर्ण धर्मस्थली है। इसी प्राचीन मढ़िया के पीछे पहाड पर प्रवेश द्वार से बाएं तरफ स सि बेनीप्रसाद धरमचन्द जी द्वारा सन् १९५८ मे श्री महावीर स्वामी का मदिर निर्मित कराया गया था। वही २४ तीर्थकरो की २४ लघु मन्दरियाँ बनवाई गई है। इनके बनवाने मे स सि श्री छिकौडीलाल जी खूबचन्द जी खादीवाले तथा सि भागचन्द जी का विशेष हाथ रहा है। धीरे-धीरे अनेक मदिर बन गए। पहाड के नीचे मैदान मे श्री गनपतलाल सुलखीचन्द द्वारा एक विशाल मदिर बनवाया गया है। उसी के समक्ष श्रीमती
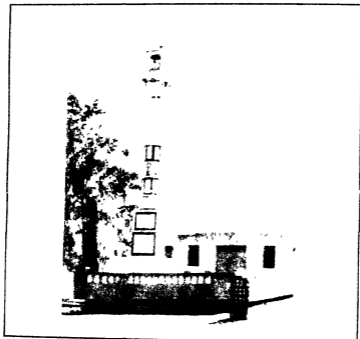
श्री गनपतलाल सुलखीचन्द द्वारा निर्मित श्री दि जैन मदिर मढियाजी और चौ लक्ष्मीबाई द्वारा निर्मित मानस्तम्भ

लक्ष्मीबाई जैन द्वारा मारबल स्टोन लगाकर विशाल मानस्तम्भ की रचना कराई गई है। उसी के समीप बहुत बड़े स्थान मे श्री गणेशप्रसाद वर्णी गुरुकुल का भवन निर्मित है। जहाँ आज २७ बालब्रह्मचारी सस्कृतविद्या का

अध्ययन करते है । अन्य दानवीरो द्वारा धर्मशालाएँ बनवाई गई है, जिनमे धार्मिक यात्री तो ठहरते ही है साथ ही मेडीकल कालेज अस्पताल मे उपचार कराने वाले रोगी और उनके परिवार के लोग इस सुरक्षित स्थान मे आकर सेनीटोरियम जैसा अनुभव करते है । इस क्षेत्र पर वर्णी व्रती आश्रम पहले से ही स्थापित है ।सम्प्रति दि जैन ब्राह्मी विद्या आश्रम की स्थापना प्रात:स्मरणीय

श्री वर्णी दि जैन गुरुकुल पिसनहारी मढियाजी

आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सान्निध्य मे हुई है, जिसमे लगभग ६० ब्रह्मचारिणी बहिने अध्ययन करती है । वर्णी कुण्ड के नाम से यहाँ एक बडी बावड़ी बनवाई गई है, जिसके स्वास्थ्यकर जल से पूरे मढ़िया जी क्षेत्र को पेयजल मशीन और नलो द्वारा उपलब्ध होता है ।

१२. स. सि गरीबदास गुलजारीलाल के सुपुत्र रायबहादुर श्री मुन्नालाल रामचन्द्र जी ने जबलपुर स्टेशन रोड पर एक बडा बगला और विशाल प्लाट महिला अस्पताल के लिए सरकार को दान दिया था । वहाँ मुन्नालाल रामचन्द्र एल्गिन हास्पिटल के नाम से विख्यात अस्पताल बनी है, उसमे नगर तथा बाहर की अनेक महिलाएँ स्वास्थ्य लाभ लेती है ।

रायबहादुर मुन्नालाल रामचन्द्र जी द्वारा प्रदत्त लेडीज एलगिन हास्पिटल, जबलपुर

१३. रायबहादुर चौधरी गुलाबचन्द कपूरचन्द जैन द्वारा नगर कोतवाली के समक्ष एक बड़ी अस्पताल तैयार कराकर शासन को दान दी गई है। इन्हीं

रायबहादुर गुलाबचन्द कपूरचन्द जी जैन द्वारा निर्मित हास्पिटल (कोतवाली के सामने), जबलपुर

सज्जन ने नगर के विक्टोरिया हास्पिटलमे दो वार्डो के मध्य एक लौह सेतु बनवाया था तथा एक विज्ञान विद्यालय भवन का भी निर्माण कराकर हितकारिणी सभा को समर्पित कर दिया था। रायबहादुर चौधरी जी ने वर्णी जी की चादर बोली लगाकर खरीदी थी और उसकी राशि सरदार भगतसिह के केस मे समर्पित कर दी थी।

१४ श्री दि जैन मदिर भेडाघाट आधुनिक और दर्शनीय है। इस मन्दिर के मुख्य द्वार का नाम आचार्य शान्तिसागर द्वार है। इस द्वार एव गगनचुम्बी शिखर का निर्माण स. सि. नेमीचन्द जी द्वारा कराया गया है। नर्मदा नदी के किनारे निर्मित इस प्राचीन मदिर का नवीनीकरण सन् १९६६ मे हुआ है। नवीनीकरण कराने वाले अन्य सहयोगियो मे दशरथलाल जी और खूबचन्द जी गल्ला बाजार वाले प्रमुख है।

१५ हिरन नदी के तट पर कोनीजी क्षेत्र मे नौ शिखरबन्द मदिरो के जीर्णोद्धार मे भी जबलपुर की समाज का प्रमुख हाथ रहा है। यहाँ का त्रिमूर्ति मदिर मनोज्ञ एव दर्शनीय है।

१६ यह समाज रूपी वृक्ष, जो हरा भरा दिखाई देता है, उसमे कौन कब बीज डाल गया, खाद और पानी देता रहा, तूफानी हवाओ से इसे बचाता रहा, उन्हे कुछ ही लोग जान पाते है। आपको एक तस्वीर दे रहे है अपने पूर्वजो/कर्णधारो की जिन्हे परवार समाज को, सगठित कर एक सूत्र मे बाँधे जाने का श्रेय प्राप्त है, उनमे सवाई सिघई गरीबदास जी, स सि. रतनचन्द लक्ष्मीचन्द्र जी, स सि धनपतलाल मूलचन्द जी, स सि नारायनदास मुन्नीलाल जी, श्री मुन्नीलाल बप्पूलाल जी, श्री शुभचन्द जी

स सि रतनचन्दजी जैन

म सि लक्ष्मीचन्द्रजी जैन

गढ़ावाल, प. कस्तूरचन्द जी नायक, चौ गनपतलाल सुलखीचन्द, सेठ हरिश्चन्द्र जी और श्री मुलायमचन्द इजीनियर प्रमुख है। ये लोग समाज की एक हस्ती थे। यद्यपि आज वे हमारे बीच मे से उठ गये है, किन्तु वे सदा स्मरणीय रहेगे।

परवार समाज के उज्ज्वल कार्यकलापो मे जबलपुर का इतिहास भरा पड़ा है। जबलपुर के निर्माण मे इस समाज का योगदान सर्वोपरि कहा जावे तो अन्यथा न होगा।

१७ आर्थिक सहयोग के बाद इस समाज के योग्य बेटो जो जबलपुर मे ही उद्योगपति, व्यापारी, सैनिक, डाक्टर, वकील, इजीनियर, प्रोफेसर, शिक्षक, प्रशासकीय अधिकारी और समाजसेवक के रूप मे कार्यरत है, ने सस्कारधानी को श्रेष्ठ सस्कारो से मडित कर मानवता की सेवा की है। इस प्रकार परवार समाज के विद्वान् और पडित, साहित्यकार और कलाकार जबलपुर का गौरव बढाते रहे है।

१८ स्व श्रीमती रूपवती किरण और स्व श्रीमती सुन्दर देवी इसी समाज की कवयित्री थी, जिन्होने साहित्य और समाज की महती सेवा की है। वर्तमान मे देश के साहित्यकारो मे विशेष मान्यता प्राप्त श्री सुरेश सरल, जिनकी रचनाएँ सम्पूर्ण देश मे गौरव से पढ़ी जाती है, ने पूज्य आ विद्यासागर जी महाराज की जीवनी लिखकर एक महान् सेवा का कार्य किया है। उनसे समाज को भारी आशाएँ है। श्रीमती डॉ विमला चौधरी, श्री निर्मल आजाद (सम्पादक विद्यासागर पत्रिका) और ख्यातिप्राप्त भारतीय जनता पार्टी के नेता श्री निर्मलचन्दजी सदा समाजसेवा मे अग्रणी रहे है और आज एडवोकेट जनरल पद पर प्रतिष्ठित है। इनके अतिरिक्त स्व. डॉ. हीरालाल जैन (सस्कृत,

पालि एव प्राकृत विभागाध्यक्ष, जबलपुर वि वि), डॉ कैलाश नारद, स्व डॉ सुशीलचन्द्र दिवाकर (पूर्व प्राचार्य, जी एस कामर्स कालेज, जबलपुर) आदि के नाम भी उल्लेखनीय है।

विद्वानो के क्रम मे प फूलचन्द जी सबजज, प सभाचन्द जैन, प ज्ञानचन्द जैन, प गजेन्द्रकुमार जी जैन, प बिरधीचन्द जी जैन आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिनके प्रवचनो को श्रावक रोज श्रवणकर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर रहे है। हमे अपने देश की तरह अपने समाज पर गौरव है, एक ऐसे समाज पर जो सुखदुःख मे सदा जबलपुर का रहा है और समूचे जबलपुर के लिये कार्य करता रहा है।

नेमा दादा के नाम से विख्यात

स. सिं. नेमीचन्द जैन, जबलपुर

अदम्य साहस एव प्रतिभा के धनी सवाई सिघई नेमीचन्द जी का जन्म माघ कृष्णा ४ विक्रम सवत् १९६६ को जबलपुर शहर मे हुआ था। आपके पिता स सि दीपचन्द जी सरल स्वभावी एव समाजसेवा मे अग्रणी थे। श्री नेमीचन्द जी ने समाजसेवा का व्रत अपनी माता जमनाबाई से लिया था।

स सि नेमीचन्द जी जैन, जबलपुर

आपने बचपन मे ही जैन नवयुवक सभा का गठन किया और अनेक बार उसके अध्यक्ष व मत्री पद पर रहकर समाज को मार्गदर्शन दिया। सन् १९३९ से १९४५ तक अपना किलेनुमा मकान स्वतन्त्रता सग्राम के

सेनानियों को सौंपकर स्वयं ने भी संग्राम में सक्रिय भाग लिया। उस समय आप आजादी के दीवानों के बीच किलदार के नाम से जाने जाते थे।

सन् १९४५ में प्रातःस्मरणीय स्व. पूज्य श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी के सदुपदेशों से प्रेरित होकर आपने अपने कुटुम्ब का एक विशाल भवन श्री जैन पुत्रीशाला के लिए प्रदान कर दिया था। उसी समय श्री वर्णी जी के सत्प्रयत्नों से जैन समाज के सभी मन्दिरों व संस्थाओं का एकीकरण करके जैन प्रतिनिधि सभा का गठन किया गया था। उस एकीकृत संस्था के आप शुरु से विघटन तक कोषाध्यक्ष रहे हैं। ट्रस्ट एक्ट आने पर उसका विघटन करके विभिन्न संस्थाओं को पुनः उनका दायित्व सम्हलवाने में आपकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आपकी कार्य-कुशलता एवं सरल स्वभाव के कारण ही इतनी बड़ी संस्था सुचारु रूप से चल सकी थी। सन् १९५८ में अपने पूज्य काका स. सि. रतनचन्द जी के द्वारा पिसनहारी की मढ़िया के पहाड़ पर निर्मित मन्दिर की परिक्रमा का आपने निर्माण कराया एवं उनको सहयोग देकर विशाल गजरथ चलवाया।

आपने सन् १९६६ में श्री दशरथलाल होजरीवालों के सहयोग से पर्यटन क्षेत्र भेड़ाघाट के जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर उसमें उत्तुङ्ग शिखर एवं मुख्यद्वार का निर्माण कराकर आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की प्रतिमा पधराई।

सन् १९७३ में श्री अतिशय क्षेत्र कोनी जी (पाटन) में श्री सहस्रकूट चैत्यालय का जीर्णोद्धार आपने उस समय कराया जब पाटन और कोनी जी के बीच हिरन नदी पर पुल नहीं बना था। मन्दिर की सजावट के टाइल आदि सामान अपने कन्धों पर रखकर पैदल नदी पार करके दादाजी ने सहस्रकूट चैत्यालय का जीर्णोद्धार कराया था। इसीलिये तत्कालीन कोनी ट्रस्ट कमेटी एवं पाटन जैन समाज ने दादाजी को तीर्थभक्त की उपाधि से सम्मानित किया था।

सन् १९८० में श्री जैन मंदिर जवाहरगंज के प्रांगण में श्री महावीर कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराकर दादाजी ने जबलपुर जैन समाज की एक कमी को पूरा किया है। इसका उद्घाटन पूज्य पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री द्वारा दिनांक १४-१२-८६ को हुआ है।
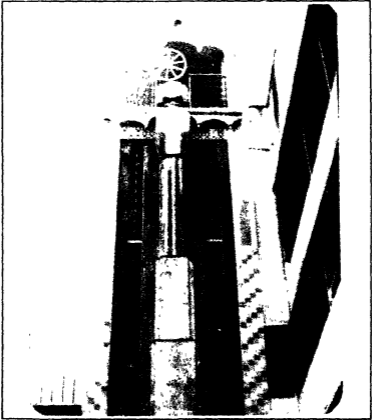
श्री महावीर कीर्तिस्तम्भ, जैन मन्दिर लार्डगज (निर्माता स सि मूलचन्द दीपचन्द जैन)

सन् १९८४ मे दादा जी ने अपनी अध्यक्षता मे आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एव उनके सघ के ग्रीष्मकालीन वाचना शिविर एव चातुर्मास को सभी सुविधाएँ उपलब्ध कराकर सम्पन्न कराया था। उक्त समय आचार्यश्री ने दादाजी को समाज के राष्ट्रपति के नाम से सम्बोधित किया था। उसी समय दादा जी की अध्यक्षता मे श्री नन्दीश्वरद्वीप निर्माण कमेटी का गठन हुआ एवं १९८८ तक अध्यक्ष पद पर रहकर विशाल भवन का निर्माण कराया। दादाजी ने नन्दीश्वरद्वीप मे एक मेरु एव मुख्यद्वार के निर्माण मे आर्थिक सहयोग देकर कार्य को गति प्रदान की।

वर्तमान मे दादाजी नीचे लिखी सस्थाओ के पदाधिकारी है .

सरक्षक श्री नदीश्वरद्वीप निर्माण समिति, मढ़ियाजी जबलपुर ।

श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र कोनीजी, पाटन ।

श्री दि जैन मदिर, भेडाघाट, जबलपुर ।

अध्यक्ष श्री पार्श्वनाथ दि जैन मदिर, पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर ।

श्री गोपालसाह पूरनसाह परमार्थ ट्रस्ट, सिवनी ।

मत्री श्री भारतवर्षीय दि जैन परवार सभा, जबलपुर ।

श्री पार्श्वनाथ दि जैन मदिर, लार्डगज, जबलपुर ।

कोषाध्यक्ष श्री काशीबाई दि जैन औषधालय, जबलपुर ।

ट्रस्टी एव सदस्य श्री वर्णी दि जैन गुरुकुल, पिनहारी मढिया, जबलपुर ।

श्री दि जैन पुत्रीशाला, जबलपुर ।

श्री कस्तूरचन्द जैन हितकारिणी सभा, जबलपुर ।

दादाजी आज भी उपर्युक्त सभी सस्थाओ मे तन, मन और धन मे सक्रिय सहयोग देते रहते है। हम उनके दीर्घायुष्य की मङ्गलकामना करते है।

स. सिं. रतनचन्द जी, जबलपुर

आपके प्रतिष्ठान का नाम स सि धनपतलाल मूलचन्द जबलपुर है। आप स सि श्री मूलचन्द जी के सुपुत्र है। आपने सन् १९५८ मे मढ़िया जी के पहाड पर दाहिनी ओर श्री आदिनाथ मन्दिर बनवाकर मूर्ति की प्रतिष्ठा गजरथ चलवाकर करवाई थी, जिसमे करीब दो लाख दर्शनार्थी थे। बृहद् रूप से मनाये गये इस उत्सव मे विद्वत् परिषद् और ब्र पण्डिता चन्दाबाई जी आरावालो की अध्यक्षता मे भारतवर्षीय दि जैन महिला परिषद् का अधिवेशन हुआ था। स्थानीय सस्थाओ के अधिवेशन भी हुए थे। बहुत बड़ी प्रदर्शनी, नाटक मडली के दो थियेटर
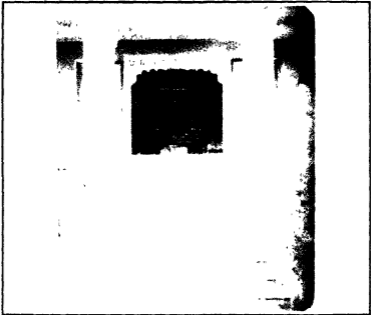
श्री आदिनाथ दि जैन मंदिर, मढिया जी, निर्माता · स सिं रतनचन्द पन्नालाल जैन, फर्म धनपतलाल मूलचन्द जैन

और भूलभूलैया आदि से युक्त दर्शनीय स्थल बनाया गया था। आपके फर्म मे बड़े भाई दीपचन्द जी का स्वर्गवास एक साल पहिले हो गया है। छोटे भाई नत्थूलालजी का भी स्वर्गवास हो गया है। सबसे छोटे भाई पन्नालाल जी आपके रचनात्मक कार्यो के सहयोगी रहे हैं।

इनकी पत्नी नई बहू मौगीबऊ के नाम से विख्यात है, जो बड़ी दानशीला और धर्मात्मा है।

स. सिं. रतनचन्द जी (मोंगे दद्दा)

स. सिं. मुन्नीलाल जी, जबलपुर

स मि मुन्नीलाल जैन

आप सवाई सिघई नारायणदास जी के दत्तक पुत्र है। आपने सन् १९१३ मे दालचन्द नारायनदास जैन बोर्डिग हाऊस की स्थापना की थी। तत्पश्चात् इसी मे सन् १९३९ मे हाईस्कूल और १९४९ मे महाविद्यालय की स्थापना हुई।

श्री दा ना जैन बोर्डिग हाऊस के ट्रस्ट के अन्तर्गत हाईस्कूल, कालेज और एक भव्य जिनालय है। बाद मे ट्रस्ट द्वारा तीन भव्य विशाल भवनो का सामाजिक कार्यो हेतु निर्माण किया गया। सि मुन्नालाल जी के बडे सुपुत्र डॉ देवकुमार सिघई के नेतृत्व मे ट्रस्ट निरन्तर प्रगति पर है।

स. सिं. रामचन्द्र जी, जबलपुर

(जन्म श्रावण शुक्ला २, संवत् १९७६)

आप जबलपुर के प्रतिष्ठित घराना श्री मोहनलाल पचौलीलाल जी के वशज स सि गरीबदास जी के नाती और श्री गुलजारीलाल जी के सुपुत्र है।

नगर के बब्बा जी कहे जाने वाले स. सि गरीबदास जी जबलपुर जैन समाज के प्रतिष्ठित सरपच थे। इनकी प्रतिष्ठा जबलपुर के सम्पूर्ण वैश्य समाज मे भी थी।

बब्बा गरीबदास जी का एक मन्दिर पुरानी बजाजी के युगल मदिर मे है तथा हनुमानताल के बड़े मदिर मे एक बेदी है, जिसका दालान सगमरमर से बना हुआ है।
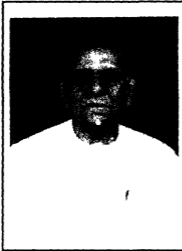
स सि रामचन्द जी जैन, जबलपुर

जबलपुर स्टेशन रोड पर राय-बहादुर मुन्नालाल रामचन्द्र एलगिन लेडी हास्पिटल है, जो बहुत बड़ी है। मुन्नालाल आपके सगे बड़े भाई थे। यह बंगला मय प्लाट के अस्पताल के लिये दान देने पर उन्हे रायबहादुर पद से विभूषित किया गया था।

पिसनहारी मढ़िया क्षेत्र में बन रहे नन्दीश्वरद्वीप के विशाल मंदिर के बावन जिनालयो मे एक जिनालय आपका है तथा नन्दीश्वर मंदिर नि-र्माण समिति मे भी आपका सक्रिय सहयोग रहा है।

जबलपुर के जवाहरगज मे आपका एक बड़ा क्लाथ मार्केट भी है, जिसमे अनेक दुकाने है।

परवारवीर बाबू शुभचन्द जैन, जबलपुर

'नेकी कर दरिया मे डाल' को जीवन का सिद्धान्त बनाकर धर्म, समाज तथा देशसेवा मे रत स्व. बाबू शुभचन्द जैन गढ़ावाल ने आजादी की लड़ाई मे अपना सर्वस्व भेटकर चार बार जेल यात्रा कर असीम यातनाएँ भोगी और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी स्वतन्त्रता सग्राम सेनानियो को मिलने वाली सरकारी पेशन या सहायता को आपने अपने जीवनकाल मे ही पूर्णतः नकार दिया। सेठ गोविन्ददास, श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र, श्री भवानीप्रसाद तिवारी और श्री सतेन्द्र मिश्र जैसे सर्वमान्य नेताओ मे बाबू शुभचन्द गढ़ावाल सहोदर स्वरूप जाने जाते थे। सन् १९३९ मे होने वाली त्रिपुरी कॉंग्रेस मे नेशनल ब्वाय स्काउट एसोसियेशन मे प्रेसीडेन्ट पद पर रहते हुये आपने गाँधी जी के अंगरक्षकों का सौभाग्य

परवारवीर बाबू शुभचन्द जैन, गढावाल
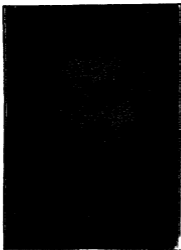
पाया था। सन् १९४४ मे जबलपुर के डी एन जैन कालेज मे होने वाले परवार सभा के अधिवेशन को सार्थक बनाने मे अथक परिश्रम आपने ही किया था। आप परवार सभा के आजीवन ट्रस्टी रहे है। आजादी की लडाई मे जब आप जेल यात्रा से लौटे तब सिवनी जैन समाज ने आपको **'परवारवीर'** की उपाधि से अलकृत किया था।

आपके दो सुपुत्र श्री सुरेशचन्द गढावाल और श्री नरेशचन्द गढ़ावाल है। ये दोनो भाई तन, मन और धन से आज भी समाजसेवा मे सलग्न है। सुरेशचन्द जी मढ़िया जी क्षेत्र के प्रधानमत्री है और उसके विकास कार्य मे रत है। श्री नरेशचन्द जी नन्दीश्वरद्वीप मदिर निर्माण समिति के निष्ठावान् कर्मठ कार्यकर्ता एव प्रधानमत्री है, जो मदिर जी को सुन्दर बनाने मे प्रयत्नशील है।

सिंघई बाबूलाल जैन

फर्म सिघई पेपर मार्ट कमानिया गेट, जबलपुर

आप गोटेगॉव के समीप पिडरई गॉव के मूल निवासी है। धर्म तथा समाज के प्रति श्रद्धावनत सिघई जी दुष्कर कार्य करने मे रुचि रखते है। तीर्थ क्षेत्र पिसनहारी मढ़िया के मत्री पद पर रहते हुए आपने क्षेत्र को सुरक्षित बनाने मे अपनी जान की बाजी लगाकर विरोधियो से केस लड़े और जीते। सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु लार्डगंज जैन मदिर के श्री शान्तिसागर भवन तथा धर्मशाला निर्माण मे आपका

सिघई बाबूलाल जैन, सिघई पेपर मार्ट
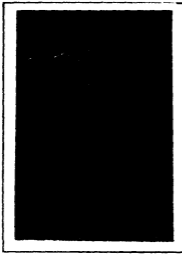
महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आपने सिहोरा रोड के समीप श्री बहोरीबन्द क्षेत्र मे भव्य जिनालय का निर्माण कार्य बहुत सुन्दर ढग से कराया है, जिसमे भगवान् शान्तिनाथ की प्राचीन भव्य प्रतिमा विराजमान है। वहाँ एक हाल भी बनवाया है। आप क्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष भी है। सम्प्रति आप श्री पिसनहारी मढ़िया मे श्री नन्दीश्वर द्वीप की रचना के निर्माण कार्य मे प्रधानमत्री के पद पर १९८२ से है तथा तन-मन से सहयोग दे रहे है। इनके सुयोग्य सुपुत्र सिघई केवलचन्द, सि महेन्द्रकुमार एव सि राजकुमार पारिवारिक दायित्व का निर्वाह कर रहे है।

श्री पूरनचन्द्र जी ड्योढ़िया, जबलपुर

श्री पूरनचन्द्र जी ड्योढिया ने मिलौनीगज मे विशाल जैन मन्दिर बनवाया था तथा अपनी सम्पत्ति का एक बहुत बड़ा भाग उसकी साज-सम्हाल के लिए लगाया था, जिससे आज भी उसकी व्यवस्था सुचारु रूप से चल रही है। इसमे विराजित मूर्तियाँ शास्त्रो मे उल्लिखित लक्षणो के अनुसार है।

श्री ड्योढ़िया जी जबलपुर के पुराने रहीस थे। ये नगर के सर्वमान्य एव प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

इनके सुपुत्र श्री बशीधर जी ड्योढ़िया थे, जिनकी रहीसी की बाते आज भी जबलपुर के बूढ़े-पुराने लोग उदाहरण के रूप मे पेश करते है।

स. सिंघई राजेन्द्र जैन भारल्ल, जबलपुर

स सि राजेन्द्र जैन भारल्ल

आप प्रारम्भ से ही राजनैतिक, साहित्यिक, सामाजिक एव सास्कृतिक क्षेत्र मे अग्रणी रहे है। आपके पिता स्वर्गीय स सि हुकमचन्द जी भा दि जैन परवार सभा के जन्म ही से कोषाध्यक्ष पद पर रहे है। उनके निधन के पश्चात् आप भी परवार सभा के कोषाध्यक्ष पद पर कार्यरत है।

वर्तमान मे आप जबलपुर विकास प्राधिकरण के सदस्य, श्री दि जैन पचायत सभा के मत्री एव शारदा सगीत महाविद्यालय के सहमत्री के पद पर है। सन् १९६२ मे भारतीय कॉग्रेस कमेटी ने मध्यप्रदेश से आपका चयन कर विश्व एकता भ्रातृत्व शिविर, यूगोस्लाविया के साथ ही फ्रान्स, ब्रिटेन और अरब देशो का भ्रमण आपको कराया था।

सिने कलाकार स्व. श्री रवि भारल्ल

(जन्म १५ नवम्बर १९६४ जबलपुर, निधन १५ फरवरी १९८९ मैसूर)

आप सस्कारधानी जबलपुर के युवा सिने कलाकार थे। इजीनियर होते हुए भी कला के प्रति समर्पित आपने धारावाहिक **'महाभारत'** मे धर्मराज इन्द्र की भूमिका का निर्वाह किया था। फिल्म **'प्यार'** और **'महासंग्राम'** मे भी आपकी लघु भूमिका रही है। धारावाहिक **'टीपू सुल्तान की तलवार'** मे आप महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे कि दुर्भाग्य

स्व रवि भारल्ल

से छायाङ्कन के समय मैसूर प्रीमियर स्टूडियो अग्निकाण्ड मे ८ फरवरी १९८९ को ९० प्रतिशत जल जाने के कारण यह कलाकार १५ फरवरी १९८९ को कला की दुनियॉ से विलीन हो गया। युवा कलाकार की मृत्यु से कला के क्षेत्र मे एक अपूरणीय क्षति हुई है।

यहॉ यह ज्ञातव्य है कि स्व रवि भारल्ल अ भा दि जैन परवार सभा के कोषाध्यक्ष स सि राजेन्द्र जैन के ज्येष्ठ सुपुत्र थे।

श्री मोतीलाल बड़कुल, जबलपुर

श्री मोतीलाल जी बड़कुल

आप जबलपुर जैन समाज के अग्रणी समाजसेवी है। ७५ वर्षीय श्री मोतीलाल जी अनेक समाजसेवी, धार्मिक एव व्यापारिक सस्थाओ से जुड़े है।

इनके पूर्वज श्री मल्लासा ओरछा नरेश छत्रसाल के खजाची थे। उनकी मृत्यु के बाद बडकुल परिवार हटा मे आकर बस गया और कपड़े का थोक व्यापार प्रारम्भ किया। इनके पूर्वजो ने हटा मे एक विशाल जैन मदिर बनवाया था, जो

आज भी है और श्री मोतीलाल जी उस मदिर के मोहत्तम है।

कारणवश इनके पिता श्री हरप्रसाद बड़कुल ने जबलपुर आकर अपने मित्र तुलाराम हलवाई से मिठाई बनाना सीखा। बाद में एक छोटी दुकान लगाकर मिठाई बनाना प्रारम्भ कर दिया। सबसे पहिले इनके पिता जी ने तेखुर मिलाकर खोवा की जलेबी बनाने का अविष्कार किया, जो तुरन्त लोकप्रिय हो गई और दूर-दूर तक जाने लगी।

श्री मोतीलाल जी ने बड़े होकर अपना व्यापार सम्हाला और सन् १९३९ मे जबलपुर मिष्ठान विक्रेता सघ की स्थापना की। बाद मे यह सघ प्रान्त व्यापी सस्था बन गया। आप प्रारम्भ से ही इस विशाल सस्था के मानद मत्री है।

प्रारम्भ मे आप जैन नवयुवक सभा के मत्री भी रहे है। सम्प्रति जबलपुर जैन पचायत सभा एव नन्दीश्वरद्वीप निर्माण समिति के सक्रिय कार्यकर्ता है। बडकुल जी के छोटे सुपुत्र श्री आनन्दप्रकाश बड़कुल दिल्ली मे कम्प्यूटर इजीनियर है।

स. सिं. कपूरचन्द जी, जबलपुर

अनोखे व्यक्तित्व के धनी स्व. श्री कपूरचन्द जी नीव के उन पत्थरो के समान थे, जो स्वय नही जाने जाते, किन्तु अनेक आलीशान इमारतो का भार अपने कन्धो पर लादे रहते है। इनका घराना कैरे-भूरे परिवार के नाम से प्रसिद्ध है। इनके भतीजे स्व. मोतीलाल जी सन् १९४२ के आन्दोलन मे जेल गये एव स्वतन्त्रता सग्राम सेनानियों मे शामिल होकर नाम अमर किया। स्व श्री कपूरचन्द जी सन् १९३२ से १९४२ तक स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन के सैनिको को तन-मन-धन से सहयोग देते रहे। यही कारण है कि आज भी समाज के पुराने कैरे-भूरे परिवार एव स्व कपूरचन्द जी का नाम समाज में आदर के साथ लिया जाता है।

स सि राजेन्द्रकुमार जैन
आत्मज स मि. कपूरचन्द जैन, सत्येन्द्र स्टोर्स

समाजसेवा का जो बीज उन्होने बोया था, वह उनके सुपुत्र स. सिं. राजेन्द्रकुमार जी मे भी अंकुरित हुआ है और वे भी देश तथा समाजसेवा मे समर्पितभाव से सहयोग कर रहे है। स. सि. राजेन्द्र-कुमार जी वर्तमान मे वस्त्र व्यवसाय मे सलग्न है। धार्मिक कार्यों मे आप मुक्त-हस्त से दान करते हैं।

पिसनहारी मढ़िया जी मे निर्माणाधीन नन्दीश्वरद्वीप रचना एव उसके सौन्दर्यीकरण मे आपका तन, मन, धन से विशेष सहयोग है। सन् १९८८ मे आचार्य विद्यासागर जी के सघ सहित जबलपुर चातुर्मास मे नि शुल्क भोजन व्यवस्था की नई योजना का सफलता पूर्वक सचालन आपने ही किया था। सत्येन्द्र स्टोर्स, जवाहरगंज, जबलपुर आपका व्यावसायिक प्रतिष्ठान है।

बाबू फूलचन्द एडवोकेट, जबलपुर

(जन्म : २९ अगस्त १९१४)

आप अवकाशप्राप्त अपर जिला व सत्र न्यायधीश है। आपने सन् १९३१ मे एल. एल. बी. उपाधि प्राप्तकर सन् १९४३ तक अधिवक्ता तथा १९६० तक न्यायाधीश के रूप मे कार्य किया है। तदन्तर सन् १९६० से १९८० तक हाई कोर्ट के अधिवक्ता रहे है।

पेशे से न्यायविद् होते हुए भी आपकी रुचि सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों मे भी निरन्तर बनी रही। सन् १९८१ मे पिसनहारी मढ़िया जी

बाबू फूलचन्द जी एडवोकेट, जबलपुर

क्षेत्र पर सम्पन्न षट्खण्डागम वाचना शिविर के आप सयोजक रहे है और सन् १९८४ के शिविर मे भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

पिसनहारी मढ़िया ट्रस्ट कमेटी के आप गत बीस वर्षो से अध्यक्ष एव सरक्षक है। वर्तमान मे आप आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य के स्वाध्याय, प्रवचन और सत्सग मे तल्लीन है।

स. सिं. खूबचन्द जी खादीवाले

(जन्म सन् १९०४, स्वर्गवास · सन् १९९०)

प्रतिष्ठान महाकौशल खादी भडार, मोतीभवन, जवाहरगज, जबलपुर।

स सिं खूबचन्द जी खादीवाले, जबलपुर

आप सरल और मृदुभाषी धर्मात्मा पुरुष थे। आपने १९४२ के स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे भाग लिया था, जिससे आपको जेलयात्रा भी करनी पडी। आप देशभक्त और कट्टर कॉंग्रेसी थे। पिसनहारी मढ़िया जी की पहाड़ी पर पत्थरो की बड़ी-बडी चट्टानो को खुद परिश्रमपूर्वक हटवाकर मैदान बनाया, इसलिये

आप शिलाचार्य कहलाये और उस मैदान मे चौबीसी बनवाने में सफलता प्राप्त की। आपने नन्दीश्वरद्वीप मंदिर के निर्माण मे करीब चालीस हजार रुपये का दान भी दिया है।

आप धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो में दान देते थे। अपने कुटुम्बियो की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति भी करते थे। आप मढ़िया जी मे वर्णी व्रती आश्रम के बनवाने और भेडाघाट के मंदिर के जीर्णोद्धार मे भी सहयोगी रहे है। आपकी पत्नी मैनाबाई बडी धर्मात्मा है। आपके सुपुत्र राजेन्द्रकुमार जी आपके उत्तराधिकारी हैं।

श्री अनन्तराम जी रंगवाले, जबलपुर

(जन्म टडाकेशली, रहली)

श्री अनन्तराम जी रगवाले

८० वर्ष की आयु मे आज भी नौजवानो को मात करने वाले श्री अनन्तराम जी रगवाले प्रत्येक धार्मिक कार्यक्रम मे उपस्थित रहते है। मेहदी और रग का व्यापार करते हुए आपने अपने हृदय को भी उदारता के रग मे रग लिया है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आशीर्शाद से तीर्थक्षेत्र पिसनहारी मढ़िया जी मे स्थापित ब्राह्मी विद्या आश्रम के लिये आपने अपनी धर्मपत्नी स्व श्रीमती पार्वतीबाई की पुण्यस्मृति मे लगभग डेढ़ लाख का दान देकर दो बृहद् हालो का निर्माण कराया है। आप भविष्य मे भी सहयोग करने का भाव रखते है। गरीब

कन्याओ की शादी, विधवाओ को आर्थिक सहयोग, विद्यार्थियो को पठन-पाठन हेतु छात्रवृत्ति देना इनका उद्देश्य रहता है। अपने चार पुत्रो को सुयोग्य बनाने के पश्चात् सम्प्रति आप दान, धर्म एव सेवा कार्यो मे सलग्न है।

श्री शिखरचन्द जैन, जबलपुर

श्री शिखरचन्द जैन, विनीत टाकीजवाले

आपके पिता जी का नाम श्री कपूरचन्द जैन है। धार्मिक एव सामाजिक कार्यो मे तन, मन और धन से सहयोग करते रहते है। जबलपुर की दि जैन पचायत सभा, दि जैन वर्णी गुरुकुल, श्री नन्दीश्वरद्वीप निर्माण समिति, जिला क्षय सघ और जबलपुर सिनेमा एसोसियेशन के अध्यक्ष, जिला प्रौढ़ शिक्षा सघ के उपाध्यक्ष तथा मध्यप्रदेश महावीर ट्रस्ट इन्दौर के जबलपुर सम्भागीय सयोजक रह चुके है। वर्तमान मे आप दि. जैन महासभा के सम्भागीय अध्यक्ष और डी एन जैन कालेज एव ट्रस्ट के उपाध्यक्ष है।

आप विनीत डीलक्स सिनेमा हाउस (जबलपुर) एव विनीत रोलर फ्लोर मिल (गोटेगॉव) के मालिक, गोटेगॉव सिनेमा हाउस एव किरन फिल्म्स डिस्ट्रीब्यूटर बुकिग **जबलपुर** (मिलिट्री एव डिफेन्स के समस्त सिनेमा) के प्रबन्धक है।

आपके चार पुत्रो मे से एक डाक्टर एव एक इजीनियर है।

सम्पर्क · २४२, नेपियर टाउन, जबलपुर।

श्री कमलकुमार जैन साड़ीवाले, जबलपुर

सघर्ष ही मानव जीवन का लक्ष्य है, यह मानकर सघर्षो के बीच कमलकुमार जी ने अपनी जीवन नौका आगे बढ़ाई। बचपन मे आपकी माँ का देहान्त हो जाने से आपकी बहिन श्री नन्हीबाई ने पुत्रवत् पालन किया। आपकी लगन शुरु से ही धर्म मे रही है। हमेशा मुनियो, व्रतियो और त्यागियो की सेवा में आगे रहते है। आपका पूरा परिवार अत्यन्त धार्मिक है। आपकी एक बहिन आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के सघ मे दीक्षित है, जिनका नाम आर्यिका शुभ्रमती जी है। श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल के नये सत्र मे प्रवेश आपके कठिन परिश्रम से हुआ। नन्दीश्वरदीप रचना, श्री वर्णी दि जैन गुरुकुल, श्री मुनि सघ व्यवस्था पचायत समिति और अखिल भारतीय जैन महासभा आदि अनेक सस्थाओ के आप ट्रस्टी एव पदाधिकारी रहे है और वर्तमान मे समाज की सेवा कर रहे है।
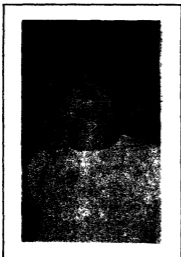
श्री कमलकुमार जैन, साडीवाले, जबलपुर

सन् १९८८ के जबलपुर चातुर्मास मे आपने आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज से पिच्छिका ग्रहण कर सपत्नीक आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है। आपकी बेटी ने भी पॉच वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत लिया है। आपके परिवार मे दो पुत्र एव तीन पुत्रियॉ है, जो धर्मभाव से ओत-प्रोत है।

स्व. श्री नेमचन्द जी, जबलपुर
(जन्म १५ अगस्त १९१८ नरसिंहपुर, स्वर्गवास २० सितम्बर १९६८)

स्व श्री नेमचन्द जैन

शालीनता के प्रतीक श्री नेमचन्द जी ने स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे तन, मन, धन न्यौछावर कर दिया था। आप गाँधीवादी सिद्धान्तो पर विश्वास रखते हुए कॉग्रेस के निष्ठावान सदस्यो मे अग्रणी थे। आप हमेशा ही शुभ्र खादी वस्त्र धारण किये हुए मुख पर मृदुल मुस्कान के साथ समाजसेवा मे बगैर किसी स्वार्थभाव के लगे रहते थे। कटु वचनो से किसी का दिल दु खे यह उन्हे पसन्द नही था। उनके इन्ही गुणो के कारण जबलपुर नगर कॉग्रेस कमेटी उन्हे अन्त तक मन्त्री पद सौंपे रही। जीवन का प्रत्येक कार्य शुद्धता से हो इन्ही भावो को ग्रहण कर आज उनके सुपुत्र नरेन्द्रकुमार न केवल प्रान्त के उद्योगपतियो मे अपितु समाज सेवियो मे भी अग्रस्थान पाये हुए है। श्री नेमिनाथ जैन पचायत मदिर का भव्य जीर्णोद्धार आपकी निस्पृहता का प्रतीक है।

प्रतिष्ठान नरेन्द्रकुमार चन्द्रकुमार एन्ड कम्पनी जबलपुर

लल्ला श्री भागचन्द्र जी

जबलपुर जैन समाज के सवाई सिघई गुलाबचन्द्र राजाराम जी ने जबलपुर के भव्य दि जैन बडा मन्दिर मे एक वेदी तथा दो जिनालयो का निर्माण कराया था। सन् १९२८ मे स सि राजाराम जी ने श्री पिसनहारी मढिया क्षेत्र मे पहली धर्मशाला का भी निर्माण कराया है।

लल्ला श्री भागचन्द्र जी

श्री राजाराम जी के कोई पुत्र न होने से उनकी पुत्री सिघैन सुन्दरबाई वारिस हुई। श्री भागचन्द्र जी से शादी होने पर सम्पूर्ण सम्पत्ति सम्हालने का उत्तरदायित्व तथा अधिकार श्री भागचन्द्र जी को प्राप्त हुआ तथा सम्पूर्ण जैन समाज ने उन्हे दामाद मानकर लल्ला जी का सम्बोधन दिया।

लल्ला श्री भागचन्द्र जी उस धर्मनिष्ठ परिवार के धर्मशील वारिस साबित हुए। अनेक वर्षों तक वे श्री दि जैन बडा मन्दिर तथा पिसनहारी मढ़िया का मन्त्री पद सम्हाले रहे। श्री दि जैन बडा मन्दिर का भव्य सगमरमरी कार्य एव चॉदी का रथ उन्ही के कार्यकाल मे बना। ऊपर की चौबीसी, मानस्तम्भ तथा अनेक जैन मदिर भी उन्ही की देखरेख मे बने।

आज भी इन्ही के सुपुत्र सि पूरनचन्द जी बडे मन्दिर का मन्त्री पद सम्हाले हुए है। उन्होने पिसनहारी मढ़िया मे अपनी माँ श्रीमती सुन्दरबाई जी की पुण्यस्मृति मे एक लाख रुपये दान स्वरूप देकर औषधालय तथा पुस्तकालय का शुभारम्भ किया है।

जबेरा .

सिं खेमचन्द जी, जबेरा

ये एक सम्पन्न घराने के है। समाजसेवा मे इनकी गहरी निष्ठा है। श्रीमन्त सेठ विरधीचन्द जी की पुत्री इनकी पुत्रवधू है। सेठ बिरधीचन्द जी के पश्चात् आप परवार सभा के मत्री रहे है।

टीकमगढ़ .

मध्यप्रदेश के हृदयस्थल ओरछा स्टेट की राजधानी टीकमगढ़ सुप्रसिद्ध है । धर्म और सस्कृति के क्षेत्र मे इसकी बहुत बड़ी भूमिका है । श्री पपौराजी, अहारजी एव बडागॉव — ये टीकमगढ़ से सम्बन्धित तीर्थक्षेत्र है । परवार समाज के अनेक घर पूर्व मे गुजरात से आकर इस रियासत मे आश्रय पाकर बसे है । उक्त तीर्थक्षेत्रो मे अनेक मन्दिर, विद्यालय, धर्मशालाएँ आदि संस्थाएँ है । जिले मे लगभग पन्द्रह हजार जैन समाज की सख्या है । सामाजिक कार्यों मे समाज के अनेक भाइयो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है ।

टीकमगढ़ जैन समाज के प्रमुख पुरुषो मे स. सि. भैयालाल सेठ, स सि सूरजमल भगवानदास, स सि ठाकुरदास, दानवीर नाथूराम बजाज, रियासत के प्रमुख खजाची श्री मुरलीधर पोतदार और पपौराजी मे रथाकार विशाल मदिर के निर्माता गगाधरजी तहसीलदार आदि का नाम प्रसिद्ध है ।

यहाँ के विद्वानो मे स्व. प. खुन्नीलालजी भदौरा, स्व. प ठाकुरदासजी और स्व प किशोरीलाल शास्त्री इत्यादि प्रमुख है ।

वर्तमान मे फूलचन्द जी भदौरा, मगनलाल जी गोयल, कपूरचन्द जी पोत-दार, रतनचन्द जी चन्देरा आदि समाजसेवियो के नाम उल्लेखनीय है ।

स्व रामचन्द्र चौधरी यहाँ के प्रमुख पच थे और अपने समय मे इनकी बहुत प्रतिष्ठा थी । ये धार्मिक अनुष्ठानो मे सदा आगे रहते थे ।

श्री मगनलाल गोयल, विधायक

आप एक अच्छे समाजसेवी एव राजनीतिज्ञ प्रमुख पुरुष है । आप अपनी लोकप्रियता के कारण मध्यप्रदेश विधानसभा के सदस्य चुने गये है । धार्मिक कार्यो मे आपकी अच्छी रुचि है ।

श्री कपूरचन्द जैन पोतदार, टीकमगढ़

(जन्म . ५ मार्च १९२९)

आप टीकमगढ़ निवासी श्री मुरलीधर पोतदार (पूर्व ओरछा रियासत के खजाची पोतदार) के खानदान के श्री पन्नालालजी के सुपुत्र है । पिताजी भीसमो-

श्री कपूरचन्द जैन पोतदार

गर ग्राम उ प्र. के लम्बरदार थे। आपको २७ वर्ष की आयु मे श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पपौराजी का मत्री पद समाज ने दिया। आपने परम पूज्य आचार्यश्री १०८ शिवसागरजी महाराज का ससघ पपौराजी मे चातुर्मास एव २६ वर्ष बाद पञ्चकल्याण एव गजरथ प्रतिष्ठा महोत्सव के आयोजनो का सफल सचालन किया है। आप जिला जैन पचायत के सगठन कर्ता एवं प्रथम निर्वाचित मंत्री तथा म प्र महावीर ट्रस्ट के स्थापना काल से ही ट्रस्टी है।

आप नगरपालिका परिषद् के सदरय एव जिले मे जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक के सस्थापक सदस्य व उसके मानद सचिव है तथा भगवान् महावीर बाल सस्कार केन्द्र के सस्थापक सदस्य है। वर्तमान मे दिगम्बर जैन महासमिति की टीकमगढ़ इकाई के अध्यक्ष पद से यथासम्भव समाज एव राष्ट्रसेवा मे सलग्न है। आपका परिवार भी सुशिक्षित है।

श्री बाबूलाल जैन सतभैया

श्री बाबूलाल जी जैन सतभैया, टीकमगढ़

आप धर्मप्रेमी है। समाजसेवा मे सलग्न रहते है। वर्तमान मे आप श्री अतिशयक्षेत्र पपौरा जी तीर्थक्षेत्र कमेटी के अध्यक्ष है।

श्री गुलाबचन्द जी जैन घमासिया, टीकमगढ़

श्री गुलाबचन्द जैन घमासिया

आप पुलिस विभाग मे सुपरिन्टेन्डेन्ट (आई पी सी) रहे है। अवकाश ग्रहण करने के बाद आप समाजसेवा मे सलग्न है।

तेंदूखेडा :

डॉ. शिखरचन्द जैन, तेंदूखेड़ा
(जन्म · ६ फरवरी, १९३८, तेंदूखेड़ा)

आप एक समाजसेवी एव उत्साही चिकित्सक है। सम्प्रति शासकीय सेवाओ से त्यागपत्र देकर निजी चिकित्सालय चला रहे है।

दमोह :

स्व. राजाराम बजाज, दमोह
(जन्म : संवत् १९५७ ; स्वर्गवास : आषाढ़ शुक्ला ७, संवत् २०४४)

आपके पिताजी धार्मिक प्रवृत्ति के थे, अत आपकी भी धर्म के प्रति अटूट आस्था थी। आप दर्शन किये बिना नही रहते थे, इससे आपको श्री दि जैन नन्हे मन्दिर जी से अधिक लगाव हो गया था और पूरी देख-रेख करने लगे थे। आपके भाई श्री दुलीचन्द जी ने उसी मन्दिर के पास के स्थान मे विशाल धर्मशाला एवं कुएँ का निर्माण कराया था। आपकी जैन सिद्धान्तो के प्रति अगाध श्रद्धा थी।

श्री राजाराम बजाज

श्री वर्णी दि. जैन पाठशाला (दमोह) की स्थापना एवं संचालन में आपका महत्त्वपूर्ण योगदान था। आप सामाजिक सुधार के कार्यो में सतत संलग्न रहते थे। अनमेल विवाह जैसी कुरीतियो को दूर करने का प्रयत्न करते थे। आप श्री बाहुबली व्यायामशाला एवं श्री नन्हें मन्दिर जी के अध्यक्ष थे। श्री सिद्ध-क्षेत्र कुण्डलपुर जी के अध्यक्ष पर पर करीब २५-३० वर्षो तक रहकर कार्य किया है। यह सब आपकी कार्य प्रणाली, लगनशीलता, मीठी वाणी और गरीबों को गले लगाने की कला का फल था। आपने स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लिया था, जिससे जेलयात्रा करनी पड़ी थी। मन्दिर जी मे जो नवीन हाल का निर्माण हुआ है, आपकी उसमे विशेष प्रेरणा थी।

आपके तीन सुपुत्र है। डॉ. सुमेरचन्द जी जैन निजी चिकित्सा कार्य करते हैं। श्री शिखरचन्द जी किराना का कार्य करते है। श्री धवलकुमार जी गल्ले की आड़त एवं मिल का काम करते है।

श्री रूपचन्द जी बजाज, दमोह (म. प्र.)

(जन्म : ४ अप्रैल सन् १९१२)

आपके पिता श्री दुलीचन्द जी बजाज महान् धर्मप्रेमी, समाजसेवी एवं दमोह के प्रतिष्ठित नागरिक थे। श्री रूपचन्दजी के निमित्त उनके अग्रजों ने दमोह में श्री बाहुबली व्यायामशाला का निर्माण कराया था। जहाँ उन्होंने बाल वीर परिषद् की स्थापना की और बच्चों तथा युवाओ में व्यायाम, योगासन एवं अनुशासन की अलख जगाई।

श्री रूपचन्दजी बजाज

युवावस्था मे ही आप स्वतन्त्रता सग्राम मे कूद पड़े। खादी का प्रचार, विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार व शराबबन्दी आन्दोलनो में सक्रिय रूप से जुड़ गये और अपनी लगन व निष्ठा से अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। १३ अगस्त १९४२ को दमोह गाँधी चौक मे स्वतन्त्रता सग्राम की आमसभा को सम्बोधित करते समय आपको गिरफ्तार किया गया। नागपुर, सागर और अमरावती जेलो में आपको रखा गया। वहाँ भी आप अपने दबग एव बहु आयामी व्यक्तित्व तथा देशप्रेम की लगन के कारण अपने अन्य साथियो के प्रेरणास्रोत रहे है। जेल मे आप अपना समय रचनात्मक गतिविधियो में लगाते रहे और कार्टून बनाने, कविताएँ, गजले लिखने तथा सूतकातने आदि के माध्यम से अन्य साथियो का मनोबल ऊँचा उठाते रहे। २५ मई १९४३ को जेल से रिहा होने के बाद बजाज जी ने आजाद हिन्द फौज की इकाई का गठन किया और नवजवानो मे राष्ट्रप्रेम की भावना के जागरण मे जुट गये।

स्वतन्त्रता के बाद बजाज जी ने राजनीति से अपने को अलग कर लिया और वे जैन समाज के उत्थान के कार्यो में जुट गये। आप समाज मे व्याप्त रूढ़ियो को मिटाने व सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रणेता बने और अनेक सामाजिक संस्थाओं की स्थापना तथा उनके विकास में सहयोग दिया। इसी क्रम मे आपने महिलाओ मे आत्म-निर्भरता जाग्रत करने की दृष्टि से स्वय के व्यय से उषा सिलाई कला महिला विद्यालय की स्थापना की। १९७४ में भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव मे सक्रिय रहने के कारण केन्दीय समिति द्वारा आपको प्रशस्तिपत्र एवं स्वर्णपदक से सम्मानित किया गया था।

फरवरी १९७५ मे सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर में अपूर्व व अविस्मरणीय श्रीमज्जिनेन्द्र पञ्चकल्याणक गजरथ महोत्सव का भव्य आयोजन बजाज जी के मत्रित्वकाल मे किया गया। आप तीर्थभक्त की उपाधि से विभूषित थे।

श्री रघुवरप्रसाद मोदी, दमोह

श्री रघुवरप्रसाद मोदी

सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी, अनेक शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओ के संस्थापक, निर्भीक जननेता एवं कर्मठ कार्यकर्ता श्री रघुवरप्रसाद जी मोदी का जन्म सन् १९०१ मे हुआ था। आप प्रारम्भ से ही अत्यन्त होनहार, तीक्ष्ण बुद्धि तथा निर्भीक स्वभाव के थे। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गाँधी से प्रभावित होकर आप स्वतन्त्रता आन्दोलन मे कूद पड़े। आपने स्वतन्त्रता के हर कार्य स्वदेशी प्रचार, नमक आन्दोलन, जगल सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन और सन् १९२० की क्रान्ति आदि सभी मे पूर्ण शक्ति से भाग लिया और जेल में शारीरिक यातनाएँ सही।

दमोह क्षेत्र की प्रत्येक राष्ट्रीय और सामाजिक गतिविधि पर श्री मोदी जी का प्रभाव और नियन्त्रण था। श्री गाँधीजी ने आपके निमन्त्रण पर स्वयं दमोह पधारकर जनता को सम्बोधित किया था तथा मोदी जी के कार्यो की सराहना की थी।

स्वतन्त्रता के पश्चात् मोदी जी मध्यप्रदेश विधान सभा के सदस्य चुने गये। १६ दिसम्बर १९७६ को लगभग ७५ वर्ष की आयु में श्री मोदी जी का स्वर्गवास हो गया।

शिक्षा के क्षेत्र मे श्री मोदी जी के दीर्घकालीन एवं व्यापक योगदान को ध्यान मे रखते हुए उनकी स्मृति मे शासन ने दमोह की राष्ट्रीय जैन उच्चतर माध्यमिक शाला का नाम श्री रघुवरप्रसाद मोदी रा. जैन उच्चतर माध्यमिक शाला रखा है।

आपके एक पुत्र श्री महेश मोदी इग्लैड मे डाक्टर हैं। श्री प्रेमचन्द मोदी भोपाल मे नयी दुनिया दैनिक पत्र के प्रतिनिधि व इन्चार्ज है। श्री रमेश मोदी आकाशवाणी रीवॉ मे इन्जीनियर है। श्री कोमलचन्द, सुरेशचन्द और अजित-कुमार मोदी दमोह मे व्यापार करते है। सभी सुयोग्य, समाजसेवी तथा सेवाभावी कार्यकर्त्ता है।

स्व. सेठ भागचन्द इटोरया

आप नगर के प्रतिष्ठित, समाजसेवी एव सुधारवादी प्रकृति के व्यक्ति थे। आप गजरथ विरोधी थे। आपके सुपुत्रो मे श्री निर्मलकुमार इटोरया अच्छे सहृदय कवि है। श्री वीरेन्द्रकुमार इटोरया उत्साही एव सामाजिक कार्यकर्ता है। आपने अपने परिवार द्वारा स्थापित **'सेठ भागचन्द इटोरया सार्वजनिक न्यास'** की ओर से अनेक धार्मिक ग्रन्थो का प्रकाशन किया है तथा न्यास की ओर से गरीबो की सहायता करते रहते हैं।

सिंघई प्रकाशचन्द्र एडवोकेट, दमोह

(जन्म : ८ अगस्त १९३४ ई.)

आप एक उत्साही कार्यकर्ता हैं। दमोह विधि महाविद्यालय की स्थापना श्री सिंघई जी के निमित्त हुई थी। आपने विधि की अन्तिम परीक्षा एव एम. ए. की परीक्षाएँ सागर विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की हैं। सन् १९६४ से वकालत का व्यवसाय प्रारम्भ किया। सन् १९६३ में ग्रीस, इटली, यूगोस्लाविया, मिस्र की विदेश यात्राएँ की। टेलीविजन पर योग के आसनों, आग के गोले से निकलना, ऑख से आधा इंच मोटी लोहे की क्षण मोड़ना, शरीर को लकड़ी की तरह कड़ा करने आदि का प्रदर्शन किया, जिसकी फिल्म

सिघई प्रकाशचन्द्र एडवोकेट

बनी थी, जो बाकायदा आज भी दिखाई जाती है। श्री कुण्डलगिरि के पर्वत पर सिंघई जी को स्वप्न देकर श्री छैघरिया मन्दिर के पश्चिम दिशा की ओर श्री सम्भवनाथ जी की प्रतिमा खुदाई से प्राप्त हुई है।

आप म. प्र. तीर्थक्षेत्र कमेटी के उपाध्यक्ष, म. प्र. दि. जैन महासमिति की इकाई के उपाध्यक्ष एव दि. जै. सिद्धक्षेत्र कुण्डलगिरि, कुण्डलपुर से ३२ वर्षों से जुड़े हुए है और उसकी कार्यकारिणी के सहमंत्री, उपाध्यक्ष और अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए क्षेत्र की प्रगति मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान मे कुण्डलपुर ट्रस्ट कमेटी के मत्री एव मैनेजिग ट्रस्टी है।

आपने सक्रिय राजनीति मे रहते हुए भी समाज की उन्नति एवं समाज-हित के कार्यों मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। श्री सिघई जी के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक योगदान को देखते हुए उन्हें भ. महावीर के २५०० वे निर्वाण महोत्सव के समापन समारोह मे स्वर्णपदक से सम्मानित कर प्रशस्ति पत्र भी दिया गया था। श्री सिंघई जी मृदुभाषी एवं समाज के लिये समर्पित कार्यकर्ता हैं। जिले की अनेक धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं से जुड़े हुए हैं।

बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी श्री सिंघई जी पत्रकार, लेखक और कलाकार के साथ ही एक पर्यावरणविद् के नाम से जाने जाते हैं। श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलगिरि, कुण्डलपुर की पर्वतमाला को हरा-भरा बनाने में श्री सिघई जी व उनके परिवार के सदस्यों नें महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और कर रहे हैं।

स्व. वैद्य कपूरचन्द विद्यार्थी, दमोह

(जन्म : ४ मार्च १९१८, दमोह ; स्वर्गवास : १२ दिसम्बर १९८७)

आप दमोह जिले के स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी थे। आपने आरोग्य शिक्षा पर एक योजना दी थी, जिसका शिलान्यास सेठ गोविन्ददास सांसद ने सन् १९६९ मे किया था। यह योजना शहर के मध्य जिला अस्पताल के सामने स्थित है।

वैद्य कपूरचन्द विद्यार्थी

आपके द्वारा लिखित साहित्य को सगमरमर के पत्थर पर उत्कीर्ण कर समाज ने सरस्वती शिशु मन्दिर एव नन्हे जैन मन्दिर दमोह मे लगवया है। समय-समय पर आपका साहित्य आकाशवाणी सीलोन एव छतरपुर से प्रसारित किया गया है, जो उनके गहरे चिन्तन एव प्रेरणादायी साहित्य सृजन का द्योतक है।

आप कई जैन सस्थाओ के सस्थापक थे, जिनमे 'बाल वीर परिषद्' प्रमुख है।

आप जिले के कुशल चिकित्सक रहे है। आपके पास दूर-दराज के गॉवो से इलाज के लिये मरीज आते थे। आप शान्त स्वभावी, सरल परिणामी एव गम्भीर स्वभाव के थे। आप एग्जिमा, मिर्गी, सन्तान हेतु निस्सतान दम्पती की एव पुराना सिरदर्द आदि रोगों की स्वनिर्मित दवा से चिकित्सा करते थे।

आपकी रचनाओ में **श्री कुण्डलपुर महावीर परिचय, श्री कुण्डलपुर महावीर पूजन** (१९४५) **विद्यार्थी बोध** (१९७८) **बाल स्वास्थ्य बोध**

(१९७९) **सन्तति सौरभ** (१९८६) एवं **सहस्त्रबोध** (अप्रकाशित) प्रमुख है। आपकी पत्नी श्रीमती सुशीलादेवी 'ललि' स्व बाबू पन्नालालजी चौधरी की सुपुत्री है। आपके एक सुपुत्र डॉ. नागेन्द्रनाथ विद्यार्थी और दो पुत्रियाँ डॉ. शिवा श्रमण और स्व. डॉ. यशस्वती श्रमण हैं।

बाबू ताराचन्द जैन

आप बैंक सेवा से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर के अध्यक्ष चुने गये है। आप अत्यन्त सेवाभावी एव सरल स्वभावी है। आपकी देखरेख मे कुण्डलपुर क्षेत्र की उल्लेखनीय प्रगति हुई है।

श्री हुकमचन्द्रजी खजरीवाले, दमोह

स्व श्री हीरालाल जी खजरीवाले एक आदर्श श्रावक थे। वे प्रतिदिन अभिषेक, पूजन एवं स्वाध्याय करते थे। उनके सातो व्यसनो का त्याग था।

श्री हीरालाल जी खजरीवाले

श्रीमती उजयारी बहू

वे मिलनसार एवं भव्य प्राणी थे। उनकी पत्नी का नाम श्रीमती उजयारी बहू है। इस दम्पती से छह पुत्र हुए, जिनमे श्री हुकमचन्द्र जी द्वितीय पुत्र है, जो वीर किराना भण्डार के नाम से दमोह मे किराना की दुकान करते है। आपके बच्चे भी आपके साथ व्यापार करते है। श्री हुकमचन्द्र जी एवं उनके सुपुत्र धार्मिक वृत्ति के है। श्री हीरालाल जी के चतुर्थ पुत्र श्री सी के. जैन राज्य परिवहन उड़नदस्ता मध्यप्रदेश (भोपाल) मे डिवीजनल मैनेजर पद पर नियुक्त है। पचम पुत्र डा शिखरचन्द (दन्तरोग विशेषज्ञ) एव षष्ठ पुत्र डॉ अशोककुमार कटनी मे निवास करते है।

श्री प्रेमचन्द जी खजरीवाले, दमोह

(जन्म · भाद्रपद शुक्ला, संवत् १९९०)

श्री प्रेमचन्द जी खजरीवाले, दमोह

आप अपने पिता श्री हीरालाल जी के ज्येष्ठ सुपुत्र है। आप व्यवसाय मे निपुण है। आपकी दुकान 'फैशन हाउस' के नाम से प्रसिद्ध है। एक अन्य दुकान 'हीरा शॉप' के नाम से प्रसिद्ध है। आपके चार सुपुत्र हैं— राजेन्द्रकुमार, नगेन्द्रकुमार महेन्द्रकुमार एवं अनिलकुमार। श्री प्रेमचन्द्रजी गम्भीर और सरल प्रकृति के हैं। जैन सिद्धान्त के श्रद्धालु है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की प्रतिदिन भक्ति, पूजन एवं स्वाध्याय में तत्पर रहते हैं।

आप श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी कमेटी में सन् १९७५ से १९८० तक सहमंत्री पद पर कार्यरत रहे हैं। वर्तमान में श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर

कमेटी के ट्रस्टी है। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर दमोह के भी सदस्य है और उस मन्दिर के जीर्णोद्धार मे भी आपने पूर्ण सहयोग देकर सुन्दर निर्माण कराया है। आप श्री वर्णी दि. जैन पाठशाला दमोह एव श्री उदासीन आश्रम कुण्डलपुर जी के भी सदस्य हैं।

सन् १९८९ मे १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी मे ससघ चातुर्मास किया था, उस समय आपने वहाँ पाँच माह तक रहकर पूरे संघ की सेवा औषधि एवं वैयावृत्ति आदि द्वारा की थी। आप पत्नी सहित चौका की व्यवस्था कर आहार भी देते रहे हैं। आपकी धार्मिक वृत्ति अनुकरणीय है।

स्व. श्री कस्तूरचन्द जी करेलीवाले, दमोह

स्व. श्री कस्तूरचन्द जी करेलीवाले

आपमे धार्मिक लगन बहुत थी। प्रतिदिन देवदर्शन एवं स्वाध्याय में भाग लेते थे। सामाजिक एवं धार्मिक कार्यो मे रुचि थी। सरलस्वभावी थे। आप लिखा-पढ़ी मे होशियार तथा ईमानदार थे, अतः लगातार २० वर्षों तक श्री सिद्धक्षेत्र कमेटी कुण्डलपुर के कोषाध्यक्ष पद पर रहे हैं। श्री वर्णी दि. जैन पाठशाला एव महिला ज्ञान मन्दिर आदि दमोह की स्थानीय संस्थाओ के भी कर्मठ सदस्य रहे हैं।

आपके सुपुत्र श्री गोकुलचन्द्र जैन, विजय होजरी, नया बाजार दमोह में अपना कार्य सम्पन्न कर रहे हैं। ये भी कर्मठ कार्यकर्ता हैं। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी की कमेटी में मंत्री पद पर हैं एवं क्षेत्र को पूर्ण सहयोग देते हैं।

स्व. सिंघई मोतीलाल जी खमरिया बिजौरावाले, दमोह

श्रीमान् सिघई मोतीलाल जी खमरिया
बिजौरावाले, दमोह

आप प्रारम्भ से ही धार्मिक रुचि सम्पन्न सयमी पुरुष थे। कस्बा मे रहते थे। वहाँ मन्दिर की पूर्ण देख-रेख करते थे। जीर्णोद्धार मे आप आगे थे, जिससे मन्दिर जी की व्यवस्था बनी रहे।

नित्य देव-दर्शन-पूजन उनकी चर्या थी । तीर्थयात्रा एव दान मे विशेष रुचि/प्रवृत्ति थी। धार्मिक कार्यो मे विशेष सहयोगी रहे। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी के गजरथ महोत्सव मे 'कुबेर इन्द्र' तथा दमोह के गजरथ महोत्सव मे पति-पत्नी भगवान् के माता-पिता बने थे। तब से आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर अच्छी तरह से सयमी जीवन व्यतीत करते रहे।

खमरिया जैन मन्दिर को जमीन दानकर स्थायी रूप से मन्दिर की व्यवस्था मे पूर्ण सहयोग दिया। आपके परिजन जबेरा में निवास करते है, जिनमे श्री रतनचन्द जी आदि प्रमुख है।

खमरिया ग्राम की सारी जनता आपको बहुत चाहती थी, जिससे आप हमेशा ग्राम पचायत के पंच और शाला कमेटी मे पूर्ण सहयोगी रहे है। आपका सम्पूर्ण जीवन सादगी पूर्वक व्यतीत हुआ और नवम्बर १९९० मे लगभग ७६ वर्ष की आयु मे समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

आपके सुपुत्र डॉ. आई. सी. जैन एवं सुपुत्री पुष्पा जैन हैं।

स्व. मूलचन्द गुलझारीलाल, दमोह
(जन्म : सन् १९१४, पिपरिया-टिकरी, दमोह, मृत्यु : २७ सित. १९८७)

श्री गुलझारीलाल बजाज, दमोह

आप मूलतः दमोह जिला के अन्तर्गत पिपरिया- टिकरी नामक गाँव के निवासी थे । प्रारम्भ मे स्थिति ठीक न होने से श्री जीवनलाल जी की प्रेरणा से दमोह आ गये थे । पढ़ाई का साधन कम था, अत आपकी शिक्षा बहुत कम हो पाई थी । आपके पिताजी धार्मिक वृत्ति के थे, अत. आप भी अपने पिताजी के साथ मन्दिर जाते थे। दमोह आने पर प्रतिदिन दर्शन-पूजन के बाद ही कोई काम करते थे । भोजन के बाद प्रारम्भ मे आप कपडा की फेरी लगाते थे । पुन छोटा कपड़ा का व्यवसाय किया और बाद मे थोक कपडा के व्यापारी बन गये, जिससे उनकी दमोह जिले के थोक कपडा व्यापारियो मे गणना होने लगी। ये मृदुस्वभावी एव निर्मल परिणामी थे। दमोह मे कोई भी व्रती, श्रावक, साधु, आर्यिका निराहार न रह जाये, इसलिये उन्होने मुनि सेवा समिति का गठन किया एवं धर्मशाला के एक कक्ष मे शुद्ध रसोई बनाने हेतु एक महिला का प्रबन्ध किया था ।

आप श्री वर्णी दि. जैन पाठशाला दमोह के सस्थापक, श्री महिला ज्ञान मन्दिर के अध्यक्ष, श्री उदासीन आश्रम दमोह एवं कुण्डलपुर जी के संचालक तथा श्री कुण्डलपुर कमेटी के सदस्य थे। आपने सन् १९७४ मे श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर मे गजरथ महोत्सव के समय शुद्ध आहार की व्यवस्था की थी और दमोह गजरथ महोत्सव मे भी सहयोग किया था।

आपने आचार्ग श्री विद्यासागर जी से प्रभावित होकर तीसरी प्रतिमा अगीकार कर ली थी, इससे वे भी व्रतियो की श्रेणी मे आते थे। अन्त मे भगवान का स्मरण करते हुये २७ सितम्बर १९८७ को आपका स्वर्गवास हो गया।

आपके तीन सुपुत्र है— श्री नेमचन्द जी, श्री पदमकुमार जी एव श्री विनयकुमार जी। ये धार्मिक है तथा दान देने की परम्परा को चालू रखे है।

श्री लखमीचन्द्र सर्राफ, दमोह

आप मूलत अभाना के निवासी है। आपके पिता श्री खूबचन्द्र जी धार्मिक प्रकृति के थे। वे मुनीम साहब के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके चार पुत्र थे, जिनमे श्री लखमीचन्द्रजी ज्येष्ठ थे। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती सुमतिरानी था।

श्री लखमीचन्द्र जी लिखा-पढ़ी मे बहुत चतुर थे। उनका स्वाध्याय मे बहुत मन लगता था। उन्होने जैनधर्म के कर्मग्रन्थो को कण्ठस्थ कर लिया था। व्यापार मे लूना, ट्रेक्टर आदि की एजेन्सी होने के कारण मैकेनिकल लाइन की जानकारी थी। खेती एव सर्राफा मे भी निपुण थे। धार्मिक कार्यो मे तत्पर रहते थे। ईमानदार थे। आप अनेक सामाजिक सस्थाओ के पदाधिकारी थे। श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर जी मे मानस्तम्भ के निर्माण कराने मे पूर्ण सहयोग रहा। आपने अभाना मे पैत्रिक भूमि दान देकर धर्मशाला का निर्माण कराया। तेंदूखेड़ा मे जमीन लेकर मन्दिर एवं धर्मशाला को दी एव सहयोग किया। नेमिनगर कालोनी के मन्दिर, बड़े मन्दिर, नसिया मन्दिर, अमरकंटक जी अतिशय क्षेत्र आदि को दान दिया। आचार्य श्री विद्यासागर जी के ग्रन्थों के प्रकाशन में सहयोग दिया। आपने आचार्यश्री से तीन प्रतिमाओं को ग्रहण किया था। आपने एक ग्रन्थ भी लिखा है, जो अभी अप्रकाशित

श्री लखमीचन्द्र सर्राफ

श्रीमती सुमतिरानी

है। आप जीवन भर समाजसेवा एव धार्मिक कार्यो मे समर्पित रहे है। जबसे आपने आचार्यश्री का सान्निध्य पाया, तब से परिग्रहपरिमाणव्रत ले लिया था। इनके छह पुत्र है— विमलकुमार, निर्मलकुमार, चन्द्रकुमार, ललितकुमार, तरणकुमार और कुँवरसेन। ये सभी धार्मिक है तथा दान देने मे इनकी रुचि है।

सिंघई कन्छेदीलाल जी, दमोह

(जन्म : भाद्रपद शुक्ला ४, संवत् १९८४)

दमोह मे इनके पितामह श्री सुनके सिघई जी ने सिंघई मन्दिर का निर्माण कराया था और श्री पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराके गजरथ भी चलवाया था। इनके पूर्वज मन्दिर जी मे आकर प्रतिदिन पूजा-पाठ एव शास्त्र-स्वाध्याय करते थे। धार्मिक रुचि वाले थे तथा मन्दिर की पूरी देख-रेख करते थे।

सिंघई श्री कन्छेदीलाल जी मृदु स्वभावी और सरल परिणामी हैं। मुनिभक्त भी हैं। ये मन्दिर जी की पूरी देख-रेख करते है। मन्दिर जी में ४ बेदियाँ बनी हुई हैं और सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं। श्री पार्श्वनाथ भगवान्

सिघई कन्छेदीलाल जी

की प्रतिमा अतिशयकारी है। वेदियो मे आकर्षण होवे इसलिये रग-चित्रकारी भी करवाते रहते है।

इनके ३ सुपुत्र है— श्री सन्तोषकुमार, श्री राकेशकुमार, और श्री सुनीलकुमार। ये तीनो भाई भी अपने पिता के पदचिह्नो पर चल रहे है। देव-शास्त्र-गुरु के सच्चे भक्त हैं। मुनियो की सेवा मे तत्पर रहते है।

दमोह मे जब भी मुनि, त्यागी, व्रती एव आर्यिका माताएँ आती है तब उनके लिये चौका लगाने तथा सेवा करने मे सम्पूर्ण परिवार तत्पर रहता है। सिघई जी वर्तमान मे श्री वर्णी दि जैन पाठशाला के अध्यक्ष है। सिघई मन्दिर जी के भी अध्यक्ष है। सामाजिक कार्यो मे रुचि लेते है।

स्व. पूरनचन्द जी, दमोह

(जन्मस्थान . वनगाँव ; स्वर्गवास १८ अगस्त १९९०)

स्व.श्री पूरनचन्द जी

आपका जन्म वनगाँव नामक ग्राम मे हुआ था। आपके पिता स्व मोतीलाल जी खेती एव साहूकारी का काम करते थे। श्री पूरनचन्द जी ने प्रारम्भ मे गल्ला व्यापार शुरु किया। कुशाग्र बुद्धि होने से दमोह आये और गल्ले की आड़त का कार्य प्रारम्भ कर दिया। बाद मे आपने 'वर्धमान दाल

मिल' का निर्माण कराकर दाल मिल चालू की, जो आज भी चल रही है ।

आपके पाँच सुपुत्र है— अभयकुमार, सुधीशकुमार, अनूपकुमार, अमितकुमार और अवनीशकुमार । ये सभी सुपुत्र अपने बब्बा एव पिताजी की तरह धार्मिक व दान देने मे आगे है ।

श्री गोकुलचन्द वकील

आप एक अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता एव प्रतिष्ठित व्यक्ति है ।

दलपतपुर :

यहाँ परवार समाज के लगभग पचास घर है । एक जैन मन्दिर भी है । यहाँ के सि. कुञ्जीलाल जैन प्रसिद्ध श्रावक थे । अन्य श्रावको मे सि. पंचमलाल वैसाखिया और नन्दकिशोर लोइया का नाम उल्लेखनीय है ।

श्री नेमीचन्द जैन, दिल्ली

श्री नेमीचन्द जैन, दिल्ली

आप पं. कुन्दनलाल जी जैन (कटनी) के सुपुत्र है । आपने रसायनशास्त्र मे एम. एस-सी. की उपाधि प्राप्तकर इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस बैंगलोर मे रहकर कुछ समय तक शोध कार्य भी किया है। आप सन् १९४२ से साहू शान्तिप्रसाद जी जैन के विविध प्रतिष्ठानो में कार्यरत रहे और सन् १९८० से सेवानिवृत्त हैं। आप साहू जैन ट्रस्ट के मानद मंत्री रहे हैं। आपकी साहित्य और सगीत आदि में विशेष रुचि है ।

भगवान महावीर के पच्चीससौवे निर्वाण महोत्सव पर आपने अपनी सूझबूझ से विविध धार्मिक प्रतीको का चित्राकन कराकर धर्म एव समाज की महती सेवा की है।

देवराहा :

जतारा (टीकमगढ़) के निकटवर्ती इस ग्राम मे परवार समाज के सात घर है तथा दो जिन मन्दिर है।

श्री सुन्दरलाल जैन

आप श्री जानकीप्रसाद जी के सुपुत्र है। आप एक उत्साही कार्यकर्ता एवं पेशे से शिक्षक है।

नरसिंहपुर :

यहाँ परवार समाज के लगभग ३०० घर है। जिन मन्दिर है। एक मन्दिर स्टेशन के पास के बाजार मे भी है।

सिं. नाथूराम जी

आप नरसिहपुर के प्रसिद्ध एव प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आपके द्वारा एक जिनमन्दिर का निर्माण कराया गया था।

वैसाखिया बंशीधरजी, नरसिंहपुर

आपका जन्म सवत् १९३५ में नरसिहपुर में हुआ था । आपके पूज्य पिता स्वर्गवासी परमेश्वरदासजी वैसाखिया साधारण गृहस्थ थे। उस समय अंग्रेजी की चार क्लास पढ़ लेना भी बहुत समझा जाता था, अतएव वे इससे अधिक विद्यालाभ न कर सके। स्थानीय स्कूल में एक वर्ष शिक्षक का काम करने के पश्चात् आप बस्तर स्टेट पुलिस विभाग में भरती होकर चले गये। वहाँ आप अपनी योग्यता और कुशलता के कारण बहुत ही अल्प समय में

सिपाही के पद से सबइन्सपेक्टर हो गये। कुछ समय पश्चात् आप तीर्थक्षेत्र कमेटी की तरफ से श्री मदारगिरिजी के उद्धार के लिए रवाना हो गए और आपने बडी ही योग्यता के साथ उस क्षेत्र को अपने अधिकार मे किया और सदैव के लिए दिगम्बरियो के कब्जे मे करा दिया। इससे पहले यह तीर्थ लुप्तप्राय. सा था और एक पाखडी साधु उस पर अधिकार जमाये हुए था तथा यात्रियो को बहुत ही तग किया करता था।

इस कार्य को समाप्त करने के पश्चात् आप श्री सम्मेदशिखरजी की तेरापन्थी कोठी का कार्यभार, जो उस समय तक बडी दुरवस्था मे था, सम्भालने चले गये। वहाँ का प्रबन्ध आपने पूरी-पूरी योग्यता और दक्षता के साथ किया। आपने वहाँ की धर्मशालाओ और मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाया। कोठी की कितनी ही जमीन पर ठीक इन्तजाम न होने की बजह से श्वेताम्बरियो ने अपना कब्जा जमा लिया था। आपने श्वेताम्बरियो की ओर से होनेवाली फौजदारी और मारपीट की कुछ भी परवाह न करते हुए उस जमीन पर दिगम्बरियो का पुनः अधिकार स्थापित किया और उस जगह को चारों ओर पक्के अहाते से घिरवा दिया। कोठी की आर्थिक दशा मे भी बहुत कुछ सुधार किया। शिखरजी का पहिला पहाड़ परवार प्रापर्टी के नाम से आज भी सरकारी रिकार्ड मे दर्ज है। आपकी तीर्थसेवा स्मरणीय रहेगी।

वैसाखियाजी कर्मठ थे। वे चुपचाप बैठनेवाले न थे। आपका ध्यान शीघ्र ही विश्वव्यापी असहयोग आन्दोलन की तरफ आकर्षित हुआ। आपने इस आन्दोलन मे जोरो के साथ भाग लेना शुरु कर दिया। आप भारत सरकार की मेहमानी भी नागपुर सत्याग्रह के अवसर पर कर आये है। आप को एक वर्ष की कड़ी कैद हुई थी। सरकारने आपको कुछ माह ही जेल मे रखकर छोड़ दिया। परन्तु आपने शहर मे पुनः आन्दोलन उठाया और जेल से बाहर आने के पश्चात् भी आप जेल जैसा भोजन करते रहे। आप कहा करते थे कि "यदि सरकारने हमे छोड़ दिया है तो क्या? जब हम इस काम पर तुले हुए हैं तो फिर भी जेल जाना पड़ेगा" और इसीलिए रूखी ज्वार की रोटी का ही भोजन करते रहे।

सरकारने पुन. आपको ६ माह की सख्त कैद दी, जिसे आपने सहर्ष हँसते-हँसते स्वीकार किया। धर्मनिष्ठ वैसाखिया जी का स्वभाव बड़ा ही मृदुल और हँसमुख था।

सिं. मौजीलाल जी, नरसिंहपुर

श्री सिघई जी बडे साहसी और कर्मठ व्यक्ति थे। सामाजिक तथा सार्वजनिक क्षेत्र मे उनका अच्छा प्रवेश था।

श्री सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्र की तेरापथी कोठी के मैनेजर पद पर रहकर आपने क्षेत्र की बडी सेवा की है। उस समय पर्वत पालगज राजा के स्टेट मे था तथा श्वेताम्बरो के बडे हुए प्रभुत्व के कारण अनेक बाधाएँ उपस्थित होती थी, परन्तु आप अपनी लगन तथा सूजबूझ से बाधाओ को दूरकर क्षेत्र की रक्षा करते थे। यह अपने को सि मौजीलाल परवार लिखा करते थे।

नवापारा राजिम .

यहाँ परवार समाज के ६ घर है। श्री जिन मन्दिर मे स सि सोनीलाल पल्टूलाल जी ने दूसरी वेदी बनवाई है। श्री सि धन्नालाल जी धार्मिक कार्यो मे सक्रिय भाग लेते है। श्री हुकमचन्द जी परवार दहेज के बहुत विरोधी है। वे दहेज के विरोध मे परचे आदि छपवाकर बॉटते रहते है।

नागपुर ·

नागपुर महाराष्ट्र प्रदेश का एक प्रमुख शहर है। यहाँ बुन्देलखण्ड एव उसके आसपास के क्षेत्रो से आकर बसे अनेक परिवार व्यापार मे सलग्न है। अपनी सामाजिक एव राष्ट्रीय सेवाओ के कारण समाज मे उन्हे प्रतिष्ठा प्राप्त है। नागपुर मे परवारपुरा और परवार मन्दिर परवार जैन समाज के गौरव के प्रतीक है। इस समाज ने मन्दिरो, धर्मशालाओ और विद्यालयो की स्थापना एवं उनका सफल सचालन करके अपनी उदारता का परिचय दिया है। रामटेक अतिशय क्षेत्र, कामठी अतिशय क्षेत्र, बाजार गॉव एव नागपुर का परवार मन्दिर परवार

ट्रस्ट द्वारा सचालित है। यहाँ नागपुर परवार जैन समाज के कतिपय प्रमुख व्यक्तियो के परिचय प्रस्तुत है।

श्री छोटेलाल मोदी, नागपुर

(जन्म : सन् १९०९, चितौरा, सागर, म. प्र.)

आप बचपन से ही प्रतिभाशाली रहे है। आपने अथक परिश्रम करके व्यापारिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र मे काफी उन्नति की है। दि. जैन परवार समाज (स्थानीय) के बारह वर्षो तक मत्री रहे है। जैन परमानन्द धर्मशाला के सन् १९५५ से ट्रस्टी और १९५९ से अध्यक्ष है। इसके अतिरिक्त महावीर एजुकेशन सोसायटी, जैन वीर क्लब आदि अनेक संस्थाओ से भी आप सम्बद्ध है।

श्री नानकचन्द जैन, नागपुर

(जन्म : सन् १९१६, रहली, सागर, म. प्र.)

श्री नानकचचन्द जैन

आप व्यापारी होते हुए भी समाजसेवा मे सतत तत्पर रहते है। सन् १९७५ से आप स्थानीय जैन परवार समाज के ट्रस्टी एव अध्यक्ष है। आपने नागपुर के परवार पाँच दि. जैन मन्दिर मे मारवल पत्थर और टाइल्स लगवाकर सम्पूर्ण मन्दिर की काया पलट दी है। पटनागज क्षेत्र (सागर) मे जीर्णोद्धार, स्थानीय जैन मन्दिर के प्राङ्गण मे बाहुबली स्वामी की वेदी का निर्माण आदि आपके विशिष्ट कार्य है। सम्प्रति आप शान्ति भवन के निर्माण मे संलग्न है।

श्री ताराचन्द मोदी, नागपुर

(जन्म . सन् १९२२, चितौरा ग्राम, सागर, म. प्र.)

आप होनहार कवि एव विद्वान् है। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सागर विद्यालय एव ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा मे सम्पन्न हुई। आपने १९३९ से नागपुर सेवादल कॉग्रेस मे रहकर देश की अटूट सेवा की है। इस क्रम मे आपको महात्मा गॉधी एव आचार्य विनोबा भावे का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ। स्वतन्त्रता सग्राम में घर-परिवार छोडकर अग्रेजो के खिलाफ भूमिगत रहकर सघर्ष किया। सन् १९४१ मे आपने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की नागपुर के चिकनिस पार्क मे व्यवस्था की। आप सन् १९६८ से स्थानीय महावीर एजुकेशन सोसायटी के सेक्रेटरी एव विद्यावती देवडिया हाई स्कूल के सचालक व सेक्रेटरी है। आप दहेज प्रथा के विरोधी है। स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी होने के कारण आपको महाराष्ट्र सरकार द्वारा सम्मान पत्र मिला है और पेन्शन भी मिल रही है। आप अनेक सस्थाओ से सम्बद्ध है। सन् १९६३ मे प्रकाशित '**बिखरे पुष्प**' नामक काव्य सग्रह आपकी साहित्यिक प्रतिभा का निदर्शन है।

श्रीमती विद्यावती देवड़िया, नागपुर

(जन्म सन् १९०६, ढाना, सागर, म. प्र.)

आप बचपन से ही तीक्ष्ण बुद्धि थी। आपका विवाह श्री पन्नालाल जी देवडिया से हुआ, जो एक अच्छे राष्ट्रीय एव सामाजिक कार्यकर्ता थे। विदुषी विद्यावती धर्मपरायणा, कवयित्री एव राष्ट्र के प्रति सतत समर्पित थी। स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे आपने जिस लगन एव धैर्य का परिचय दिया, वह नारी जगत् के लिये गौरव की बात है। राष्ट्रीय आन्दोलनो से जुड़ी होने के कारण आपको कई बार जेल जाना पडा। जब आजाद हिन्द फौज खतरे मे थी तब आपने अपना सम्पूर्ण जेवर दान स्वरूप भेट कर दिया था। आप स्थानीय धर्मशाला के निर्माता श्री फतेचन्द दीपचन्द की पुत्रबधू थी। आपने कॉग्रेस भवन के लिये भूमि दान दी, विद्यावती देवड़िया प्रसूतिगृह का निर्माण

कराया । एक मकान जो पन्नालाल कपूरचन्द देवड़िया के नाम था, उसे महावीर एजुकेशन सोसायटी को दान स्वरूप दिया, जिससे विद्यावती देवडिया हाई स्कूल और माध्यमिक विद्यालय दोनो सुचारुरूप से चल रहे है । सम्प्रति यहाँ ४५ अध्यापक कार्यरत है और करीब एक हजार विद्यार्थी आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर रहे है । पन्नालाल प्रायमरी पाठशाला भी चलती है । धर्मशाला मे एक कन्या पाठशाला भी आपके प्रयत्नो से कुछ वर्षो तक चलती रही है । स्व. विद्यावती देवडिया सामाजिक धार्मिक एवं कला के क्षेत्र मे अग्रणी महिला थी । उनके द्वारा सवर्द्धित सस्थाएँ उनके यशस्वी जीवन की परिचायक है ।

श्री पन्नालाल देवड़िया, नागपुर

(जन्म . सन् १९०१, कामठी)

आप निष्ठावान्, निर्भीक एव राजनीति निपुण कार्यकर्ता थे । आपने स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे खुलकर भाग लिया था, इसलिये अनेक बार जेल की यातनाएँ भोगनी पडी । आपने देश के लिये सर्वस्व निछावर कर दिया । पुराने मध्यप्रदेश के नागपुर शहर का सारा राजकरण आपके द्वारा ही चलता था। स्व रविशकर शुक्ल (भूतपूर्व मुख्यमत्री, मध्यप्रदेश) और कुञ्जीलाल दुबे के आप प्रमुख सलाहकार थे । आपसी विवादो को आप बडी सूझबूझ एव साहस के साथ निपटाते थे । स्व. पन्नालाल देवड़िया विनयशील, उदारमना एव त्याग की प्रतिमूर्ति थे। आप स्व. विद्यावती देवड़िया के जीवनसाथी थे ।

श्री पन्नासाव डोयासाव

(जन्म : सन् १८९९, निधन : सन् १९४५)

आप अत्यन्त दबंग एव प्रतिभाशाली पुरुष थे । आप कामठो मे सि. नारायणसाव नत्थूसाव के यहाँ वारिस बनकर नागपुर आये । व्यायाम कला मे आपको निपुणता प्राप्त थी, इसीलिये लखमा अखाड़े के उस्ताद थे । आपने एक वेदी स्थानीय मन्दिर मे तथा एक वेदी रामटेक के मन्दिर मे निर्मित कराई

थी। आपके ही प्रयत्नो से नागपुर मे परवारपुरा का निर्माण हुआ है। श्री भीकमचन्द जैन आपके सुपुत्र है।

सेठ फतेचन्द दीपचन्द, नागपुर

आपके पूर्वज टीकमगढ (मध्यप्रदेश) से व्यापार हेतु कामठी, नागपुर आये थे। आपको खन व माडी के व्यापार मे आशातीत सफलता मिली। समाज और धर्म के प्रति आपको काफी लगाव था। आपने सिवनी निवासी रायबहादुर गोपालीसाव पूरनसाव से एक उपयुक्त स्थान खरीदकर नागपुर मे परमानन्द दि जैन धर्मशाला का सन् १९२९ मे निर्माण कराया था और तत्काल ट्रस्ट को सौंप दी थी। आपने परवार पॉच मन्दिर मे वेदी प्रतिष्ठा भी कराई थी। अन्त मे आपने ब्रह्मचर्यव्रत अङ्गीकार कर समस्त धन धर्मशाला को दान स्वरूप भेट कर दिया था।

बाबू लखमीचन्द जैनी, नागपुर

(जन्म स्थान · बिलहरी, जबलपुर)

आपने जबलपुर बोर्डिंग मे रहकर शिक्षा प्राप्त की और सन् १९२० मे नागपुर मे आकर सर्विस करने लगे। आपने परमानन्द दि जैन धर्मशाला के ट्रस्टी एव मत्री के रूप मे अपनी सेवाएँ समाज को दी थी। आप कर्तव्यनिष्ठ, लगनशील और साहसी व्यक्ति थे।

श्री रतनचन्द पहलवान, नागपुर

(जन्म सन् १९०३, जलन्धर ग्राम, सागर, म. प्र.)

आप लखमा अखाड़ा के पहलवान है। आपने अनेक युवको को व्यायाम की प्रेरणा देकर पहलवान बनाया और देशसेवा के लिये तैयार किया। सम्प्रति आप लखमा अखाडा के अध्यक्ष है और अनेक सस्थाओ से जुडे है।

पनागर (जबलपुर) :

पनागर नगर की पुरानी बस्ती मे प्राचीन मन्दिरो का समूह है। यहाँ सोनागिर के भट्टारको की गद्दी थी। अब इसे अतिशय क्षेत्र के रूप मे मान्यता
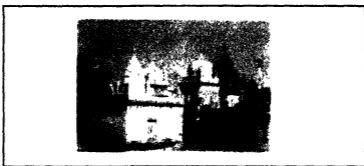
श्री अतिशय क्षेत्र पनागर के जैन मन्दिरों का समूह

प्राप्त है। इस क्षेत्र की देखभाल पनागर की समाज ही करती है। शरदपूर्णिमा के दिन यहाँ प्रतिवर्ष मेला भरता है और रात्रि मे शान्ति सभा के नाम से आम सभा का आयोजन होता है।

स्व. चौधरी टेकचन्द जी, पनागर

श्री चौधरी टेकचन्द जी यहाँ के प्रमुख पंच थे। हट्टे-कट्टे, ऊँचे-पूरे और सुन्दर थे। इनकी आवाज बुलन्द थी। इनको अपने विवादो को निपटाने के लिये जबलपुर और कटनी की पचायते कभी-कभी बुलाती थी। इनका परिवार बड़ा है।

श्री चाँदमल सोधिया, पनागर

(जन्म : १० जनवरी, १९३१)

आप मृदुभाषी, सरल स्वभावी एव धार्मिक व्यक्ति है। आपके पिता श्री सखमीचन्द सोधिया का व्यापार काफी समय तक बम्बई मे रहने

श्री चाँदमल सोंधिया

के कारण आप भी पिताजी के साथ बम्बई मे रहे और वही प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की। बम्बई से वापिस आकर आपने अपने गृहनगर पनागर मे व्यापार प्रारम्भ किया एव धार्मिक कार्यो मे जुट गये।

आचार्य श्री १०८ बाहुबली जी महाराज की प्रेरणा से पूज्य आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज की जन्मस्थली भोज ग्राम को तीर्थस्थली बनाने हेतु मानवता शान्तिपथ रथयात्रा निकली थी, उसके सम्पूर्ण मध्यप्रदेश मे भ्रमण कराने मे आपने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आप उस निधि के कोषाध्यक्ष भी रहे है।

आजकल आप इटालियन फेक्टरी एस ए एफ के काफी बडे कान्टेक्टर है। पनागर मे आपके दो फर्म है — (१) सोंधिया दरबारीलाल रामलाल और (२) सोंधिया आयल मिल्स। सम्प्रति आप अतिशत क्षेत्र पनागर के जिन मन्दिरो के जीर्णोद्धार हेतु कार्य कर रहे है।

सिंघई जवाहरलाल जैन, पनागर

(जन्म ८ अगस्त १९२८, पनागर, जबलपुर)

फर्म सिघई हीरालाल झब्बूलाल, पनागर

आपके पिताजी का नाम सिघई झुन्नालाल जैन है। बचपन से ही कुशाग्रबुद्धि एव साहसी होने के कारण आपने मात्र चौदह वर्ष की अल्पायु मे सन् १९४२ के स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे भाग लिया और स्थानीय जैन समाज के प्रधानमत्री का पद सम्हाला तथा दश वर्षों

सिघई जवाहरलाल जैन

तक निरन्तर अपनी सेवाएँ दी। सन् १९८६ मे अतिशय क्षेत्र पनागर का पञ्चकल्याणक गजरथ महोत्सव आपकी अध्यक्षता मे ही सम्पन्न हुआ था।

प्रारम्भ से ही समाजसेवा एव देशसेवा से जुड़े सिघई जी व्यापारिक क्षेत्र मे भी दक्ष है।सम्प्रति आप अतिशय क्षेत्र पनागर के जैन मन्दिरो के जीर्णोद्धार हेतु प्रयास रत है।

पन्ना :

लल्ला सिंघई श्री शिखरचन्द्र जी, पन्ना

पन्ना रियासत के आचलिक नगरो मे ये जैन समाज के मुखिया तथा राजमान्य थे। एक बार आपने शान्ति विधान का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया था, जिसमे पन्ना के महाराजा सा. को आमंत्रित किया था। रियासत की परम्परा के अनुसार जहाँ महाराजा सा जाते थे, वहाँ उनका राजकीय सिहासन भी जाता था। अत· राजकीय सिहासन के लिये लल्ला सिंघई ने सम्बन्धित विभाग को प्रार्थना पत्र दिया, किन्तु अधिकारियों ने उसे स्वीकृत नही किया। कारण पूछने पर महाराजा सा. ने उत्तर दिया कि मन्दिर मे भगवान् सिंहासन पर बैठते हैं, राजा नही। अन्त मे समारोह में महाराजा सा. आये और सर्वसाधारण के साथ दरी पर बैठे। महाराजा सा. ने मन्दिर को पाँच मोहरे भेट की तथा दो मोहरें माली को दी। ऐसा था लल्ला सिंघई जी का प्रभाव। आज उनके वंशज भी उनके पदानुगामी और धार्मिक वृत्ति के है।

सिं. बल्देवदास जी

ये एक स्वाध्यायी विद्वान् थे। पन्ना में हीरो की खदानें हैं, ये प्रायः उनका ठेका लिया करते थे। इस व्यापार मे इन्होने अच्छी कीर्ति अर्जित की थी। नगर मे आने वाले त्यागी, व्रती और विद्वानो का आदर करते थे तथा उनके भोजन-पान की व्यवस्था करते थे।

पेन्ड्रा ·

श्री बाबूलाल सिंघई, पेन्ड्रा

पेन्ड्रा सेनिटोरियम के कारण प्रसिद्ध स्थान है। स्टेशन के पास जो आबादी है उसे गोरेला कहते है। सि. बाबूलाल जी के पूर्वज मेघराज खूबचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध थे। ये अच्छे व्यवसायी एव धार्मिक वृत्ति के पुरुष थे। इनके घर मे इनका एक निजी चैत्यालय लगभग साठ साल से है। सिघई बाबूलाल जी उनके पदानुगामी थे।

सिघई बाबूलाल जी के सुपुत्र डा कमलकुमार जैन सम्प्रति कटनी मे निवास कर रहे है।

बक्स्वाहा ·

यहाँ के सि. कस्तूरचन्द फट्टा और सि. खेमचन्द फट्टा अच्छे धार्मिक व्यक्ति है।

बण्डा :

बण्डा मे धार्मिक जागृति अभी भी मौजूद है। यहाँ के ही एक मुनि है, जो वैद्यराज मुन्नीलाल जी की छोटी लड़की चि. शान्ति की कोख से उत्पन्न हुए है। उनका नाम श्री १०८ मुनि दयासागर जी है। वहाँ इस समय भी उत्कृष्ट श्रावको की परम्परा पाई जाती है। विद्वानों मे सबसे प्रमुख विद्वान् डाक्टर होकर भी प. डॉ बाबूलाल जी अनुज है। वे ओजस्वी वक्ता है। बण्डा मे परवारो के १०० से अधिक घर हैं।

बम्बई :

श्री सुनील लहरी

आप मूलतः दमोह के निवासी और टी. वी. सीरियल कलाकार हैं। आपने टी. वी के लोकप्रिय सीरियल रामायण मे भगवान रामचन्द्र जी के अनुज लक्ष्मण के रूप मे भूमिका अदा की है।

S. P. Jain
B. Com., F. C. A., Chartered Accountant

Director S P Business And Management Services (p) Limited Project Reports, Project Finance, Having office at Bombay
S P Capital Consultants (p) Ltd , Merchant Banking and Portfolio Management Services

S P Jain

Proprietor S P Jain & Associates, Chartered Accountants

Other Activities

Working President. Akhil Bharatvarshiya Digamber Jain Parishad

Secretary & Founder Member Madhya Pradesh Jair Mitra Mandal

Chairman (i) Dalamal Tower Premises co op Soc Ltd, (ii) Jogani Apts Co op Hsg Soc Ltd

Treasurer Nariman Point Commercial Complex Association, Bombay

Founder Member and Ex-secretary C A 's Association, Bombay

Jain Temple Khairana Donated two acres land by Grandmother for maintenance expenses of Temple at Khairana (M P)

School Donated Building for Saraswati Bal Mandir at Khairana

Trustee Chandra Prabhu Digamber Jain Mandir, Bhuleshwar

C D Jain Medical Centre (One Day Operation Clinic)

Chairman Catering Committee of 4th Regional Convention of Western India Hotel & Restaurant Association

Address for Correspondence Office 908, Dalamal Tower, 211, Nariman Point BOMBAY-400 021 Residence Flat 3, 10th Floor, Jogani Apartment, Dongarsi Cross Lane, Malabar-hill, BOMBAY-400 006

Telephone Nos. Office – 224945, 231571, 2872552
Residence – 8128478

चौधरी फूलचन्द्र जैन

चौधरी फूलचन्द (ट्रेडिंग) प्रा. लि.
ग्रेन पल्सेस मर्चेंट एण्ड कमीशन
एजेन्ट
छेडा भवन, मस्जिद सायडिंग,
३ रा माला, रूम नं. ४
दाना बन्दर, बम्बई-४०० ००९

फोन आफिस . ८६००१३,
निवास ४३७१७५४
Kailash Chaudhari
तार · Wheat King, Bombay-9

चौधरी फूलचन्द जैन

Other Concerns

Phones 868643

Cable DEDAMURI Bombay-9

4372201 Mukesh Chaudhari

MAK INTERNATIONAL

MANUFACTURERS REP. EXPORTERS & IMPORTERS
304 Chheda Bhavan Masjid Sidings Lane
Dana Bunder, Bombay-400 009 (India)

चौधरी रज्जूलाल मोतीलाल

(प्रो. चौधरी फूलचन्द एण्ड सन्स)

मनोजकुमार एण्ड कम्पनी

चौधरी ट्रेडिंग कम्पनी

सिद्धार्थ ट्रेडिंग कम्पनी

३०४, छेडा भवन, मस्जिद सायडिंग, दाना बन्दर,
बम्बई-४०० ००९
फोन : ५३० श्रेयांसकुमार चौधरी तार : अभय

श्री अभय इण्डस्ट्रीज

कमल छाप दालों के निर्माता
अशोकनगर (म. प्र.)

चौधरी फूलचन्द एण्ड सन्स

ग्रेन सीड्स मर्चेंट एण्ड कमीशन एजेन्ट
अशोकनगर, जि. गुना (म. प्र.)

बाँदरी :

मोदी नन्दलाल जी

आप श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी खुरई के सहयोगी थे। उनके साथ समाजसेवा करते रहते थे। पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी की सेवा व तत्त्वचर्चा मे उपस्थित रहते हुए उनके साथ पैदल यात्रा करते थे। आप तत्त्वज्ञ विद्वान् थे। समाज के विवाद सावधानी पूर्वक निपटा देते थे। आप जीवन भर व्रती रहे। परिमित परिग्रह मे अन्त तक जीवन यापन करते हुए समाधिपूर्वक सन् १९२५ मे स्वर्गवासी हो गये।

बीना :

श्री नन्हेंलाल जी बुखारिया, बीना

आपकी बचपन से देशसेवा में रुचि रही है। अनेक वर्षों तक बीना नगर में गाधी जी द्वारा चलाये गये सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन मे

सक्रिय भाग लिया है। सन् १९४२ के आन्दोलन मे आपने छह मास की सपरिश्रम कारावास की सजा भी पाई है। आप बीना के एक सुप्रसिद्ध कार्यकर्त्ता है। अनेक वर्षों तक नाभिनन्दन दि. जैन सभा के मंत्री रहे है। आप सिघई श्रीनन्दनलाल जी के लघुभ्राता हैं और जैनधर्म के अच्छे विद्वान् व दानी भी है।

सिं. परमानन्द जी

आप बीना समाज के प्रतिष्ठित एवं मुखिया थे। उदार होने के कारण दान मे अच्छी रुचि थी। आपके सुपुत्र आनन्दकुमार जी भी समाजसेवा में अग्रगण्य है।

श्री राजेन्द्रकुमार नृत्यकार

आप अच्छे नृत्यकार है। आपने अनेक धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवो मे नृत्य का प्रदर्शन कर लोकप्रियता प्राप्त की है।

बुढ़ार :

स्व. सिं. नानकचन्द जी,बुढ़ार

ये सिं. मोहनलाल जी उमरिया वालों के छोटे भाई थे। बुढ़ार (शहडोल) में रहते थे। अच्छे व्यवसायी, धर्मनिष्ठ और उत्साही व्यक्ति थे। स्वराज आन्दोलन में भाग लेने के कारण आपको दो वर्ष तक जेल यात्रा करनी पड़ी थी। स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों में आप का नाम अमर है। आपके नेतृत्व में बुढ़ार की नवयुवक पार्टी सुसंगठित थी, जो अपने अञ्चल के नगरों में होने वाले जैन उत्सवों में प्रभावना के लिए जाती थी। आपका परिवार सुशिक्षित और सम्पन्न है।

श्री नरेन्द्रकुमार सिंघई

(जन्म २९ सितम्बर १९३८, बुढ़ार, शहडोल)

श्री नरेन्द्रकुमार सिंघई

आप सिघई नानकचन्द जी जैन के सुपुत्र है। सम्प्रति आप भिलाई स्टील प्लान्ट भिलाई मे असिस्टेन्ट जनरल मैनेजर के पद पर सेवारत है।

अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति

बुढ़ार के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे प्रो सन्तोषकुमार जैन (देवरीवाले), श्री लक्ष्मीचन्द जैन (देवरीवाले) एव सि. प्रकाशचन्द जैन एम बी बी. एस का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

भोपाल :

श्री राजमल जैन लीडर, भोपाल

(जन्म : वि. सं. १९७९, भोपाल, म. प्र.)

आप स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी है। आपने भोपाल के विलीनीकरण आन्दोलन मे भारत के वर्तमान महामहिम उपराष्ट्रपति डॉ. शकरदयाल शर्मा के साथ जेल यात्रा की है। आप सन् १९५१ से १९६२ तक श्री दिगम्बर जैन उ. मा. विद्यालय भोपाल के सचिव रहे है तथा श्री दि. जैन परवार सभा भोपाल, श्री दिग जैन पंचायत कमेटी (रजि.) भोपाल एवं भगवान महावीर के २५०० वे निर्वाणोत्सव की जिला समिति में कीर्तिस्तम्भ निर्माण समिति के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके है। वर्तमान मे सार्वजनिक अपाहिज आश्रम तथा

श्री राजमल जैन लीडर, भोपाल

चेम्बर ऑफ कामर्स भोपाल के सक्रिय सदस्य और श्री दि जैन उ मा. विद्यालय भोपाल के अध्यक्ष है।

स्व. श्री राजकुमार जैन, भोपाल

श्री राजकुमार जैन शिक्षा और समाज के क्षेत्र मे निष्ठावान सेवक एव जाने माने वकील स्व बाबू नन्दकिशोर जी (चन्देरी) के योग्य उत्तराधिकारी थे। कीर्ति और प्रतिभा उनकी सहचरी थी। लोकव्यवहार मे वे दक्ष थे। वे मध्यप्रदेश के एक दक्ष अधिवक्ता, जाने माने रगकर्मी, विचार-सम्पन्न लेखक, सहृदय कवि और सुरुचि सम्पन्न कलाप्रेमी थे।

बहुमुखी प्रतिभा के कारण वे अनेक सामाजिक, सास्कृतिक एवं धार्मिक सस्थाओ के सरक्षक, अध्यक्ष, सचिव एव न्यासी रहे हैं। अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन जयपुर के वे प्रथम संस्थापक अध्यक्ष थे। जिनबिम्ब पचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव समिति विदिशा के वे मंत्री थे, जिसका उन्होने सफलता पूर्वक निर्वाह कर शानदार ढग से अविस्मरणीय पञ्चकल्याणक महोत्सव करवाया था। श्री शीतलनाथ दि. जैन बड़ा मदिर (परवार

स्व. श्री राजकुमार जैन, एडवोकेट

साथ) ट्रस्ट अन्दर किला विदिशा के वे अध्यक्ष थे एवं दिगम्बर जैन परवार पंचायत विदिशा की कार्यकारिणी के सदस्य और जैन समाज बहु उद्देशीय सहकारी समिति की प्रबन्धकारिणी के सदस्य थे। राजनीतिक क्षेत्र मे भी वे अग्रणी थे। जिला जनता दल विदिशा के वे अध्यक्ष थे।

श्री नन्नूमल जैन, भोपाल

आपका सम्पूर्ण परिवार धार्मिक है। आपने सवत् २००७ मे भोपाल के जैन मदिर झिरनो पर स्वाध्याय भवन का निर्माण कराया था। पुनः आपने सवत् २०२१ मे टी टी. नगर भोपाल मे मन्दिर का *निर्माण कराकर पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करायी, जिसमे म प्र के तत्कालीन* मुख्यमंत्री प द्वारकाप्रसाद मिश्र एव वित्तमंत्री मिश्रीलाल गगवाल आदि अनेक नेताओ ने भाग लिया था। इस अवसर पर समाज ने आपको सिघई पदवी से अलकृत किया था। बी एच. ई. एल. भोपाल के मन्दिर मे आपने तेरह फुट उत्तुङ्ग भगवान आदिनाथ की मूलनायक प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायी। गजबासौदा मे गजरथ महोत्सव के अवसर पर समाज ने आपकी सामाजिक सेवाओ से प्रभावित होकर आपको **जैनरत्न** की उपाधि प्रदान की थी। आप महावीर ट्रस्ट इन्दौर के आजीवन ट्रस्टी है। इसी प्रकार श्री दि. जैन पंचायत ट्रस्ट कमेटी भोपाल के अध्यक्ष है। आप जिला कॉग्रेस कमेटी भोपाल के कोषाध्यक्ष एव मत्री रह चुके है। भोपाल चेम्बर आप कामर्स इण्डस्ट्रीज के अध्यक्ष होने के कारण आपको भारत सरकार के उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने चेम्बर की रजत जयन्ती के अवसर पर सम्मानित किया था।

आपके अथक प्रयासो से भोपाल शहर के प्रमुख व्यावसायिक केन्द्र न्यू मार्केट, टी. टी. नगर के मध्य स्थित प्रमुख चौराहे पर भगवान महावीर स्वामी के पच्चीससौवे निर्वाण महोत्सव के शुभ अवसर पर

कीर्तिस्तम्भ के लिये शासन द्वारा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार टी. टी नगर, जवाहर चौक मे एक एकड़ भूमि तथा हबीबगंज मे दो एकड़ भूमि शासन द्वारा प्राप्त कराने में आपका सहयोग रहा है। इन दोनो स्थानो पर मन्दिर, धर्मशाला, विद्यालय और पुरातत्त्व संग्रहालय निर्माणाधीन है।

श्री कोमलचन्द लाहरी, भोपाल

श्री कोमलचन्द लाहरी, भोपाल

आप स्वर्गीय भगवानदास लाहरी (दमोह) के सुपुत्र है। आपकी उम्र लगभग ५७ वर्ष है। आप विशारद, साहित्यरत्न और सम्पादन कला विशारद है। आप **'मैं आया'** एव **'कलम की तलवार'** (साप्ताहिक) के सम्पादक तथा गैस एव टेलीफोन विभाग एवं रेलवे कन्ज्यूमर्स एसोसिएशन (भोपाल) के अध्यक्ष है।

श्री बदामीलाल दिवाकर

(जन्म : १७ फरवरी १९२८, बरेली, रायसेन)

श्री दिवाकर ने १९५१ मे हिन्दी दैनिक **'नव प्रभात'** भोपाल मे सह-सम्पादक के रूप मे पत्रकारिता यात्रा की शुरूआत की। १९५४ मे आप **'नव भारत'** भोपाल मे सह-सम्पादक हुए और १९५७ मे श्री दिवाकर एवं श्री महेन्द्रकुमार मानव ने भोपाल से साप्ताहिक **'पंचायत**

श्री बदामीलाल दिवाकर

राज' का प्रकाशन किया। आप १९६१ मे '**कृषक जगत्**' के सह-सम्पादक रहे तथा १९६४ से पुन. दैनिक '**नवभारत**' से सम्बद्ध है। पत्रकारिता के साथ-साथ आपने स्वतन्त्रता सग्राम तथा सहकारिता आन्दोलनो मे भी सक्रिय रूप से भाग लिया है। आप पत्रकार भवन समिति के उपाध्यक्ष भी है। १९८१ से आपने भोपाल से साप्ताहिक '**युग सम्बोधन**' का प्रकाशन आरम्भ किया है। वर्तमान मे आप पत्रकारिता के साथ-साथ अनेक सामाजिक, साहित्यिक एव धार्मिक सस्थाओ के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे कार्यरत है। श्री दिवाकर म प्र स्वतन्त्रता सग्राम सेनानी सघ के कोषाध्यक्ष भी है।

डॉ. ए. के. चौधरी, एम. डी.
(जन्म २५ जुलाई १९४३, पिपरी गॉव, जिला- गुना)

आपने सन् १९६० मे एम बी बी एस और सन् १९७१ मे ग्वालियर मेडिकल कालेज से एम डी किया है। आप श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मदिर इटारसी के सन् १९८२ मे अध्यक्ष रहे है। आप श्री महावीर निर्वाण समिति इटारसी आदि विविध समितियो के अध्यक्ष रहे है।

आप ग्वालियर मेडिकल कालेज की यूनियन के Merit Basis पर मत्री चुने गये थे। आप सामाजिक गतिविधियो मे हमेशा अग्रणी रहते है।

स्व. श्री मानकचन्द्र किशोरीलालजी, भोपाल

आपके कोई भी उत्तराधिकारी नही होने के कारण आज से लगभग ९० वर्ष पूर्व आपके व्यवसाय मे भागीदार श्री चुन्नीलाल दौलतरामजी ने आपके द्रव्य से जैनधर्म के शिक्षण हेतु एक भवन का निर्माण कराकर उसमे पाठशाला प्रारम्भ की थी, जो मानकचन्द्र किशोरीलाल दि. जैन पाठशाला के नाम से प्रसिद्ध रही है।

वर्तमान मे यह पाठशाला श्री दिगम्बर जैन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के नाम से चल रही है। इसकी उन्नति मे श्री राजमल लीडर का विशेष सहयोग रहा है। वर्तमान मे इस विद्यालय मे करीब १२०० छात्र-छात्राएँ अध्ययनरत है। मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल मे शिक्षा के क्षेत्र मे इस विद्यालय का अपना एक गरिमामय स्थान है। विद्यालय मे लौकिक शिक्षण के साथ-साथ नैतिक शिक्षा भी दी जाती है।

स्व. सेठ गोकलचन्द्र जी, भोपाल

आपके फर्म का नाम घासीराम गोकलचन्द्र जैन है। आपने लगभग ६० वर्ष पूर्व अपनी पत्नी श्रीमती गुलाबबाई की स्मृति मे छह हजार रुपये का दान देकर गुलाबबाई दि. जैन कन्या पाठशाला की स्थापना की थी। पुनः कुछ समय उपरान्त श्री सरदारमल जी सोगानी तथा श्री राजकमलजी पवैया की प्रेरणा से एक बहुत बड़ी हवेली बीस हजार रुपये मे कन्या विद्यालय हेतु क्रयकर विद्यालय ट्रस्ट को दान कर दी थी। यह विद्यालय जैनधर्म की शिक्षा के साथ-साथ लौकिक शिक्षण द्वारा समाजसेवा मे रत है। वर्तमान में लगभग चार सौ छात्राएँ निःशुल्क शिक्षा प्राप्त कर रही है। आपके इस आदर्श दान स्वरूप समाज ने आपको सेठ की पदवी से सम्मानित किया था।

स्व. सिंघई हजारीलाल बड़कुल, भोपाल

आपके फर्म का नाम तुलाराम हजारीलाल जैन है। आपने आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व सहयोगी मित्र श्री बागमल जी सर्राफ (पद्मावती पोरवाल, **फर्म** : छोगमल बागमल जैन) के साथ मिलकर झिरनो मे श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन मदिर का निर्माण कराया था। इस भव्य जिनालय का निर्माण तत्कालीन नबाब भोपाल की रुचि के आधार पर राज्य के कुशल इजीनियरो की देख-रेख मे कराया गया था तथा पचकल्याणक प्रतिष्ठा भी आप दोनो सज्जनो द्वारा करायी गयी थी। इस भव्य जिनालय मे विराजमान श्री १००८ भगवान नेमिनाथ का करीब १५ सौ वर्ष प्राचीन अति मनोज्ञ जिनबिम्ब है। यह जिनबिम्ब भोपाल से लगभग सौ किलोमीटर दूर बाडीग्राम के निकट अमरावत नामक ग्राम के प्राचीन खण्डहर से प्राप्त हुआ था।

स्व. श्री मुन्नालाल जी गुणवाले, भोपाल

आपने आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व भोजपुर मे प्राचीन जिन मदिर का जीर्णोद्धार करवाया था। आपके निकट रिश्तेदार श्री कमलापतिजी के पुत्र घासीराम जी ने सन् १९६५ मे जिन मदिर से एक किलोमीटर दूर एक धर्मशाला का भी निर्माण कराया था। भोजपुर को वर्तमान में शान्तिनगर भी कहा जाने लगा है। शान्तिनगर पर्यटनस्थल के विकास के प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री लालचन्द्र जी (टेक्सीवाले) है।

श्रीमती अमृताबाई जैन, भोपाल

ईस्वी सन् १९८५ मे पं. श्री राजकुमार जी मुँगावली वालों की विधवा पुत्रवधू श्रीमती अमृताबाई ने कुएं के निर्माण के साथ दो लाख रुपये भोजपुर जिन मदिर को दिए थे। इस राशि से जीर्णोद्धार तथा चार कमरों का निर्माण कराया गया है। म. प्र. पर्यटन सूचनालय भोपाल ने एक हाल तथा जल की व्यवस्था की है।

श्री विनयचन्द्र चौधरी, भोपाल

(जन्मतिथि : २५ अप्रैल १९२५)

आपने १९४२ से १९४७ तक स्वतन्त्रता संग्राम आन्दोलन मे भाग लिया है। आप १९६२ से निरन्तर ६ वर्ष तक कृषि उपज मडी के अध्यक्ष रहे है तथा १९६२ से १९७३ तक मडल कमेटी के अध्यक्ष रहे हैं। आप व्यापारी वर्ग की समस्याओ के लिए कई वर्षो तक प्रयत्नशील रहे है तथा श्री महावीर दि. जैन औषधालय (भोपाल) की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने मे महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। सन् १९८१ मे वर्धमान गृहनिर्माण सहकारी संस्था भोपाल का गठन कर समाज के अनेक व्यक्तियो को भूखण्ड उपलब्ध कराये तथा सस्था द्वारा ऋण दिलाकर भवन निर्माण कराने मे सहयोग दिया है। वर्तमान मे आप दि. जैन मदिर ट्रस्ट टी. टी. नगर भोपाल एव श्री दिगम्बर जैन पारमार्थिक ट्रस्ट विदिशा के ट्रस्टी है।

श्री विनयचन्द्र चौधरी, भोपाल

स्व. श्री फुन्दीलाल जी, भोपाल

आपके फर्म का नाम तेजराम फुन्दीलाल जैन है। आपने झिरनो के मंदिर पर नवीन वेदी का निर्माण कराकर प्राचीन तीन खड्गासन जिनबिम्ब विराजमान कराये हैं। इनमें से दो जिनबिम्ब सोनकच्छ के निकट (भोपाल-इन्दौर मार्ग पर) देवबड़ड़ा नामक स्थान से प्राप्त हुए थे। तीसरा जिनबिम्ब भोपाल रियासत के चकलदी ग्राम के निकट से प्राप्त हुआ था।

श्री रतनलाल जी, भोपाल

आपके फर्म का नाम पूनमचन्द रतनलाल जैन है। आपने आज से करीब ६० वर्ष पूर्व कुराना क्षेत्र, जो कि भोपाल-नरसिहगढ़ रोड पर स्थित है, पर १००८ श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मदिर का पुनर्निर्माण कराया था । भगवान आदिनाथ का जिनबिम्ब उस समय एक वृक्ष के सहारे तथा आधी जमीन के अन्दर दबा हुआ था। आप समाज के प्रतिष्ठित सहयोगियों के साथ उक्त स्थान पर गये और खुदाई कराकर जिन मदिर का पुनर्निर्माण कराया।

स्व. श्री पन्नालाल पंचरत्न, भोपाल

आपके फर्म का नाम जुम्मालाल पन्नालाल जैन भोपाल है। आपने भगवान शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ के तीन जिनबिम्ब वाले ध्वस्त मदिर का पुनर्निर्माण कराया था, जो समसगढ क्षेत्र भोपाल से लगभग २२ किलोमीटर दूर बिल्किसगज रोड पर स्थित है। ये जिनबिम्ब १८ फीट ऊँचे एव अत्यन्त कलापूर्ण व मनोरम है। इस मदिर मे एक शिलालेख सवत् १२८८ का है, जिसका अतिम अश अपठनीय है।

मड़ावरा ·

यहाँ परवार समाज के करीब १०० घर और ११ मदिर है, जिनमे आठ मदिर परवार समाज के भाइयो द्वारा बनवाये गये है। जमुनियाँ बाँध के कारण यहाँ का जिनमदिर भराव मे आ गया था। पं श्री खूबचन्द्र जी शास्त्री न्यायतीर्थ द्वारा सरकार से लिखा-पढ़ी करने पर मुआवजा के रूप मे समाज को पच्चीस हजार रुपया दिये थे। यहाँ नायक मुन्नालाल जी का प्रतिष्ठित घराना है। यहाँ का सोंरयावंश भी प्रसिद्ध है, उसके कई घर हो गये है। प्रो. खुशालचन्द्र गोरावाला, पं. गुलझारीलाल सोरया के सुपुत्र पं. विमलकुमार सोरया प्रतिष्ठाचार्य यही के निवासी है।

महरौनी :

यहाँ मे एक विशाल मंदिर है, जिसमे १६ वेदियाँ हैं। एक छोटा मन्दिर भी है।

सिंघई मथुरादास जी, महरौनी
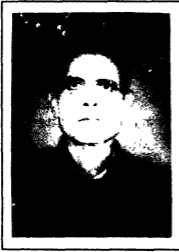
सिंघई मथुरादासजी

आप सिं. पन्नालाल जी के सुपुत्र हैं। आपने सं. २०१७ मे सम्पूर्ण खर्चा सहित श्रीमज्जिनेन्द्र पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा एवं गजरथ महोत्सव सम्पन्न कराया था। फलस्वरूप समाज ने आपको सिघई पदवी से विभूषित किया था। आप बहुत धार्मिक है। मुनियो की सेवा करके अपने मनुष्य जीवन को सफल मानते है। देव-शास्त्र-गुरु के सच्चे भक्त है। पूजा-पाठ एव स्वाध्याय मे तत्पर रहते है। आपके सुपुत्र श्री प्रसन्नकुमार जी भी पिताजी के पदचिह्नो पर चलते हैं।

वर्तमान में आप जैन समाज के अध्यक्ष हैं। आप कार्य कुशल और सरल स्वभावी है।

महरौनी मे ६-७ संस्थाएँ है। आप उन सभी के अध्यक्ष हैं। श्री शान्ति निकेतन इण्टर कालेज भी इन्ही की प्रेरणा से स्थापित किया गया था। आप सन् १९५५ से तन-मन-धन से सभी कार्यों मे संलग्न रहते हैं।

मुँगावली :

इस नगर में कई प्राचीन जैन मंदिर है। यहाँ पर जैनो की संख्या लगभग पच्चीस सौ है। यहाँ अनेक विद्वान् हुए है, जिनके नाम इस प्रकार हैं —

१. वैद्य केशरीमल आयुर्वेदाचार्य

२. स्व. डॉ. खुशालचन्द जी, आप गुना मे डी. एम. ओ. थे।

३. डॉ. शीलचन्द जी, आप रीवाँ मे प्रेक्टिस करते हैं। आँख के सर्जन हैं।

४. पं. नाथूराम जी डोगरीय न्यायतीर्थ।

५. डॉ. दुलीचन्द एम. एस-सी., आप वर्तमान में न्यूयार्क (अमेरिका) मे प्रोफेसर है।

सामाजिक सेवाओ की दृष्टि से यहाँ का मिठया परिवार और मोदी परिवार सुप्रसिद्ध है।

पं. राजकुमार जी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य (हाटपिपिल्या) यहाँ पर उदासीन आश्रम बनाकर निवास करते थे।

हकीम कुन्दनलाल जी
(जन्म : संवत् १९६८, मुँगावली)
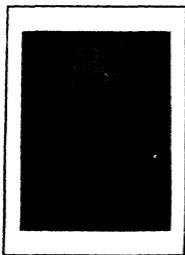
हकीम कुन्दनलाल जी

आप मुँगावली स्थित श्री दिगम्बर जैन औषधालय मे ४५ वर्षों तक प्रधान चिकित्सक के पद पर रहे हैं। संग्रहणी, आमवात एवं प्रतिश्याय (जुकाम) आदि रोगों के विशेषज्ञ हैं। वैद्य केशरीमलजी आयुर्वेदाचार्य (कटनी), डॉ. खुशालचन्द जैन एम. बी. बी. एस. और डॉ. शीतलचन्द जैन एम. एस. (नेत्र रोग विशेषज्ञ, मेडीकल कालेज रीवाँ) आपके अनुज हैं।

मैहर :

सिंघई पूरनचन्द जी, मैहर

मैहर मे इनका एकमात्र घर है। आज से लगभग ७५ साल पहले जब मैहर स्टेट में मैहर की शारदा देवी के मन्दिर मे पं. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री के पिता जी स्व. ब्र. गोकुलप्रसाद जी के प्रयास से बलिप्रथा बन्द हुई तो उस समय आपको उक्त मन्दिर का खजांची राजा की ओर से नियुक्त किया गया था। आपके सुपुत्र आज भी उसी निष्ठा के साथ उक्त कार्य का निर्वाह कर रहे हैं।

राघोगढ़ :

सेठ हीरालाल जी राघोगढ़ के प्रमुख कार्यकर्ता और प्रदेश के प्रमुख नेता थे। वे चाँदखेडी तीर्थक्षेत्र के बहुत काल तक मंत्री रहे है तथा काफी सेवा की है। यहाँ के पं. सुशीलचन्द्र जी भी प्रसिद्ध हैं।

रायपुर- इन्द्रावती कालोनी :

यहाँ के श्री विमलचन्द्र जी जैन सरकारी विभाग मे नापतौल के इंसपेक्टर हैं। इनके परिवार के सब भाई-बहिन शिक्षित हैं। इनके भाई श्री कमलकुमार जी एम. काम., एल. एल. बी. युवक समिति के अध्यक्ष हैं।

रायपुर- बूढ़ापारा :

यहाँ की परवार समाज के मुखिया का नाम जवाहरचन्द्र जी जैन है, ये एम. काम. हैं तथा किराना का व्यापार करते हैं। परिवार में अनेक सदस्य हैं।

ललितपुर :

यह नगर उत्तरप्रदेश का एक जिला एवं बुन्देलखण्ड का हृदयस्थल है। इस नगर एवं इसके आस-पास में जैन समाज का बाहुल्य है।

ललितपुर स्थित क्षेत्रपाल जी की गणना अतिशय क्षेत्र के रूप मे की जाती है। इसके समीप अन्य अनेक तीर्थक्षेत्र भी है, जिनकी स्थापत्य कला एव सस्कृति बेजोड़ है।

समीपस्थ अतिशय क्षेत्र एवं सिद्धक्षेत्र :

१. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री देवगढ़ जी
२ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री सेरोन जी
३ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री बानपुर जी
४. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री मदनपुर जी
५. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री बालाबेहट जी
६. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री चॉदपुर जहाजपुर जी
७ श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री गिरार (गिरि) जी
८. श्री दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र, श्री पावगिरि जी

ललितपुर के जैन मंदिर

१ श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी, ललितपुर
२. श्री बड़ा मदिर जी
३. श्री नया मदिर जी
४. श्री अटामन्दिर जी
५ श्री ऋषभनाथ जी मंदिर, नई बस्ती
६ श्री पार्श्वनाथ जी मदिर, नयी बस्ती
७. श्री सीमन्धर जिनालय
८. श्री आदिनाथ चैत्यालय

ललितपुर समाज द्वारा संचालित संस्थाएँ :

१. श्री वर्णी इण्टर कालेज
२ श्री शान्तिसागर दि. जैन कन्या पाठशाला
३. श्री वीर बालक विद्यामदिर
४ श्री भगवान महावीर नेत्र चिकित्सालय
५. श्री महावीर प्याऊ (जलगृह)
६. श्री आदिनाथ प्याऊ (जलगृह)

७. श्री वर्णी जैन कान्वेन्ट स्कूल
८. श्री स्याद्वाद बाल सस्कृत केन्द्र
९. श्री वीर सेवा संघ
१०. श्री वीर व्यायामशाला
११. श्री स्याद्वाद सिद्धान्त महाविद्यालय
१२. श्री वर्धमान सेवासंघ
१३. श्री जैन युवा जागृति संघ

ललितपुर के विद्वान् :

१. स्व. प. श्यामलाल जी न्यायकाव्यतीर्थ
२. स्व. प. राजधरलाल जी शास्त्री
३. प गुलाबचन्द जी न्यायतीर्थ
४ प. मुन्नालाल जी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य
५. प स्वरूपचन्द्र जी शास्त्री
६. प. जीवनलाल जी शास्त्री (स्याद्वाद सिद्धान्त महाविद्यालय मे कार्यरत)
७. प पवनकुमार जी शास्त्री (मुरैना विद्यालय में कार्यरत)

ललितपुर के स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी :

१. स्व. श्री मथुराप्रसाद जी जैन
२. स्व. श्री बाबूलाल जी घी वाले
३. स्व. श्रीमती किशनबाई जी जैन
४. स्व. श्री गोविन्ददास जी सिंघई
५. स्व. श्री हरिप्रसाद जी हरि पालीवाले
६. श्री सुखलाल जी इमलया
७. श्री हुकमचन्द जी बड़घरिया
८. श्री उत्तमचन्द जी कठरया
९. श्री वृन्दावन लाल जी इमलया
१०. श्री गोविन्ददास दाऊ पालीवाले
११. श्री अभिनन्दनकुमार टड़ैया।
१२. श्री हुकमचन्द बुखारिया
१३. श्री मोतीलाल टड़ैया
१४. श्री शिखरचन्द सिंघई
१५. श्री धन्नालाल गुड़ा
१६. श्री ताराचन्द जैन कंजियावाले
१७. श्री कुन्दनलाल मलैया
१८. श्री गोपीचन्द जैन, सादूमल
१९. श्री शिवप्रसाद जैन, जाखलौन
२०. श्री दुलीचन्द जैन, तालबेहट
२१. श्री शिखरचन्द मिठया
२२. श्री डालचन्द जैन
२३. श्री खूबचन्द जैन, पिपरई

सिं. बाबू शिखरचन्द जी, ललितपुर

सिघई श्री शिखरचन्द जी के पितामह श्री भूरेलाल जी व श्री अड़कूलाल जी दो भाई थे। ये मूलतः ग्राम पिठोरिया, जिला-सागर (म. प्र.) के निवासी थे। इन्होने वहाँ एक शिखरबन्द जिनालय का नवनिर्माण कराके मिती माह शुक्ल १० संवत् १९३१ को नवीन जिनबिम्बों को पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा एव गजरथ महोत्सव कराके मन्दिर जी में विराजमान किया था। प्रतिष्ठा महोत्सव मे उपस्थित समाज के श्रीमानों द्वारा इन्हें सिंघई पदवी से सम्मानित किया गया था।

सिंघई श्री अड़कूलाल जी के सुपुत्र सिंघई श्री कुन्दनलाल जी ने सन् १९८४ में ललितपुर (उ. प्र.) में आकर के स्वतन्त्र रूप से अनाज-तिलहन आदि का थोक एवं आढ़त का व्यापार प्रारम्भ किया। सन् १९४० मे अपने मझले सुपुत्र सिंघई शिखरचन्द जी के लिए थोक कपड़े का व्यापार प्रारम्भ किया। सिंघई श्री कुन्दनलाल जी स्वभाव से अत्यन्त मृदुल एवं सरल थे। धार्मिक एवं अन्य सामाजिक कार्यों में सदैव सहयोग देने में अग्रसर रहते थे। ललितपुर सबडिवीजन का एक कस्बा साढूमल में स्थापित श्री दि. जैन संस्कृत पाठशाला के मंत्री एवं ललितपुर का पब्लिक औषधालय, जो कि आपके अथक प्रयास से ही सन् १९३२ में प्रारम्भ हो सका था, के प्रारम्भ से ही मन्त्री पद का कार्यभार जीवन के आखिरी क्षणों तक सम्भाले रहे। इसके अतिरिक्त ललितपुर की अन्य संस्थाओं में भी सक्रिय योगदान देते रहे। आप स्वाभिमानी एवं स्पष्ट भाषी थे।

यह पैतृक गुण एवं विचारधारा सिंघई श्री शिखरचन्द जी में भी नैसर्गिक रूप से पाई जाती है। शैशव काल से ही स्वतन्त्र चिन्तन की तरंगें मन में दौड़ा करती थी। विद्यार्थी जीवन में ही काँग्रेस की प्राथमिक सदस्यता ग्रहण कर काँग्रेस के कार्यकलापों में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। मन्दिरों के प्रबन्धक पद, आडीटर पद व श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी की मैनेजिंग कमेटी के मन्त्री पद का कई वर्षों तक

कार्यभार सम्हाला। इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक संस्थाओ मे सक्रिय सहयोग दिया। सन् १९४० में कपड़ा कन्ट्रोल अवधि के दौरान तत्कालीन थोक वस्त्र विक्रेता एसोसियेशन के मन्त्री रहे व कालान्तर में जिला झाँसी के थोक वस्त्र व्यवसायी सघ की स्थापना होने पर उसके भी मन्त्री निर्वाचित किये गये। सन् १९४२ मे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने जब अपनी गिरफ्तारी हो जाने के समय देशवासियो को 'करो या मरो' का नारा दिया, तब इनका (श्री शिखरचन्द्र जी का) घर मे चुपचाप बैठे रहना भी कैसे सम्भव था, अतः ये ब्रिटिश शासनतन्त्र के बर्बरता पूर्ण दमनचक्र की परवाह न करते हुए इस जन आन्दोलन में कूद पड़े। दिनाक २८ अगस्त सन् १९४२ को दफा १४४ भंग करके ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जुलूस निकालने के अपराध मे गिरफ्तार किये गये और कोर्ट द्वारा एक वर्ष का सपरिश्रम कारावास व एक सौ रुपये का अर्थदण्ड दिया गया। अर्थदण्ड वसूल न होने पर दो माह की अतिरिक्त सपरिश्रम कारावास की सजा दी गयी और जिला कारागार झाँसी मे बन्द कर दिया गया। वहाँ से दिनाक ५ अप्रैल १९४३ को बी क्लास के बन्दी के रूप मे जिला कारागार फैजाबाद को स्थानान्तरित किये गये। जेल से मुक्त होने के बाद अभी तक ६९ वर्ष के होने के बावजूद सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियो मे उसी उमग एव उत्साह के साथ कर्मठता पूर्वक कार्य कर रहे है।

सेठ श्री जिनेश्वरदास टड़ैया, ललितपुर

(जन्म : माघ कृष्णा १०, संवत् १९७३)

आपके पिता स्व. सेठ पन्नालाल टड़ैया प्रसिद्ध समाजसेवी और दानी पुरुष थे। उन्होने अनेक जनकल्याणकारी कार्य किये है। श्री जिनेश्वरदास जी भी एक सामाजिक कार्यकर्त्ता है। आपने अपनी धर्मपत्नी के स्वर्गस्थ होने पर उनके संकल्प के अनुसार कमलाबाई जिनेश्वरदास फण्ड बनाया और उस फण्ड से श्री सीमन्धर जिनालय के निर्माण में बहुत योगदान दिया है। आप

सेठ श्री जिनेश्वरदास टड़ैया [illegible]

श्री दि. जैन पंचायत ललितपुर के अध्यक्ष रह चुके है। आपके कार्य-काल मे समाज मे अच्छी व्यवस्था रही, जिससे समाज मे शान्ति एव सौहार्दपूर्ण वातावरण बना रहा। क्षु श्री १०५ गणेश प्रसाद जी वर्णी महाराज के चातुर्मास के समय ललि-तपुर नगर मे जब श्री वर्णी जैन इण्टर कालेज की स्थापमा हुई तो आप उसके प्रथम प्रबन्धक बने। आप बहुत उदार और शान्तिप्रिय है।

श्री हुकमचन्द जी टड़ैया, ललितपुर

(जन्म पौष कृष्णा १, संवत् १९७४)

सेठ मथुरादासजी टडैया

आपके पिता सेठ श्री मथुरा-दास जी टडैया अपने समय के विशिष्ट समाजसेवी थे। उनका क्षेत्र-पाल मन्दिर जी के जीर्णोद्धार एव विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। समाज के असहाय भाइयो एव विधवा बहिनो को सदैव सहयोग देते रहते थे। इससे समाज मे आपका प्रमुख स्थान था। सच्चे देव-शास्त्र व गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा एव भक्ति थी। उसी के मुताबिक श्री हुकमचन्द टडैया भी धार्मिक विचारों वाले अच्छे

श्री [illegible] टड़ैया ललितपुर

समाजसेवी है। आपने भी श्री अतिशयक्षेत्र क्षेत्रपाल के प्रबन्धक पद पर रहकर बहुत कुशलता से कार्य सम्हाला है। अन्य धार्मिक सस्थाओ एव क्षेत्रो को भी दान देते रहते है। वर्तमान मे श्री सीमन्धर जिनालय के लिये अपनी बहुमूल्य जमीन देकर मन्दिर जी के निर्माण मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आपके तीन पुत्र है— सजयकुमार, राजीवकुमार और सदीपकुमार।

श्री अभयकुमार टड़ैया, ललितपुर

श्री अभयकुमार टडैया, ललितपुर

स्व श्री निहालचन्द्र जी टड़ैया ललितपुर नगर के प्रतिष्ठित श्रावक थे। उनके तीन पुत्र है— श्री अभयकुमार जी, श्री अक्षयकुमार जी और श्री अजयकुमार जी। श्री अभयकुमार जी कुशल कार्यकर्त्ता, समाजसेवी एव दान देने मे तत्पर रहते है। आप सीमन्धर जिनालय के सदस्य, श्री वर्णी कालेज के पूर्व प्रबन्धक, श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ़ के विकास मत्री, ललितपुर शाखा व्यापार मडल और तीर्थ सुरक्षा कुन्दकुन्द कहान

समिति बम्बई के सदस्य है तथा श्री कमलाबाई जिनेश्वरदास ट्रस्ट के मंत्री भी है। आपके छोटे भाई श्री अजयकुमार जी युवा वैज्ञानिक हैं और सम्प्रति इंग्लैण्ड मे है।

श्री नन्दकिशोरजी खजुरिया, ललितपुर
(जन्म : सन् १९३०)

आपके पिता स्व श्री मुन्नीलाल जी मोदी खजुरिया गाँव के निवासी थे। वे व्यापार एव कृषि कार्य करते थे। उनके तीन पुत्र हुए— श्री नन्दकिशोर जी, श्री हुकमचन्द्र जी एवं श्री हीरालाल जी।

श्री नन्दकिशोरजी खजुरिया, ललितपुर

श्री नन्दकिशोर जी सरल स्वभावी एव कुशल व्यापारी है। धार्मिक और सामाजिक कार्यो मे रुचि लेते है। क्षेत्रो का जीर्णोद्धार करने मे सहायता करते है। स्वय ईमानदारी का जीवन व्यतीत करते है और दूसरो को उसकी शिक्षा देते है।

श्री नन्दकिशोर जी के ५ पुत्र है— श्री कुन्दनलाल जी, श्री अशोककुमार जी एडवोकेट, श्री सतीश कुमार जी एडवोकेट, श्री राजेशकुमार जी एडवोकेट एव डॉ. सुनीलकुमार जी।

श्री हुकमचन्द जी खजुरिया, ललितपुर
(जन्म : सन् १९३३)

आप मिलनसार होने के कारण कक्कू जी के नाम से जाने जाते है। आप मधुरभाषी और सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं। अच्छे राजनीतिज्ञ भी है।

श्री हुकमचन्द जी खजुरिया, ललितपुर

ललितपुर नगरपालिका के वाइस चेयरमैन, जिला कॉंग्रेस (इ) कमेटी के कोषाध्यक्ष एवं नगर कॉंग्रेस कमेटी के महामत्री है। आप दो बार काग्रेस (इ) की ओर से चुनाव भी लड़ चुके हैं।

आप दि. जैन पचायत ललितपुर के ६ वर्षो तक अध्यक्ष रहे है। देवगढ़, सेरोन और बानपुर आदि क्षेत्रो के सरक्षक है। तीर्थो और जनकल्याणकारी योजनाओ मे अपने द्रव्य का सदुपयोग करते है। आपका मोटर ट्रान्सपोर्ट का मुख्य व्यापार अलकार बस सर्विस के नाम से जाना जाता है। सामाजिक कार्यो एव उत्सवो मे नि शुल्क बस सेवा द्वारा समाज का सहयोग करते है। आपके पॉच पुत्र है— श्री अजितकुमार जी एडवोकेट, श्री शान्तकुमार, श्री राजीवकुमार, श्री अनिल कुमार एव श्री राहुलकुमार।

श्री हीरालालजी खजुरिया, ललितपुर
(जन्म सन् १९३६)

आप धार्मिक रुचि सम्पन्न एक सामाजिक कार्यकर्ता है। आप ग्राम खजुरिया के १५-२० वर्षो से निर्विरोध ग्रामप्रधान चुने जा रहे है। श्री दि जैन अतिशय क्षेत्र सेरोन के अध्यक्ष पद पर सन् १९८१ मे निर्विरोध निर्वाचित हुये थे और तब से अब तक उस पद पर बने हुये है। आपने क्षेत्र के विकास मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। क्षेत्र पर नेत्र एव दन्त-चिकित्सा शिविरो का भी आयोजन करते है। दो बार खजुरिया मे सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन कर चुके है।

श्री हीरालालजी खजुरिया, ललितपुर

आप उत्तराञ्चल दि जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, देवगढ क्षेत्र एव बानपुर क्षेत्र के सदस्य है तथा मदनपुर तीर्थ के सरक्षक रह चुके है। दि जैन पचायत ललितपुर के वरिष्ठ उपाध्यक्ष है। श्री दि जैन महासमिति आदि सस्थाओ से जुडकर सामाजिक कार्यो मे महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे है।

आपके तीन पुत्र है— डा सुरेशचन्द्र जी, श्री बाहुबलिकुमार जी एल एल बी एव श्री मनोजकुमार जी बी ए।

श्री हीरालाल सर्राफ, ललितपुर

(जन्म सवत् १९७६)

आपके फर्म का नाम महेन्द्रकुमार प्रभातकुमार सर्राफ है।

आप स्व श्री बाबूलाल जी के सुपुत्र है। आपका जीवन धार्मिक एव सामाजिक कार्यो मे निरन्तर लगा रहता है। आप सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के परम भक्त है। क्षेत्रो एव स्थानीय मन्दिरो का जीर्णोद्धार कराने मे सहयोग करते है। आपने अटा मन्दिर जी मे वेदी का निर्माण एव श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ मे जीर्णोद्धार कराया है। श्री अतिशय क्षेत्र सेरोन जी मे पाण्डुकशिला का निर्माण और अटा मन्दिर जी मे भगवान् अभिनन्दन नाथ की मूर्ति सहित मढिया का निर्माण करवाया है। आप श्री क्षेत्रपाल जी ललितपुर मे ६० वर्षो से प्रतिदिन पूजन कर रहे है तथा दो बार श्री सिद्धचक्रमण्डल विधान का आयोजन कर चुके है।

श्री हीरालालजी सर्राफ

श्रीमती अनन्तीबाई सर्राफ

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती अनन्तीबाई धार्मिक विचारों की है । अटा मन्दिर मे महिला समाज की १५ वर्षो से अध्यक्षा है । कार्य का सचालन कुशल ढग से करती है । अटा मन्दिर जी मे नवीन निर्माण कार्यो मे स्वय सहयोग देती है एव महिला समाज को दान के लिए प्रेरित करती है । आपके तीन पुत्र है— श्री वीरेन्द्रकुमार, श्री महेन्द्रकुमार एव श्री प्रभातकुमार ।

सिं. बाबूलाल जैन चड़रऊवाले

सिंघई बाबूलाल जैन चड़-रऊवाले, ललितपुर

आप मूलत चडरऊ ग्राम के निवासी है । आपके फर्म का नाम बाबूलाल जितेन्द्रकुमार जैन आडतिया (नवीन गल्ला मण्डी) है । लगभग २५-३० वर्षो से ललितपुर मे रहते हैं ।

आप कुशल व्यापारी एव सामाजिक कार्यकर्ता है व सामाजिक कार्यो मे दान देने मे तत्पर रहते है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती शान्तिबाई भी धार्मिक रुचि सम्पन्न महिला है। आपके ३ सुपुत्र है— श्री नरेन्द्रकुमार जी, श्री जितेन्द्रकुमार जी एव श्री प्रदीपकुमार जी, जो आपके साथ मिलकर कार्य करते है।

श्री बाबूलाल कठरया, ललितपुर

आप श्री वैद्य मुन्नालाल जी कठरया के सुपुत्र है। धार्मिक एव सामाजिक कार्यो मे सदैव तत्पर रहते है। आपके पुत्र भी धार्मिक है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती चम्पा बहिन धार्मिक कार्यो मे रुचि रखती है और श्री दि जैन मुमुक्षु मडल महिला समाज की सदस्या है।

श्री बाबूलाल कठरया

श्री बाबूलाल जी आयुर्वेदिक दवाइयो के कुशल निर्माणकर्ता है। भारत पेट्रोलियम के सहयोगी सस्थान टी. के. डी के केरोसिन के जिला वितरक है। आप सीमन्धर जिनालय, ललितपुर के ट्रस्टी भी है। आपके तीन सुपुत्र है— डॉ. अरुणकुमार कठरया, श्री सन्तोषकुमार (एक्साइज इन्सपेक्टर) और श्री जयकुमार।

चौधरी रमेशचन्द्र जैन, ललितपुर

(जन्म : ५ जुलाई १९४४)

आपके फर्म का नाम न्यू इडिया ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन है। आप एक उत्साही इजीनियर नवयुवक एवं सामाजिक कार्यकर्ता हैं। वर्तमान में आप श्री

स्व श्री शिखरचन्द्र जी

चौधरी रमेशचन्द्र जैन

दि जैन पचायत के सहमत्री तथा ट्रान्सपोर्ट एसोसिएशन ललितपुर के महामत्री है। लायन्स क्लब ललितपुर के डायरेक्टर भी है।

आपके पिता स्व श्री शिखरचन्द्र जी ने सबसे पहिले ट्रान्सपोर्ट का कार्य प्रारम्भ किया था। वे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के भक्त थे। अत रमेशचन्द्र जी भी उनके मार्ग पर चल रहे है। धार्मिक एव सामाजिक कार्यो मे पूर्ण सहयोग देते रहते है। तीर्थक्षेत्रो के जीर्णोद्धार के प्रति भी आपका विशेष लगाव है।

विदिशा .

प्रदेश की कृषि मडियो मे विदिशा नगरी का श्रेष्ठतम स्थान है। यह वेत्रवती नदी के तट पर बसी ऐतिहासिक नगरी है। भगवान् शीतलनाथ स्वामी के गर्भ, जन्म एवं तप कल्याणक से पवित्र इस नगरी मे दिगम्बर जैन परवार समाज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्ष १९८९ मे बॉझल्ल गोत्रीय श्री जवाहरलाल जी गुलाबचन्द जी बड़कुल द्वारा आयोजित गजरथ महोत्सव के अवसर पर जैन परवार पचायत विदिशा ने आदर्श सामूहिक विवाह का आयोजन कर रचनात्मक कार्य किया है।

यहाँ पर स्थित लुहागी, उदयगिरि, विजयमन्दिर आदि प्राचीन दर्शनीय स्थान है। इनका सम्बन्ध जैन धर्मावलम्बियो से है। भगवान् शीतलनाथ स्वामी का गर्भ, जन्म व तप कल्याणक होने से उदयगिरि पर्वत का विशेष महत्त्व है। अत यह तीर्थस्थल भी है। विदिशा मे श्री शीतलनाथ दिगम्बर जैन बडा मन्दिर (परवार साथ) अन्दर किला प्राचीन जिनालय है, इसका सचालन रजिस्टर्ड ट्रस्ट के सचालक मण्डल द्वारा किया जाता है।

श्री शीतलनाथ दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर (परवार साथ) ट्रस्ट अन्दर किला

यह मन्दिर लगभग ३०० वर्ष पुराना है। पहिले इसी स्थान पर एक कच्चा जैन मन्दिर था। अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे सिघई परिवार के श्री जुगराज जी के समय मे इसे पक्का बनाने का निर्णय कर लगभग छिहत्तर हजार रुपये का चन्दा एकत्रित कर कार्य प्रारम्भ किया गया। मन्दिर का निर्माण पूरा होकर प्रतिष्ठा कार्य धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

यह मन्दिर अत्यन्त भव्य एव विशाल है। इसमे एक अतर चौक व दो बाह्य चौक है। विशाल लोहे के फाटक से प्रविष्ट होकर हम पहले चौक मे पहुँचते है। द्वार के दाहिनी ओर मन्दिर का कार्यालय एव धर्मशाला है। सामने की ओर महिलाश्रम एव इसकी ऊपरी मजिल पर विशाल स्वाध्याय भवन एव प्रवचन हाल है। बाई ओर औषधालय भवन एव पाठशाला भवन निर्माणाधीन है। बाई ओर ही जिनालय का प्रवेशद्वार है। यह उत्तर-पूरब है। इसमे से होकर दूसरे बाह्य चौक मे पहुँचते है। दक्षिण मे जिनालय व अन्य तीन दिशाओ मे सुन्दर प्रस्तर निर्मित स्तम्भो पर आधारित दो मजिला गेलरी है। प्रवेशद्वार के ऊपर पाँच मजिला छतरी है, जिसके ऊपर स्वर्णिम छवियुक्त शिखर सुशोभित है।

मन्दिर का निर्माण १०-१२ फुट ऊँची चौकी पर किया गया है। मन्दिर का द्वार उत्तर दिशा की ओर है। मन्दिर के भीतर लगभग १६ फुट लम्बा-चौड़ा तीसरा चौक है। चौक के दो तरफ आठ वेदियाँ है। दाहिनी

श्री १००८ शीतलनाथ दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, विदिशा, (म प्र.)
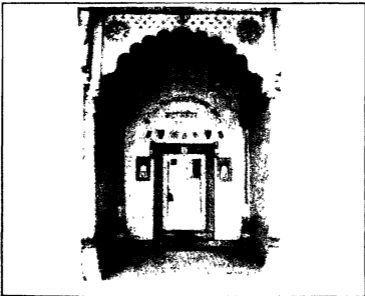
श्री १००८ शीतलनाथ दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर का प्रवेशद्वार

ओर गर्भालय मे समवशरण, एक विशाल वेदी पर ३ विशाल (३ $\frac{१}{२}$ फुट ऊँची) व अन्य अनेक प्रस्तर व धातु प्रतिमाएँ विराजमान है। बाई ओर शास्त्र भण्डार है, जिसमे हजारो शास्त्र सगृहीत है। अनेक हस्तलिखित शास्त्र भी इस संग्रह मे है। प्रतिमाओ मे कुछ ११वी-१२वी शताब्दी की है। सातवी शताब्दी की भी एक प्रस्तर निर्मित प्रतिमा है। चौक के चारो ओर कलात्मक प्रस्तर स्तम्भ है। चारो ओर दीवार व छत पर विविध रगो द्वारा निर्मित सुन्दर चित्रावली है। कॉच का काम भी दर्शनीय है।

विदिशा नगरी मे सिघई श्री मानकचन्द मूलचन्द जी के परिवार द्वारा सन् १८७८ मे एवं सिघई श्री जवाहरलाल गुलाबचन्द जी बड़कुल बॉझल्ल गोत्रीय परिवार द्वारा सन् १९८९ मे पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का भव्य आयोजन कर धर्म की प्रभावना की गई है।
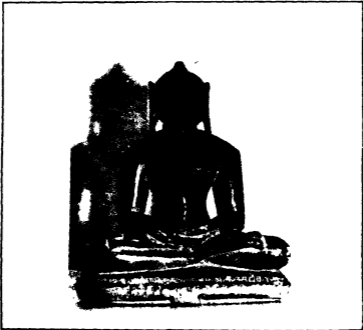
श्री १००८ भगवान् चन्द्रप्रभ जी

श्री १००८ भगवान् चन्द्रप्रभ जी का प्रतिमा का दक्षिण भाग से लिया गया चित्र
इस प्रतिमा पर अङ्कित लेख में 'पौरपट्टे' शब्द स्पष्ट दिखलाई दे रहा है।

मन्दिर जी के आले में मुनिश्री महाकीर्ति जी की मूर्ति का चित्र, जिनकी समाधि
बजरंगगढ़, गुना (म.प्र.) में हुई थी।

स्टेशन माधोगज मे स्वर्गीय श्रीमन्त सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द जी जैन के सौजन्य से सवत् १९९० के मध्य एक भव्य मन्दिर का निर्माण हुआ है। इसके अलावा विदिशा नगर मे ४ मन्दिर एव ३ चैत्यालय है।
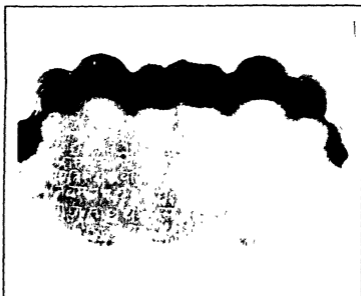
मन्दिर जी के समवसरण स्थित आले का शिलालेख

इसके अतिरिक्त स्टेशन माधोगज से लगे हुए श्री कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट माधोगज की द्वितीय मजिल पर **षट्खण्डागम** की मूल गाथाएँ, **भक्तामर स्तोत्र, तत्त्वार्थसूत्र** एव **समयसार** की गाथाओ को सगमरमर पर उत्कीर्ण कराया गया है, जिसका उद्घाटन प बाबूभाई द्वारा सन् १९८० मे किया गया था। बडकुल परिवार द्वारा सन् १९८९ मे पचकल्याणक के अवसर पर इसी मजिल पर सीमन्धर भगवान् की ५ फुट ऊँची प्रतिमा स्थापित कराई गई है।

स्वर्गीय श्रीमन्त सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द जी के परिवार द्वारा औषधालय, धर्मशाला आदि अनेक शिक्षण सस्थाओ का सफल सचालन किया जाता है।

श्री जवाहरलाल बड़कुल, विदिशा
(जन्म तिथि · ४ फरवरी १९२७ ई.)

आप धार्मिक रुचि सम्पन्न व्यक्ति है। आपने सन् १९५३ मे रायसेन में जैन मन्दिर का निर्माण तथा श्री बड़े मन्दिर मे सिद्धचक्र मण्डल विधान एव वेदी पर स्वर्ण कार्य कराया है। १९५८ से पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के सम्पर्क मे आकर अध्यात्म के प्रति रुचि हुई। तदुपरान्त १९६३ मे गुरुदेव के कर-कमलो द्वारा स्वाध्याय मन्दिर विदिशा का शिलान्यास कराया एव १९६७ मे मक्सी पार्श्वनाथ मे पॉच फुट उत्तुङ्ग काले पाषाण की प्रतिमा विराजमान करायी। विदिशा मे दो बार प्रशिक्षण शिविर मे पूर्ण सहयोग दिया।

श्री जवाहरलाल बडकुल, विदिशा

श्री दिगम्बर जैन पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति कुसवड मे आप अपनी पत्नी सौभाग्यवती सुशीलाबाई के साथ भगवान के माता-पिता बने। १९८० मे श्री दिगम्बर जैन कुदकुंद स्वाध्याय मन्दिर का निर्माण कार्य सम्पूर्ण होते ही उद्‌घाटन कराया गया तथा उसमे श्री **धवला** की १६ पुस्तको के सूत्रो एव श्री **भक्तामर स्तोत्र** के ४८ पद्यो को सगमरमर पर उत्कीर्ण कराया। आपने सन् १९८९ मे तीन शिखरो वाला परमागम मन्दिर बनवाया तथा उसकी पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा करायी।

आप वर्तमान में श्री दिगम्बर जैन चन्द्रप्रभु मन्दिर विदिशा के अध्यक्ष, सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द पारमार्थिक ट्रस्ट एवं श्री शीतलनाथ दि. जैन मन्दिर तथा श्री कहान कुन्दकुद दि. जैन तीर्थरक्षा ट्रस्ट और श्री परमागम मन्दिर सोनागिर के ट्रस्टी है।

शहडोल

यहाँ के ड्योड़िया जी जैन समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उन्होने एक जिन मन्दिर की स्थापना की थी। जबलपुर मे भी उनके परिवार द्वारा निर्मित मन्दिर है।

श्री जैनीलाल रतनचन्द जी, शहडोल

ये दोनो भाई पनागर से आकर शहडोल मे बसे थे। इनका देहात मे खेती का बहुत बड़ा धन्धा था। अकाल के समय जब गरीब भूखो मरने लगे तो आपने अपने भडार का लगभग ५०० बोरा गल्ला गरीबो मे फ्री बॉट दिया। ये धार्मिक वृत्ति के थे। इन्हे करीब डेढ़ सौ भजन एव विनतियाँ आदि याद थी, जिनका प्रतिदिन प्रात पारायण करते थे। इनके घर मे चैत्यालय भी है।

शाजापुर .

बाबू केवलचन्द्र जी

आपने इन्दौर विद्यालय से शास्त्री एव बी. कॉम तक अध्ययन करके सरकारी नापतौल विभाग मे सर्विस की है। वर्तमान मे शाजापुर (म. प्र) मे कार्यरत है। आपने शाजापुर जैन समाज की उन्नति एवं धर्म प्रचार आदि का अच्छा कार्य किया है। आप अपनी स्थिति के अनुसार दानादि भी करते है। आपका पूरा परिवार धर्म व समाज सेवा मे लगा रहता है।

शाहपुर :

सिं. हजारीलाल जी एव लोकमणि दाऊजू आदि अनेक प्रख्यात धार्मिक पुरुष इस नगर में हुए है। इस नगर के अनेक विद्वान् समाजसेवा मे प्रतिष्ठाचार्य व अध्यापक के रूप मे कार्यरत हैं।

यहाँ के. ब्र. भगवानदास जी अनेक वर्षों तक वर्णी जी के साथ रहे है।

सतना :

बुन्देलखण्ड उस समय छोटी-छोटी रियासतो मे बँटा हुआ था। इन रियासतो मे जैन धर्मावलम्बी परवार विशेष स्थान बना सके। प्राय. सभी महत्त्व के पदो पर परवार आसीन रहे है तथा सामाजिक और धार्मिक— दोनो दृष्टियो से उन्होने प्रमुख कार्य किया है।

इन्ही रियासतो मे एक प्रमुख रियासत थी रीवॉ, जिसका प्रवेशद्वार था सतना। सतना नगर जिन तीन महानुभावो के नाम से पहिचाना जाता था, वे थे सेठ दयाचन्द जी, सेठ धरमदास जी एव ढारसी भाई। इनमें से सेठ दयाचन्द जी जैन और सेठ धरमदास जी जैन परवार थे तथा सेठ ढ़ारसी भाई गुजराती जैन थे।

स्व. सेठ दयाचन्द जैन

स्व. सेठ दयाचन्द जैन

आप व्यापारिक दृष्टि से सतना तथा बम्बई मे प्रमुख थे। बम्बई में उनका प्रमुख उद्योगपतियो मे स्थान था तथा वे अत्यन्त सम्मान प्राप्त व्यापारी थे। उन्होने सार्वजनिक जैन धर्मशाला का निर्माण कराया और अस्पताल मे मरीजो की सुरक्षा के लिये निजी कक्ष बनवाकर अस्पताल को दिये। राज्य शासन के वे सम्मानीय सभासद जीवनपर्यन्त रहे। वे बैंक ऑफ बघेलखण्ड के गवर्नर भी रहे हैं।

स्व. सेठ धरमदास जैन

प्रमुख व्यापारी होने के साथ ही आपका धार्मिक जीवन अत्यन्त प्रभावी रहा है। आपने लगभग ५० वर्षों तक नि शुल्क औषधालय चलाया है। सतना नगरपालिका स्थापित होने पर सदस्य मनोनीत हुए। रीवॉं राज्य सभा के सदस्य रहे। सतना मे स्थापित बैंक ऑफ बघेलखण्ड के गवर्नर रहे तथा सतना जैन समाज के प्रमुख रहे।

स्व सेठ धरमदास जैन

स. सिं. ऋषभदास जैन

आप व्यापारिक सस्था क्लाथ मर्चेन्ट्स एसोसियेशन के अनेक वर्षो तक अध्यक्ष रहे है तथा नगरपालिका के अध्यक्ष, सतना जैन समाज के अध्यक्ष आदि पदो को सुशोभित कर चुके है। वर्तमान मे अस्वस्थता के कारण सभी पदो से त्यागपत्र दे चुके है, किन्तु सर्वमान्य व्यक्ति है।

बाबू दुलीचन्द जी

आप सतना जैन समाज के प्रमुख कर्णधार एव मार्गदर्शक रहे है। केवल समाजसेवा ही आपका प्रमुख कार्य था। आपके समय मे सतना (रीवॉं स्टेट) मे जैन समाज द्वारा कोई सार्वजनिक उत्सव करना सम्भव नही था, क्योकि ब्राह्मण समाज इसे अशुभ मानती थी। इस परम्परा को समाप्त करने हेतु रीवॉं राज्य के तत्कालीन महाराजा गुलाबसिह जी से मिलकर आपने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् का अधिवेशन तथा विमानोत्सव किया, जो रथयात्रा से भी अधिक प्रभावी था। इसके पश्चात् जैन समाज के सार्वजनिक उत्सव होने लगे।

श्री मोतीलाल जैन

आप जैन पाठशाला के आजीवन मंत्री रहे है तथा सामाजिक कार्यों में योगदान दिया है। वर्तमान में आपके सुपुत्र श्री रतनचन्द्र जी और श्री जवाहरलाल जी धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों मे प्रमुख रूप से भाग लेते हैं।

सेठ गजाधर जी

ये नागौद के प्रतिष्ठित सेठ थे। पश्चात् सतना आकर रहने लगे। यहाँ पर बाजार के मध्य एक विशाल धर्मशाला का निर्माण किया है। इससे समाज की बड़ी आवश्यकता की पूर्ति हुई है।

स्व. फूलचन्द जी अशोक टाकीजवाले

ये अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता तथा समाज के प्रमुख एव मान्य व्यक्ति थे।

श्री हुकुमचन्द्र जैन 'नेता', सतना

(जन्म : १३ सितम्बर १९२८, ककरहटी, पन्ना)

आप ४ वर्ष की अवस्था मे ही अपनी मौसी के घर सतना आ गये थे। हाई स्कूल सतना से उत्तीर्णकर आगे अध्ययन करने हेतु रीवाँ चले गये। १९४३ मे राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ से परिचय हो गया और १९४६ मे आप संघ के प्रचारक बन गये। बाद मे सम्पूर्ण विन्ध्यप्रदेश को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। २ अक्टूबर १९५१ को भारतीय जनसंघ की स्थापना के पश्चात् उसके विन्ध्यप्रदेश के मंत्री बने तथा १९६२ मे मध्यप्रदेश के सहायक मत्री बने।

सन् १९५७ का विधान सभा चुनाव सतना से लड़ा और एक हजार मतो से पराजित हुए। १९५८ मे विवाह हुआ तथा आजीविका हेतु भारतीय जीवन बीमा निगम के अभिकर्ता के रूप मे कार्य किया। विभिन्न आन्दोलनो मे भाग लेने के कारण अनेक बार जेल यात्रा की। सन् १९७४ मे मीसा बन्दी में पुनः जेल गये और वहाँ से लौटकर विधान सभा का चुनाव लड़ा तथा पाँच सौ मतों से पराजित हुए। सम्प्रति आप भारतीय मजदूर संघ के प्रदेश उपाध्यक्ष हैं।
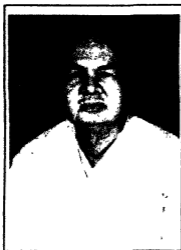
श्री हुकुमचन्द्र जैन 'नेता' सतना

श्री हुकुमचन्द जी समाज मे 'नेता जी' के नाम से जाने जाते हैं। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रो मे भी आपका नेतृत्व महत्त्वपूर्ण है। किसी भी विषय पर तत्काल अच्छी शैली मे भाषण देने की कला आपकी विशेषता है। सतना के पञ्चकल्याणक महोत्सव का सफल सचालन एव अप्रैल सन् १९९० मे श्रीमान् प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री का साधुवाद समारोह आपके ही नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। साधुवाद समारोह के अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् का अधिवेशन सुप्रसिद्ध समाजसेवी बालब्रह्मचारी प माणिकचन्द्र जी चॅवरे कारजा की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ, जिसमे ७२ ग्रामो एव नगरो से हजारो लोग सम्मिलित हुए तथा १५० विद्वानो ने भाग लेकर समारोह की शोभा बढ़ायी।

श्री नेता जी समाज के अत्यन्त स्नेहभाजन एव विश्वस्त व्यक्ति है।

सागर :

चौधरी प्रकाशचन्द्र वकील मानकचौकवाले, सागर

(जन्म : सन् १९३२)

चौधरी प्रकाशचन्द्र जी वकील के पितामह चौ. कन्हैयालाल जी मानकचौकवाले अपने समय के बहुत बड़े जमीदार (मालगुजार) एव कास्तकार थे। उनका उस पूरे इलाके में जैन एवं अजैन जनता पर अच्छा प्रभाव था। वे जनता

की मदद करते थे। उनके बिना गाँव मे पंचायत नही होती थी। वे १०-१२ गाँवो के मालगुजार थे।

आपका मोराजी का भवन बनवाने मे पूर्ण सहयोग रहा है। आप उसके कई वर्षो तक 'उपसभापति' पद पर रहे हैं। आपके पाँच पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र चौ. हुकमचन्द्र जी सागर मे गल्ला का बड़ा भारी व्यापार करते थे। वे मधुरभाषी और मिलनसार थे। जैन-अजैन गरीब भाइयो को कपड़ा एवं औषधिदान भी करते थे।द्वितीय सुपुत्र चौ. शरतचन्द्र जी मालगुजारी का काम सम्हालने को ग्राम मानकचौक चले गये।पाँचवे सुपुत्र चौ प्यारेलाल जी (जन्म सन् १९०१) ने एल एल बी. की परीक्षा सन् १९२६ मे पास की और वकालत प्रारम्भ की। उस समय वे डिस्ट्रिक्ट कौन्सिल के उपसभापति चुने गये। सन् १९२८ मे अकाल पड़ा। अकाल मे आपने राहत कार्य हेतु भोपाल से जैसीनगर तक सड़क का निर्माण कराया। उस राहत कार्य को करवाने के उपलक्ष्य मे सन् १९२९ मे आपको अग्रेज सरकार द्वारा 'रायसाहब' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

वे सागर म्युनिसिपल कमेटी के मेम्बर एव चेयरमैन भी चुने गये। उस समय आपने सागर नगर की तरक्की के लिए अनेक कार्य कराये थे। आदरणीय रायसाहब की कार्य-कुशलता को देखकर गवर्नमेन्ट ने उन्हे ऑनरेरी-मजिस्ट्रेट पद पर नियुक्त कर सम्मानित किया था। मुकदमो की सुनवाई करने और दोषी व्यक्ति को ६ मास तक की सजा देने का आपको अधिकार प्राप्त था।

चौधरी प्यारेलाल जी वकील रायसाहब के ज्येष्ठ सुपुत्र चौ. प्रकाशचन्द जी वकील ने वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण की और सम्प्रति अनाज मण्डी मे व्यापार कर रहे है। आप समाजसेवी, धार्मिक एव प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। आप श्री गणेश वर्णी दि. जैन सस्कृत महाविद्यालय, मोराजी तथा ग्रेन मर्चेन्ट एसोसियेशन के अध्यक्ष रह चुके है।

आपके लघुभ्राता चौ. कैलाशचन्द्र इंजीनियर वर्तमान मे सागर इंजीनियरिग कालेज मे प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं। आप बड़े ही कर्तव्यनिष्ठ है।

श्री जीवनलाल जी बहेरियावाले, सागर
(जन्म : ३ सितम्बर १९२९ ई.)

श्री जीवनलाल जी बहेरियावाले

श्री जीवनलाल जी स्व. श्री छोटेलाल जी बहेरिया वालो के तृतीय पुत्र है। वर्तमान में आप अपनी कुशाग्र बुद्धि से कपड़ा का थोक व्यापार, गल्ला व्यापार, तेल मिल, दालमिल, बोर्ड मिल, बम्बई मे आढ़त की दुकान और सागर मे सिनेमा आदि विविध बड़े-बड़े व्यापारो को चला रहे है। आपकी गणना सागर जिले के बड़े व्यापारियो मे होने लगी है।

आप धार्मिक, सामाजिक एव राजनैतिक कार्यों मे रुचि लेते है तथा दान देकर तन-मन-धन से सेवाकार्य करते है। आपको समाज ने बहुमान दिया है। व्यापार संघ के कार्यो को भी कुशलता पूर्बक करते हैं, अतः जैनेतर समाज मे भी आप प्रतिष्ठित है तथा अप्सरा टाकीज के मालिक है।

श्री जीवनलाल जी सर्वजनप्रिय होने के कारण अनेको संस्थाओ के पदाधिकारी रह चुके हैं और वर्तमान में भी है। आप तीन वर्षों तक नगरपालिका के उपाध्यक्ष, सागर अनाज तिलहन व्यापारी सघ के १० वर्षो तक अध्यक्ष, रोटरो क्लब सागर के अध्यक्ष, सिनेमा एसोसियेशन के अध्यक्ष, मोराजी के अध्यक्ष, जैन पंचायत के अध्यक्ष, श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर चौधरन बाई, बड़ा बाजार सागर ट्रस्ट के अध्यक्ष, परवार सभा के कोषाध्यक्ष, रेडक्रास सोसायटी के पैटर्न सदस्य आदि विविध पदों को सुशोभित कर चुके हैं और कर रहे हैं।

आपने अपनी माताजी की प्रेरणा से दो बार श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान का बडे पैमाने पर आयोजन अप्सरा टाकीज के निजी मैदान मे सम्पन्न कराया है। अप्सरा टाकीज के पास जैन मन्दिर नही था, अतः निजी जगह मे श्री दिगम्बर जैन चैत्यालय का निर्माण कराया है।

श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर जी 'कारेभाईजी' कटरा बाजार सागर के निर्माण मे आपने तन-मन और धन से पूर्ण सहयोग दिया है, जिससे इस मन्दिर का निर्माण हो सका है। आपने इस मन्दिर मे एक बड़ी प्रतिमा के विराजमान करने हेतु पच्चीस हजार रुपये का दान भी घोषित किया है।

श्री मन्नूलाल वकील

(जन्म : १४ फरवरी १९३६, मालथौन)

आप अध्यात्म और आगम के अच्छे विद्वान् है। शास्त्रों मे आपकी अच्छी गति है। दोनो समय मन्दिर मे नियमित प्रवचन करते है। सागर मुमुक्षु मण्डल के प्राण है। **रत्नकरण्डश्रावकाचार** और **उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला** आदि अनेक ग्रन्थो का सम्पादन एव प्रकाशन किया है।

सम्प्रति आप आयकर सलाहकार के रूप मे कार्यरत है।

श्री पूर्णचन्द्र जी बजाज, सर्राफा बाजार, सागर

स्वर्गीय श्री पूर्णचन्द्र जी बजाज का सागर नगर मे सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में वर्चस्व रहा है। अपने जीवनकाल मे उन्होंने अनेक सार्वजनिक कार्य एवं सामाजिक संस्थाओ की नीव रखी है, जिनमें गौर मूर्ति के समीप स्थापित सरस्वती वाचनालय, दिवाला नाका बार्ड में सार्वजनिक अनाथालय, सामाजिक क्षेत्र में गणेश वर्णी संस्कृत विद्यालय आदि हैं। संस्कृत विद्यालय के लगातार ३० वर्षों तक मंत्री रहे हैं। साथ ही वे जिला काँग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष पद पर भी रहे हैं।

श्री पद्मकुमार सर्राफ

विदेशी कपड़ा बहिष्कार अभियान के समय आपने अपना थोक कपड़े का व्यापार बन्द कर दिया था, जिसमे आपको उस समय पचास हजार रुपये का घाटा हुआ था। साथ ही आपने विदेशी कपड़ा न पहिनने का नियम भी ले लिया था।

सागर से तीन मील दूर रतौना गाँव में कसाईखाना बनाने की अनुमति भारत सरकार ने अमेरिकन मिशनरी को दे दी थी, उस समय आपने अपने कुछ साथियो के सक्रिय सहयोग से कसाईखाना बनाने की योजना को रद्द करवा दिया था।

आपके बड़े सुपुत्र स्व. कस्तूरचन्द्र जी नमक सत्याग्रह मे अहमदाबाद मे गिरफ्तार होकर जेल गये थे। श्री कस्तूरचन्द्र जी ने अपने जीवनकाल मे अपने पिताजी की स्मृति मे २५०००/- (पच्चीस हजार) रुपये की धनराशि का दान देकर 'पूर्णचन्द्र बजाज सहायता कोष' की स्थापना की थी। उसके ब्याज की राशि से प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति एव सामाजिक कार्यो मे सहायता दी जाती है। वर्तमान मे श्री पूर्णचन्द जी बजाज के द्वितीय सुपुत्र श्री पद्मकुमार सर्राफ इसके अध्यक्ष एव कोषाध्यक्ष है।

श्री पद्मकुमार सर्राफ को १६ वर्ष की उम्र में अंग्रेज सरकार का विरोध करने के कारण दो माह की सजा और पचास रुपये जुर्माना हुआ था। आप नागपुर जेल मे रहे है। पुनः सन् १९४२ मे सागर नगर में आन्दोलन के अग्रणी रहे। काँग्रेस सरकार ने एक सभा मे भाषण करते समय उन्हें गिरफ्तार किया व ६ मास की सजा दी व ४ माह बाद इसका मुकदमा चलाया गया। जिसमें पुनः ६ मास की सजा हुई। उन्हे सागर व जबलपुर जेल मे रखा गया।

इस प्रकार सन् १९४२ मे १० माह जेल में रहे। आप अपने जीवनकाल के प्रारम्भ से ही राजनैतिक एवं सामाजिक — दोनों कार्य अभी तक करते आ रहे है। वर्तमान मे आप अनेक संस्थाओ के पदाधिकारी एवं ट्रस्टी है।

स्व. श्री पूर्णचन्द्र बजाज के छोटे सुपुत्र का नाम श्री हुकमचन्द्र जी है।

श्री सुशीलचन्द्र मोदी, सागर

(जन्म : ३० अक्टूबर १९४४ ई.)

श्री सुशीलचन्द्र मोदी

सागर जैन समाज मे मोदी परिवार सबसे प्राचीन परिवार है। इसके सभी सदस्य धार्मिक भावनाओ से ओतप्रोत हैं। धार्मिक कार्यों मे दान देने में अग्रसर हैं। मुनिभक्त है और वैयावृत्ति करने मे तत्पर रहते है।

मोदी परिवार के एक पूर्वज श्री नन्दजू मोदी ने सर्वप्रथम श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन बड़े मन्दिर जी (बड़ा बाजार, सागर) का वि. संवत् १७४१ में अपनी निजी सम्पत्ति से निर्माण करवाया था। तत्पश्चात् उनके सुपुत्र श्री नन्दलाल मोदी ने श्री दि. जैन आदिनाथ मन्दिर घटियावाला का निर्माण कराया। श्री नन्दलाल जी के सुपुत्र श्री बिहारीलाल मोदी ने मोराजी सागर मे सन् १९०५ ई. मे श्री सत्तर्क सुधातरंगिणी दि. जैन सस्कृत पाठशाला को जमीन प्रदान की थी, जो वर्तमान में श्री गणेश दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है।

बिहारीलाल मोदी के लघुभ्राता श्री डालचन्द मोदी हुए। पुनः इनके तीन पुत्र हुए — धर्मचन्द, कन्छेदीलाल और गुलाबचन्द। गुलाबचन्द जी के दो

पुत्र हुए — लखमीचन्द और दुलीचन्द । श्री सुशीलचन्द्र मोदी श्री दुलीचन्द जी के सुपुत्र है ।

श्री धर्मचन्द्र मोदी ने सागर मे एक धार्मिक पाठशाला और औषधालय स्थापित किया था ।

श्री लखमीचन्द्र मोदी श्री १०५ क्षु. गणेशप्रसाद जी वर्णी के परम भक्त थे । जिससे मोराजी स्थित उपर्युक्त विद्यालय से उन्हें बड़ा स्नेह था और उसका कार्य करने मे अपने को धन्य मानते थे । उन्होने विद्यालय की कार्यकारिणी समिति के विभिन्न पदो, विशेषकर मत्री पद पर रह कर तन-मन-धन से सेवा की है एव आजीवन ट्रस्टी रहे है । इसके अतिरिक्त भी वे अनेक सस्थाओ के पदाधिकारी रहे हैं । सागर मे श्री विमानोत्सव का आयोजन प्रारम्भ कराने मे सबसे पहले आपने ही पहल की थी और तब से अब तक विमानोत्सव का आयोजन सागर मे बड़ी धूमधाम से किया जाता है । श्री बाहुबली सेवादल का गठन कर आप उसके आजीवन अध्यक्ष रहे हैं । सन् १९३५ मे श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी में १९ नं. के श्री मन्दिर जी का जीर्णोद्धार कराया एवं धर्मशाला मे एक कमरे का निर्माण कराया ।

श्री सुशीलचन्द्र मोदी के पिता श्री दुलीचन्द जी मोदी कपड़ा एसोसिएशन सघ सागर के अध्यक्ष रहे हैं ।

श्री सुशीलचन्द्र जी मोदी श्री अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी के अध्यक्ष, परवार सभा के उपाध्यक्ष, रोटरी क्लब सागर के अध्यक्ष, गौर टावर निर्माण समिति के सेक्रेटरी, जिला औषधि विक्रेता संघ के अध्यक्ष तथा अन्य अनेक सस्थाओ एव आयोजनो के पदाधिकारी रह चुके है ।

श्री आनन्दकुमार जी मोदी, सागर

(जन्म : सन् १९४८ ई.)

स्व मोदी धर्मचन्द्र जी के पौत्र एवं मोदी शिखरचन्द्र जी के सुपुत्र मोदी आनन्दकुमार जी के पूर्वज धार्मिक थे । इनकी माँ श्रीमती रतनीबाई जी

श्री आनन्दकुमार मोदी

धार्मिक प्रवृत्ति की महिला है। शास्त्र-स्वाध्याय में इनकी अच्छी रुचि है एवं संयम की ओर उन्मुख हैं। इसी कारण इनके पुत्र-पुत्रवधुएँ, पुत्रियाँ एवं नाती आदि सभी पारिवारिकजन धार्मिक रुचि सम्पन्न एवं उदारचित्त है। दान देने में उत्साह रखते है। अपने पूर्वजो की परम्परा का सम्यक् रीति से पालन कर रहे हैं। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अनुयायी है।

मोदी आनन्दकुमार के पिता श्री शिखरचन्द्र मोदी सागर कोर्ट मे जूरी (विशेष पदाधिकारी) थे। कोर्ट पचायत मे जितने भी केस आते थे वे उनका निर्णय करते थे, जो सरकार द्वारा मान्य होते थे। इनमे बोलने और पचायत करने की अच्छी क्षमता थी। कचहरी मे इनकी प्रतिष्ठा थी। आपने पाठशाला एव औषधालय की स्थापना की थी।

मोदी आनन्दकुमार जी मिलनसार और सरल परिणामी हैं। आप ग्रेन-मर्चेन्ट एसोसिएशन सागर के उपाध्यक्ष हैं। गल्ला का व्यापार करते है। दाल मिल एव मेडिकल स्टोर्स (कटरा बाजार) के मालिक हैं।

आपकी चार बहिनें हैं, जो सम्पन्न घरानों में विवाहित हैं। तीन पुत्र— श्री सुरेशकुमार, अतुलकुमार और अमितकुमार सम्प्रति उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

श्री प्रेमचन्द्र जैन सर्राफ पटनावाले, सागर

(जन्म : संवत् १९९२)

श्री प्रेमचन्द्र जी सर्राफ श्री फूलचन्द्र जी के सुपुत्र हैं। आप धार्मिक एव सामाजिक आदि सभी कार्यों में बहुत भाग लेते हैं तथा विविध धार्मिक
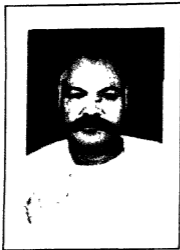
श्री प्रेमचन्द्र जैन सर्राफ

आयोजनो मे दान देते हैं, जिससे समाज मे आपका बहुमान है। समाज के कर्मठ कार्यकर्ता है। सम्प्रति आप श्री गणेश दि. जैन सस्कृत महाविद्यालय मोराजी की प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य, श्री उदासीनाश्रम वेदान्ती रोड सागर के कोषाध्यक्ष, श्री बाहुबली सेवादल बडा बाजार सागर की प्रबन्ध कारिणी एव सर्राफा एसोसिएशन के सदस्य है।

चौधरी कुन्दनलाल जैन, सागर

चौ. कुन्दनलाल जी श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर कारेभायजी कटरा बाजार सागर के उपाध्यक्ष है। आपकी पत्नी श्रीमती कस्तूरीबाई जी महिलादर्श पत्रिका की सरक्षिका है। श्री ऋषभकुमार जी रोटरी क्लब सागर सेन्ट्रल के सदस्य हैं। समस्त परिवार धार्मिक भावनाओ से ओत-प्रोत है।

चौ कुन्दनलाल जी धार्मिक एव सामाजिक कार्यों को रुचिपूर्वक करते हैं तथा विविध आयोजनों में
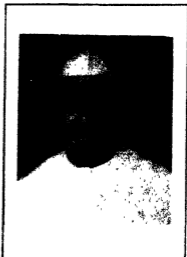
चौ. कुन्दनलाल जी जैन

दान देते है। समाज में आपका गौरव है। सरलस्वभावी, शास्त्र-स्वाध्यायी तथा सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के भक्त हैं।

आपके दो पुत्र है— श्री ऋषभकुमार जैन एवं श्री अजितकुमार जैन। आपके फर्म का नाम ऋषभ ट्रेडिंग कम्पनी (सदर बाजार, सागर) है। दोनों पुत्र लोहा एव हार्डवेयर का व्यापार करते है।

श्री नेमचन्द्र फूलचन्द्र नेता, सागर
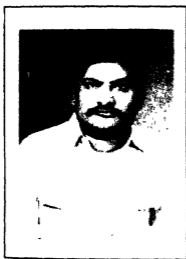
श्री नेमचन्द्र जी के पिता श्री फूलचन्द्रजी 'नेता' के नाम से सागर जिले मे प्रसिद्ध हैं। आप धार्मिक स्वभाव के है तथा दैनिक पूजन-स्वाध्याय मे तत्पर रहते हैं और जैन मुनियो के परम भक्त हैं। श्री फूलचन्द्र नेता के ज्येष्ठ सुपुत्र श्री नेमचन्द्र जी भी उनके मार्ग पर चल रहे हैं। उन्होंने दो प्रतिमाएँ भी ग्रहण कर ली हैं। उनके अन्य तीन सुपुत्र भी धार्मिक एव सदाचारी हैं। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के परम भक्त हैं।

श्री नेमचन्द्र जैन

श्री फूलचन्द्र नेता के चारो सुपुत्र मोटर व्यवसाय मे संलग्न है। नेमचन्द्र जी की धर्मपत्नी श्रीमती सुप्रभा जैन ने भी प्रतिमा ग्रहण की है।

इनके पिता श्री फूलचन्द्र नेता स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, जिला कॉंग्रेस कार्य समिति के सदस्य एवं पिठौरिया दि. जैन मन्दिर जी के व्यवस्थापक हैं। श्री नेमचन्द्र जी राजनीतिज्ञ भी हैं। सामाजिक कार्यो को करने-कराने में बहुत कुशल हैं।

आप श्री गणेश दि जैन संस्कृत महाविद्यालय मोराजी सागर के उपमंत्री, अखिल भारतीय स्याद्वाद शिक्षा परिषद् सोनागिरि के संयुक्तमंत्री एव अखिल भारतीय स्याद्वाद शिक्षा परिषद् सागर के महामत्री है तथा अन्य अनेक धार्मिक एवं सामाजिक सस्थाओ से जुड़े हुए है ।

सिंगपुर :

सिंघई मोहनलाल जी, सिंगपुर

इनके पूर्वजो ने सिगपुर मे एक शिखरबन्द मन्दिर बनवाया था । ये आस-पास के गॉवो मे सामाजिक एव धार्मिक कार्यो के अग्रणी थे । मन्दिर की व्यवस्था के लिये इन्होने मकान आदि खरीदकर दिये थे । वह लाखो की सम्पत्ति सतना जैसे शहर मे आज भी विद्यमान है । इनके पुराने फर्म का नाम बनारसीदास मोहनलाल था । यह घराना अपने समय मे अत्यन्त प्रसिद्ध एव प्रतिष्ठित रहा है । इनके वशज आज भी धार्मिक एव सामाजिक कार्यों मे रुचि लेते हैं ।

सिवनी ·

मध्यप्रदेश मे यह नगर परवार समाज का एक मुख्य केन्द्र माना जाता है । यहाँ विशाल जैन मन्दिरो का एक समूह है, जिनमे अनेक मदिर परवार समाज द्वारा निर्मित है ।

सिहोरा .

श्री शंकरलाल जी

आप धार्मिक प्रकृति के थे । आपने सन् १९१८ में गजरथ पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव कराया था तथा इसी अवसर पर परवार सभा को दस हजार रुपये का प्रथम दान दिया था ।

श्री धन्यकुमार जी विधायक

आप एक अच्छे राजनीतिज्ञ हैं और मध्यप्रदेश विधान सभा के सदस्य चुन जा चुके हैं ।

हस्तिनापुर :

श्री शिखरचन्द जैन

आप मूलत· ललितपुर के निवासी हैं । आपने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया था । सम्प्रति आप दि जैन तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर मे मैनेजर के पद पर कार्यरत है ।

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में बसे परवार कुटुम्ब

१ श्री दुलीचन्द जैन (मुँगावली)

२. श्री राजेन्द्रकुमार जैन, सतना

३ श्री सतीश नायक (सुपुत्र प देवकीनन्दन जी सिद्धान्तशास्त्री)

४ श्री खुशालचन्द भाई (बण्डा)

५. श्री चन्द्रकुमार जैन, दमोह (अब इनकी दूसरी पीढ़ी भी वही बस गई है)

६ श्री नेमीचन्द्र जैन-शान्ति जैन (दमाद-बेटी प. फूलचन्द्र जी शास्त्री)

७ श्री ज्ञानचन्द सिघई, देवरी

८ प्रो. महेन्द्र जैन, साढूमल

९ श्री सुरेशचन्द सिघई, देवरी

उपर्युक्त जानकारी श्री नन्दलाल जी रीवाँवालो ने अमेरिका यात्रा के दौरान सकलित की है । और भी अन्य कुटुम्ब अमेरिका मे बसे हुए है, जिनकी पूरी सूचना प्राप्त नही हो पाई है । इसके अतिरिक्त विदेशो मे अनेक व्यक्ति अस्थायी नौकरी मे तथा अनेक विद्यार्थी अध्ययन हेतु निवास कर रहे है ।

■

भगवान् पार्श्वनाथ जी

(साढोरा ग्राम से प्राप्त मूर्ति)

इस मूर्ति पर अङ्कित लेख इस प्रकार है

'संवत् ६१० वर्षे माघ सुदि ११ मूलसंघे
पौरपाटान्वये पाट (ल) नपुर संघई'

परवार समाज के गौरव

न्यायमनीषी प जगन्मोहनलाल शास्त्री
सरक्षक

सिद्धान्ताचार्य प फूलचन्द्र शास्त्री
सरक्षक

परवार समाज के गौरव
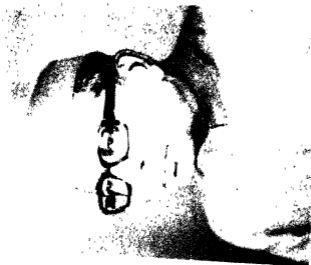
स.सिं. धन्यकुमार जैन, कटनी
अध्यक्ष

स सिं नेमीचन्द जैन, जबलपुर
प्रधानमंत्री

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा

परिशिष्ट

म. प्र. जैन समाज का देशसेवा में बहुमूल्य योगदान[१]

विश्व के इतिहास में आज का युग विज्ञान का युग कहा जाता है। परन्तु यदि इसे विकास का युग कहा जाए तो अनुपयुक्त न होगा। एक ओर जहाँ भौतिकवादी विज्ञान ने तेजी के साथ विकास किया है, वहीं हर क्षेत्र में जो खोज और शोध हो रही है वह भी निरन्तर तेजी से चौकड़ी भर रही है।

सिंघई रतनचन्द जैन

चित्रकला, संगीत, नृत्यकला, साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में जितनी तेजी से परिवर्तन हो रहा है, उतना ही इतिहास का शोधकार्य और पुरातत्त्व की खोज भी चल रही है।

संसार में ऐसी अनेक घटनाएँ, जो राष्ट्रों के जीवन मे परिवर्तन ला देती हैं, ही विश्व और राष्ट्र का इतिहास बनाती हैं।

इस विश्व के धरातल पर भारत एक ऐसा राष्ट्र है जिसकी संस्कृति, सभ्यता और सामाजिक जीवन आध्यात्मिकता से सम्बन्धित रहा है और आज भी विश्व के इस भौतिक युग मे अपनी आध्यात्मिकता की मशाल उसी प्रकार प्रज्वलित किये हुये है।

इस देश की धरती को समय-समय पर ऐसी विभूतियो ने पवित्र किया है, जिनसे इस देश की भावना सदा निखरती रही है। परन्तु सीधा, सरल, सच्चा और विश्वबन्धुत्व की भावना वाला होना कभी-कभी दुखदायी भी होता है और इस देश को अपनी इसी उदारता के कारण आततायियो के अधीन होना पड़ा। हम एक हजार साल तक पराधीन रहे। अंग्रेजो के पूर्व जो भी हमारे

१. लेखक : सिंघई रतनचन्द जैन, मिलौनीगंज, जबलपुर,
संस्थापक मंत्री— मध्यप्रदेश स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी संघ।

शासक रहे उन्हे हमने आत्मसात् कर लिया, वे यही के निवासी हो गये और भारतीय सस्कृति और सभ्यता के साथ उनका तालमेल बढ़ता गया । परन्तु अग्रेज शासक केवल इस देश पर राज्य नही करते थे, अपितु इस देश की सभ्यता, सस्कृति और इस देश के उद्योग और जीवन के साधनो को नष्ट-भ्रष्ट करके देश को सभी स्रोतो से ऐसा अपग और गुलाम बना दिया कि उनकी कृपा के बगैर हमारा सॉस लेना दूभर हो गया ।

स्वाधीन होना देश की अनिवार्य आवश्यकता हो गई और ऐसे ही समय मे देश मे कुछ महान् विभूतियो ने देश का नेतृत्व किया । क्रांतिकारी गतिविधियो के पुरस्कर्ता जोशीले नौजवानो ने अपने प्राणो का उत्सर्ग करके और आततायी हुक्मरानो को आतंकित करके देश मे नव जागरण की अलख जगाई । देश मे स्वाधीनता की भावना जाग्रत हुई । परन्तु वे देश का नेतृत्व नही कर सके ।

लोकमान्य तिलक ने अपनी ओजस्वी प्रतिभा से देश मे स्वाधीनता प्राप्ति हेतु बिगुल फूंका और महात्मा गॉधी ने देश का नेतृत्व सम्हाला ।

महात्मा गॉधी ने असहयोग और अहिसात्मक तरीके से राजशाही के कानूनो को तोडने के एक अपूर्व और अनूठे प्रयोग से सत्ता के विरुद्ध देश व्यापी सघर्ष छेड दिया ।

धर्मपरायण देश की जनता ने गॉधी जी के इस धर्म-युद्ध मे अपने आपको समर्पित कर दिया ।

देश का इतिहास इस बात को साबित करता है कि देश के उस वर्ग ने सबसे अधिक अपने को समर्पित किया जो आध्यात्मिक और धर्मपरायण रहा है ।

जैन धर्मावलम्बी इस देश मे उस समय १५-२० लाख की थोड़ी सी सख्या मे होते हुए भी देश की आजादी हेतु क्रान्तिकारी गतिविधियो में अपना विशिष्ट स्थान रखते है ।

भारतीय सस्कृति ही उनकी सस्कृति और भारतीय सभ्यता ही उनकी सभ्यता रही है । इसका सबसे बड़ा सबूत यह है कि अनेक वर्गों द्वारा जब

अल्पसख्यक के नाते सरक्षण की माँगे की गई तो जैन समाज ने कभी ऐसी कोई माँग नही रखी। क्योकि यह समाज अपना राष्ट्रीय दृष्टिकोण रखता है। संकुचित दायरे में सोचने की उसकी प्रवृत्ति हजारो वर्षों से नही रही और उसका एक अन्य ऐतिहासिक सबूत यह है कि महावीर और गौतम बुद्ध समकालीन हुए।गौतम ने अपने मठ बनवाए। भिक्षु बनाए, देश मे जगह-जगह मठो मे आश्रम कायम किये, किन्तु महावीर ने न मठ बनवाए और न भिक्षु संगठन बनाए। कालान्तर में जब धार्मिक पन्थो पर हमले हुए, मान्यताओं मे परिवर्तन के तूफान आए तो देश मे जैन मतावलम्बियो ने अपना बलिदान देकर भी अपने देश, धर्म और संस्कृति तथा प्राचीन साहित्य की रक्षा की। जैन लोग आज भी न केवल इस देश के राष्ट्रीय जीवन के एक अंग है, वरन् भारतीय प्राचीन सस्कृति और पुरातत्त्व के धनी हैं। वे आँधी और तूफानो के आने पर देश छोड़कर भागे नही, अपितु उनका सामना किया है।

और इसी तरह जब भारतीय स्वाधीनता का जद्दोजहद शुरु हुआ तो यह कौम एक बहादुर कौम की तरह अपनी आहुतियाँ देने मे आगे आई। जैन अहिंसा के पुजारी हैं। अहिंसा कायरो का धर्म नही। कायर हमेशा शस्त्र की तरफ नजर दौड़ाता है, क्योकि वह अपने को कमजोर महसूस करके सहारा ढूँढ़ता है, परन्तु जिसमे आत्मबल है उसके सामने शस्त्र भी निस्तेज हो जाते है, गिर जाते हैं।

गाँधी जी के स्वाधीनता आन्दोलन मे स्वाभाविक रूप से जैन समाज के नौजवानो ने आगे बढ़कर अपने को होम किया।

सन् १९२० से १९४२ तक के आन्दोलनों के इतिहास के पृष्ठों को जब आने वाली पीढ़ी पढ़ेगी तो वह हैरत से यह अनुभव करेगी कि देश की इस छोटी सी संख्या वाले समाज की आजादी के लिए कितनी बड़ी कुर्बानी रही है।

जैन समाज के बच्चों की आगे की पीढ़ी भी अपने पूर्वजों के बलिदानों से अपने को गौरवान्वित होने का न केवल श्रेय प्राप्त करेगी, बल्कि इस

परम्परा को कायम रखने के लिये सजग और सचेत रहने की प्रेरणा ग्रहण करेगी।

इस देश मे गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा दक्षिण के प्रदेश, जहाँ कि समाज के बहुसख्यक लोग हैं, उनके सिवाय भी जहाँ अल्प सख्या मे समाज के लोग रहते है, ऐसे पंजाब, बगाल, बिहार और आसाम में भी इस समाज ने देश की स्वाधीनता मे अपनी आहुति दी है।

मध्यप्रदेश राष्ट्र का हृदय रहा है और इस हृदय प्रदेश मे जैन समाज के नौजवानो की जो आहुतियाँ हुई है, वे इतिहास के पृष्ठों में सितारों की तरह चमकती हुई दिखाई देती है।

स्वतन्त्रता सग्राम आन्दोलन मे मध्यप्रदेश की जैन समाज का कितना योगदान रहा है, इसका विवरण देने के पूर्व कुछ उल्लेखनीय घटनाएँ और व्यक्ति ऐसे हुए है, जिसका सक्षिप्त परिचय देने को यह कलम विवश हो रही है। सन् १९२३ मे झडा सत्याग्रह हुआ, तिरगा ध्वज भारतीय स्वाधीनता का प्रतीक बना और राष्ट्रीय ध्वज कहलाया। ध्वज की वन्दना के गीत बने। सामूहिक रूप से ध्वज को आगे ऊँचा करके गीत गाते हुए चलने के कार्यक्रम बनने लगे। शासकीय इमारतो पर यूनियन जैक को निकालकर राष्ट्रीय ध्वज फहराकर कानून तोड़ने का कार्यक्रम जबलपुर के पॉच बालको ने बनाया। **श्री प्रेमचन्द जैन** ने अपने चार साथियो के साथ टाउन हाल पर तिरंगा लगाने का ऐलान कर दिया। निदान टाउन हाल को पुलिस दल ने घेर लिया, अग्रेज सारजैट तैनात हो गया। पॉच बालको का दल झंडा लिये गीत गाते हुए टाउन हाल पहुँचा। जनता की भीड़ उसके पीछे थी। पुलिस की घेरा बन्दी के कारण जुलूस सड़क पर ही रुक गया।

कुछ देर बाद ही लोगों ने देखा कि एक बालक गगनचुम्बी टाउन हाल की गुम्बद पर खड़ा है और कलश पर तिरंगा बाँध दिया गया है और बालक तिरगे झडे की जय-जय का घोष कर रहा है।

यह दृश्य देखने के लिये जनता का अपार समूह एकत्रित हो गया और जयघोष करने लगा।

पुलिस हैरान हो गई यह करिश्मा देखकर, पुलिस दल ने गोली से प्रेमचन्द को मार गिराने की इजाजत माँगी, परन्तु अंग्रेज सारजैंट समझ रहा था कि इस अपार जन समूह के क्रोध का शिकार केवल मैं ही बन जाऊँगा, अतः इजाजत नही दी। प्रेमचन्द को नीचे उतरने को कहा गया, परन्तु वह ऊपर से ही चिल्ला रहा था कि कोई मुझे उतारो। मुझसे उतरते नही बनता। बालक प्रेमचन्द टाउन हाल के पीछे से आकर दीवाल की खिड़कियों, दरवाजों और कगूरों का सहारा लेकर ऊपर बन्दर की तरह चढ़ गया था, परन्तु गोल गुम्बद पर आवेश मे लपक कर चढ़ जाना एक आश्चर्यकारी घटना थी। वह चढ़ तो गया, परन्तु उतर नही सका। निदान सीढ़ियाँ लगाई गई, रस्सा गुम्बद के कलश से बाँधा गया, तब प्रेमचन्द उतरा।

यह प्रेमचन्द कालान्तर मे अपनी अखाड़ची चर्या से उस्ताद प्रेमचन्द कहलाने लगे। इस कुटुम्ब के चार लोग आन्दोलनो में जेल गये। स्वयं प्रेमचन्द १९४२ के अंतिम आन्दोलन मे दमोह जेल में रहे हैं। आज भी वयोवृद्ध प्रेमचन्द उस्ताद प्रेमचन्द कहलाते है और दमोह, जबलपुर आदि में वे सुपरिचित जनप्रिय हैं।

मण्डला जिले के **विद्यार्थी उदयचन्द जैन** की शहादत एक ऐसी शहादत है जिसकी दूसरी मिसाल नही। भारत छोड़ो आन्दोलन के सिलसिले मे देश भर मे जुलूस और सभाओं के आयोजन हुए। मण्डला मे भी १५ अगस्त को नगर में एक विशाल जुलूस बाजार की मुख्य सड़क से जिला फाटक की ओर आ रहा था। पुलिस ने जुलूस को आगे बढ़ने से रोक दिया और पुलिस अधिकारी ने आदेश दिया कि एक कदम भी जो आगे बढ़ायेगा उसे गोली मार दी जायेगी। विद्यार्थी उदयचन्द मंदिर से उतर कर सीढ़ियों पर से यह देख रहा था, उसने देखा कि आजादी का जुलूस आगे बढ़ने से रुक गया है। उदयचन्द तुरन्त दौड़कर जुलूस के आगे पहुँच गया। उसने पुलिस अधिकारी से कहा— आजादी का जुलूस कभी रुकता नही है, वह आगे बढ़ेगा। पुलिस अधिकारी ने कहा— खबरदार! आगे बढ़े तो गोली मार दी जायेगी। उदयचन्द की इस निर्भीकता से उपस्थित जनता भयभीत हो रही थी।

उदयचन्द का चेहरा पुलिस अधिकारी की इस धमकी से लाल हो उठा। उदयचन्द के नेत्र चमक उठे। उसने तुरन्त अपनी कमीज के बटन तोड़ते हुए सीना खोल दिया और कहा— 'चलाओ गोली' और दोनों हाथो से सीना खोलते हुए आगे बढ़ गया। उदयचन्द दो कदम आगे बढ़ा ही था कि पुलिस अधिकारी की एक के बाद एक— कुल दो गोलियाँ उसकी खुली हुई छाती को चीरते हुए निकल गई। उदयचन्द जमीन पर गिरने लगा, जिसे पीछे से बढ़कर लोगो ने अपने हाथो पर झेल लिया।

उदयचन्द की इस निर्भीक शहादत ने मण्डला मे ऐसा मन्त्र फूँका कि जो जुलूस उसकी अर्थी का निकला, उसमे देहात-देहात से आये जन समूह ने मण्डला के इतिहास मे एक नजीर कायम कर दी। जनता की शासन के प्रति इतनी तीव्रता परिलक्षित हुई कि शासकीय अधिकारी, चाहे वे जिस विभाग के हो, अनेक दिनो तक घरो से नही निकले। उदय चौक पर बने उदय स्मारक मे बन्दूक का प्रतीक भी बनाया गया है। उस पथ से गुजरने वाला हर व्यक्ति उस शहीद को अपनी हार्दिक वन्दना अर्पित किये बगैर नही रहता।

शहीद साबूलाल जैन गढ़ाकोटा जिला सागर की शहादत भी अपने निराले ढग की थी। पुलिस के नौजवान अपनी वर्दी मे खड़े अपने अधिकारी का अभिवादन कर रहे थे। इसी समय साबूलाल अपने ४-५ साथियो सहित पोस्ट आफिस पर झण्डा लगाने के बाद थाने के अहाते मे घुस आये। ४-५ साथी झण्डे के साथ थे। उनके पीछे था जनसमूह। थाने के सामने आकर साबूलाल ने कहा कि झण्डा थाने पर लगेगा, इसे सलाम करो। थानेदार और सिपाही यह नजारा देखकर भौचक्के रह गये। साबूलाल ने पुनः कहा झण्डा थाने पर लगेगा। इस आवाज पर पुलिस अधिकारी सतर्क हो गए।

लाठियाँ सम्हाल ली गई, बन्दूके तान ली गईं। परिस्थिति बहुत संगीन थी। साबूलाल यह समझ रहे थे कि आगे एक कदम भी बढ़ना मौत को बुलाना है, परन्तु थानेदार की यह जोरदार आवाज कि खबरदार! आगे नही बढ़ना! सुनकर साबूलाल उत्तेजित हो उठे और तिरगे झण्डे की जय का नारा लगाकर कदम आगे बढ़ा दिया। पुलिस दौड़ पड़ी, लाठी चार्ज हुआ, गोली

चली २५-३० प्रमुख व्यक्तियो को गिरफ्तार कर लिया गया। साबूलाल को लक्ष्य करके गोली चलाने से वे गम्भीर रूप से आहत हुए। उन्हें सागर अस्पताल ले जाने का लोगों ने प्रबन्ध किया, परन्तु रास्ते में पाँच मील ही चल पाये थे कि साबूलाल अपनी शहादत की अमर छाप इतिहास के पृष्ठो पर अंकित कर विदा हो गए।

साबूलाल की इस शहादत ने गढ़ाकोटा में विद्रोह की ऐसी ज्वाला सुलगाई कि सागर के सर्वाधिक ग्रामीण ज्वार भाटा की तरह समरांगण मे उतर पड़े और जेलों को भर दिया।

शहीद प्रेमचन्द आजाद दमोह की याद आज भी दमोह की जनता भूली नही है। उनकी मस्ती भरी आवाज मे प्रभात फेरी के गाने, जुलूसो एवं सभाओं का आयोजन करना और अपने ओजस्वी भाषणों से जनता को उत्तेजित करना आदि विविध कलाएँ प्रेमचन्द के बहु आयामी व्यक्तित्व को उजागर करती है।

सन् १९४२ के आन्दोलन के पहिले दौर में आजाद प्रेमचन्द सीखचों के भीतर कर दिये गये, परन्तु वहाँ भी वे जेल अधिकारियों पर अपना रोब गालिब किये बगैर नही रहे। निदान उन्हें जहर दे दिया गया और जब जहर का पूरा असर शरीर पर हो गया तो उन्हे छोड़ दिया गया। प्रेमचन्द के शरीर पर घाव जैसे चिह्न बन गये थे। शरीर से दुर्गन्ध आने लगी थी। दमोह की जनता ने पूरी ताकत लगा दी प्रेमचन्द को खड़ा करने मे, परन्तु सारे प्रयास विफल हुए और आजाद प्रेमचन्द इस शरीर के पिंजरे से भी आजाद होकर निकल गया।

जबलपुर के भैयालाल पुजारी का नौजवान पुत्र **शहीद मुलायमचन्द** अपनी छोटी सी कपड़े की दुकान लार्डगंज में करता था। वह खादी पहिनता था। सन्ध्या के समय उनके मित्रों में केवल कॉंग्रेस के नौजवान लोग आकर बैठा करते थे। यही मात्र उसका जुर्म था। उसे एक रात पुलिस ने आकर पकड़ लिया और जेल में बन्द कर दिया। संभवतः पुलिस एक ऐसे आदमी की तलाश में थी जो अपने अनेक नाम बदलकर पुलिस को चकमा दे रहा था। मुलायमचन्द का चेहरा उससे मिलता जुलता पाया गया और पुलिस ने सन्देह

मे पकड़ लिया। जेल में साधारणतः पूछताछ में जब कोई बात उससे नही मिली तो उसे भीषण यातनाएँ दी गयी। बर्बरता पूर्ण पिटाई से उसका शरीर स्वस्थ होने योग्य नही रह गया और उसे ९ दिनों तक जेल में रखने के बाद छोड़ दिया गया। मुलायमचन्द को स्वस्थ करने के लिये उनके मित्रों, सहयोगियो और समाज के लोगो ने भी अकथनीय प्रयास किया, परन्तु मुलायमचन्द बचाये न जा सके।

शहादत के साथ-साथ ऐसी भी मिसाले इस समाज के नौजवानों की हैं, जिन्होने अपने आपको देश कि लिए अर्पण करने के अनेक तरीकों से इजहार किया है।

जबलपुर के पनागर परगने के श्री लक्ष्मीचन्द जैन ने अपने चारो पुत्रो को बँटवारे मे दस-दस हजार नगद रुपये दिये थे। उनमें से एक पुत्र **प्रेमचन्द जैन** माल खरीदने बम्बई पहुँचे। वहाँ ८ अगस्त की सभा में काँग्रेस मंच से भारत छोड़ो के भाषण सुने। प्रेमचन्द ने उसी दिन प. जवाहरलाल नेहरू को अपने हिस्से की मिली कुल सम्पदा दस हजार रुपये अर्पित कर घर वापस चले आए। बम्बई के समाचार पत्रो ने इस समाचार को सुर्खियों मे छापा था।

दमोह के एक ओजस्वी व्यक्तित्व स्वर्गीय **चौधरी श्री भैयालाल जैन** अपने जीवन को राष्ट्र के लिए अर्पित कर एक इतिहास बना गये हैं। सन् १९२०-२१ मे वे काँग्रेस के प्रमुख व्यक्तियों में उस समय से रहे जब काँग्रेस सस्था वहाँ जन्म ले रही थी। उन्होने उस समय सेना में भर्ती करने आये अधिकारी द्वारा जब सेना मे आदमियो की भर्ती की जा रही थी तब उसका विरोध किया तथा प्रचार किया कि कोई भी आदमी सेना मे भरती न होवे। इस कारण इन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमें में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि सरकारी पक्ष से एक भी गवाह पूरे दमोह शहर व देहात मे भी नही मिला और चौधरी भैयालाल के पक्ष में दो हजार लोगों ने गवाही देने को अपने नाम दिये। सरकारी दबाव पड़ने पर भी जब कोई व्यक्ति गवाह के रूप मे नही मिला तो बहुत दिनों तक मुकदमा टालते हुए अन्त में मुकदमा खारिज करना पड़ा।

श्री भैयालाल चौधरी ने लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को दमोह मे आमंत्रित किया, परन्तु शासन की ओर से सभा करने पर पाबन्दी लगा दी गई।चौधरी जी इतने से निराश होने वाले नही थे। उन्होने २० मील दूर कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र की सुरम्य पहाड़ियो के मैदान मे कान्फ्रेन्स की और इस कान्फ्रेन्स को अभूतपूर्व सफलता मिली। हुकूमत इनकी बुद्धिमत्ता, जनता पर प्रभाव और इनके कौशल से परेशान थी।अन्त मे लोगो ने हतप्रभ होकर यह समाचार सुना कि १९२८ मे जब चौधरी जी कलकत्ता कॉग्रेस से लौट रहे थे तो रास्ते मे ट्रेन में ही इनकी हत्या कर दी गई। राष्ट्रप्रेम ही श्री चौधरी जी की इस प्रकार की मृत्यु का कारण बना, जो राष्ट्र के लिए एक शहादत हैं।

इसी प्रकार दमोह के **स्व. श्री गोकुलचन्द जैन वकील** भी आज तक दमोह की जनता से बिसराये नही जा सके। इनकी लोकप्रियता के कारण इन्हे दमोह जिले की जनता ने दमोह जिले का एक मात्र नेता स्वीकार किया था। गोकुलचन्द जी ने जो जन जागरण किया, उसकी गहरी छाप **श्री रघुवरप्रसाद मोदी** पर पड़ी और श्री गोकुलचन्द जी के स्वर्गस्थ होने पर श्री मोदी जी ने जिले का नेतृत्व सम्हाला। आज भी श्री मोदी जी दमोह की जनता की स्मृति मे सम्माननीय बने हुए हैं।

नरसिहपुर जिले के **स्वर्गीय बंशीधर जी बैसाखिया** भी अपनी अनोखी प्रतिभा के धनी थे। वे सन् १९२१ में सर्वप्रथम नागपुर के झण्डा सत्याग्रह में शामिल हुए। इस कारण उन्हें डेढ़ माह की सजा हुई। नागपुर जेल से रिहा होने के बाद उन्होने अपने घर का सब कामकाज छोड़ दिया और देशसेवा मे जुंट गये। जिले के देहात-देहात में पैदल भ्रमण कर उन्होंने इतनी ख्याति और लोकप्रियता अर्जित की कि बंशीधर बैसाखिया की सेवाओ को याद करते हुए आज भी बूढ़े-पुराने लोगों की आँखों में पानी भर आता है।

इन्दौर के **स्वर्गीय श्री देवेन्द्रकुमार गोधा** और रतलाम के **स्वर्गीय श्री चाँदमल मेहता** ख्याति प्राप्त थे। मेहता जी की धर्मपत्नी **श्रीमती सज्जन कुंअर** जो आज भी हमारे बीच में हैं, देश के लिए अपने जीवन को होम देने वालों की जीती-जागती मिसाल हैं।

टीकमगढ़ के **डा. फूलचन्द भदौरावाले** सन् १९४३ से आजादी व समाजवाद के सघर्ष मे कार्यरत है और कई बार जेल यात्राएँ करके तथा वर्षो भूमिगत रहकर जनसघर्षो को आगे बढ़ाने मे सघर्षरत रहे है और आज भी उसी प्रकार सक्रिय है।

हमारे समाज के ऐसे और भी अनेक मेधावी, कर्मठ एवं प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति हुए है, जिनकी गहरी छाप जनजीवन पर पड़ी है, परन्तु स्थानाभाव और पूरी जानकारी न होने से उनका उल्लेख नही किया जा रहा है।

हमारे प्रदेश मे समाज के जिन नौजवानो ने देश की आजादी के महायज्ञ मे अपने प्राणो का उत्सर्ग किया, अपने पूरे जीवन को समर्पित किया, यातनाओ को झेला और जेल के सीखचो मे वर्षो व्यतीत किये, उनकी तालिका नीचे दी जा रही है—

मध्यप्रदेश दि. जैन समाज के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की सूची

जिला-जबलपुर :

१. स्व श्री मुलामचन्द भैयालाल पुजेरी
२. स्व. श्री शुभचन्द गुलाबचन्द
३. श्री मुलामचन्द भालू दलाल
४. श्री रतनचन्द बट्टीलाल
५. श्री सवाईमल पूसमल
६. श्री लक्ष्मीचन्द बाबूलाल समैया
७. श्री झब्बूलाल बेनीलाल
८. श्री मोतीलाल टोडरमल
९. श्री दालचन्द भुलईलाल
१०. श्री कुन्दनलाल खूबचन्द
११. श्री रतनचन्द मूलचन्द
१२. श्री धन्नालाल गुलाबचन्द
१३. श्री कन्हैयालाल अबीरचन्द
१४. श्री खूबचन्द छबिलाल
१५. श्री बाबूलाल मन्नूलाल संघी
१६. श्री नेमचन्द मटरूलाल
१७. श्री हीरालाल अबीरचन्द

१८. श्री ज्ञानचन्द भोलानाथ
१९. श्री शिखरचन्द भोलानाथ
२०. श्री दीपचन्द परमदास
२१. श्री कोमलचन्द ईश्वरीप्रसाद
२२ श्री लक्ष्मीचन्द टीकाराम
२३ श्री भागचन्द गज्जीलाल, कटंगी
२४. श्री उत्तमचन्द मूलचन्द
२५. श्री प्रेमचन्द लोकमन
२६. श्री नाथूराम हीरालाल
२७ श्री दीपचन्द बसीलाल
२८ श्री मोतीलाल गुलाबचन्द
२९ श्री प्रेमचन्द लालचन्द
३० श्री मुलामचन्द दालचन्द
३१ श्री हुकुमचन्द चौधरी, कटनी
३२. श्री वीरचन्द, कटनी
३३ श्री सि. कालूराम, कटनी
३४ श्री लक्ष्मीचन्द दुलीचन्द
३५. श्री मुलायमचन्द दालचन्द
३६. श्री हुकुमचन्द
३७. श्री अमीरचन्द कस्तूरचन्द
३८. श्री मणिलाल सेठी
३९. श्री गोकुलचन्द टूड़ेलाल
४०. स्व. श्री नाथूलाल रतनचन्द गोंटिया, पनागर
४१. स्व. श्री साव मूलचन्द, कटंगी
४२. स्व. श्री बाबू चेतराम, कटंगी
४३. स्व. श्री प्यारेलाल दुलीचन्द, पाटन
४४. स्व. श्री सि कालूराम दरबारीलाल, पाटन
४५. स्व. श्री भैयालाल मुन्नालाल, कटंगी
४६. श्री गुलाबचन्द मूलचन्द, शहपुरा
४७. श्री ईश्वरी उर्फ बसीलाल, शहपुरा
४८. श्री सूरजचन्द जैन, शहपुरा
४९ श्री मोतीलाल गुलाबचन्द, कटंगी
५० स्व श्री प्रेमचन्द छब्बीलाल ड्योड़िया
५१ श्री शिखरचन्द बाबूलाल
५२ श्री नेमीचन्द बिहारीलाल
५३. श्री नेमचन्द उदयचन्द
५४. श्री रूपचन्द लक्ष्मीचन्द
५५ श्री बाबूलाल नन्हेलाल
५६. श्री लक्ष्मीचन्द दमरूलाल, गढ़ा
५७. श्री जवाहरलाल मुन्नालाल
५८. श्री कोमलचन्द दयाचन्द
५९. गोकुलचन्द नोखेलाल
६०. श्री अबीरचन्द पन्नालाल
६१. श्री प्रेमचन्द उदयचन्द
६२. श्री ज्ञानचन्द मुलामचन्द
६३. श्री भागचन्द जैन, कटंगी

६४. श्री सागरचन्द फूलचन्द, जबलपुर
६५. श्री बाबूलाल फदालीलाल
६६ श्री प्रेमचन्द मुन्नालाल
६७ श्री स्वरूपचन्द लोकमन
६८ श्री चुन्नीलाल मूलचन्द
६९ श्री नेमचन्द बघराजी
७०. स्व श्री मूलचन्द जैन, बरगी
७१. स्व श्री कोमलचन्द जैन, बरगी
७२ स्व. श्री कल्लूलाल जैन, बरगी
७३ श्री रतनचन्द हजारीलाल, पनागर
७४ स्व. श्री प्रेमचन्द आजाद, जबलपुर
७५. स्व श्री नेमीचन्द अमृतलाल, जबलपुर
७६. स्व. श्री हुकुमचन्द नारद, जबलपुर
७७. स्व श्री रमेशचन्द जैन, जबलपुर
७८. श्री जयकुमार हुकुमचन्द, कटनी
७९ डा. अभयकुमार बारेलाल, कटनी
८०. श्री भगवानदास बसोरेलाल, कटनी
८१ स्व. श्री कोमलचन्द खुशालचन्द
८२ स्व. श्री नेमीचन्द रतीराम
८३. श्री प्रभातचन्द जैन
८४. श्री शिखरचन्द बाबूलाल
८५. श्री बाबूलाल कुन्दनलाल
८६ श्री शिखरचन्द जवाहरलाल
८७ श्री हजारीलाल मूलचन्द
८८ श्री हुकुमचन्द नत्थूलाल
८९ श्री नारायणदास जैन
९० श्री हीरालाल फूलचन्द
९१ श्री रतनचन्द नत्थूलाल गोंटिया, पनागर
९२ श्री कन्हैयालाल, पनागर
९३. श्री मौजीलाल राजधर, कटनी
९४ श्री फूलचन्द दमरीलाल, कटनी
९५ श्री वीरचन्द बसगोपाल, कटनी
९६. श्री भागचन्द शोभाचन्द, सिहोरा
९७. श्री बाबूलाल दानपत, सिलोड़ी
९८ स्व श्री रतनचन्द दुलीचन्द, सिहोरा
९९. श्री राजेन्द्रकुमार, सिहोरा
१००. स्व. श्री बाबूलाल, बचैया
१०१. श्री फूलचन्द कस्तूरचन्द, बोरिया
१०२. श्री हुकुमचन्द देवीसिह, जबलपुर
१०३. श्री हुकुमचन्द जमुनाप्रसाद
१०४. श्री जवाहरलाल जैन, कटनी
१०५. श्री मूलचन्द जैन, पाटन
१०६. श्री कपूरचन्द जैन

१०७. श्री कुन्दनलाल जैन समैया
१०८. श्री रामगोपाल छहीलाल
१०८. अ. श्री बाबू चेतराम, पाटन

जिला-विदिशा :
१०९. श्री सूर्यप्रकाश
११०. श्री राजमल जालौरी एडवोकेट
१११. श्री धन्नालाल रूपचन्द
११२. श्री दमरू भारतीय

जिला-सतना :
११३. श्री कल्यानदास लखपतराय, मैहर
११४. श्री बाबूलाल गुलाबचन्द, सतना
११५. स्व. श्री लक्ष्मीचन्द, सतना
११६ श्री अमोलक शम्भूदयाल, सोहावल

जिला-पन्ना :
११७. श्री विजयकुमार बाबूलाल, पन्ना
११८. श्री नन्हाईलाल हल्केलाल, पन्ना
११९. सि. मूलचन्द शिखरचन्द, पन्ना
१२०. श्री सिं. परमलाल
१२१. श्री प्रेमचन्द जैन
१२२. श्री भागचन्द जैन

जिला-ग्वालियर :
१२३. श्री श्यामलाल पॉडवी, मुरार
१२४. श्री शंकरलाल गुलाबचन्द, मुरार
१२५. स्व. श्री भीकमचन्द, लश्कर
१२६. श्री कन्हैयालाल कहमानदास, मुरार
१२७. श्री रतनलाल जैन

जिला-दमोह :
१२८. श्री शहीद प्रेमचन्द आजाद
१२९. श्री प्रेमचन्द उस्ताद डा. नारायणदास
१३०. श्री रघुवरप्रसाद मोदी
१३१. श्री बाबूलाल फलेन्द्र S/O श्री नाथूराम पलंदी

१३२. स्व. श्री राजाराम उर्फ राजेन्द्रकुमार
१३३. स्व. श्री कुन्दनलाल बल्द छोटेलाल
१३४. श्री कामताप्रसाद मूलचन्द
१३५. श्री रतनचन्द गुलाबचन्द
१३६ श्री डालचन्द नन्दीलाल
१३७. श्री रूपचन्द दुलीचन्द बजाज
१३८. श्री गुलाबचन्द राजाराम
१३९. श्री पूरनचन्द हजारीप्रसाद
१४० स्व श्री कपूरचन्द दरबारीलाल
१४१. श्री गोकुलचन्द करजूलाल वकील
१४२. श्री डालचन्द नन्दकिशोर गागरा
१४३ श्री चौ. गुलाबचन्द शास्त्री
१४४ स्व. श्री त्रिलोकचन्द
१४५. श्री नन्दनलाल गुलाबचन्द
१४६ श्री रामप्रसाद फदालीलाल
१४७. श्री मूलचन्द
१४८ श्री बाबूलाल अनन्तराम
१४९. श्री नन्दनलाल
१५० श्री चौधरी भैयालाल
१५१ स्व श्री गोकुलचन्द वकील

जिला-देवास

१५२ श्री भीकमचन्द रिगनौद

जिला-भोपाल :

१५३. श्री विजयकुमार जैन, ५६/२ साउथ टी. टी. नगर
१५४. श्री मोतीलाल कौशल, तुलसीनगर
१५५. श्री गुलाबचन्द तामोट
१५६. श्री सूरजमल जैन एडवोकेट
१५७ श्री प्रो. अक्षयकुमार जैन

जिला-मुरैना :

१५८. स्व. श्री छीतरमल जैन
१५९. स्व. श्री किशोरी जैन

जिला-दुर्ग

१६०. श्री मोहनलाल बाकलीवाल
१६१. श्री धनराज देशलहरा

१६२. स्व श्री गुलाबचन्द जेठमल
१६३. श्री लालचन्द
१६४. श्री रूपचन्द
१६५. श्री सुन्दरलाल
१६६. श्री हीरालाल

जिला-बिलासपुर :

१६७. श्री बालचन्द कगनूलाल सक्री
१६८. स्व. श्री पूरनचन्द, बिलासपुर

जिला-बस्तर :

१६९. श्री सुभागमल जोधराम, जगदलपुर

जिला-छतरपुर :

१७०. श्री महेन्द्रकुमार मानव, छतरपुर
१७१. श्री कोमलचन्द खूबचन्द
१७२. श्री डॉ. नरेन्द्र विद्यार्थी
१७३. श्री छोटेलाल दरबारीलाल अकोना
१७४. श्री सुरेन्द्रलाल बृजलाल, छतरपुर
१७५. श्री दशरथलाल जैन
१७६. श्री गजाधर

जिला-रायसेन :

१७७. श्री निर्मलकुमार जैन, बरेली
१७८. श्री सोहागमल नवरतनमल
१७९. श्री भँवरलाल नवरतनमल
१८०. श्री सुन्दरलाल नन्हेंलाल
१८१. श्री गुलालचन्द तामोट
१८२. श्री लालचन्द साचैत
१८३. श्री भँवरलाल मिश्रीलाल

जिला-खरगौन/पश्चिम निमाड़ :

१८४. स्व. श्री मयाचन्द जटाले, सनावद
१८५. श्री कमलचन्द चम्पालाल, सनावद
१८६. श्री माँगीलाल सदासुख पाटनी
१८७. श्री फकीरचन्द उर्फ फणीन्द्र
१८८. श्री कुमार दशरथ जैन
१८९. श्री सुमेरचन्द त्रिलोकचन्द

१९०. श्री गोविन्ददास चन्दालाल, खरगौन

१९१. श्री पन्नालाल पदमासा, सनावद

१९२ श्री रामचन्द बाबूलाल खलाई

जिला-सागर :

१९३ शहीद श्री साबूलाल, गढ़ाकोटा

१९४. श्री पन्नालाल नाथूराम

१९५. श्री हीरालाल प्यारेलाल

१९६. श्री पन्नालाल छोटेलाल

१९७. श्री बाबूलाल साबूलाल

१९८ श्री लक्ष्मीचन्द रज्जीलाल

१९९. श्री कन्छेदीलाल राजाराम

२००. श्री छोटेलाल नन्हेलाल

२०१. श्री मिट्ठूलाल हजारीप्रसाद

२०२ श्री मुंशी सुन्दरलाल सुखलाल

२०३. श्री ताराचन्द गटटूलाल

२०४. श्री दालचन्द मानकलाल

२०५. श्री कामताप्रसाद मूलचन्द

२०६. श्री तेजीलाल प्यारेलाल

२०७. श्री नन्हेंलाल कुन्दनलाल

२०८. श्री भैयालाल घासीराम

२०९. श्री बाबूलाल हीरालाल

२१०. श्री पूरनचन्द कदालीलाल

२११. श्री रामलाल नाथूलाल

२१२. श्री कन्छेदी लाल उर्फ पंचमलाल

२१३. श्री भैयालाल बल्द कन्हैयालाल

२१४ श्री सोहनलाल बल्द रगवरप्रसाद

२१५. श्री धरमचन्द फदालीलाल

२१६. श्री दालचन्द भैयालाल

२१७. श्री पं. फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री, बीना

२१७ अ. आत्मज धरमचन्द सोधिया

२१८ श्री गोकुलप्रसाद परमानन्द

२१९. श्री राजाराम बल्द गनेश

२२०. श्री स्वरूपचन्द बृजलाल

२२१ श्री गरीबदास बल्द बारेलाल

२२२. श्री पन्नालाल फत्तूलाल

२२३. श्री गोकुल बल्द सुखलाल

२२४. श्री रामस्वरूप बल्द चुन्नीलाल

२२५. श्री खुमानचन्द खेमचन्द

२२६. श्री ताराचन्द मौजीलाल

२२७. श्री धरमचन्द बल्द छोटेलाल

२२८. श्री गुलाबचन्द दालचन्द

२२९. श्री बाबूलाल गट्टूलाल

२३०. श्री ज्ञानचन्द पन्नालाल

२३१. श्री परमानन्द भैयालाल

२३२. श्री हरप्रसाद पूनमचन्द

२३३. श्री पन्नालाल नाथूराम
२३४. श्री मूलचन्द भैयालाल
२३५. श्री खेमचन्द काशीराम
२३६. श्री हेमचन्द नाथूराम
२३७. श्री सुरेशचन्द दुलीचन्द
२३८. श्री सेठ बाबूलाल कालूराम
२३९. श्री जमुनाप्रसाद नन्हेलाल
२४०. श्री नन्हेलाल परमानन्द
२४१ श्री खेमचन्द नन्हेलाल
२४२. श्री कुन्दनलाल कामताप्रसाद
२४३ श्री फूलचन्द मधुर रामचरन
२४४. श्री दयालचन्द किशोरीलाल
२४५. श्री सिं स्वरूपचन्द झुन्नीलाल
२४६. श्री ताराचन्द दयालचन्द
२४७. श्री पूरनचन्द उर्फ भाई जी
२४८. श्री सुमनचन्द खूबचन्द
२४९. श्री छोटा उर्फ रतनचन्द
२५०. श्री सेठ बाबूलाल प्यारेलाल
२५१. श्री बाबूलाल बल्द दरबारीलाल
२५२. श्री खेमचन्द कोमलचन्द
२५३. श्री पंचमलाल मोतीलाल वैसाखिया
२५४. श्री पूरनचन्द मूलचन्द
२५५. श्री शिखरचन्द नाथूराम
२५६. श्री पन्नालाल बल्द गनपत
२५७. श्री हेमराज बल्द टेकचन्द
२५८. श्री धन्नालाल बल्द मन्नूलाल
२५९. श्री धन्नालाल बल्द मोतीलाल
२६०. श्री नन्हेलाल बल्द मूलचन्द
२६१. श्री बंशीधर बल्द मुकुन्दीलाल
२६२. श्री मुन्नालाल बल्द बालचन्द
२६३. श्री दयाचन्द बल्द भूरेलाल
२६४. श्री भैयालाल बल्द नन्हेंलाल
२६५. श्री छोटेलाल बल्द सुखलाल
२६६. श्री बसन्तीलाल बल्द फकीरचन्द
२६७. श्री भोलानाथ बल्द रामरतंन
२६८. श्री गुलझारीलाल आत्मज सुन्दरलाल
२६९. श्री चिन्तामन आत्मज द।लचन्द
२७०. श्री गुलझारीलाल आत्मज दरयावप्रसाद
२७१. श्री कन्छेदीलाल आत्मज बुद्धूलाल
२७२. श्री मुन्नालाल
२७३. श्री मास्टर टीकाराम
२७४. श्री चुन्नीलाल आत्मज सरमनलाल
२७५. श्री मानकलाल

२७६. श्री शंकरलाल आत्मज नानकचन्द
२७७. श्री दयाचन्द आत्मज भोलाराम
२७८. श्री गुलाबचन्द आत्मज पल्टूराम
२७९. श्री सुन्दरलाल आत्मज भगवानदास
२८० श्री मिट्ठूलाल आत्मज हजारीलाल
२८१. श्री कपूरचन्द आत्मज हीरालाल
२८२ श्री रावेलाल आत्मज रामलाल
२८३ श्री स्व भाईजी बल्द गरौले
२८४ श्री नन्हेलाल बुखारिया
२८५ श्री भुवनेन्द्रकुमार शास्त्री
२८६. श्री रामलाल नायक
२८७. श्री सुन्दरलाल चौधरी
२८८. श्री नाथूरामजी पुजारी
२८९. श्री धन्नालाल विद्यार्थी
२९०. श्री प्रेमचन्द जैन, बीना
२९१. श्री शिखरचन्द जैन, बीना
२९२. स्व. श्री गनेशीलाल बाबा
२९३. श्री पन्नालाल वासुस
२९४. श्री सि. राजधरलाल, शाहपुर
२९५. श्री लक्ष्मीचन्द सोधिया सुर्खी
२९६ श्री सिं कुजीलाल, शाहगढ़
२९७. श्री डेवड़िया खूबचन्द, शाहगढ़
२९८ श्री बालचन्द, शाहगढ़
२९९ श्री बाबू गुलाबचन्द, ढाना
३०० श्री बाबूलाल आत्मज इन्दीवर, गौरझामर
३०१. स्व. श्री कन्छेदीलाल, बण्डा
३०२ श्री कुन्दनलाल दयाराम, बण्डा
३०३. स्व. श्री खूबचन्द सोधिया, गढ़ाकोटा
३०४. स्व श्री सेठ गिरधारीलाल, गढ़ाकोटा
३०५. स्व श्री रमेशचन्द
३०६ श्री डालचन्द लालचन्द
३०७. श्री केवलचन्द, गौरझामर
३०८. श्री मुन्नालाल जैन
३०९. श्री ज्ञानचन्द, ढाना

जिला-धार :
३१०. श्री हीरालाल गंगवाल

जिला-रायगढ़ :

३११. श्री अयोध्याप्रसाद मोहनलाल, रायगढ़

जिला-खण्डवा :

३१२. श्री रामचन्द नागड़ा
३१३. श्री अमोलकचन्द
३१४. श्री धन्नालाल रामचन्द
३१५. श्री खेमचन्द पीताम्बरलाल
३१६. स्व. श्री दयाचन्द दुलीचन्द

जिला-रायपुर :

३१७. श्री सोहनलाल आत्मज घेवरचन्द, नॉदगॉव
३१८. श्री बशीलाल आत्मज कपूरचन्द
३१९ श्री गुलाबचन्द आत्मज रूपचन्द
३२०. श्री पूरनचन्द रेवाराम
३२१. श्री गोपीकिशन मूलचन्द, सदर बाजार, रायपुर
३२२. श्री सुभागमल जोधरमल, जगदलपुर
३२३. श्री नेमीचन्द धनराज, गंजपारा, रायपुर
३२४. श्री नेमचन्द हजारीमल, हलवाई लाइन, रायपुर
३२५. श्री मदनलाल मोतीलाल, बजराजनगर
३२६. श्री सोहनलाल धवलचन्द, नॉदगॉव
३२७. श्री बंसी कपूरचन्द केनवेरा
३२८ श्री चौधमल चन्द्रभान खरी
३२९. श्री लक्ष्मीलाल गेदालाल गड़वेड़ा
३३०. श्री सुरेशचन्द डास गणेशचन्द्र दास डास धरसिवा

जिला-राजगढ़ :

३३१. श्री शांतिलाल बंछेड़
३३२. श्री धीसालाल सौंधिया पान्डलमा खेड़ी
३३३. श्री मानकलाल तलेन
३३४. श्री पूलचन्द गोयल पचौर
३३५. श्री हीरालाल जैन पान्डलमा माता जी
३३६. श्री भँवरलाल जैन, छापीखेड़ा
३३७. स्व. श्री बाबूलाल सोधिया, ब्यावरा

३३८. श्री मदनलाल जैन तलेन

जिला-होशंगाबाद :

३३९. श्री मूलचन्द परमानन्द सिघई, वावई

३४०. श्री पन्नालाल धन्नालाल, वावई

३४१. श्री बाबूलाल धन्नालाल, वावई

३४२ श्री एन. कुमार कालूराम, इटारसी

३४३. श्री निर्मलकुमार बाबूलाल, होशगाबाद

३४४. श्री नेमीचन्द जैन, चौरई

५४५. श्री सिंघई नन्हेलाल, सोहागपुर

जिला-छिंदवाड़ा :

३४६ श्री मोतीलाल तुकाराम सासर

३४७. श्री मानिकराव रामचन्द्र सावगा

३४८. श्री प्रेमचन्द छोटेलाल, छिदवाड़ा

३४९. श्री मल्लूसाव नारायण, लोधीखेड़ा

३५०. स्व. श्री गुलाबचन्द चौधरी

३५१ स्व. श्री नेमचन्द जैन

३५२. श्री मुन्नालाल साव

३५३. श्री मुन्नालाल जैन

३५४. श्री नाथूसाव जैन

जिला-सिवनी :

३५५. स्व. श्री गुलाबचन्द मुन्नालाल सगीतप्रेमी, सिवनी

३५६. श्री अभयकुमार गुलाबचन्द, सिवनी

३५७. श्री कोमलचन्द आजाद, सिवनी

३५८. श्री विरदीचन्द गोयल एडवोकेट, सिवनी

३५९ श्री मुलायमचन्द कान्हीबाड़ा

जिला-इंदौर :

३६०. श्री देवेन्द्रकुमार कंवरलाल गोधा

३६१. श्री मिश्रीलाल बालचन्द, गगवाल

३६२. श्री कन्हैयालाल कंसरमल

३६३. श्री कन्हैयालाल आत्मज नन्दराम

३६४. श्री बाबूलाल पटौरी

३६५. श्री बाबूलाल बल्द छोंगालाल
३६६. श्री मानूकुमार बल्द छोटेलाल
३६७. श्री माणिकलाल दीपचन्द
३६८. श्री मोहनलाल टेकचन्द
३६९. श्री रविचन्द मगनलाल शाह
३७०. श्री राजमल दीपचन्द
३७१ श्री शान्तिलाल छोंगालाल
३७२. श्री शिरेमल छाजेड़
३७३. श्री सुखदेव रामचन्द
३७४ श्री मिश्रीलाल मोतीलाल
३७५. श्री इन्दरमल छोगामल
३७६. श्री उमरावमल हस्तीमल
३७७. श्री केशरीमल चम्पालाल
३७८. श्री कालूसिंह रतनसिह छाजेड़
३७९. श्री कुसुमकान्त जैन
३८०. श्री पन्नालाल
३८१. श्री गेदालाल विरुदीचन्द
३८२. श्री गुलाबचन्द जैन
३८३. श्री गेंदालाल शैतानमल मोदी
३८४. श्री धनराज सुगमचन्द
३८५. श्री चौथमल केशरीमल
३८६. श्री नाथूलाल गुलाबचन्द भण्डारी
३८७. श्री प्यारेचन्द गुलाबचन्द
३८८. श्री परमसुख पन्नालाल
३८९. श्री पन्नालाल आत्मज पद्मशाह
३९०. श्री बाबूलाल नन्हेंलाल
३९१. श्री भाउराव नेमाजी जैन
३९२. श्री मालिकचन्द बाबूलाल
३९३. श्री माँगीलाल हजारीलाल
३९४. श्री माँगीलाल पूनमचन्द
३९५. श्री मिश्रीलाल लालचन्द
३९६. श्री राजकुमार रतनलाल
३९७. श्री राजकुमार रतनलाल
३९८. श्री रामराव आत्माराम
३९९. श्री लक्ष्मण आत्माराम
४००. श्री शातीलाल घासीराम
४०१. स्व. श्री सुन्दरलाल घूमनलाल
४०२. श्री सूरजमल वृद्धिसेन
४०३. श्री हस्तीमल हीरालाल
४०४. श्री ज्ञानचन्द लाखचन्द
४०५. श्री हीरालाल जीवनलाल गगवाल
४०६. श्री मिश्रीलाल बालचन्द गंगवाल

जिला-नरसिंहपुर :

४०७. स्व. श्री बंशीधर वैसाखिया, नरसिंहपुर
४०८. पं. लोकमणि आशाराम, गोटेगाँव

४०९. श्री डालचन्द छक्कीलाल, गोटेगॉव
४१०. स्व. श्री यादवचन्द बुद्धूलाल
४११. श्री प्रेमचन्द लोकमन, कन्देली
४१२. श्री कन्छेदीलाल गल्लीलाल, तेदूखेड़ा
४१३. श्री भागचन्द लीलाधर, तेदूखेड़ा
४१४. श्री बाबूलाल एडव्होकेट, गाडरवारा
४१५ श्री अमृतलाल "चचल" हजारीलाल
४१६. श्री शिखरचन्द हजारीलाल
४१७. श्री भीकमचन्द मगलचन्द, गोटेगॉव
४१८. श्री भागचन्द दमरूलाल
.४१९. श्री फूलचन्द, बमौरिया
४२०. श्री मगलचन्द कन्हैयालाल, नरसिहपुर
४२१. स्वदेशी खेमचन्द मोहनलाल, तेदूखेड़ा
४२२. श्री रतनचन्द कन्छेदीलाल, कंदेली
४२३. श्री मानकचन्द नन्दकिशोर, बम्हनी
४२४. श्री लालचन्द कल्लूलाल, बिलहरा
४२५. श्री फद्दूलाल लीलाधर, तेदूखेड़ा
४२६ श्री प्रेमचन्द छोटेलाल, गाड़रवारा
४२७ श्री दालचन्द पुनऊलाल, गोटेगॉव
४२८ श्री कोमलचन्द रतनचन्द, करेली
४२९ श्री खेमचन्द मोहनलाल, तेंदूखेड़ा
४३०. श्री शंकरलाल मानकचन्द, गाडरवारा
४३१. श्री कोमलचन्द खेमचन्द
४३२ श्री जमनाप्रसाद परमानन्द
४३३. श्री ताराचन्द कुन्नूलाल
४३४. श्री डालचन्द आत्मज पुनउलाल
४३५. श्री मगलचन्द सिंघवी आत्मज दयाचन्द

जिला-टीकमगढ़ :

४३६. श्री अमृतलाल फणीन्द्र, टीकमगढ़
४३७. श्री दयाचन्द
४३८. श्री ताराचन्द
४३९. श्री अजितकुमार
४४०. श्री डा. फूलचन्द भदौरावाले
४४१. श्री दुलीचन्द
४४२. श्री छक्कीलाल

४४३. श्री साधोलाल
४४४. श्री अभयकुमार
४४५. श्री ज्ञानचन्द
४४६. श्री गुलाबचन्द
४४७. श्री बाबूलाल
४४८. श्री गयाप्रसाद
४४९. श्री दुलीचन्द (वल्लू कारी)
४५०. श्री स्वरूपचन्द
४५१. श्री मूलु
४५२. श्री गोरेलाल
४५३. श्री फूलचन्द
४५४. श्री कन्हैयालाल
४५५. श्री मातादीन बालकदास
४५६ श्री धन्नालाल सेठ भगवानदास
४५७. श्री हल्केराम विलारी
४५८. श्री बाबूलाल बल्देवप्रसाद
४५९. श्री कपूरचन्द भैयालाल
४६०. श्री लक्ष्मीचन्द नाथूराम जैन
४६१. श्री गुलजारीलाल
४६२. श्री किशोरीलाल कालिकाप्रसाद
४६३. श्री छक्कीलाल बल्देवप्रसाद
४६४. श्री पुतीलाल गोपालचन्द
४६५. श्री भागचन्द
४६६. श्री भगवानदास
४६७. श्री दीपकचन्द
४६८. श्री गोपीचन्द
४६९. श्री मगनलाल
४७०. श्री बाबूलाल
४७१. श्री दयाचन्द बॉझल्ल
४७२. श्री लक्ष्मीचन्द

जिला-मण्डला

४७३. श्री शहीद उदयचन्द
४७४. श्री नेमीचन्द मोहनलाल, पिंडरई
४७५. श्री खेमचन्द मुन्नालाल
४७६. श्री उत्तमचन्द कुंजीलाल
४७७. श्री चुन्नीलाल पन्नालाल
४७८. श्री केवलचन्द मुलामचन्द
४७९. श्री गुलाबचन्द विंद्रावन
४८०. श्री डालचन्द धन्नालाल
४८१. श्री बाबूलाल हरप्रसाद, नैनपुर
४८२. श्री प्रभाचन्द हरचन्द, डिण्डौरी
४८३. श्री मिट्ठूलाल बंशीलाल, पिंडरई
४८४. श्री मुलायमचन्द विंद्रावन, पिंडरई
४८५. श्री शिखरचन्द मुलायमचन्द, पिंडरई

४८६. श्री धन्नालाल बल्देवप्रसाद, बकौड़ी

जिला-शहडोल :

४८७. स्व. श्री रूपचन्द रतनचन्द, बुढ़ार
४८८. श्री नानकचन्द, बुढ़ार
४८९. श्री सुमतचन्द
४९० श्री बाबू धरमचन्द
४९१. श्री मुलायमचन्द मूलचन्द, शहडोल
४९२. स्व. श्री बाबूलाल बैनीलाल, बुढ़ार
४९३. श्री धरमचन्द रामचन्द, बुढ़ार
४९४. श्री सागरचन्द पल्टूलाल, बुढ़ार
४९५. श्री रतनचन्द रूपचन्द
४९६. श्री पन्नालाल जैन
४९७. श्री हीरालाल फूलचन्द

जिला-भिण्ड :

४९८. श्री फूलचन्द लोहिया
४९९. श्री सम्पतराय बट्टामल
५००. श्री बटेश्वरदयाल बकेवरिया
५०१. श्री सौभाग्यमल अनूपचन्द
५०२. श्री पन्नालाल ज्वालाप्रसाद

जिला-शिवपुरी :

५०३. श्री वैद्य रतनचन्द जैन
५०४. श्री चिन्टूलाल बंसल

जिला-गुना :

५०५. श्री रमनलाल प्रेमी
५०६. श्री ज्ञानचन्द मॉडल
५०७. श्री चौधरी सुगमचन्द

जिला-मन्दसौर :

५०८. श्री रामविलास पौरवाल
५०९. श्रीलालचन्द चौरडया
५१०. श्रीचन्दनमल फूलचन्द
५११. श्री माधवचन्द

जिला-सिहोर :

५१२. श्री फूलचन्द पन्नालाल, गंज सिहोर
५१३. स्व. श्री मूलचन्द हजारीलाल, सिहोर
५१४. श्री बाबूलाल छगनलाल
५१५. श्री शांतिलाल राजमल
५१६. श्री धानमल लालचन्द
५१७. श्री बाबूलाल गांधी छगनलाल
५१८. श्री केशरीमल झँवरलाल इछावर
५१९. श्रीचन्दनलाल गुलाबचन्द आष्टा
५२०. श्री मानकलाल हीरकचन्द पगारिया
५२१. श्री मिलापचन्द फूलचन्द रेहटी

जिला-झाबुआ :

५२२. श्री सौभागमल
५२३. श्री जौहारमल
५२४. श्री कमलाकांत टेकचन्द
५२५. श्री रमेशचन्द रखबचन्द
५२६. श्री बिहारीमल
५२७. श्री मानकलाल गुलाबचन्द
५२८. श्री मेरुराज पिरथीराज
५२९. श्री चाँदमल
५३०. श्री हुकुमचन्द भागीरथ पोरवाल
५३१. श्री सौभाग चुन्नीलाल पोरवाल

जिला-उज्जैन :

५३२. श्री राजमल कोठारी
५३३. श्री रामचन्द करनावट
५३४. श्री अवंतीलाल
५३५. डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन
५३६. श्री सुन्दरलाल दीपचन्द
५३७. श्री शोभाराम रिखनदास
५३८. श्री राजमल चाँदमल

जिला-सरगुजा :

५३९. श्री पन्नालाल खेमचन्द जैन, चिरमिरी

जिला-रीवाँ :

५४०. श्री अमोलकचन्द, रीवाँ

जिला-रतलाम :

५४१. श्री चांदमल मेहता रतलाम
५४२. श्री सौभागमल जैन

५४३. श्री सुजानमल केशरीमल
५४४. श्री दुलीचन्द समरथमल
५४५. श्रीमती तेजीबाई बालचन्द
५४६. श्री प्रेमचन्द चतुर्भुज
५४७. श्री जड़ावचन्द कस्तूरचन्द
५४८. श्री आनन्दसिंह छाजेड़
५४९. श्री रतनचन्द विरदीचन्द बावरा
५५०. श्रीमती सज्जन कुँअर चाँदमल
५५१. श्री जीतमल छाजेड़

जिला-शाजापुर :

५५२ श्री सौभाग्यमल जैन शुजालपुर

जिला-बैतूल :

५५३ श्री आनंदराव मुहताई
५५४ श्री दिवाकरराव नाघोषा मुहताई
५५५ श्री दिगम्बरराव शातिनाथ, बैतूल
५५६. श्री गगाधर बलीराम
५५७. श्री बलीराम नासौबा
५५८. श्री मानराव नेमाजी
५५९. श्री शेषराव लाहनू जी
५६०. श्री वाभनराव राजाराम
५६१ श्री बाबूराव दीदन जी
५६२. स्व. श्री जेठमल तातेड़जी
५६३. श्री श्यामलाल पाटनी
५६४. श्री सुन्दरलाल किसनलाल

जिला-बालाघाट :

५६५. श्री पदमचन्द पन्नालाल, वारासिवनी
५६६. श्री कोमलचन्द खूबचन्द, वारासिवनी
५६७. श्री नेमचन्द दालचन्द, वारासिवनी
५६८. श्री मोतीलाल गुहीलाल, वारासिवनी
५६९. स्व. शांतिलाल सबसुखलाल, वारासिवनी
५७०. श्री फूलचन्द पन्नालाल, वारासिवनी
५७१. श्री दयाचन्द हजारीलाल, वारासिवनी
५७२. श्री रमेशचन्द पन्नालाल, वारासिवनी
५७३. श्री दशरथ हीरालाल, वारासिवनी
५७४. श्री श्रीचन्द गेंदालाल, वारासिवनी
५७५. श्री वृन्दावन गेंदालाल, वारासिवनी
५७६. श्री विजयचन्द धरमचन्द, वारासिवनी

विशेष :

(१) इन सेनानियों मे कई दो बार और कई तीन बार भी जेल गये हैं।

(२) यह सूची सन् १९३२ से १९४२ तक के सेनानियों की है। इसके पूर्व १९२०, २१, २२, की सूची अप्राप्त है।

(३) ये एक माह से लेकर दो साल तक की सजा पाये हुए सेनानी है।

(४) जिन्होंने अपने प्राणों का बलिदान किया ऐसे सेनानियों का परिचय प्रारम्भिख लेख में है।

(५) यह संख्या कॉग्रेस कमेटी कार्यालय में दर्ज सेनानियों की है।

(६) जिनके नाम कार्यालय में दर्ज नही हैं, ऐसे भी १००-५० व्यक्ति हैं।

(७) जंगल सत्याग्रह आदि मे शामिल होने वालों की संख्या हजारो व्यक्तियो की है। जो गिरफ्तार हुए, नजरकैद रहे, फिर छोड़ दिये गये।

(८) आन्दोलन के समय गुप्त परचा, पुस्तिका, पत्रिका छापने वाले भी अनेक सज्जन हैं, जिनके नाम इनसे अतिरिक्त हैं।

(९) भूमिगत होकर काम करने वाले भी पचासो सैनिक हैं।

(१०) जो जेल न जा सके, उन्होने जेल यात्रियों के पारिवारिक जनों की आर्थिक मदद की। सरकार के कोपभाजन होने पर जुर्माना न दिया, परन्तु अपनी कुड़की करवाई। ऐसे पचासों सज्जन हैं।

बुन्देलखण्ड प्रान्त के अन्य विद्वान्

यह प्रान्त परवार, गोलापूर्व, गोलालारे, तारणपंथी — इन प्रमुख समाजों का संगम स्थल है। परवार जैन समाज का इतिहास परवार समाज की प्रमुखता से लिखा गया है। अतः इसमें यह दिखाया गया है कि परवार समाज में इस शताब्दी में कौन-कौन विद्वान्, त्यागी, व्रती, मुनि, आचार्य, आर्यिका आदि तथा प्रमुख श्रावक, धर्मात्मा और दानी आदि हुए हैं तथापि प्रान्त व समाज की दृष्टि से अन्य जातियों में भी उक्त प्रकार से श्रेष्ठ पुरुष हैं, उनका भी

संक्षिप्त परिचय देने के लोभ का सवरण नही किया जा सकता है । क्योंकि इस प्रान्त की धार्मिक एवं सामाजिक उन्नति में वे परवार समाज के दाहिने-बॉये हाथ की तरह सहायक रहे है और है । इनमे प्रमुख व्यक्ति इस प्रकार है—

न्यायालंकार पं. बंशीधरजी शास्त्री :

महरौनी (ललितपुर) निवासी लल्ला जी के ज्येष्ठ पुत्र तथा स्वनामधन्य स्व. प. गोपालदास जी वरैया के शिष्य पं. बशीधर जी न्यायालकार का नाम अग्रगण्य है। ये जैन न्याय एवं सिद्धान्त के बड़े ठोस विद्वान् थे। गुरुजी के बाद उनके द्वारा स्थापित जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैना को जो गति मिली उसमें इनका प्रथम स्थान है। स्व. पं. देवकीनन्दन जी और ये दूध-मिश्री की तरह मिलकर इस विद्यालय के प्रति छात्रो का आकर्षण बनाये रहे। पं. देवकीनन्दन जी सामाजिक क्षेत्र में प्रख्यात थे, परन्तु ये सिद्धान्त के मर्मी छात्रो को सिद्धान्त में सिद्धहस्त बनाते रहे। सुप्रसिद्ध विद्वान् प. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री, प. जगन्मोहनलाल जी शास्त्री, पं. नन्हेंलाल जी शास्त्री, पं. पल्टूराम जी शास्त्री, प. चन्द्रकुमार जी शास्त्री, पं. जीवन्धर जी न्यायतीर्थ, पं. तुलसीराम जी बड़ौत, प. राजेन्द्रकुमार जी, प. भुजबली शास्त्री आदि सभी उच्चकोटि के सिद्धान्तज्ञ विद्वान्, पं. बंशीधर जी की देन हैं। पं. जी के कनिष्ठभ्राता श्री हरिश्चन्द्र जी है तथा सुपुत्र श्री धन्यकुमार जी जैन एम. ए. जैनदर्शनाचार्य हैं। यद्यपि प. बशीधर जी गोलालारे समाज के मुकुटमणि थे तथापि तत्कालीन प्रायः ७५ प्रतिशत विद्वानों के वे सैद्धान्तिक गुरु हैं। अन्य शताधिक विद्वान् जिन्हे दूसरी पीढ़ी के कहना चाहिए, इनके प्रशिष्य हैं। ऐसे सिद्धान्त मर्मज्ञ के प्रति परवार समाज के सिवाय अग्रवाल, पद्मावती पुरवाल, जैसवाल, दक्षिण प्रान्तीय समाज भी इनके प्रति कृतज्ञ है।

कतिपय अन्य विद्वान् :

इस समाज के ही इनके सिवाय पं. नन्हेंलाल जी, पं. रवीन्द्रकुमार जी, पं. बाबूलाल जी जमादार, इतिहासज्ञ पं. परमानन्द जी शास्त्री, पं.

धन्नालाल जी जमादार आदि पचासो विद्वान् है। इसी प्रकार गोलापूर्व समाज के स्वनामधन्य सिं. कुन्दनलाल जी सागर, विद्वानो मे प. मुन्नालाल जी, डॉ. दरबारीलाल कोठिया, पं. बशीधर व्याकरणाचार्य, डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, डॉ. गोकुलचन्द्र जैन, श्री गोपीलाल 'अमर', डॉ. भागचन्द्र भागेन्दु, डॉ. भागचन्द्र भास्कर, श्री नत्थालाल नीरज, प. बालचन्द्र शास्त्री हैदराबाद आदि सैकड़ो विद्वान् है, जो साहित्यिक तथा धार्मिक गतिविधियो मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। सामाजिक सेवाओ एव विद्वानो का निर्माण करने मे भी इनका प्रमुख हाथ रहा है।

मूलसंघ आम्नाय की कुछ विशेषताएँ

प्राय. २०० वर्ष पूर्व एक बहुत बड़ी पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा चन्देरी मे हुई थी। उसमे भगवान् जिनेन्द्रदेव को बहुमान देने की दृष्टि से भगवान् के रथ को 'गजरथ' का रूप दिया गया था। इसके पहिले गजरथ कही नही चलाये जाते थे। सामान्य रथ या विमान ही निकलते थे और भगवान् का विहार होता था। इसके बाद यह प्रथा प्रान्तभर मे व्यापक हो गई। बुन्देलखण्ड प्रदेश मे इसके बाद जो पञ्चकल्याणक हुए वे सब गजरथ पूर्वक हुए और वर्तमान मे हो रहे है। पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा में गजरथ चलाने की प्रथा इस प्रदेश की मूल आम्नायी समाज की देन है। इसका अनुसरण अब दूसरे प्रदेशो मे भी शुरु हुआ है।

पहले पञ्चकल्याणक कराने एवं गजरथ चलाने वाला एक ही व्यक्ति होता था, जो अपनी सम्पत्ति का सदुपयोग करता था। वह समागत समस्त जैन समाज को तीन दिन तक पक्की जीमनवार देता था। प्रतिष्ठा की समाप्ति पर एकत्रित समाज एक बैठक करती थी और उस समय प्रतिष्ठा कराने वाला व्यक्ति समस्त जनसमूह से विनय करता था कि अब इस मंदिर का स्वामित्व पंचों का है और आप लोग इसे स्वीकार करें। उस समय पंच लोग पूजा-पाठ की भावी प्रवृत्ति के लिए उससे कुछ धन या मकान या खेत आदि सम्पत्ति लगाने का आग्रह करते थे, जिसे प्रतिष्ठापक स्वीकार करता था।

एकत्रित पच प्रतिष्ठापक को तिलकदान करते तथा पगड़ी बॉधते थे। परन्तु इस सम्मान को देने का कार्य सबसे पहिले चन्देरी से आये हुए व्यक्ति के द्वारा किया जाता था, भले ही वह बालक क्यो न हो। उसके बाद पंच प्रतिष्ठापक को 'सिघई' पदवी देते थे।

दो गजरथ चलाने वाले व्यक्ति को 'सवाई सिघई' तीन गजरथ चलाने वाले को 'ड्योढ़िया' (ड्योढ़े सिघई) का पद, चार गजरथ चलाने वाले को 'सेठ' और पॉच गजरथ चलाने वाले प्रतिष्ठापक को उपर्युक्त पद्धतिपूर्वक 'श्रीमन्त सेठ' की पदवी पच प्रदान करते थे। कालान्तर मे तीन गजरथ चलाने वाले को भी 'श्रीमन्तसेठ' की पदवी देना शुरु हो गया। राजकीय पद के रूप मे चौधरी उपाधि भी बुन्देलखण्ड के जैनो मे पाई जाती है।

स्व. पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी के समय मे ज्ञानदान के रूप मे शिक्षाप्रसार मे धन लगाने वाले व्यक्ति को भी 'सिघई' तथा विशेषदान देने वाले को 'श्रीमन्त' की पदवी दी जाने लगी। इस नियम को प्रान्तवासी परवार, गोलापूर्व, गोलालारे आदि समस्त जैन समाज के लोगो ने स्वीकार किया और आज भी चालू है। विदिशा के सेठ लक्ष्मीचन्द जी को षट्खण्डागम ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु दान देने के कारण 'श्रीमन्त' पदवी दी गई।

'सिघई' शब्द 'सघपति' शब्द का रूपान्तर है। प्राकृत भाषा में 'संघपति' का रूप 'सघवई' बनता है, जो चलतू भाषा में 'सिंघई' के रूप मे प्रचलित हो गया है। इस प्रकार की पदवी देने की परम्परा केवल बुन्देलखण्ड मे रही है।

क्षत्रियों की पहिचान :

क्षत्रिय आपस में अभिवादन के लिए 'जुहार' शब्द का प्रयोग करते थे। मूलसघ आम्नाय के लोग परमार क्षत्रियों से प्रसूत हैं। अतः आज भी बुण्देलखण्ड में (मूलसंघी) पौरपट्टान्वय के लोग 'जुहार' शब्द से ही परस्पर

अभिवादन करते है । आज भी क्षत्रिय राजपूत वंशजों मे जुहार कहने की प्रथा है, अन्य जातियो मे नही ।

आचारशुद्धि की एक विशेषता :

बुन्देलखण्डी 'चौका' भारत प्रसिद्ध है । इसमे मूल आम्नाय की परम्परानुसार सम्पूर्ण आचार, विचार, शुद्धता एव मर्यादा से परिपूर्ण अहिसक भोजन की व्यवस्था होती है । मुनियो के योग्य उत्तम मर्यादा सहित सम्पूर्ण रीत्या शास्त्रानुसार शुद्ध निर्दोष आहार तैयार होता है । 'सोला' यहाँ की विशेषता है । **तीर्थंकर** (मासिक) पत्रिका के विशेषाक मे इस पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है । भारतवर्ष मे अन्यत्र इतने मर्यादित शुद्ध खान-पान का प्रचलन नही पाया जाता है, ऐसा दि.जैन साधुओ ने भी कहा है । परन्तु आवागमन की अधिकता होने से इसमे भी शिथिलता आने लगी है ।

इन विषयो की चर्चा ग्रन्थ लेखक श्रीमान् पं. फूलचन्द्र जी शास्त्री ने विस्तार से की है । इन विषयो के सिवाय अन्य विषयों की चर्चा ग्रन्थ में है जो पाठको को अच्छी सामग्री देती है ।

ग्रन्थ के तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे एवं सातवे खण्ड में ऐतिहासिक पुरुषों, सस्था-परिचय एवं वर्तमान शताब्दी मे होने वाले प्रमुख विद्वानों, नेताओ, श्रावको तथा उनके द्वारा निर्मापित मंदिरों, शिक्षा संस्थाओ, धार्मिक ट्रस्टों आदि का भी परिचय दिया गया है ।

वर्तमान काल में जो चारित्रधारी मुनि-आर्यिका, ऐलक, क्षुल्कक एवं त्यागी-ब्रह्मचारी आदि हैं, उनका भी परिचय दिया गया है, जिससे हमारी भावी पीढ़ी अपने इस इतिहास का अनुगमन कर गौरव का अनुभव करे और मूलसंघ शुद्ध-आम्नाय की दि. जैन परम्परा निर्दोष रीति से अक्षुण्ण चलती रहे ।

ग्रन्थ लेखक ने इस इतिहास की प्रामाणिकता के लिए इस ग्रन्थ के 'द्वितीय खण्ड : ऐतिहासिक अभिलेख' में पट्टावलियो का भी समावेश किया है, जिससे पाठक तथ्य पर पहुँच सकें ।

प्रान्तीय और जातीय सभाएँ

पिछली शताब्दी मे दिगम्बर जैन समाज द्वारा भारतवर्षीय दिगम्बर जैन धर्मसरक्षिणी महासभा की स्थापना सम्भवतः सन् १८९५ मे श्री जम्बू स्वामी की निर्वाण भूमि चौरासी मथुरा मे हुई थी। इसी के अन्तर्गत जैन महाविद्यालय की स्थापना भी मुथरा मै हुई और महासभा की ओर से 'जैन-गजट' मुखपत्र के रूप मे प्रकाशित हुआ, जो इस समय भी साप्ताहिक पत्र के रूप मे लखनऊ से प्रकाशित होता है। समयानुसार प्रान्तीय शाखा-सभाओ की स्थापना हुई। और इसी शृखला मे बुन्देलखण्ड मध्यप्रान्तीय दिगम्बर जैन सभा की भी स्थापना ३१ मार्च १९०८ को दि. जैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर मे हुई थी। उस समय वहाँ महासभा का बारहवाँ अधिवेशन स्वर्गीय **सेठ देवकुमार जी रईस** आरा के सभापतित्व मे हुआ था। मध्यप्रान्तीय सभा का दूसरा अधिवेशन नैन गिरि सिद्धक्षेत्र मे श्रीमान् स्वर्गीय **सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी बमराना** वालो की अध्यक्षता मे हुआ था। तीसरा अधिवेशन ५ मार्च १९११ को ललितपुर मे **सेठ मथुरादास टड़ैया** की अध्यक्षता मे हुआ था तथा चौथा अधिवेशन **पूज्य पंडित गणेशप्रसाद जी** (वर्णी जी) की अध्यक्षता में द्रोणगिरि मे हुआ था। ये चारो अधिवेशन प्रान्तीय समाज की समुन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण हुए। यह यथार्थ है कि बुन्देलखण्ड मध्यप्रान्त मे परवार समाज की जनसख्या सबसे ज्यादा है। गोलापूर्व समाज १/३ होगी और गोलालारीय समाज १/५ तथा शेष में गोलशृङ्गार समाज तथा अन्य जैन समाज की संख्या होगी।

पचम अधिवेशन **श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी** खुरई की अध्यक्षता मे नैनागिरि मे हुआ। उसमें चार साकों के प्रस्ताव को सभापति ने परवार समाज से सम्बन्धित समझकर नही लिया था। अतः इस अधिवेशन मे एक तूफान आया और कुछ लोगो के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि परवार समाज बहुसंख्यक होने से इन अधिवेशनों में उनका ही बहुमत रहता है, इसलिये एक 'गोलापूर्व सभा' की स्थापना बण्डा निवासी **सेठ धनप्रसाद जी** की अध्यक्षता मे हुई और उसके दो-तीन वर्ष के बाद ही 'परवार सभा' की स्थापना रामटेक मे हो गई। और कुछ समय के बाद गोलालारीय सभा की स्थापना भी हो गई। इस

तरह तीन हिस्सो में बँट जाने से बुन्देलखण्ड मध्यप्रान्तीय सभा समाप्त हो गई। तीन समाजों के अतिरिक्त अन्य समाजों का कोई संगठन नही बना।

भा. दि. जैन परवार सभा के बीस अधिवेशन रामटेक, सिवनी, जबलपुर, सागर, पपौरा, बामौरा, अकलतरा, कुरवाई, बारचोन, बीना-बारहा, और खुरई आदि स्थानो पर समय-समय पर हुए।

इन अधिवेशनो की अध्यक्षता समाज के जिन सुप्रसिद्ध नेताओ ने की, उनकी नामावली इस प्रकार है—

(१) सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी बमराना (२) स. सिंघई गरीबदास जी जबलपुर (३) सिंघई पन्नालाल जी अमरावती (४) श्री पन्नालाल जी टड़ैया (५) श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी विदिशा (६) सेठ गनपतलाल जी गुरहा खुरई (७) श्रीमन्त सेठ पूरनशाह जी सिवनी (८) श्री अमृतलाल जी वकील मालथौन (९) सेठ भागचन्द्र जी डोगरगढ़ (१०) श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार जी, खुरई (११) सवाई सिंघई धन्यकुमार जी कटनी (१२) श्री पचमलाल जी तहसीलदार जबलपुर (१३) श्रीमन्त सेठ बिरधीचन्द्र जी सिवनी एवं (१४) सिघई कुँवरसेन जी सिवनी आदि। इन महानुभावो ने सभा के अधिवेशनो मे अध्यक्ष पद को अलंकृत किया।

स्वर्गीय श्रीमान् पं देवकीनन्दन जी सिद्धान्तशास्त्री इस परवार सभा के अनेक अधिवेशनो तथा नैमित्तिक अधिवेशनो के अध्यक्ष हुए। वे सभा के सरक्षक चुने गये और उनकी सरक्षकता मे सभा ने अनेक विषयो, जो समय-समय पर विवादों के रूप मे आये, को हल करते हुए सभा के रथ को निर्विघ्न रूप से चलाया।

सभाओं मे कुछ महत्वपूर्ण कार्य भी हुए। बाल-विवाह, वृद्ध विवाह एवं अनमेल-विवाह का निषेध हुआ। इसी प्रकार की अनेक कुरीतियो को बन्द करने के प्रस्ताव हुए तथा कार्यान्वित किये गये। चाबैनी की प्रथा बन्द की गई। गनावना प्रथा तथा सगाई की प्रथा मे सुधार किया गया। जैन साहित्य और जैन शिक्षा का प्रचार तथा तीर्थ क्षेत्र के उद्धार का भी कार्य हुआ। विधवा सहायता फण्ड की स्थापना हुई।

परवार सभा की ओर से पंचायतो की स्थापना का कार्य प्रारम्भ हुआ। परन्तु प्रत्येक गॉव मे अन्य जैन समाजों की सख्या भी पाई जाती थी। इसलिये वे पंचायते सम्मिलित रूप मे स्थापित चली आ रही थी और इन विभिन्न समाजो की सभाओ के कारण वे प्रायः शिथिल हो गई थी। इसलिये परवार सभा ने अपनी ग्रामबार पचायतो की स्थापना का जो प्रयत्न किया वह सफल नही हुआ।

थोड़े ही समय मे सभाओ ने समाज मे अपना स्थान खो दिया और वे समाप्तप्राय हो गई। परवार सभा का म. प्र ट्रस्ट एक्ट मे सन् १९५५ मे रजिस्ट्रेशन हुआ। वर्तमान मे उसके अध्यक्ष स. सि. धन्यकुमार जी कटनी थे। मत्री स. सि. नेमीचन्द जी जबलपुर है तथा कोषाध्यक्ष सि. राजेन्द्रकुमार जी जबलपुर है। प्रबन्ध समिति है और कोष बैको मे सुरक्षित है, जो सभा के मूल उद्देश्यो मे खर्च किया जाता है।

एकता का प्रयत्न

बुन्देलखण्ड की जातीय सभाओ के प्रमुख लोगो मे ऐसी भावना का उदय हुआ कि पुन बुन्देलखण्ड मध्यप्रान्तीय जैन जनता में एकता स्थापित की जाय।

सर्वप्रथम पंडित मुन्नालाल जी रॉधेलीय मंत्री गोलापूर्व सभा ने इस सम्बन्ध मे अपना वक्तव्य भी दिया और इन्ही दिनो मे परवार सभा ने अपने पपौरा अधिवेशन मे तथा उसके बाद रामटेक के नैमित्तिक अधिवेशन मे और खुरई अधिवेशन मे क्रमश. इस प्रकार का प्रस्ताव पास किया कि प्रान्त की जैन सभाओ मे पुन. एकता की स्थापना हो।

यह प्रस्ताव परवार सभा की ओर से बहुत जोरो के साथ प्रसारित किया गया। एक के बाद एक, क्रमशः पॉच विज्ञप्तियॉं छापकर पूरे प्रान्त मे वितरित की गईं, परन्तु इसके बाद भी सफलता नही मिली।

मैने (प. जगन्मोहनलाल शास्त्री ने) यह सोचा कि इसके लिये एक निष्पक्ष स्वतन्त्र पत्र का प्रकाशन किया जाय, जो किसी जातीय सभा का पत्र न

हो, अत. '**वीर शासन**' नाम का एक पाक्षिक पत्र पडित जयकुमार जी शास्त्री के सहयोग से स्वयन्त्र भारत प्रेस दमोह से प्रकाशित किया गया।

इस पत्र के लिये सर्वप्रथम पूज्य वर्णी जी का आशीर्वाद लिया। यह पत्र बीस अकों तक चला। इसके बाद पंडित जयकुमारजी को इस प्रेस को चलाने के लिए सहायता देने वाले जैन बन्धुओ ने अपने वायदे के भीतर ही अपने रुपयो की मॉग पेश कर दी और पडित जयकुमार जी ने प्रेस बेचकर उनका रुपया अदा कर दिया। फलत. प्रेस बन्द हो गया और इसीलिए '**वीर शासन**' पत्र को बन्द कर देना पडा। इस प्रकार यह एकता का प्रयत्न भी असफल रहा।

बिनैकावाल समाज

बिनैकावाल शब्द का अर्थ है कि बिना एका वाली समाज अर्थात् जिसने समाज की एकता (एकरूपता) भगकर कुछ भिन्न नियम अपना लिये और समाज की मूलधारा से अलग हो गये। ऐसे लोगो की समाज बिनैकावाल कहलाने लगी। जैसे कुछ लोग विधवाओ का पुनर्विवाह करने लगे। कभी किसी धार्मिक चलन से विपरीत चले और मूल सगठन को मान्यता नही दी। इसी प्रकार कभी समाज (पचायत) की आज्ञा भंग कर उसकी अवमानना की आदि। इनके अलावा कुछ और भी कारण बने जिसके कारण ऐसे लोगो की एक समाज बन गई। वर्तमान मे यह समाज भी दो तीन भागो मे बॅटी हुई है। कुछ पुराने बिनैकावाल है, कुछ मध्यम काल मे बने है और कुछ नये बनते जा रहे हैं। मूलधारा से अलग हो जाने के कारण इनका मन्दिर जाना, दर्शन-पूजन करना तथा इनसे रोटी-बेटी व्यवहार भी समाज ने बन्द कर दिया।

इसके बाद इनके स्वय के अनेक मन्दिर बन गये हैं और उस समय मूल समाज के द्वारा जो मन्दिर जाना बन्द किया गया था वह बन्दी अब समाप्त हो गई है, परन्तु रोटी-बेटी व्यवहार अभी भी प्रायः नही होता है।

तारण समाज

तारण समाज के संस्थापक श्री तारण स्वामी थे। इनके पिताजी का नाम गढ़ासाव था। इनका जन्म पौरपट्टान्वय (परवार-चौसखा) गाहेमूर गोहिल्ल गोत्र में वि. स १५०५ मे हुआ था। तारण समाज का उद्भव इनके द्वारा हुआ। ये प्रभावशाली पुरुष थे। दि जैन आचार्य प्रणीत करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ग्रन्थो का इनको विशेष ज्ञान था। इसलिये इन्ही तीनो अनुयोगो के आधार पर इन्होने अपनी लेखनी चलाई और १४ ग्रन्थो की रचना की।

स्वामी जी का कार्यक्षेत्र बुन्देलखण्ड रहा है। उन्होंने समाज मे स्वाध्याय की प्रवृत्ति हेतु स्वाध्यायशालाएँ स्थापित की, जो चैत्यालय के नाम से जानी जाती है। ऐसे मुख्य चैत्यालय म प्र. मे १७, उत्तर प्रदेश मे ४ तथा महाराष्ट्र प्रान्त मे ४ स्थानो पर प्रतिष्ठित है।

१ श्री तीर्थक्षेत्र निसईजी, मल्हारगढ़, जिला-गुना (म. प्र) २. श्री तीर्थ क्षेत्र सेमरखेडी जी (सिरोंज) और ३. श्री तीर्थ क्षेत्र सूखा निसईजी, पथरिया (दमोह)—ये तीन स्थान तीर्थक्षेत्र के नाम से भी जाने जाते है, क्योकि तारण स्वामी का धर्म-प्रचार का मुख्य क्षेत्र यही था, इसलिये यहाँ विशाल चैत्यालय स्थापित है।

तारण समाज के सगठन मे १ समैया (चौसखा परवार), २ चरनागर, ३ असहटी, ४ गोलालारे, ५ दो सखे और ६ अयोध्यावासी समाज सम्मलित है।

चैत्यालयो मे यद्यपि मूर्तियो की स्थापना नही है तथापि दि जैन आम्नाय के चारो अनुयोगो के शास्त्र तथा तारणस्वामी द्वारा रचित चौदह शास्त्र प्रतिष्ठित किये गये है। तारण समाज अपने चैत्यालयो मे इन शास्त्रो की स्तुति, वन्दना और पूजा करती है।

तारण समाज मे अनेक धनी, दानी, श्रीमन्त, विद्वान्, राजनेता तथा त्यागी-व्रती पाये जाते है। श्रीमान् समाजभूषण स्व. श्रीमन्त सेठ भगवानदास शोभा-लाल जी जैन सागर (म. प्र.) पूरी समाज के अध्यक्ष रहे हैं। तारणपंथ में सम्मिलित

समैया, दोसखे और चरणागर— इन तीनों में परवार समाज के १२ गोत्र और १४४ मूर पाये जाते हैं। इनके अनुसार ही आठ साँकों, चार सॉको तथा दो सॉको को मिलाकर शादी-विवाह होते है। गोलालारे समाज, जो तारण पंथ में शामिल है, उसके गोत्र भी अन्य दि. जैन गोलालारो के ही है। चरणागर समाज के गोत्र तथा कुछ ऑकने (उपगोत्र) गहोई जाति मे भी पाये जाते हैं। असहटी जाति वैष्णवधर्म की अनुयायी भी पाई जाती है। पूज्य क्षु. गणेशप्रसाद जी वर्णी, जो भारतवर्ष मे सम्पूर्ण दि. जैनों में प्रतिष्ठित एव मान्य थे और जिन्होने शिक्षाओ, आचार-विचारो का विस्तृत प्रचार समाज मे किया है, वे वैष्णव असहटी जाति मे ही जन्मे थे। इस समाज की सख्या लाखो मे है।

तारण समाज की छहो शाखाओ मे परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध है और वर्तमान मे अन्य दि. जैन जातियो मे भी तारण समाज के रोटी-बेटी व्यवहार प्रचलित हो गये हैं। सर्वप्रथम इस तरह शादी-सम्बन्ध बैरिस्टर जमुनाप्रसाद जी कलरैया सबजज की बेटी का श्रीमन्त सेठ भगवानदास जी के सुपुत्र श्री डाल-चन्दजी के साथ हुआ था।

समाज के अनेक वैज्ञानिक, सरकारी पदो पर प्रतिष्ठित अधिकारी, राजनेता, सामाजिक कार्यकर्ता तथा दानियो के साथ अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त सुप्रसिद्ध दार्शनिक सन्त आचार्य रजनीश भी जन्म से तारण पथ के अनुयायी थे।

तारण समाज के द्वारा म. प्र. मे ८ ट्रस्ट तथा ८ धर्मशालाएँ स्थापित है। इनके अतिरिक्त धर्मार्थ औषधालय, स्वाध्याय भवन तथा पाठशालाएँ भी सचालित है। सामाजिक चेतना के अन्तर्गत युवा परिषद् का गठन, आदर्श सामूहिक विवाहों का आयोजन एवं साहित्य प्रकाशन होता है तथा विमान-पालकी आदि मे जिनवाणी की शोभायात्रा भी समय-समय पर निकाली जाती है।

दिगम्बर जैन पद्मावती पोरवाल समाज[१]

श्री सिद्ध-तीर्थक्षेत्र गिरनार (जूनागढ़) मे भगवान नेमिनाथ के कल्याणक महोत्सव पर पधारे हुए जैनियो की ८४ जातियो का वर्णन उपलब्ध होता है,

१. श्री रूपचन्द जैन जौहरी, चौक, भोपाल द्वारा प्रेषित सामग्री के आधार पर संगृहीत।

जिसे फूलमाल पच्चीसी मे लिखा गया है, उन्ही जातियो मे एक नाम 'पद्मावती पोरवाल' जाति का भी है। कुछ ग्रन्थो तथा किवदन्तियो के अनुसार जाति सम्बन्धी कथाएँ अवश्य मिलती है, परन्तु उनका कोई प्रामाणिक आधार नही है।

भारतवर्ष के अनेक प्रान्तो मे (१) पद्मावती पोरवाल, (२) जांगड़ा पोरवाल, (३) पोरवाल और (४) पोडवाल—इस प्रकार मिलते-जुलते नामो वाली जातियाँ पाई जाती है।

(१) **पद्मावती पोरवाल** : यह जाति प्रत्येक प्रान्त मे तेरहपथी दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी है तथा उ. प्र., म प्र. और महाराष्ट्र मे अधिकतर पाई जाती है।

(२) **जांगड़ा पोरवाल** · इनमे दिगम्बर जैनधर्म तथा वैष्णव धर्मानुयायी— दोनो होते है, जिनका अग्रवाल समाज की तरह आपस मे रोटी-बेटी व्यवहार प्रचलित है।

(३) **पोरवाल** · यह समाज जैनधर्म के स्थानकवासी मत की अनुयायी है, जो मध्यप्रदेश के इन्दौर एव शाजापुर जिलो मे अधिकतर पाई जाती है।

(४) **पोड़वाल** . यह जाति बहुत कम सख्या मे कही-कही पाई जाती है तथा ये केवल वैष्णव धर्म के पालने वाले है।

पोरवाल जाति के साथ 'पद्मावती' विशेषण जुड़ने की कथा आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व प्रचलित मान्यता के अनुसार इस प्रकार है—

आज का बिहार प्रान्त गगा के उत्तर मे था। लिच्छवी गणतन्त्र तथा दक्षिण मे मगध के राजा का राज्य था। शक तथा हूण जातियो के आक्रमण के पश्चात् आर्य पराजित होकर अनेक भागो मे बँट गये। परन्तु आर्य क्षत्रियो की धार्मिक मान्यताओ मे कोई विघ्न न आया। तत्पश्चात् मुगलो के आक्रमण से पजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा बंगाल उनके आधिपत्य मे पहुँच गये। उसी काल की बात है। बिहार तथा उत्तर प्रदेश की सीमा से लगा एक सूबा था। जहाँ का प्रशासक एक मुगल सेनापति था, वहाँ के सूबेदार को राजा के अधिकार दिये गये थे। राजा के दीवान (राज्यमंत्री) पोरवाल जैन थे, जिनका नाम था 'शाह

सूरजी'। इनकी एक कन्या पद्मावती थी, जो रूप और लावण्य में अद्वितीय थी। सूबेदार राजा ने उसके सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर अपनी रानी बनाना चाहा। राजा ने अपने यवन सहयोगियो से मंत्रणा कर कपट योजना बनाई और उसने दीवान से कहा कि आपके यहाँ की स्त्रियाँ हमारे राजमहल की रानियो से कभी मिलने नही आती, अतः आप उनको अवश्य भेजिए। दीवान खान-पान के विचार से धर्मसंकट मे पड़ गये और कहा कि २-४ दिन मे विचार कर आपको उत्तर दूँगा। राज्य के खजाची पद पर थे एक गौड़ ब्राह्मण। इस बात को सुनकर उन्हे कुछ शका हुई, अतएव किसी प्रकार राजा के मन की कुभावना की जानकारी पाकर अपने परम मित्र दीवान को सचेत कर दिया और इस विधर्मी राज्य से पलायन करने मे साथ देने का वचन भी दिया।

राज्यमत्री ने स्वजातीय बन्धुओ और ब्राह्मण वर्ग सहित एक रात पद्मावती को साथ लेकर शीघ्रता पूर्वक गमन कर दिया। देवी पद्मावती का वाग्दान (सगाई) हो चुका था, अत. उसकी ससुराल पक्ष के लोग भी इस समाचार को पाकर सदल-बल राज्यमंत्री से आ मिले। राज्य सीमा त्यागने के पूर्व ही राजा की सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध के दौर मे ही सीमा की ओर बढते हुए जगलो के कंटकाकीर्ण रास्तो मे ही जहाँ जब समय मिला विवाह संस्कार पूर्ण करते गये। कामान्ध यवन राजा तो पद्मावती देवी को पाने के लिए लालायित था, अतः दूल्हा सहित सम्पूर्ण बाराती योद्धादल जाति मर्यादा हेतु इस धर्मयुद्ध मे कूद पड़े। देवी पद्मावती के पतिदेव ने युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की। उसी स्थान पर अपने स्वामी के पार्थिव शरीर के साथ देवी पद्मावती उनकी चिता पर बैठकर सती हो गई। यह युद्ध छापामार युद्ध की तरह १ माह ७ दिन तक सीमा की ओर बढते हुए निरन्तर चलता रहा। अन्त मे दुष्ट यवन युद्ध समाप्त कर वपिस लौट गया। देवी पद्मावती के गौरवमयी बलिदान की स्मृति मे शेष जाति बन्धुओं ने वहाँ पद्मावतीपुर नाम से एक नगर की स्थापना की। वहाँ पर अब कोई नगर तो नहीं, परन्तु बिहार की सीमा के पास आज भी एक छोटा सा पद्मावती कुण्ड रूपी जलाशय विद्यमान है।

इस गौरवमयी घटना के स्मृति स्वरूप मालवा प्रान्त मे ब्याह-शादी के समय जो रस्में प्रचलित थीं, उनका संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है। उस

युद्धकाल के समय जंगल में जितनी वस्तुएं उपलब्ध थी, वे ही यहाँ आज से २५ वर्ष पूर्व तक प्रयोग मे विवाह के समय लाई जाती रही है।

१. वर पक्ष के लोग कन्यापक्ष के नगर के बाहर किसी छायादार स्थान में अपने बारातियो के भोजन की व्यवस्था स्वय करते थे। जिसे मालवा मे 'बगीचे की रसोई' तथा उत्तर प्रदेश मे 'बढ़ार की रसोई' कहा जाता था। यह प्रथा अब दोनो प्रान्तो मे बन्द हो गई है।

२. केवल चार बाँसो पर एक श्वेत चादर बाँधकर आम्रपत्र की वन्दनबार से ही मण्डपाच्छादन आज भी किया जाता है।

३ बैलगाड़ी के जूड़े पर वर एव वधू को बैठाकर लग्न सस्कार ब्राह्मणवर्ग द्वारा सम्पन्न कराये जाते थे। जैन विवाह पद्धति के कारण अब यह प्रथा भी समाप्त हो चुकी है।

उत्तरप्रदेश :

नवीन पद्मावती नगर में आजीविका के साधन कम होने के कारण समाज ने सर्वप्रथम आगरा की ओर प्रस्थान किया। यही से पोरवाल जाति उत्तर प्रदेश मे 'पद्मावती पुरवाल' और मध्यप्रदेश मे 'पद्मावती पोरवाल' 'पद्मावती' के विशेषण से परिचय देकर प्रसिद्ध हुई। आगरा से ही उत्तरप्रदेश के अनेक नगरो तथा ग्रामो मे व्यापार, व्यवसाय हेतु फैल गई। इस जाति की अधिकतर सख्या उ. प्र. मे ही विद्यमान है। इनमे से कुछ जाति बन्धु राजस्थान के जयपुर, अजमेर की ओर चले गये। उ. प्र. में जो गोत्र प्रचलित हैं, उनके नाम है १. सिरमौर, २. पाँडे, ३. सिघई, ४. कोड़िया, ५. कड़ेसरिया, ६. सिन्धु, ७. धार, ८. पाढ़मी। वहाँ पाँड़े साहबान ही विवाह संस्कार सम्पन्न कराते हैं, जिसके कारण अधिक गोत्रो का प्रचलन नहीं है। क्योंकि पाँड़े साहबान के रिकार्ड (पुस्तकों) में वहाँ विवाह के सम्बन्ध का पूर्ण विवरण लिखा रहता है, जिससे निकट सम्बन्धियों में विवाह संस्कार नहीं होते हैं।

मध्यप्रदेश (प्राचीन मालवा) प्रान्त :

आज से लगभग ५५० वर्ष पूर्व उत्तर प्रदेश के प्राचीन शहर 'कोड़ा जहानाबाद' जिला-फतेहपुर नामक स्थान से 'जो कि किसी तपस्वी के श्राप से भस्म हो गया था', सात सौ बैलगाड़ियों द्वारा पोरवाल समाज के लोग मालवा प्रान्त मे आये थे। उ. प्र. की समाज के वृद्धजन कहते है कि कोड़ा जहानाबाद के अग्निकांड के पश्चात् पन्द्रह सौ छकड़ों (बैलगाड़ियों) मे से सात सौ छकड़े किधर गये इसका ज्ञान नही, तात्पर्य यह है कि आठ सौ परिवार उ. प्र. के अन्य स्थानो पर बस गये थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष मे प्रसिद्ध मालवा प्रान्त मे अतिशय क्षेत्र मक्सी पार्श्वनाथ विद्यमान है, उसके निकट ही एक और अतिशय क्षेत्र है सारगपुर, जो कि एक प्राचीन नगर है। सारंगपुर से १२ मील दूर आगरा-बम्बई मार्ग के निकट जगल मे ग्राम 'सुनेरा' नामक स्थान है। पोरवाल जाति के लोग सर्वप्रथम इसी स्थान पर आकर ठहरे थे। उन परिवारो की सख्या ५७५ थी। तदनन्तर व्यवसाय और आजीविका हेतु सम्पूर्ण मालवा के अनेक नगरो तथा ग्रामो मे जाकर बस गये।

अर्थोपार्जन हेतु गमन के पूर्व पोरवाल समाज के पूर्वजो ने कौटुम्बिक जानकारी के लिए गोत्रो का नामकरण किया, जिससे भावी पीढ़ियों से सगोत्रीय (एक ही रक्त में) विवाह सम्बन्ध न हो सके। मालवा प्रान्त के गणमान्य परिवारों की वंशावली से ज्ञात होता है कि मालवा मे बसने के पश्चात् पूर्वजो की आठवी, नवी पीढी चल रही है। जिन २२ गोत्रो का प्रचलन था उनमें से वर्तमान मे केवल २० गोत्रों के नामो की जानकारी सुलभ है—

प्राचीन नामावली	प्रस्तावित नवीन नामावली
१. अठपगा (मकड़ाया)	अष्टापद
२. अनगोत्या (माता भेरु तथा बिना माता भेरुवाले)	अनगोत्री
३. अजमेरया	अजमेरा
४. इलायचा	ऐलाचार्य

प्राचीन नामावली	प्रस्तावित नवीन नामावली
५. कसमरिया	काश्मीरी
६. कसूम्या (कसूमलिया)	कसूमा
७. गौबरया	गौरधन
८. धावड़ धीगा	धवल (धावरे) (धवलधुरन्धर)
९. नारया	नारे
१०. फाचराफाड़	पचोरे
११. बामनपुरया	वामन
१२. मनुआं	मनु
१३ रायसरदार	रायसरदार
१४. लेपडया	पांड्या (पाँडे)
१५ लिलेरिया	लिलैरा
१६. रजीत	रणजीत
१७. लाकड़मोड़	लाकरे (लक्षपति)
१८. श्रीजेत	श्रीजीत
१९. सितम दीवाना	दीवान
२०. श्रीमोड़[१]	सिरमौर (श्रीमौर)

महाराष्ट्र :

उपर्युक्त पूर्वजो के साथ आये हुए लोगो में से १००-१२५ कुटुम्ब नागपुर एवं वर्धा की ओर चले गये थे। जिनकी संख्या अब नगण्य सी है तथा वे सजातीय बन्धु महाराष्ट्र की कई छोटी दिगम्बर जैन उपजातियों में विवाह सम्बन्ध करते है। उनके गोत्र इस प्रकार है : १. धावड़े, २. लहणे, ३. दाणी, ४. लोखंडे, ५. कवड़े, ६. नाकाड़े, ७. वोड़खे, ८. मुठमारे, ९. सिंगारे, १०. डोंगरे, ११. बोवड़े, १२ चतुर, १३ रोड़े, १४ कोमें।

---

१ बाँकी दो गोत्रों के नाम अप्राप्त हैं।

पोरवाड़ दिगम्बर जैन

इसमे सन्देह नही है कि प्राग्वाट ज्ञातीय अन्य शाखाओ की भाँति यह जाति भी गुजरात से यत्र-तत्र फैली है । इस तथ्य के ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं कि यह ज्ञाति कई शताब्दियो पूर्व पोरबन्दर तथा उसके आस-पास बसी हुई थी । यह जाति क्षत्रिय थी । किन्तु व्यापार-व्यवसाय करने के कारण महाजन तथा वैश्य कहलाई । किसी समय यह जाति गुजरात से दो वर्गों में स्थानान्तरित हुई । एक वर्ग मेवाड़ मे जाकर बस गया और दूसरा वर्ग मालवा की धार नगरी मे और उसके आस-पास रहने लगा । 'पोरवाड़' शब्द का उल्लेख ५०९ ई. से ७६६ ई. तक के वल्लभी राजाओ के अभिलेखों में मिलता है । यह अनुमानित है कि 'पोरवाड़' पौरपट्ट तथा उनकी सस्कृति के निकटस्थ रहे है । आज भी इस जाति के लोग मूल आम्नाय की रीति-पद्धति के अनुसार वर्तन कर रहे है । इनके सम्बन्ध मे विशेष शोध-खोज तथा अनुसन्धान करना आवश्यक है । बारहवी शताब्दी की प्रशस्तियो तथा मूर्तिलेखो से यह तो स्पष्ट व सुनिश्चित है कि नालछा तथा धार मे उस समय अनेक 'पौरपट्ट' वंश के श्रेष्ठिजन व दानदाता थे । यद्यपि पोरवाड़, पोरवाल, पुरवार या परवार शब्द बहुत साम्य रखते है और इनकी भी अनेक शाखाएँ है, किन्तु इनमे पोरवाड़ो का क्षेत्र व्यापक रहा है । सम्प्रति यह समाज बीसा जागड़ा पोरवाड़ के नाम से प्रचलित है । इस समाज की जनसख्या लगभग तीस हजार कही जाती है । गुजराती पोरवाड़ो की सख्या इनसे भिन्न है । ये आचार-विचार मे मुख्य रूप से दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी हैं । समाज के अधिकांश परिवार खण्डवा, सनावद, बड़वाह, खरगौन, महेश्वर, मण्डलेश्वर, मलकापुर, इन्दौर, शाहपुर, बम्बाड़ा, अमरावती, बुरहानपुर, पंधाना आदि नगरों मे तथा इनके निकटवर्ती ग्रामों में निवास करते हैं । इनका एक थोक (समूह) प्रतापगढ़ के निकट अरनोद तथा समीपस्थ ग्राम मे भी निवास करता है । यह समाज दान-पूजादि एवं परोपकार के कार्यों में अग्रणी है ।

इतिहास मे यह उल्लेख मिलता है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने प्राग्वाड-वंशीय प्रमुख व्यक्तियों को अमात्य, महामात्य, दण्डनायक प्रभृति उच्च पदो

पर नियुक्त किया था। कर्नल टॉड ने यह भी उल्लेख किया है कि चन्द्रगुप्त मौर्य स्वय पोरवाल था। उसके पौत्र सम्राट् अशोक का विवाह विदिशा के एक पोरवाल श्रेष्ठी की कन्या महादेवी के साथ हुआ था। इस जाति के सम्बन्ध मे लिखने वाले इतिहासविज्ञो का मत है कि पोरवाड़ जाति का उद्भव श्रीमालनगर मे ४९५ ई पू. (आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व) मे हुआ था। ऐतिहासिक अध्ययन से यह भी पता चलता है कि यह एक वीर जाति थी। युद्ध के मैदान मे पीठ दिखाना या विश्वासघात करना इस जाति का कभी स्वभाव नही रहा। व्यक्तिगत स्तर पर भी यह समाज नैतिक तथा पवित्र आचरण से जीवन-यापन करने वाली रही है। आज भी इसमे ये गुण पाये जाते है। यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि गुजरात से स्थानान्तरित होकर इस जाति का एक थोक दक्षिण भारत की ओर प्रवासी बन कर गया था। इस प्रकार देश की विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, वाणिज्यिक एव धार्मिक विकास के क्षेत्रो मे यह सदा से प्रगतिशील रही है। जातीय सम्बन्धो तथा प्राचीन गुर्वावलियो, प्रशस्तियो एव मूर्तिलेखो के आधार पर यह अनुमान होता है कि पोरवाड तथा परवार ज्ञातीयो मे पुराने समय मे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहे है। अत. विद्वानो को इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से शोध-अनुसन्धान करना चाहिए।

सत्य समाज

सत्य समाज की स्थापना सन् १९२६-२७ मे **पण्डित श्री दरबारीलाल जी सत्यभक्त न्यायतीर्थ** (दमोह निवासी) ने की थी। आप पहले काशी के स्याद्वाद महाविद्यालय मे एक साल अध्यापक रहे। इसके बाद एक साल सिवनी (म. प्र.) मे धर्माध्यापक रहे, तत्पश्चात् इन्दौर महाविद्यालय मे भी अध्यापनकार्य किया है।

ये दिगम्बर जैनधर्म को मानने वाली सभी जातियो के परस्पर में विवाह को जैन-आगम के अनुसार सही मानते थे, परन्तु पुरानी पीढ़ी के दिगम्बर जैन विद्वान् इस अन्तर्जातीय विवाह को धर्म-विरुद्ध कहते थे। चूँकि समाज मे

पुरानी पीढ़ी के विद्वानों की मान्यता थी, इसलिये पं. दरबारीलाल जी सत्यभक्त का बहिष्कार घोषित कर दिया गया। तब सत्यभक्त जी ने प्रतिक्रिया स्वरूप एक अलग समाज की स्थापना की और उसका नाम '**सत्य समाज**' रखा। इस समाज मे परवार जाति के अतिरिक्त अन्य जैनो की सख्या हजारो में है।

अतिशय क्षेत्र 'कुराना'

प्रथम तीर्थकर भगवान् आदिनाथ के अर्थ मे 'पुराण' शब्द का प्रयोग महाकवि धनञ्जय ने '**विषापहार स्तोत्र**' के प्रथम पद्य मे विरोधाभास अलकार के साथ '**पायादपायात् पुरुषः पुराणः**' शब्दो से किया है। कालान्तर में 'पुराण' शब्द 'कुरान' या 'कुराना' बन गया, जो अपभ्रंश काल और मुगल-काल की देन है। कुराना कभी पुराणनगरी या पुराणबस्ती या पुराण नगर के नाम से जाना जाता होगा।

कविवर विनोदीलाल कृत '**भक्तामर कथाकोष**' मे प्रसिद्ध '**भक्तामर-स्तोत्र**' के रचयिता आचार्य मानतुग का भोपाल के समीपस्थ मानतुग पर्वत पर तपस्या करने का उल्लेख है। यह आगे चलकर 'मनुआँ भाँड़ की टेकरी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुराना 'मनुआँ भाँड़ की टेकरी' जो धारा नरेश महाराजा भोज के सार्थक नाम वाला भोजपाल > भोपाल नगर की पर्वत स्थली से १४ किलो मीटर दूर भ. आदिनाथ का ऐतिहासिक मदिरवाला नगर है। आचार्य मानतुग ने प्रसिद्ध '**भक्तामरस्तोत्र**' मे भगवान् आदिनाथ की भक्ति की है। भोपाल के आस-पास कुराना के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी भगवान आदिनाथ का मदिर नही है। अतः आचार्य मानतुग भगवान आदिनाथ के दर्शनार्थ कुराना अवश्य गये होगे, क्योकि धारा नरेश भोज उनके शिष्य थे और उनका भ्रमणस्थल-तपस्यास्थल अधिकतर मालवदेश—उज्जैन और भोपाल ही रहा है।

महाराजा भोज का समय ई १००० से १०५५ ई माना जाता है। आचार्य मानतुंग ने 'भोजपुर' (शान्तिनगर) मे भगवान शान्तिनाथ की शरण मे समाधि ली थी। इनकी समाधि पर चैत्र कृष्णा ५ विक्रम सवत् ११९२, ई.

सन् १०५५ उत्कीर्ण है । इस कुराना नगर के निवासी भी इस नगर को ११०० ई. के आस-पास का मानते है । यहाँ जैन बस्ती रही होगी, परन्तु यह बात इतिहास के गर्भ मे है । ध्वस्त जैन मदिर के भग्नावशेषो को जनता ने अपने भवनो के निर्माण मे लगाया है ।

अतिशय क्षेत्र भोजपुर

भोजपुर धारानरेश भोज परमार के समय ई १००० से १०५५ ई की देन है । महाराजा भोज ने उदार हृदय से जैनधर्म एव हिन्दूधर्म का पोषण किया था । भोजपुर मे शिवलिग मदिर और भगवान शान्तिनाथ का जैन मदिर एव अन्य मदिर इसके साक्षी है । यह भी सत्य है कि भोजपुर के जैन मदिर एव शैव मदिर अधूरे ही पडे रह गये । कार्यालय आयुक्त, पुरातत्त्व एव सग्रहालय, भोपाल द्वारा १९९१ मे प्रकाशित **'भोजपुर मंदिर : समन्वय की कल्पना'** पुस्तक मे पृष्ठ ६ पर लिखा है- "यह सम्भव है कि पड़ोसी गुजरात के और दक्षिण के चालुक्यो और डाहल के कल्चुरी शासको के साथ निरन्तर सघर्ष के कारण मदिर के निर्माण-कार्य मे विघ्न उत्पन्न हुआ हो और इसे दुबारा चालू नही किया जा सका हो ।"

अतिशय क्षेत्र समसगढ़

जैन वाङ्मय मे श्रमण शब्द जैन मुनियो के लिए प्रयुक्त हुआ है । अत- 'समसगढ़' से 'श्रमणगढ़' का बोध होता है । 'समसगढ' कभी श्रमणो का गढ रहा है । धारानरेश राजा भोज का काल जैनधर्म का स्वर्णिमकाल रहा है । इनके शासन काल मे जैन सस्कृति, जैन कला और जैन मदिरो का समुचित विकास हुआ है । समसगढ़ की प्रसिद्धि साँची के समान रही है ।

समसगढ़ भोपाल से २२ किलो मीटर दूर बिल्कसगंज रोड पर है तथा रातीबड़ ग्राम से ७ किलो मीटर दूर दक्षिण की ओर है । इस क्षेत्र पर भगवान् शान्तिनाथ, भ. कुन्थुनाथ तथा भ. अरहनाथ की १८ फीट ऊँची कलापूर्ण मनोज्ञ मूर्तियाँ हैं । ये तीनों शलाकापुरुष कामदेव, चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर हुए है ।

इसका निर्माण खुजराहो शैली पर पाड़ाशाह नामक गहोई वैश्य ने जैन धर्म के अनुयायी होने पर किया था। श्री पाडाशाह चन्देरी के समीपवर्ती थूबोन ग्राम के निवासी थे। 'समसगढ़' का निर्माण विक्रम की १५वी शताब्दी का है। आचार्य शुभचन्द्र तथा जैनमुनि भर्तृहरि के सघ से प्रभावित पाड़ाशाह ने 'समसगढ़' में अपने पाड़ों पर लदे राँगा के चाँदी होने तथा तालाब मे प्रवेश से पाड़ों की लोहे की जंजीरों के सोना बन जाने से अपूर्व धन कमाया और 'समसगढ़' के निर्माण के साथ 'पारसतलाई' का भी निर्माण करवाया था। साथ ही अन्यत्र भी अनेक अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवाये थे। सन् १९२० में **ब्र. प्यारेलालजी** ने भोपाल की जैन समाज को ध्वस्त दिगम्बर जैव मदिर समसगढ़ का परिचय दिया था। **श्री पन्नालाल परवार पंचरत्न** तथा समाज के सदस्य वहाँ पहुँचे और वहाँ से चौक मदिर मे विराजित भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति एव कलापूर्ण पाषाण स्तम्भ आदि लाये और पाषाण स्तम्भो का मंदिर-निर्माण मे सदुपयोग किया।

अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ़

गुना जिले के मुख्यालय से ७ किलोमीटर की दूरी पर दक्षिण दिशा मे आरोन जाने वाले मार्ग पर श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ़ पुरातत्त्व की गौरव गाथा के साथ-साथ अपनी आधुनिक कलाकृति लिए हुए इस जिले के कीर्तिस्तम्भ के रूप मे स्थित है। प्राकृतिक सौन्दर्य से शृङ्गारित सुरम्य शैलमालाओ के मध्य तलहटी में बसा हुआ है यह बजरगगढ़ ग्राम, जिसके दक्षिण पूर्व मे कल-कल करती हुई चौपेट नदी सदैव इस अतिशय क्षेत्र के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करती रहती है और क्षेत्र के आकर्षण मे इसकी महत्ता अपनी चरम सीमा पर है।

जिनालय के गर्भ प्रकोष्ठ में संवत् १२३६ में प्रतिष्ठित भगवान श्री शान्तिनाथजी, श्रीकुन्थनाथजी श्रीअरहनाथजी की भक्तिभाव उमड़ाने वाली भव्य एवं आकर्षक १८ फुट उत्तुंग मूर्तियों के दर्शन मात्र से

वीतराग भाव स्वत. प्रकट होने लगते है। **लाल पाषाण की इन मूर्तियो** मे त्याग एव तपस्या की छवि स्पष्ट प्रतिबिम्बित होती है।

भव्य एव विशाल जिनालय की गगनचुम्बी शिखरे एव मूर्तियाँ तथा ८०० वर्ष पुराने एव आधुनिक कलात्मक चित्र चिरकाल से सजग प्रहरी की तरह इस क्षेत्र के वैभव को प्रदर्शित करते है। मन्दिरजी की दीवारो पर निर्मित भावचित्रो मे कलाकार की सशक्त तूलिका का गौरव स्पष्ट दिखाई देता है। मन्दिरजी मे किये गये कॉच के कार्य ने सौन्दर्य को बहुगुणित कर दिया है। इस जिनालय के अतिरिक्त क्षेत्र पर दो अन्य जिनालय भी स्थित है। श्री चन्द्रप्रभु जिनालय का निर्माण लगभग ४०० वर्ष पूर्व **श्री हरिश्चन्द्रजी टरका** ने करवाया था। लगभग ५० वर्ष पूर्व तक इस सात शिखरो से युक्त मनोहारी मन्दिर मे पूजा-अर्चना होती रही, किन्तु बाद मे सुरक्षा की दृष्टि से इस मन्दिर के समस्त जिनबिम्बो को यहाँ से स्थानान्तरित कर दिया गया था। इन्दौर के श्री मल्हारगढ मे स्थित जिन मन्दिर मे चन्द्रप्रभु स्वामी की प्रतिमा इसी मन्दिर की मूल प्रतिमा है। फरवरी १९८७ मे पुन. इस मन्दिर की प्राचीनता को यथावत् रखते हुए जीर्णोद्धार एव प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न करवा दिया गया है। इसके अतिरिक्त मुख्य बाजार में **श्री झीतूशाहजी** द्वारा निर्मित श्री पार्श्वनाथ जिनालय स्थित है

अतिशय क्षेत्र पर दो विशाल धर्मशालाएँ हैं, जिनमें एक श्री शान्तिनाथ जिनालय से जुडी हुई है एव एक बाजार में स्थित है। इन धर्मशालाओ मे आदर्श विवाह एव अन्य धार्मिक, सामाजिक आयोजन करने की पूर्ण सुविधा उपलब्ध है।

अतिशय क्षेत्र बजरंगगढ़जी श्री दिगम्बर जैनाचार्य गुणधर स्वामी की तपोभूमि रहा है। प्रति वर्ष कार्तिक वदी ५ को इस क्षेत्र पर श्री १००८ देवाधिदेव के विमानोत्सव का आयोजन अनेक धार्मिक एवं सास्कृतिक कार्यक्रमो के साथ आयोजित किया जाता है।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभा

कार्यालय : ६५७ जवाहरगंज, जबलपुर (म.प्र.)

ग्रन्थ-प्रकाशन हेतु दानदाताओं की सूची

१००१/- सेठ हरिश्चन्द्र महारानी चेरीटेबिल ट्रस्ट, जबलपुर

१००१/- श्री सि. विजयकुमार पन्नालालजी (अमरावती), जबलपुर

१००१/- स सि मूलचन्द दीपचन्द नेमीचन्द जबलपुर, प्रधानमन्त्री भा दि जै. प. सभा

१००१/- श्रीमती निम्मीबाई, ध.प स्व. श्री सिं दशरथलाल, कटनी

१००१/- श्री दि जैन परवार मदिर जी ट्रस्ट, नागपुर

१००१/- श्री दि.जैन मंदिर जवाहरगज, जबलपुर

१००१/- स सि. भोलानाथ रतनचन्दजी, जबलपुर

१०००/- चौ. फूलचन्द ट्रेडिग लिमिटेड, बम्बई

१०००/- सि. बाबूलालजी, सिघई पेपर मार्ट, जबलपुर

१०००/- सि. नरेन्द्रकुमार चन्द्रकुमार एण्ड कम्पनी, जबलपुर

१०००/- चौ. हुकुमचन्द जयकुमार चूनावाले, कटनी

१०००/- श्री सुन्दरलालजी, सुभाष ट्रान्सपोर्ट कम्पनी, कटनी

१०००/- श्री अनन्तरामजी रगवाले, जबलपुर

१००१/- श्री नानकचन्दजी, नागपुर

१०००/- सि. जवाहरलालजी, महेन्द्र प्रिन्टर्स, जबलपुर

१०००/- श्री लक्ष्मीचन्द अनन्तकुमार, लक्ष्मी साडी, जबलपुर

११०१/- स. सिं. धन्यकुमारजी जैन, कटनी, अध्यक्ष श्री भा. दि. जैन परवार सभा

१५०१/- स. सिं. मुरलीधर कन्हैयालाल ट्रस्ट, कटनी

१५०१/- सि. टोडरमल कन्हैयालाल परवार ट्रस्ट, कटनी

५०१/- श्री सुरेशचन्द नरेशचन्द जी, गढ़ावाल, जबलपुर

५०१/- सत्येन्द्र स्टोर्स, स. सि. राजेन्द्रकुमार, जबलपुर

५०१/- स. सि. मुन्नीलाल (दालचन्द नारायणदास), जबलपुर

१००१/- श्री शिखरचन्दजी, विनीत टाकीज, जबलपुर

१००१/- श्री चाँदमलजी सोधिया, पनागर

१०००/- स. सि मूलचन्द दीपचन्द, जबलपुर

५०१/- सि खूबचन्द राजेन्द्रकुमार खादीवाले, खादी भण्डार, जबलपुर

५०१/- बाबू फूलचन्दजी, रिटायर ए.डी.जे., जबलपुर

५०१/- स सि राजेन्द्रकुमार भारल्ल, जबलपुर, कोषाध्यक्ष, श्री भा. दि. जैन परवार सभा

१०००/- स. सि. रामचन्द्र राजेन्द्रकुमार, जबलपुर, प्रतिष्ठान · गरीबदास गुलझारीलाल

१०००/- श्री मोतीलालजी बड़कुर, मिष्ठान्न विक्रेता, जबलपुर

५०१/- श्री कमलकुमार जैन, कमल साड़ी भडार, जबलपुर

५०१/- स. सिं. भागचन्द पूरनचन्द, मध्यप्रदेश हैन्डलूम, जबलपुर

५०१/- श्री चन्दूलाल सुनीलकुमारजी, भेड़ाघाट, जबलपुर

५०१/- श्री शीतलनाथ बड़ा मन्दिर ट्रस्ट अन्दर किला, विदिशा

३०१/- सि. मोतीलाल रतनचन्दजी, पाटन

१००१/- श्री एस.पी.जैन एण्ड ऐसोसिएट्स चारटर्ड एकाउन्टेन्ट्स ९०८, डालामल टावर २११, नरीमन पॉइन्ट, बम्बई

१००१/- श्री जवाहरलाल बड़कुर, आ. कुन्दकुन्द स्वाध्याय मंदिर, विदिशा

५०१/- श्री नन्नूमलजी (दादा) दौलतराम चुन्नीलाल, भोपाल

२५१/- जुम्मालाल राजमलजी, भोपाल

१००१/- सिंघई ताराचन्द जी सौ. आशारानी, कटरा बाजीराव, मिर्जापुर
१०००/- पं. कुन्दनलाल नेमीचन्दजी (कटनीवाले), नई दिल्ली
१००१/- श्री बाबूलालजी सतभैया, टीकमगढ़
१००१/- श्री कपूरचन्दजी पोद्दार, टीकमगढ़
५०१/- श्री मथुरादास प्रसन्नकुमार सिंघई, महरौनी
१००१/- पं. केशरीमलजी वैद्य, पारस मेडीकल स्टोर्स, कटनी
५०१/- श्री इन्द्रचन्द विजयकुमार बुकसेलर, छिंदवाड़ा
५०१/- पं. पल्टूरामजी शास्त्री, गंजबासौदा
५०१/- श्री अनिल हार्डवेयर, गंजबासौदा
२००१/- श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार धर्मेन्द्रकुमार, खुरई
१००१/- तीर्थभक्त स.सिं. जिनेन्द्रकुमार गुरहा, खुरई
१००१/- श्री देवचन्दजी बरौदियावाले, खुरई
१००१/- चौ. नेमचन्द मुन्नालाल चरखा छाप बीड़ीवाले, खुरई
५०१/- चौ. पदमचन्दजी (चि. शैलेन्द्रकुमार की स्मृति में) खुरई
५०१/- श्री मुलामचन्द नन्हूलाल, माला बीड़ी, खुरई
१००१/- श्री यशोधर मोदी (पौत्र स्व. पं. नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई
२५०१/- श्रीमती चन्दाबाई जैन, फर्म : सेठ राजकुमार जैन, बीना, इटावा
५००/- सेठ ऋषभदासजी, सतना
५००/- श्री केवलचन्द कैलाशचन्दजी, सतना
५००/- सेठ सोमचन्दजी, सतना
१०००/- श्री हुकमचन्दजी जैन 'नेता', सतना
१००१/- सिंघई जयकुमार जैन अमरपाटनवाले, रागिनी इन्टरप्राईजेज, सतना

१००१/- सेठ लालचन्द निर्मलकुमार मेमोरियल ट्रस्ट, दमोह

१००१/- सेठ गुलाबचन्द धरमचन्द सुमतचन्द देवेन्द्रकुमार, दमोह

१००१/- श्री श्रेणिक बजाज, बजाज यन्त्रालय, दमोह

५०१/- श्री मूलचन्द गुलझारीलाल बजाज, गाँधी चौक, दमोह

५०१/- श्री पूरनचन्द अभयकुमार वनगाँववाले दमोह

५०१/- डॉ. नागेन्द्रनाथ विद्यार्थी (सुपुत्र वैद्य कपूरचन्दजी विद्यार्थी), दमोह

१००१/- श्री लक्ष्मीचन्दजी मोदी सर्राफ, दमोह

५०१/- श्री प्रेमचन्दजी खजरीवाले, फैशन हाउस, दमोह

५०१/- श्री डा. शिखरचन्दजी, हटा

५०१/- श्री मोतीलाल जी जैन खमरियावाले, पुराना बाजार, दमोह

५०१/- सि. कन्छेदीलाल संतोषकुमारजी, दमोह

१००१/- सि. जीवनलालजी बहेरियावाले, पुराना बाजार, सागर

५०१/- चौ. कुन्दनलाल ऋषभकुमार, ऋषभ ट्रेडिंग कं., सदर बाजार, सागर

१००१/- श्री सुशीलचन्द जी मोदी, स्वाति मेडिकल स्टोर्स, परकोटा, सागर

१००१/- चौ. प्रकाशचन्द कैलाशचन्द, मानकचौक, गल्ला दुकान, सागर

१०००/- श्री पूर्णचन्दजी बजाज सहायता कोष, सागर

५०१/- श्री प्रेमचन्द सुनीलकुमार सर्राफ पटनावाले, सागर

५०१/- श्री नेमचन्द फूलचन्द नेता स्टूडेन्ट्स ट्रेवल्स, सागर

१००१/- श्री आनन्दकुमारजी मोदी, दाल मिल, गल्ला मण्डी, सागर

२०००/- दि.जैन परवार सभा ट्रस्ट, हस्ते पदमकुमार, सागर

५००/- पं. श्री अमरचन्दजी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य, शाहपुर

५००/- विद्याभूषण पं. हुकमचन्दजी शास्त्री, ललितपुर

५०१/- श्री बाबूलालजी चड़रऊवाले, नवीन गल्ला मण्डी, ललितपुर

५०१/- श्री रमेशचन्दजी, दि.जैन पचायत सभा, ललितपुर

५०१/- श्री हुकमचन्द मथुरादास टड़ैया, ललितपुर

५०१/- सेठ अभयकुमार निहालचन्दजी टड़ैया, ललितपुर

५०१/- सेठ जिनेश्वरदास पन्नालालजी टड़ैया, ललितपुर

१००१/- श्री नन्दकिशोर हुकमचन्द हीरालाल खजुरियावाले, ललितपुर

५०१/- श्रीमती अनन्तीबाई धर्मपत्नी हीरालालजी सर्राफ, ललितपुर

५०१/- श्री बाबूलालजी कठरया, ललितपुर

२५१/- चौ. शिखरचन्द रमेशचन्दजी, ललितपुर

१०००/- सेठ भगवानदासजी शोभालालजी बीड़ीवाले, सागर

१०००/- श्रीमन्त सेठ राजेन्द्रकुमारजी, फर्म : श्रीमन्त सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्दजी, विदिशा

१००१/- स्व. श्रीमती सेठानी कस्तूरीबाई धर्मपत्नी स्व. श्रीमन्त सेठ बिरधीचन्द्रजी, मातेश्वरी सेठ प्रीतमकुमारजी कमलकुमारजी, सिवनी

■

आवरण परिचय :

अहारक्षेत्र मे उपलब्ध मूर्तिलेखो मे गृहपति वंश के साथ कोछल्ल गोत्र का उल्लेख है । साथ ही सवत् १२०७ के मूर्तिलेख में गृहपति वंश की अनेक पीढ़ियो को गिनाते हुए साहु मातन को पौरवाल (पौरपाट) अन्वय का लिखा है । कोछल्ल गोत्र वर्तमान परवार जैन समाज के बारह गोत्रो मे से एक है । अतः ज्ञात होता है कि गृहपति वंश का सम्बन्ध परवार समाज से है ।

'खजुराहो' के दिगम्बर जैन मन्दिरो के निर्माता गृहपति वंश मे उत्पन्न श्री पाहिल श्रेष्ठी थे, जो चन्देल नरेश धङ्ग द्वारा सम्मानित थे । श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर (क्रमाङ्क २५) के दरवाजे के दाहिनी ओर लगा हुआ शिलालेख इस प्रकार है:

१. ओं संवत् १०११ समये । निजकुल धवलोयम् दि-
२. व्यमूर्तिः स्वसी (शी) ल स (श) मदम गुण युक्त सर्व
३. सत्वानुकम्पी (IX) स्वजनित तोषो धङ्ग राजेन
४. मान्य: प्रणमति जिननाथो यं भव्य पाहिल
५. नामा (१) पाहिल वाटिका । चन्द्रवाटिका २, ।
६. लघु चंद्रवाटिका ३, सं (शं) कर वाटिका ४ पंचाई
७. तन वाटिका ५, आम्रवाटिका ६, ध (धं) गवाड़ी
८. पाहिल वंसे (शे) तु क्षये क्षीणे अपर वंसो (शो) य: कोपि
९. तिष्ठति (१) तस्य दासस्य दासोहम् मम दत्तिस्तु पाल-
१०. येत् महाराज गुरु स्त्री (श्री) वासवचन्द्र(:) वैसा (शा) ष (ख)
११. सुदि ७ सोम दिने

यह लेख सवत् १०११ का है । इसमे चन्देलवशी महाराजा धङ्कका उल्लेख है तथा 'पाहिल' श्रेष्ठी द्वारा निर्मित सात वाटिकाओ— (१) पाहिल वाटिका, (२) चन्द्र वाटिका, (३) लघु चन्द्र वाटिका, (४) शकर वाटिका, (५) पञ्चायतन वाटिका, (६) आम्र वाटिका और (७) धङ्गवाटिका का नामोल्लेख है ।

इस लेख मे निर्माणकर्ता श्री पाहिल श्रेष्ठी ने इच्छा प्रकट की है कि जो कोई भी इस पृथ्वी पर शासन करे वह मुझे अपना दासानुदास समझकर मेरी इन सात वाटिकाओ का सरक्षण करता रहे ।

इस लेख मे श्री पाहिल श्रेष्ठी के गुरु श्री वासवचन्द्र का भी उल्लेख है । ये एक सुप्रसिद्ध दीर्घजीवी दिगम्बराचार्य थे, जो संवत् १०६६ तक जीवित रहे । इन्होने अनेक ग्रन्थो की रचना भी की थी